४

निराला रचनावली

निराला के लिखे हुए पत्र... इनमें अधिकतर पत्र उनके साहित्यिक मित्रों को लिखे गये हैं और खासी संख्या ऐसे पत्रों की है जो पारिवारिक हैं। **निराला** के साहित्यिक और पारिवारिक परिवेश की जानकारी के लिए इस सामग्री का महत्त्व स्पष्ट ही है। एक ओर भारतेन्दु-युग के अन्तिम छोर पर नाथूराम शंकर शर्मा हैं और उनके साथ स्वयं युग-निर्माता महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, दूसरे छोर पर केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर आदि **निराला** के बादवाली पीढ़ी के लोग हैं। इनके बीच जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, सुमित्रानन्दन पन्त, विनोदशंकर व्यास, बनारसीदास चतुर्वेदी, सनेही, उग्र, नन्ददुलारे वाजपेयी, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि साहित्यकार हैं। इनको लिखे हुए **निराला** के पत्रों से किसी न किसी रूप में उनसे **निराला** के सम्बन्धों की, अथवा साहित्यकारों के आपसी सम्बन्धों की झलक मिलती है और सर्वत्र **निराला** की मनोदशा का परिचय तो मिलता ही है।... जो लोग इस अफवाह के शिकार हैं या खुद उसे फैलाने के जिम्मेदार हैं कि **निराला** तो मस्त, फक्कड़ जीव थे, जिन्हें घर-गृहस्थी की चिन्ता न थी, वे **निराला** के गृहस्थ जीवन, उनके दायित्वबोध, कर्तव्यनिष्ठा का चित्र यहाँ देखें। काफी पत्र रामकृष्ण त्रिपाठी के नाम हैं। जीवन के जिस दौर में **निराला** बहुत विक्षिप्त जान पड़ते थे, उस दौर में भी वे रामकृष्ण की पढ़ाई-लिखाई से लेकर उनकी गृहस्थी जमाने तक की ओर सतर्क थे। यहाँ सामान्य गृहस्थ का ही नहीं, पिता के विशेष दायित्वबोध का भी परिचय मिलता है।... **निराला** के पत्र अलग-थलग वाक्यों में नहीं, अपनी पूर्णता में पठनीय हैं। प्रायः प्रत्येक पत्र कुशल संरचना का नमूना है। यह संरचना वैचारिक निबन्ध की तरह सोच-विचारकर नहीं की गयी। वह सहज है और सिद्ध करती है कि **निराला** की कला में इस संगठन-तत्व का महत्त्व कितना अधिक है। दो-एक वाक्य औपचारिक या आनुषंगिक हो सकते हैं, शेष पत्र एक बँधा हुआ मज़मून होता है अथवा उनकी मनोदशा का संक्षिप्त किन्तु पूर्ण चित्र होता है। लम्बे पत्र वे कम लिखते हैं किन्तु जब लिखते हैं तब उनकी यह गठनक्षमता उल्लेखनीय होती है।

रामविलास शर्मा

रचनावली के इस अन्तिम खण्ड में दो तरह की सामग्री है: पुराकथाएँ और पत्र। पुराकथाओं में **रामायण की अन्तर्कथाएँ** और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **महाभारत** समाविष्ट हैं। पत्रों में अन्य अनेक साहित्यकारों के साथ, जिनका उल्लेख डॉ. रामविलास शर्मा के उपरोक्त उद्धरण में है, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम लिखे गये पत्रों का भी समावेश है।
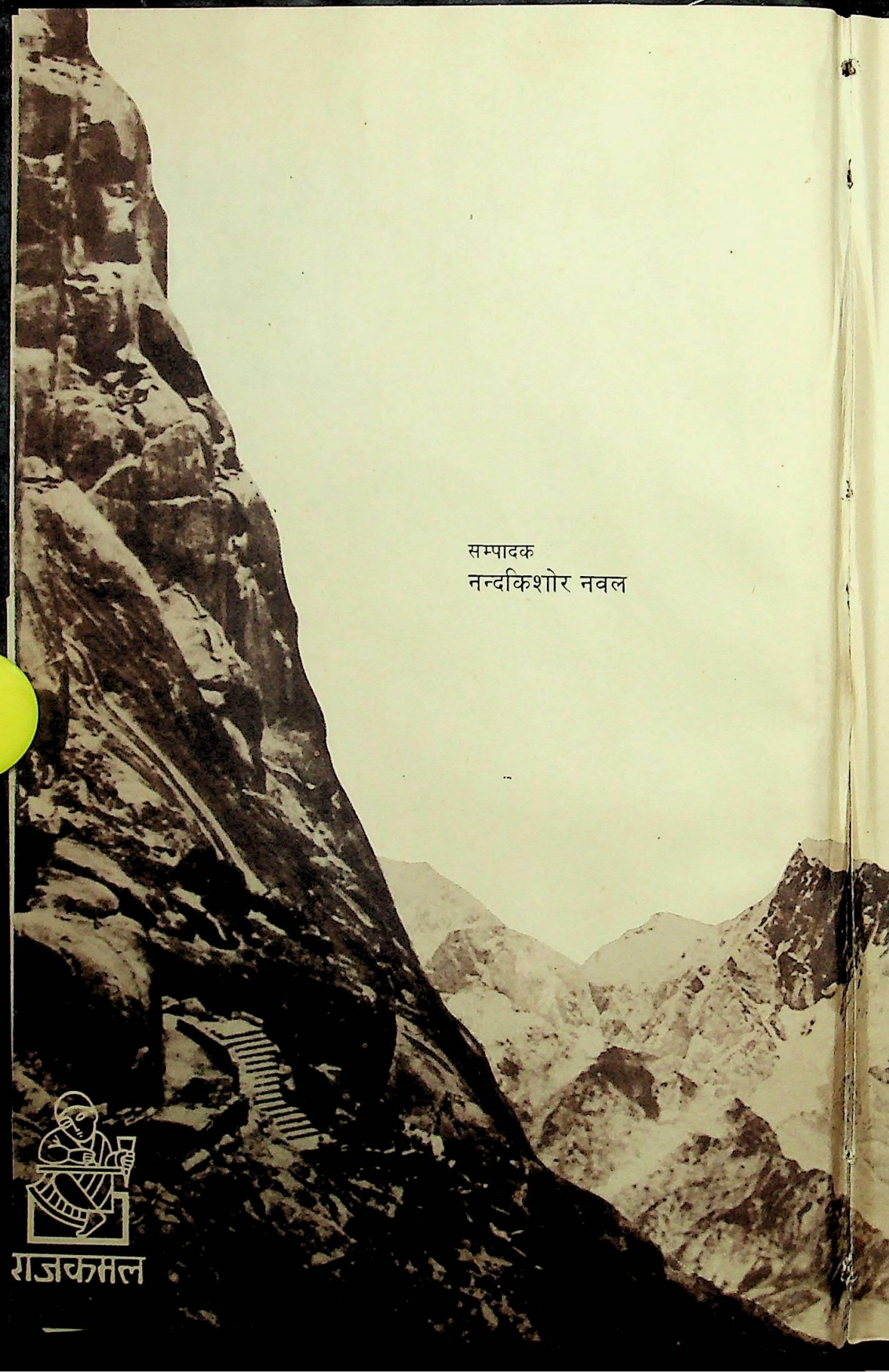
पुराकथा एवं पत्र

रामायण की अन्तर्कथाएँ, महाभारत
और पत्र-संग्रह

तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता

सम्पादक
नन्दकिशोर नवल
राजकमल

निराला रचनावली

4

मूल्य
प्रति खण्ड रु० 75.00
सम्पूर्ण सैट रु० 600.00

द्वितीय संस्करण
मार्च, 1983

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8 नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली - 110 002

मुद्रक
रुचिका प्रिन्टर्स
नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110 032

आवरण तथा
प्रारम्भिक पृष्ठ :
प्रभात आफसेट प्रेस,
दरियागंज, नयी दिल्ली

कला-पक्ष
आवरण के लिए
निराला का रेखांकन :
हरिपाल त्यागी

कला - संयोजना :
चाँद चौधरी

NIRALA
RACHANAVALI
Collected Works of
Suryakant Tripathi 'Nirala'

1960 की बीमारी मे

1957

1962

श्री:

दारागंज, इलाहाबाद
३० दिसम्बर १९४४
रात आठ

चिरञ्जीव रामकृष्ण,

पत्र का उत्तर देर से दे रहे हैं। इस महीने दो मनीआर्डर भेजे। एक की रसीद अभी नहीं आई। डलमऊ से पत्र आया है कि वह मनीआर्डर भी फ़ारवर्ड भेज दिया गया। अबतक मिल गया होगा।

तुम्हारे मामा की बीमारी से चिन्ता है। हमारी लाचारी मालूम है। रुपया हाथ आया तो भेजेंगे।

तुम्हारे दूसरे मनीआर्डर के साथ बिहारीलाल को भी २५) भेजे थे। पत्र आया है, मिल गये। जाड़े से कुछ पहले कोट, रजाई, चद्दरें, धोतियां आदि २००) से अधिक की लागत के कपड़े दिये थे जब वह आये थे।

रायल्टी की बातचीत दूसरों से कम किया करना। चुपचाप अपने काम में लगे रहकर हासिल निकाल लो। हमारा दूसरा लड़का ऐसा कोई नहीं। मदद पहुंचती रहेगी।

किसानी अर्थाभाव से नहीं चली। अच्छा हुआ जो कुछ हुआ। एक अभिलाषा हो गई। तुम्हारी शक्ति के विकास का वह अनुकूल क्षेत्र नहीं।

शिवशेखर जी तथा भाइयों के समाचार पत्र द्वारा देते रहो।

लखनऊ में हमारे नाम कुछ बाकी रह गई है। काम अब शुरू हुआ है, जाड़े की समाप्ति तक चुका देने का प्रयत्न करेंगे। इसके सम्बन्ध में भी विशेष बातचीत इसके सिवा न करना।

हम भी सन ४२ में महीनों बीमार रहे। फ़साद चलता ही गया। इति।

सस्नेह
- सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

निराला की हस्तलिपि में श्री रामकृष्ण त्रिपाठी को लिखा गया एक पत्र

आभार

निराला रचनावली प्रकाशित हो रही है, यह राजकमल के लिए गौरव की बात है। जिस प्रकार महाकवि की जीवन-यात्रा संघर्षपूर्ण रही, उसी प्रकार इस **रचनावली** के प्रकाशन में तरह-तरह की कठिनाइयाँ और बाधाएँ सामने आयीं। किन्तु बड़े धैर्य के साथ हमने सभी कठिनाइयों को हल किया और इसके प्रकाशन में सभी निराला-प्रेमियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग हमें मिला।

रचनावली में भारती भण्डार, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, आराधना, सुकुल की बीवी, प्रबन्ध-प्रतिमा, निरुपमा और अपरा], निराला प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद, की चार पुस्तकें [प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़ और चतुरी चमार] तथा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [अर्चना, वेला, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, अणिमा, देवी, काले कारनामे और रवीन्द्र-कविता-कानन] संकलित की गयी हैं और इन संस्थाओं ने अपनी पुस्तकें **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी है। यह स्वस्थ परम्परा हिन्दी-प्रकाशन के लिए स्वागत-योग्य है।

रचनावली में जिन चित्रों का उपयोग किया गया है वे हमें सर्वश्री अमृतलाल नागर, ओंकार शरद, अजितकुमार, नेमिचन्द्र जैन, रामकृष्ण त्रिपाठी तथा इण्डियन आर्ट स्टूडियो देहरादून के श्री नवीन नौटियाल से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्री बरुआ द्वारा सम्पादित 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से भी कई चित्र लिये गये हैं।

रचनावली के पत्रोंवाले खण्ड में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक 'निराला के पत्र' से महाकवि द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र संकलित हुए हैं। श्री सोहनलाल भार्गव, लखनऊ, ने स्वर्गीय श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम लिखे गये पत्र और श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, इलाहाबाद, ने अपने नाम लिखे गये पत्र, जो 'निराला की साहित्य साधना' के तीसरे खण्ड में संकलित हैं, **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी।

उपरोक्त सभी संस्थाओं और महानुभावों तथा परोक्ष रूप से सहायक होनेवाले अन्य व्यक्तियों के हम आभारी हैं। उनके सहयोग से ही यह स्वप्न साकार हुआ है।

19 जनवरी, '83

शीला सन्धू

आठवाँ खण्ड

निराला रचनावली के इस अन्तिम खण्ड में दो तरह की चीजें दी जा रही हैं--पुराकथाएँ और पत्र। निराला की पुराकथाओं का एक संकलन प्रकाशित है—**रामायण की अन्तर्कथाएँ**। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **महाभारत** भी पुराकथा ही है। ये दोनों पुस्तकें बालसाहित्यवाले खण्ड में भी सम्मिलित की जा सकती थीं, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। कारण यह कि 'अन्तर्कथाएँ' बच्चों को ध्यान में रखकर नहीं रची गयीं। **महाभारत** भी केवल बच्चों के लिए नहीं रचित है। इसकी भूमिका में निराला ने लिखा है कि "यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृह-देवियों और बालकों के लिए लिखी गयी है।" अतः **अन्तर्कथाएँ** और **महाभारत** को प्रस्तुत खण्ड में दिया गया है। पुराकथाओं के बाद इसके दूसरे भाग में पत्र हैं।

रामचरितमानस के प्रति निराला के अनुराग के बारे में कुछ कहना नहीं है। यह महाकाव्य हिन्दी-भाषी जनता के जातीय जीवन का दर्पण है। दूसरे, यह अवधी में रचित है, जो निराला के घर की बोली थी! सुदूर बंगाल में भी उनके परिवार में इसके पठन-पाठन की परम्परा थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने **निराला की साहित्य-साधना (1)** में उनके पिता के बारे में लिखा है: "रामसहाय **रामायण**, **हनुमानचालीसा** का पाठ करनेवाले सीधे-साधे ब्राह्मण सिपाही थे।" (पृ. 13) बालक सुर्जकुमार (निराला) के बारे में वे कहते हैं: "अब वह घर में ककहरा और गिनती सीखने लगे। रामसहाय सोते समय गिनती सिखाते। जब गिनती आ गयी तब पहाड़े सिखाने लगे। कभी वह भजन गाते, **हनुमानचालीसा** पढ़ते, या **रामायण** का पाठ करते।" (पृ. 16) जब कुछ बड़े हुए, "सुर्जकुमार कसरत करते, बादाम छानते, **रामायण** पढ़ते और मित्रों से गप लड़ाते।" (पृ. 32) युवावस्था में: "सुर्जकुमार महिषादल लौट आये। फिर वही तहसील-वसूली, कचहरी-अदालत। वह और भी नियमित रूप से **रामायण** का पाठ करने लगे।" (पृ. 34) तात्पर्य यह कि जैसे-जैसे निराला प्रबुद्ध होते गये, **रामचरितमानस** से उनका लगाव बढ़ता गया। धीरे-धीरे वह उनके जीवन की "सबसे बड़ी निधि" बन गया। डॉ. शर्मा ने लिखा है: "सुर्जकुमार अपनी सबसे बड़ी निधि तुलसीकृत **रामायण** भी साथ ले गये थे। स्वामीजी (स्वामी प्रेमानन्द) की आज्ञा पाकर वह पाठ करने लगे।" (उपर्युक्त) यह आकस्मिक नहीं है कि निराला ने आलोचना लिखना शुरू किया, तो अपने आरम्भिक निबन्ध तुलसीदास और उनके काव्य पर लिखे। बाद

में उन्होंने तुलसीदास पर अपनी प्रसिद्ध प्रबन्धात्मक कविता लिखी—'तुलसीदास'।

मानस की एक सुन्दर टीका लिखने का विचार निराला के मन में बहुत पहले से था। 15 दिसम्बर, 1927 के पत्र में उन्होंने आचार्य शिवपूजन सहाय को, जब वे हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय से सम्बद्ध थे, लिखा था : "आपके वहाँ क्या रंग है, पुस्तकें निकलती हैं या नहीं, **रामायण** की टीका कोई लिखवाना चाहते हैं या नहीं, और जो नई बातें हों लिखिए।" बाद में जब वे गंगा-पुस्तकमाला में काम करने लगे, "उन्होंने दुलारेलाल भार्गव को सुझाया कि रामायण का एक बृहद सचित्र संस्करण निकालें, टीका निराला लिखेंगे, स्थायी मूल्य की चीज़ होगा, बड़ा लाभ होगा।" (उपर्युक्त, पृ. 188) 'सुधा' के मार्च, 1932 के अंक में श्री दुलारेलाल भार्गव ने 'तुलसीकृत रामायण का सटीक और सचित्र बृहद् संस्करण' शीर्षक संपादकीय टिप्पणी लिखी और टीका के प्रकाशन की योजना प्रस्तुत की। पुनः अगस्त, 1932 के अंक में 'रामायण का बृहत् संस्करण' शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा "श्रावण-शुक्ल सप्तमी को श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण का एक बृहत्, सचित्र संस्करण प्रेस में छपने को हमने दे दिया है। यह संस्करण 20 भागों में, 4 भाग प्रतिवर्ष के हिसाब से निकलकर, 4 वर्षों में पूरा प्रकाशित होगा।" क्रमशः 1935 ई. (संवत् 1991 वि.) और 1936-37 ई. (संवत् 1993 वि.) में **रामायण** की टीका के प्रथम दो खण्ड धर्म ग्रन्थावली के अन्तर्गत गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से प्रकाशित हुए। प्रथम खण्ड में मानस के मंगलाचरण से लेकर "पुलक बाटिका बाग बन सुख सुविहंग विहारु। माली सुमन सनेह-जल सींचत लोचन चारु।" इस दोहे तक की टीका दी गयी थी और द्वितीय खण्ड में उसके आगे से लेकर "नाथ उमा मम प्रान सम गृह-किंकरी करेहु। छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥" इस दोहे तक की। उसके बाद टीका का कोई खण्ड न निकला, जिससे स्पष्ट है कि मानस के जिन अंशों की टीका की गयी वे उसके बालकाण्ड के ही अंश हैं और आरम्भिक एवं थोड़े-से अंश। टीका संक्षिप्त एवं साधारण है। उसमें जो अन्तर्कथाएँ दी गयी हैं वे अवश्य विस्तृत हैं और निराला की गद्य-लेखन की क्षमता का परिचय देती हैं।

श्री भार्गव ने बहुत प्रयास किया कि निराला से **मानस** की सारी अन्तर्कथाएँ लिखा लें, लेकिन ऐसा लगता है कि अपेक्षित पारिश्रमिक न मिलने के कारण निराला ने बाद में उस काम में रुचि नहीं ली। 22 जुलाई, 1937 के पत्र में वे श्री भार्गव को लिखते हैं : **रामायण** में मिहनत बहुत पड़ती है। पिछली दो शृंखलाएं जो मैंने तैयार की हैं, हर-एक के लिए क्या मिला, सूचित करने की कृपा करें, तो मुझे मालूम हो जायगा कि पारिश्रमिक से किसी तरह पूरा पड़ेगा या नहीं।" पुनः वे 24 जुलाई, 1937 को उन्हें लिखते हैं : "मैं तो आपसे यह जानना चाहता था कि गत दो अंकों की अन्तर्कथाओं के लिए आपने क्या-क्या दिया है लिखें। आप इस पर या तो पर्दा डालते हैं, या हिसाब ही नहीं किया। कृपया हिसाब लिखें।" इसी तरह का बाद का भी निराला का एक पत्र है, जिसमें उन्होंने श्री भार्गव से कहा है : "**रामायण** का काम मिहनत ज्यादा लेता है, मजदूरी कम देता है। अगर कराएँ तो इस हिसाब में 500) शीघ्र भेजें।" 7 दिसम्बर,

1938 के पत्र में वे उन्हें सूचित करते हैं कि "रामायण में अन्तर्कथा मुझे नहीं मिली एक भी, दो बार पढ़ने पर भी।" अन्त में 9 जनवरी, 1939 को वे उन्हें लिख देते हैं कि "अब क्या बाक़ी रहा जो रामायण का काम पूरा किया जाय, समझ में नहीं आता।" यह श्री भार्गव और निराला के बीच पारिश्रमिक को लेकर जो तनाव चल रहा था उसकी परिणति है। यह पत्र काफी झल्लाहट में लिखा गया है। इसके शुरू में निराला श्री भार्गव से कहते हैं: "आपसे बहुत मर्तबे कह चुका और लिख भी चुका कि दो बार पढ़ने पर भी रामायण में मुझे कथा नहीं मिली···।" इससे हमारा यह अनुमान है कि **मानस** की टीका उन्होंने दो खण्डों के बाद नहीं लिखी, न उसकी अन्तर्कथाएँ ही। **रामायण की अन्तर्कथाएँ** के नाम से टीका के दो खण्डों में दी गयी अन्तर्कथाएँ बाद में (सम्भवतः 1956 ई. में) गंगा-पुस्तकमाला से स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुईं।

रामायण की टीका के दो खण्डों में कुल तेईस अन्तर्कथाएँ आयी हैं, जबकि **रामायण की अन्तर्कथाएँ** नामक पुस्तक में एक कथा अधिक है। वह है 'कार्त्तिकेय की कथा', जो 'तारकासुर की कथा' के बाद दी गयी है। एक तो इस कथा का कोई प्रसंग नहीं है, दूसरे इसकी भाषा बहुत साधारण है, जिसमें वर्णन की शक्ति बिलकुल नहीं है। इससे अनुमान होता है कि यह निराला लिखित नहीं। अतः इस कथा को छोड़ दिया गया है। अन्तर्कथाओं के सम्बन्ध में अन्य ज्ञातव्य बात यह है कि जब उनका प्रकाशन पुस्तक-रूप में होने लगा तो श्री दुलारेलाल भार्गव ने उनकी भाषा में सम्पादन किया, जिससे उसका वैशिष्ट्य बहुत कुछ नष्ट हो गया। उदाहरण के लिए पहली ही कथा के ये दो रूप देखे जा सकते हैं:

1. "एक ब्राह्मण के लड़का पैदा हुआ। वह छोटा ही था, उसे एक भीलनी चुरा ले गयी, और अपने यहाँ पाला-पोसा। उसका नाम रत्नाकर रक्खा।" (मूल)

2. "वाल्मीकि का जन्म एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। लेकिन बाल्यावस्था में ही उन्हें एक भीलनी चुरा ले गयी, और अपने यहाँ रखकर पाला-पोसा। नाम रत्नाकर रक्खा।" (सम्पादित)

इन दोनों रूपों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि निराला की भाषा जहाँ मुहावरेदार, बातचीत की लय से युक्त और हिन्दी की अपनी प्रकृति के अनुरूप है, वहाँ श्री भार्गव की भाषा सपाट, लयरहित और भाषा-सम्बन्धी शुद्धतावादी नीति का अनुसरण करनेवाली। निराला ने लिखा था—"एक ब्राह्मण के लड़का पैदा हुआ।" श्री भार्गव ने सम्पादन में इसकी मुहावरेदारी खत्म कर दी, साथ ही 'लड़का' और 'पैदा होना'-जैसे 'अ-संस्कृत' संज्ञा और क्रिया-पद हटा दिये। इसी तरह उन्होंने 'छोटा' की जगह 'बाल्यावस्था' शब्द का प्रयोग किया और "अपने यहाँ के बाद 'रखकर' जोड़ना जरूरी समझा। यह सब देखकर **रामायण की अन्तर्कथाएँ** नामक पुस्तक के बजाय **रामायण** की टीका से मूलकथाएँ टंकित करायी गयीं और यहाँ वही दी जा रही हैं, जिससे कि निराला का अपना लेखन पाठकों और विद्वानों के सामने आये।

रामायण की टीका लिखने के साथ-साथ निराला **महाभारत** नामक पुस्तक भी लिख रहे थे। 4 मई, 1936 के पत्र में वे श्री भार्गव को लिखते हैं: "**महाभारत**

प्रेस में दे दिया, अच्छा किया। पाँच-छ: आने बाक़ी है। लिखकर देता हूँ।" इसके बाद वे कहते हैं: "**रामायण** का एक अंक (सम्भवत: दूसरा खण्ड—सम्पादक) भी जल्द कर दूंगा।" **रामायण** का यह खण्ड तो उन्होंने जल्द पूरा कर दिया, लेकिन महाभारत का जो अंश बचा था उसे उन्होंने काफी समय लेकर पूरा किया। 25 जून, 1937 के पत्र में निराला ने श्री भार्गव को सूचित किया कि "**महाभारत** लिखना शुरू किया है। अभी तक गर्मी के कारण बन्द था। कोई बाधा न हुई तो 15/20 दिन में लिख डालने का विचार है।" पन्द्रह-बीस दिनों में **महाभारत** पूरा न हुआ, क्योंकि करीब्र एक वर्ष बाद 31 मई, 1938 को लिखे गये पत्र में उन्होंने उन्हें लिखा कि "**रामायण** देकर **महाभारत** में हाथ लगाऊँगा।" **रामायण** देने की नौबत तो नहीं ही आयी, **महाभारत** के पूरा होने में करीब एक वर्ष और लग गया। 9 जून, 1939 के पत्र में उन्होंने श्री भार्गव को लिखा है कि "**महाभारत** की आज पूरी पाण्डुलिपि दी।" इस तरह निरालाकृत '**महाभारत**' 1939 ई. के अन्त में प्रकाशित हुआ, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से। पुस्तक में भूमिका और समर्पण के नीचे निराला ने जो तिथि दी है, वह है 26 जुलाई, 1939। 4 नवम्बर, 1939 को उन्होंने श्री भार्गव को जो पत्र लिखा उसमें **महाभारत** के प्रकाशित हो जाने की पक्की सूचना है, क्योंकि इसमें इस बात का उल्लेख है कि उक्त पुस्तक की एक प्रति वे उनकी दूकान से ले गये। अनुमानत: **महाभारत** 1939 के अक्तूबर के अन्त या नवम्बर के बिलकुल शुरू में निकला होगा।

मानस के पौराणिक सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिए निराला ने जो कथाएँ लिखीं, वे उनकी उत्कृष्ट कलात्मक रचनाएँ हैं। उनमें उनकी कल्पना का सृजनात्मक रूप देखते ही बनता है। सौन्दर्य प्रकृति का हो, या मनुष्य का, उसके वर्णन में वे अद्वितीय हैं। इसी तरह ओजपूर्ण प्रसंगों के वर्णन में भी उनका सानी नहीं है। "त्रिकूट नामक एक मनोहर पर्वत है, जो क्षीरसागर से घिरा हुआ है। यह दस हजार योजन ऊँचा है, और इतना ही चारो ओर से घिरा हुआ। उसकी तीन चोटियाँ सोने, चाँदी ओर लोहे की आभा से विभासित हैं, जिनसे दिशाएँ चमकती रहती हैं, और सागर भी प्रतिफलित रहता है। उसमें और भी चोटियाँ हैं, जो भिन्न-भिन्न रत्नों और धातुओं की प्रभा से जगमग रहती हैं। उसमें असंख्य सुन्दर-सुन्दर पेड़, लताएँ, तृण-गुल्म आदि हैं। पर्वत से सुखद कल-कल जल-शब्द करती उतरती हुई एक बड़ी ही सुहावनी निर्झरिणी है, जो अपने शुभ्र-स्वच्छ जल से पर्वत के चरण धोती, दिगन्त को मधुर ध्वनित करती, बहती चली जाती है। पर्वत-राज ने वहाँ की पृथ्वी को हरे मरकत की आभा से ढक रखा है।" ('गजेन्द्र-मोक्ष') यह प्रकृति का भव्य वर्णन है। इसी तरह नारी-सौन्दर्य का वर्णन: "यह तन्वंगी, कृश-कटि, सूक्ष्म-रोमावलि, कुन्द-दशना, विद्युत्प्रभा रति थी।" ('मदन और रति' की कथा) ओजपूर्ण वर्णन का उदाहरण यह है: "पिता से परशुराम ने सहस्रबाहु के अत्याचार का हाल सुना। क्रोध से उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने अपना कराल फरसा, धनुष, तूण, तीर और वर्म आदि लेकर हाथियों की ओर झपटते हुए सिंह-जैसे राजा का पीछा पकड़ा। अपने नगर में घुसते-घुसते कार्तवीर्य ने देखा, परशुराम फरसा और धनुष लिये हुए, वर्म पहने बड़े वेग से दौड़े चले आ रहे हैं,

उनकी जटाएँ झूम रही हैं, उनका चेहरा सूर्य-जैसा चमकीला है। यह देखकर सहस्रबाहु ने सत्रह अक्षौहिणी सेना सब अस्त्रों से सुसज्जित परशुराम का सामना करने के लिए भेज दी। परन्तु भगवान् परशुराम ने देखते-देखते सम्पूर्ण सेना ध्वस्त कर दी। केलों के पेड़-जैसे अर्जुन की सेना परशुराम के फरसे के प्रहार से कट-कट-कर गिर गयी। जब सहस्रबाहु ने देखा, उसकी सब सेना काम आ गयी, खून की धारा बह रही है, और परशुराम विजय के दर्प से शत्रु के रुधिर से रँगा हुआ निश्शंक जटा बाँध रहा है, तब क्रोध में भरकर स्वयं मैदान में पहुँचा। एक ही बार पाँच सौ धनुष लेकर तेज़ पाँच सौ तीर उसने परशुराम पर छोड़े। पर परशुराम ने अपने एक ही धनुष के लघु सन्धान से उसके सब तीर काट दिए।" ('सहस्रबाहु की कथा') **अन्तर्कथाएँ** की भाषा में यथास्थान संस्कृत के शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है, तथापि यह भाषा बोझिल और गतिहीन नहीं है। इसका कारण यह भी है कि निराला भाषा के प्रति शुद्धतावादी दृष्टिकोण छोड़कर चलते हैं और यथास्थान ऐसी भाषा का भी प्रयोग करते हैं : "दीर्घकाल तक मथने के पश्चात् जब चौदहो रत्न निकले, तब अमृत लेकर बड़ा उत्पाद शुरू हुआ। दानवों ने देवताओं से दोस्ती बालाए-ताक़ कर दी, और छीना-झपटी पर कमर कस ली। देवता बेचारे दैत्यों से कमज़ोर पड़ते थे। बहुत डरे कि कहीं ऐसा न हो कि हमारी मिहनत व्यर्थ जाय और दैत्य अमृत पीकर अमर हो जायँ, फिर मारे भी न मरें।" ('राहु की कथा') कहने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत के नादपूर्ण शब्द जहाँ भाषा को उच्चस्तर पर उठाते हैं, वहाँ अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द उसमें रवानी लाते हैं।

निराला के सम्पूर्ण पौराणिक कथा-लेखन की परिणति उनके **महाभारत** में हुई है। क्या सौन्दर्य-वर्णन, क्या युद्ध-वर्णन और क्या कारुणिक दृश्य-वर्णन, निराला सर्वत्र अपनी वर्णन-क्षमता से हमें चमत्कृत करते हैं। **महाभारत** का गद्य गजब के क्लासिकल सौन्दर्य से युक्त है। यह आकस्मिक नहीं है कि निराला की सर्वश्रेष्ठ कविता 'राम की शक्तिपूजा' का रचना-काल वही है, जो इस पुस्तक का। 'शक्ति-पूजा' के आरम्भ में जो युद्ध-वर्णन है, उसे प्रस्तुत करने की क्षमता निराला ने निश्चय ही **महाभारत** की कथा लिखते हुए ही प्राप्त की थी। "सरोज-स्मृति" में इस तरह के जो बिम्ब हैं—"देखता रहा मैं खड़ा अपल वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल," उनका भी स्रोत **महाभारत** ही है। **महाभारत** पढ़ने पर यह अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि निराला गद्य की बहुत ही मजबूत जमीन पर खड़े थे। छायावादी कवियों में से तो किसी ने उन-जैसा कठोर और दमकता हुआ गद्य नहीं ही लिखा, दूसरे लेखकों में भी हिन्दी गद्य ने वैसी ऊँचाई नहीं प्राप्त की।

[2]

रचनावली के प्रस्तुत खण्ड के दूसरे भाग में निराला के पत्र संकलित हुए हैं। पत्रों की कुल संख्या 197 है। इसमें श्री रामकृष्ण त्रिपाठी के नाम लिखे गये चालीस पत्र डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक **निराला की साहित्य साधना** के तीसरे खण्ड से और एक सौ आठ पत्र आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक **निराला के पत्र** से

लिये गये हैं। बाकी उनचास पत्र नये हैं। इनमें से चार पत्र श्री विनोदशंकर व्यास के नाम हैं, जो पाक्षिक 'सारिका' के पत्र-विशेषांक (1 से 15 अप्रैल, 1982) से प्राप्त हुए हैं। बाकी पैंतालीस पत्र श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम हैं, जो श्री सोहनलाल भार्गव के सौजन्य से उपलब्ध हुए। इस काम में उन्होंने रुचि ली और श्रम किया, जिसका कारण गंगा-पुस्तकमाला के साथ निराला के ऐतिहासिक सम्बन्ध हैं। उन्होंने पत्र भेजने के बाद हमें लिखा : "मुझे लगा, आपको ये पत्र दे देने से मैं एक बड़े भार से मुक्त हो जाऊँगा।" निश्चय ही श्री भार्गव के नाम लिखे गये इन पत्रों से उनके साथ निराला के आर्थिक सम्बन्धों पर कुछ नया प्रकाश पड़ता है। कुछ पत्रों में तिथियाँ अधूरी थीं, या थीं ही नहीं। अतः आगे-पीछे की बातों से उन्हें मिलाकर एक-दो पत्रों को छोड़ बाकी में अनुमान से तिथि डालकर क्रमानुसार लगाया गया है। जहाँ तिथि या स्थान अनुमान पर आधारित है, वहाँ बड़े कोष्ठकों का प्रयोग किया गया है। किसी-किसी पत्र पर श्री भार्गव का आदेश या टिप्पणी अंकित थी। उसे यथावत रहने दिया गया है, क्योंकि उससे भी पत्र-लेखक और पत्र-प्राप्तिकर्ता के सम्बन्धों का पता चलता है।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि सब पत्रों को काल-क्रम से न सजाकर एक व्यक्ति के नाम लिखे गये सारे पत्र एक-साथ दिये गये हैं। इससे एक व्यक्ति के साथ निराला के सम्बन्धों को समझने में आसानी होगी।

पत्रों में खण्ड-खण्ड रूप में निराला की जीवन-गाथा बिखरी हुई है। उन्हें क्रमबद्ध रूप से पढ़ने पर उनके समग्र जीवन की एक झाँकी मिल जाती है, उनके साहित्यिक, सामाजिक और आर्थिक संघर्ष की झाँकी। उदाहरण के लिए रामकृष्ण त्रिपाठी को लिखे गये एक पत्र के ये अंश :

"तुम्हारे मामा की बीमारी से चिन्ता है। हमारी लाचारी मालूम है। रुपया हाथ आया तो भेजेंगे।

तुम्हारे दूसरे मनिआर्डर के साथ बिहारीलाल को भी 25) भेजे थे। पत्र आया है। मिल गये। जाड़े से कुछ पहले कोट, रजाई, चदरे, धोतियाँ आदि 100) से अधिक की लागत के कपड़े दिये थे जब वह आये थे।

रायल्टी की बातचीत दूसरों से कम किया करना। चुपचाप अपने काम में लगे रहकर हासिल निकाल लो। हमारा दूसरा लक्ष्य ऐसा कोई नहीं। मदद पहुँचती रहेगी।

किसानी अर्थाभाव से नहीं चली। अच्छा हुआ जो कुछ हुआ। एक अभिज्ञता हो गयी। तुम्हारी शक्ति के विकास का वह अनुकूल क्षेत्र नहीं।

शिवशेखरजी तथा भाइयों के समाचार पत्र द्वारा लेते रहो।

लखनऊ में हमारे नाम कुछ बाकी रह गयी है। काम अब शुरू हुआ है। जाड़े की समाप्ति तक चुका देने का प्रयत्न करेंगे। इसके सम्बन्ध में भी विशेष बातचीत इसके सिवा न करना।

हम भी सन '42 में महीनों बीमार रहे। फ़साद चलता ही गया। इति।"

प्रस्तुत खण्ड के परिशिष्ट में पिछले खण्डों से सम्बन्धित कुछ ऐसी सूचनाएँ और सामग्री दे दी गयी है, जो बाद में प्राप्त हुई।

नन्दकिशोर नवल

रानीघाट लेन, महेन्द्रू,
पटना-800006
25 नवम्बर, 1982

क्रम

पुराकथा एवं पत्र

रामायण की अन्तर्कथाएँ

वाल्मीकि की कथा

एक ब्राह्मण के लड़का पैदा हुआ। वह छोटा ही था, उसे एक भीलनी चुरा ले गयी, और अपने यहाँ पाला-पोसा। उसका नाम रत्नाकर रक्खा। धीरे-धीरे भीलों के बालकों से खेलता हुआ रत्नाकर बड़ा होने लगा। क्रमशः भीलों का स्वभाव उसमें बल प्राप्त करता रहा। पहाड़ी स्थान, जंगल की खुली भयंकरी प्रकृति में पलता हुआ रत्नाकर भी भीलों के बालकों के साथ भयंकर और जंगली बन गया। तीर और धनुष लेकर कई तरुण बालकों के साथ रत्नाकर जानवरों का शिकार खेलने जाता। हिरन, बनैले सुअर, चौगड़े और तरह-तरह की चिड़ियाँ मार-मारकर लाता और भून-भूनकर साथियों के साथ खाया करता। कभी-कभी बड़े-बड़े शेर, चीते और लकड़बग्घों का भी शिकार करता। इस तरह किशोर-काल में ही वह बलिष्ठ, दृढ़ और साहसी होकर अपने साथियों पर हुकूमत करने लगा। उसे सभी भील प्यार करते और मानते थे, क्योंकि वह बड़ा बहादुर था। हिस्से-बाँट में वह सबको शिकार का बराबर भाग देता था। खुद बली और बहादुर होने के कारण ज्यादा न लेता था। इससे भीलों पर उसका नेतृत्व जम गया। जब किशोरावस्था पार हो गयी और जवानी की रंगत दिखायी देने लगी, तब उसके पिता ने एक युवती भीलनी से उसकी शादी कर दी। स्वभाव का भील होने के कारण रत्नाकर में काम-वासना भी बड़ी प्रबल हुई। इसलिए वह पत्नी को प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगा। उसकी पत्नी भी विषय-भोग की उत्तरोत्तर वासना बढ़ाती गयी, और भीलों के सरदार की पत्नी होने के कारण अपने सौभाग्य को सराहती रही।

विवाह हो जाने पर रत्नाकर पर गृहस्थी का भार पडा। उसके वृद्ध माता-पिता भी कमाने से पराङ्मुख हो पुत्र की कमाई का आसरा करने लगे। अपने कुल की प्रचलित प्रथा के अनुसार बालपन के जवान हुए मित्रों को साथ लेकर रत्नाकर लूट-मार से धन प्राप्त करने लगा। उसका हृदय इतना क्रूर हो गया कि वह किसी पर धन के लालच में दया न करता था। तमसा-नदी, वर्तमान टौंस के दोनों तट सर्वदा विपत्ति-संकुल रहने लगे। बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड के दूर-दूर के देशों तक वह धावा करता था। उसके अत्याचार से लोगों में त्रास फैल गया। पहाड़ी सघन वनों में वह अपने दल के साथ छिपा रहता, और यात्री या यात्रियों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ता, तथा उसका सर्वस्व छीन लेता था। किसी

तरह भी उसका दमन न हुआ।

पर उसके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंश भी था। वह राख में छिपी हुई आग की तरह था। जो प्रतिभा लेकर रत्नाकर संसार में आया था, उसका प्रवाह ठीक रास्ते पर अभी तक न हुआ था। पर वह तेज मेधावी था, इसलिए बुरे संसर्ग से अर्जित गुणों की भी उसने हद कर दी, और उधर भी सफलता प्राप्त की। धीरे-धीरे उसके जीवन का दूसरा युग आया।

उसके आतंक से लोगों का रास्ता चलना बन्द हो गया था। इसलिए कई रोज तक रत्नाकर को लूटने के लिए यात्री न मिला। घरवाले भूखों मरते थे। रत्नाकर का भी केवल पशुओं के मांस से पेट न भरा था। लूटे हुए द्रव्य से अच्छे-अच्छे भोज्य मेवा-पकवान आदि खरीदकर और पकवाकर खाने की आदत पड़ गयी थी। वह ताक लगाये एक रास्ते के किनारे बैठा हुआ था। इसी समय सप्तर्षि उस रास्ते से गुजरे। ईश्वर की इच्छा से रत्नाकर का मोह-काल समाप्त हो आया था। उसे जीवन का आवश्यक अंग पूरा करना था। रत्नाकर सप्तर्षि-मण्डल के पास गया, और डाँटकर कहा—"जो कुछ तुम्हारे पास हो, यहीं रख दो, तब आगे को पैर बढ़ाओ।" ऋषिगण रत्नाकर की बात सुनकर चकित हो गये। उन्होंने साधुओं पर डाका पड़ते नहीं देखा था। वे जानते थे, साधुओं को सभी लोग मानते थे, लूटने के लिए साधुओं के पास रहता ही क्या है ? फिर भी रत्नाकर का मनोभाव समझने के लिए उनमें से एक ने कहा—"देखो, हम लोग साधु हैं, हमारे पास क्या रक्खा है, और तुम साधुओं को भी सताते हो ?"

सुनकर रत्नाकर बड़े जोर से हँसा। कहा—"ऐसा बातें बनानेवाला तो मुझे आज तक नहीं मिला। अब बताओ, तुम अपनी जान दोगे या तुम्हारे जो कुछ भी है, वह माल ? कई रोज बाद तुम लोग मिले हो। मैंने कई रोज तक अच्छा भोजन नहीं किया।"

ऋषियों को मालूम हो गया, यह महा मन्द-बुद्धि जड़ है। फिर भी उसमें चेतना लाने के विचार से कहा—"सुनो, तुम इतना पाप जिन लोगों के लिए करते हो, वे तुम्हारे इस पाप के भी भागी हैं ?"

पाप का नाम सुनकर रत्नाकर को होश हुआ। पर घरवालों के प्रेम के कारण उसने कहा—"हाँ, हिस्सेदार क्यों नहीं ?"

ऋषियों ने कहा—"अच्छा, तुम उनसे जाकर पूछ आओ।"

रत्नाकर फिर हँसा। कहा—"यह झाँसा ! अरे तुम बड़े चालाक हो। मैं पूछने जाऊँ और तुम कदम बढ़ाओ !"

ऋषियों ने बड़े धैर्य से कहा—"नहीं, हम यहीं रहेंगे, जब तक तुम लौटोगे नहीं।"

रत्नाकर ने अनेक मनुष्यों को लूटा था। पर सभी लूटने के समय प्राणों के भय से डर गये थे। अब के ही उसने देखा कि ये साधु इस तरह बातें करते हैं, जैसे इन्हें प्राणों का भय न हो। इसका उस पर प्रभाव पड़ा, और उनके खड़े रहने पर विश्वास भी हुआ। रत्नाकर में परलोक का एक विचार पैदा हुआ।

गम्भीर भाव से घर जाकर माता से उसने पूछा—"माता, मैं जो यह पाप

करता हूँ, इसमें हिस्सेदार तो तुम हो न ?"

"वाह !" माता ने कहा—"मैं तेरे पाप में क्यों हिस्सा लेने लगी ? तू किस तरह कमाता है, किस तरह नहीं, यह मैं क्या जानूं ? मुझसे खाने से मतलब। पहले तेरी सेवा, जिस तरह हुई, मैंने की, अब मेरी तू कर।"

पाप के भय से भीत होकर वह अपनी प्रिया के पास गया। पर उसने भी ऐसा ही जवाब दिया कि पत्नी की परवरिश करना पति का धर्म है। वह पाप में हिस्सा नहीं लेती।

उदास होकर रत्नाकर ऋषियों के पास लौट आया। ऋषियों को तब भी खड़ा हुआ देखकर पूरे तौर से प्रभावित हो गया। उसकी आँखों में उसके किये हुए घोर पापों की छाया फिरने लगी, जिससे डरा, और निरुपाय होकर ऋषियों के चरणों पर गिरा। दयालु ऋषियों ने उसे उठा लिया, और आश्वस्त कर कहा—'तुम राम-राम जपो, इससे पापों से रक्षा पाओगे।" पर रत्नाकर 'राम' उच्चारण न कर सका। उसके मुँह से मरा निकला। तब ऋषियों ने वैसा ही जपने के लिए कहा। रत्नाकर आसन पर बैठकर 'मरा-मरा' जपने लगा। जपते-जपते उसे होश हुआ। तब ज्ञान से 'राम-राम' कहने लगा। उसने ऐसी तपस्या की कि अखण्ड ज्ञान में समाधि लग गयी। दीर्घ काल पार हो गया। उसके ऊपर दीमकों की मिट्टी चढ़ गयी। लोगों को वल्मीक या बाँबी का बोध होने लगा। तपस्या में ऐसी दशा प्राप्त हुई, इसलिए ज्ञान के बादवाले जीवन का नाम वाल्मीकि हुआ।

वाल्मीकि मुनि को ज्ञान में मालूम हुआ, वह प्रचेता के दसवें पुत्र हैं। वह आदिकवि कहे जाते हैं। 'रामायण' की रचना उन्हीं ने की, और सीताजी को वनवास होने पर उन्हीं ने उनकी रक्षा की, और उनके पुत्र होने पर उनका लव और कुश नाम देकर यथारीति उन्हें शस्त्र और शास्त्र से शिक्षित किया।

नारद की कथा

नारदजी पूर्वजन्म में वेद पढ़ानेवाले ब्राह्मणों की दासी के पेट से पैदा हुए। वह माता के एकमात्र पुत्र थे। माता उन्हें बहुत प्यार करती थी। उनकी माता अधम स्त्री थी, इसलिए हीन बुद्धि की थी। फिर उसे दूसरों की सेवा से फुरसत न मिलती थी। पर चूंकि पुत्र के सिवा दूसरा कोई उस अबला का अवलम्ब न था, इसलिए दिल से वह उसे बहुत चाहती थी, सिर्फ लड़के की देख-रेख के लिए उसे समय न मिलता था। वह पराधीन थी, अपने और पुत्र के भोजन के लिए उसका सारा दिन सेवा में बीत जाता था। दूसरों के इशारे पर चलनेवाली वह स्त्री सब प्रकार अक्षम थी, इसलिए उसका पुत्र के लिए दिल ही में प्यार उमड़कर रह जाता था।

वर्षा के चार महीने ऋषिगण चातुर्मास-व्रत ग्रहण कर एक जगह सम्मिलित होते

थे। माता ने एक बार पुत्र को उनकी सेवा में लगा दिया। बालक नारद बचपन का लोभ, चंचलता और खिलवाड़ छोड़कर उन्हीं की सेवा में दिन पार करने लगा। ज्यादा बातचीत, ढिठाई, यह कुछ वह लड़का न करता था। इसलिए ऋषिगण किसी तरह का पक्षपात न रखने पर भी बालक नारद को बहुत प्यार करते थे। एक दिन ऋषियों की आज्ञा से उनकी पत्तलों की जूठन बालक ने पायी। उसी दिन से उसका पाप दूर हो गया। क्रमशः चित्त शुद्धतर होता रहा और उनके किए हुए धर्म की तरफ ध्यान गया। इच्छा पैदा हुई। ऋषिगण प्रतिदिन भजन करते और बालक बैठा हुआ सुनता रहा। ऋषियों की पवित्र वाणी में भगवद् भजन सुन-सुनकर बालक के मन में नारायण के प्रति अनुराग पैदा हुआ। उसी समय उसे जान पड़ा कि पंचभूतों से अलग वह साक्षात् ब्रह्म है—अभी तक अपनी अविद्या के कारण वह अपने को शरीरवाला जीव समझता रहा है। वर्षा और शरत् के तीनों सन्धिकाल में ऋषि लोग भगवद्भजन किया करते, जिसे सुन-सुनकर नारद का मन भक्ति की भावना से उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया। इसी से बालक के मन में रज और तमवाले भाव दूर हो गये। वह पूर्णतः पाप से रहित, भक्ति और श्रद्धा से युक्त, विनयी हो गया, और ऋषियों की सेवा करता रहा। वर्षा समाप्त होने पर तपस्वीगण चलने लगे, तो बालक को गहन गूढ़ ज्ञान बतला गये, जिसके बल से बालक विश्व-स्रष्टा भगवान् विष्णु की माया को समझने लगा। ईश्वर की माया का ज्ञान होने पर मनुष्य साक्षात् ईश्वर का गौरव प्राप्त करता है।

बालक को यह ज्ञान जब मिला, तब उसकी उम्र सिर्फ पाँच वर्ष की थी। वह दिन-रात इस चिन्ता में रहता था कि माता के स्नेह से कब उसे छुटकारा मिले। कुछ समय इस प्रकार व्यतीत हुआ। एक रोज रात को उसकी माता ब्राह्मणों की गाय दुहने के लिए गयी। रास्ते में उसके काल-रूप आया हुआ काला नाग पड़ा हुआ था। उस पर दासी का पैर पड़ गया। यद्यपि पैर बहुत हल्का पड़ा था, फिर भी नाग ने उसे क्षमा न किया। चोट की। उस दुःखिनी ने विष की ज्वाला से शीघ्र ही शरीर छोड़ दिया। माता की मृत्यु से बालक नारद को बिलकुल दुःख न हुआ। कारण, ज्ञान की आँखें खुली हुई थीं। बालक ने सोचा, भगवान् विष्णु ने इस छल से माता को लेकर उसकी साधना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। बालक ब्राह्मणों का आश्रय छोड़कर उत्तर की ओर चला। कितने मनोहर सुन्दर-सुन्दर दृश्य, ग्राम और नगर उसने पार किये। कितनी ही सोने और चाँदी की खानें और हरी शोभा से घिरे पहाड़ों के नीचे किसानों के घर देखे। टेढ़ी-मेढ़ी साँप की-सी चाल से स्वच्छ बहती हुई छोटी-छोटी नदियाँ, कमलों का हार पहन हँसती हुई प्रिय पारावार की ओर बढ़ रही थीं। उनके जल में देवता केलि कर रहे थे। किनारे के पेड़ों पर पक्षी अनेक प्रकार के शब्द करते हुए प्रकृति के पावन गीत गा रहे थे। भौंरे फूलों पर उड़-उड़कर विहार कर रहे थे। ये सब सुहावने दृश्य पार कर त्यागी बालक नारद ने एक घोर वन देखा, जिसे मुश्किल से कोई पुरुष पार कर सकता था। वहाँ हिंस्र पशु भरे हुए थे। सिंह, बाघ, रीछ, चीते, अजगर आदि की घोर गर्जना से वह वन भयावना हो रहा था। बालक थका हुआ, भूख और प्यास से व्याकुल हो रहा था। पास ही बहती हुई नदी देखकर उसने उसमें

स्नान किया, और चूल्लू भर-भरकर पानी पिया। इस प्रकार कुछ स्वस्थ होकर पास के एक वट की जड़ पर, छाँह पर बैठ गया। उसने ऋषियों से सुना था, भगवान् मन में वास करते हैं। यहाँ एकान्त देख निश्चिन्त होकर भगवान् का ध्यान करने लगा। भक्ति के आँसुओं से बालक की आँखें सजल हो गयीं। वह तन्मय हो परमात्मा का ध्यान करने लगा। भक्त-वत्सल भगवान् उसके हृदय में आविर्भूत हुए। पलक गिरते ही वह रूप छिप गया। बालक व्याकुल हो गया। तब वाणी और मन के पार परमेश ने कहा—"वत्स ! तुम पाप से परे हो गये हो, इसलिए इस जन्म में इतना ही होगा। जो असिद्ध हैं, जिनकी कामनाएँ दग्ध नहीं हुईं, वे योगी मुझे नहीं देख सकते। तुम मुझमें बहुत अनुरक्त थे, इसलिए एक बार दर्शन हुए। अब तुम यह निन्दनीय मृत्यु-लोक छोड़कर मेरे पार्श्वचर बनो।" यह कह अशरीरी भगवान् कहीं छिप गये। नारद चिन्मय स्वरूप प्राप्त कर देश-देशान्तरों में भगवद्गुण गाते हुए भ्रमण करने लगे।

अगस्त्य की कथा

स्वर्ग की सर्वोत्तम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी के चपल कटाक्ष से मित्रावरुण का वीर्य स्खलित हुआ। वीर्य का कुछ अंश कुम्भ में पड़ा, कुछ अंश पानी में। कुम्भ से कुम्भज या अगस्त्य की उत्पत्ति हुई। उत्पत्ति का हेतु इतना हेय होने पर भी तपस्या के प्रभाव से वह बड़े यशस्वी महात्मा हुए। दक्षिण में आर्य-सभ्यता का उन्होंने विस्तार किया।

एक दिन अगस्त्यजी ने अपने पूर्वपुरुषों को एक खाई में उलटा लटकते हुए देखा। विस्मय में आकर उनसे ऐसी गति प्राप्त होने का कारण पूछा। उन्होंने काँपते हुए कहा—"हम लोग तेरे पुरखे हैं, तेरे सन्तान न होने के कारण हमारी यह दुर्गति हो रही है। यदि तेरे सन्तान हो, तो इस दुर्दशा से हम मुक्त हो जायँ।" अगस्त्य ने विवाह कर सन्तानोत्पत्ति की उनसे प्रतिज्ञा की। पर उन्हें कोई स्त्री संसार में पसन्द न आयी। तब वह स्वयं हिरनी की आँखें, सिंह की कमर, इस प्रकार सुन्दरता के सामान लेकर स्त्री मूर्ति की रचना करने लगे। इन्हीं दिनों विदर्भ के राजा पुत्र पाने के लिए तपस्या कर रहे थे। अगस्त्य ने वह मूर्ति राजा को दे दी। राजा घर लौटे। कुछ दिनों बाद उनकी रानी के कन्या पैदा हुई। उसका नाम लोपामुद्रा रक्खा गया। वह बड़ी सुन्दरी राजकुमारी थी। जब वह कन्या युवती हुई, तब राजा के पास अगस्त्यजी पहुँचे, और कहा—"मैं सन्तानोत्पत्ति के लिए तुम्हारी कन्या लोपामुद्रा से विवाह करना चाहता हूँ।" राजा ऐसी प्रार्थना सुनकर महलों में गये, और स्नेह तथा भय से विह्वल हो गये। एकमात्र कन्या को स्नेहवश तपस्वी के हाथ न सौंप सकते थे; पुनः अगस्त्य के प्रताप से डरते भी थे।

पिता को असमंजस में पड़ते देख, राज्य की रक्षा का विचार कर लोपामुद्रा ने कहा —"पिता, आप मुझे अगस्त्यजी को देकर अपनी तथा राज्य की रक्षा कीजिए।"

महर्षि अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा का विवाह हो गया। राजकन्या को सुख और सौन्दर्य से प्रेम रहने के कारण वह पिता के यहाँ-जैसी अगस्त्य के आश्रम में भी पूरी सज-धज से रहने लगी। इसके लिए धन की आवश्यकता पड़ी। अगस्त्य धन के लिए अपनी तपस्या का दुरुपयोग नहीं करना चाहते थे— ऐसी ही सलाह पति को लोपामुद्रा ने भी दी। पर पत्नी को प्रसन्न करना भी पति का धर्म है। अगस्त्यजी श्रुतर्वाण-नामक एक राजा के यहाँ गये। यह दूसरे राजाओं से अधिक धनवान् है, यह अगस्त्यजी जानते थे। श्रुतर्वाण ने अपनी आमदनी और खर्च का हिसाब अगस्त्यजी के सामने रक्खा। अगस्त्यजी ने देखा, इसमें से कुछ भी धन लेने पर प्रजा को कष्ट होगा। इस विचार से धन न लिया। राजा श्रुतर्वाण को साथ लेकर वह ब्रध्नश्व-नामक दूसरे राजा के पास गये। पर वहाँ भी धन का यही हाल था। तब इन दोनों को साथ लेकर महाधनवान् राजा त्रसदस्यु के पास गये। इक्ष्वाकु-वंश के श्रेष्ठ राजा त्रसदस्यु के धन का भी यही हाल था। तीनों नरेशों ने अगस्त्यजी से कहा—"हे ऋषिश्रेष्ठ, धन के लिए हम लोग स्वयं लालायित हैं, आप इल्वल नाम के दानव से धन लीजिए, वहाँ आपकी धनाकांक्षा पूरी हो सकती है।"

तब अगस्त्यजी तीनों राजाओं को साथ लेकर इल्वल की राजधानी पहुँचे। इल्वल को मालूम हुआ, तो उसने बड़ा स्वागत किया। बकरा बने हुए अपने भाई वातापि का मांस पकाकर अतिथियों के सामने रक्खा। इस प्रकार वातापि का मांस खिलाकर वह अनेक ब्राह्मणों को मार चुका था। मांस खिलाकर इल्वल "वातापि—ओ वातापि" कहकर आवाज लगाता था, और खानेवाले ब्राह्मण का पेट फाड़कर वातापि बाहर निकल आता था। राजा लोग उस मांस को वातापि का मांस जानकर बहुत घबराये। अगस्त्यजी ने कहा—"तुम लोग डरो मत, मैं वातापि को हजम कर जाऊँगा।" ऐसा कहकर वह अलग एक आसन पर बैठे। उनके सामने मांस परोसा जाने लगा। अगस्त्यजी अकेले पूरे एक बकरे का मांस खा गये। भोजन हो जाने पर इल्वल ने अपने भाई का नाम लेकर पुकारा। अगस्त्य-जी ने कहा—"वह अब कहाँ है ? उसे तो मैं पचा गया।" इल्वल बहुत रोया और ऋषि के पैरों पर पड़ा और उनके इच्छानुसार बहुत-सा धन देकर उन्हें विदा किया, अगस्त्यजी वहाँ से सोने के रथ पर चढ़कर राजाओं के साथ अपने आश्रम में आये, और अर्थ द्वारा लोपामुद्रा का मनोरथ पूरा किया। पुनः ऋतुकाल में रमण कर दृढ़स्यु-नामक महाकवि पुत्र पैदा किया और पितरों को मुक्ति दी।

एक बार विन्ध्यगिरि ने सूर्य से कहा—"तुम जिस प्रकार मेरु पर्वत की परिक्रमा किया करते हो, उसी प्रकार मेरी भी करो।" सूर्य ने उत्तर दिया—"ऐसा मैं अपनी इच्छा से नहीं करता। जिन्होंने संसार की सृष्टि की है, उन्हीं ईश्वर ने मेरा यह मार्ग निश्चित किया है।" विन्ध्य को सूर्य का ऐसा कहना बुरा लगा, और वह बढ़ता हुआ सूर्य और चन्द्र की गति रोकने पर तुल गया। यह देखकर देवता बहुत घबराये, और अगस्त्यजी के आश्रम में जाकर विन्ध्य की कथा सुनायी।

देवताओं को आश्वस्त कर अगस्त्यजी अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ विन्ध्यगिरि के पास गये और कहा—"हे शैलराज! मैं आवश्यक कार्य से दक्षिण की ओर जा रहा हूँ, तुम मेरे जाने की राह तैयार कर दो और मुझे वचन दो, मैं जब तक लौट न आऊँगा, तुम बढ़ोगे नहीं।" विन्ध्य ने अगस्त्यजी की बात मान ली। पर विन्ध्य को पार कर अगस्त्यजी जो गये, फिर न लौटे। इसलिए विन्ध्य को लाचार होकर अपनी बाढ़ रोक देनी पड़ी।

दक्षिण चले जाने पर भी देवताओं से अगस्त्यजी का पीछा न छूटा। एक बार वहाँ भी देवता उनके पास पहुँचे और बड़ी नम्रता से बोले—"भगवन्, हमारी प्रार्थना है, आप इस समुद्र को पी जायँ। ऐसा आप करें, तो हमारा उद्देश पूरा हो जाय। हम कालकेय दैत्य को सवंश मार डालें।" अगस्त्यजी ने देवता की प्रार्थना मंजूर कर ली, और समुद्र को पी लिया।

राहु की कथा

कुलाचल-पर्वत में वासुकि को रस्सी के तौर पर लगाकर देवता और दैत्यगण समुद्र को मथने लगे। पहले विष्णु ने वासुकि का मुख पकड़ा, फिर देवताओं ने उधरवाला हिस्सा पकड़ा। पूँछ की तरफ दैत्यों ने पकड़ा। पर कश्यप के महावीर पुत्रों ने सोचा, यह तो देवताओं ने हमारा अपमान किया है; हम पूँछ की तरफ कभी नहीं पकड़ेंगे, क्या हम इतने नीच हैं कि मुँह की ओर नहीं पकड़ सकते? ऐसा विचार-कर उन्होंने विष्णु से कहा—"सुनो, पूँछ की तरफ पकड़ना अमंगल का सूचक है। हम लोग अपने वीर्य तथा पौरुष से त्रिलोक में ख्यात हैं। वंश का गौरव भी हमने अक्षुण्ण रक्खा है। जन्म और कर्म दोनों प्रकार हमारी श्रेष्ठता स्वीकृत हो चुकी है, हम पूँछ की तरफ नहीं पकड़ सकते। तब भगवान् विष्णु ने देवताओं को समझाया कि आप ही लोग पूँछ की तरफ पकड़िए। अस्तु, असुरों ने मुख की ओर और देवताओं ने पूँछ की ओर पकड़-पकड़कर [पकड़ा और] मन्थन करने लगे। पर कुलाचल इतना बोझीला था कि वह समुद्र में बैठ गया, जिससे मथना असम्भव हो गया। तब भगवान् ने एक उपाय सोचा। कछुआ बनकर अपनी पीठ पर पर्वत धारण कर लिया। उस कछुए की पीठ एक लाख योजन चौड़ी थी। कछुए के पीठ लगाने पर कुलाचल ऊपर को उठा, यह देखकर देवासुर प्रसन्न हो गये, और फिर मथने लगे।

दीर्घकाल तक मथने के पश्चात् जब चौदहो रत्न निकले, तब अमृत को लेकर बड़ा उत्पात शुरू हुआ। दानवों ने देवताओं से दोस्ती बालाए-ताक कर दी, और छीना-झपटी पर कमर कस ली। देवता बेचारे दैत्यों से कमजोर पड़ते थे। बहुत डरे कि कहीं ऐसा न हो कि हमारी मिहनत व्यर्थ जाय और दैत्य अमृत पीकर अमर

हो जायँ, फिर मारे भी न मरें। देवताओं को इस प्रकार चिन्ता में देखकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन मुस्किराये, और दैत्यों को चकमे में डालकर, उनके कब्जे से अमृत लेने के लिए मोहिनी-रूप धारण कर उनके प्रधानों के सामने खड़े हो गये।

मोहिनी की अलौकिक छटा देखकर महावीर दैत्यगण मुग्ध हो गये। मन में सोचने लगे, कैसी अपूर्व रूप-लावण्यवती किशोरी है यह! सूर्य की किरणों को परास्त करनेवाली कैसी उज्ज्वल प्रभा। कई वीर दैत्य इस प्रकार सोचते हुए अकुण्ठित चित्त से मोहिनी के पास गये, और पूछा—"कमल के दलों-सी आँखों-वाली हे सुन्दरि! अपना परिचय तो दो—तुम कौन हो? हे वामोरु! यहाँ तुम्हारे आने का उद्देश क्या है? तुम किसी की प्रिया हो? तुम्हें देखकर हमारा अस्थिर चित्त सीमा में नहीं रह रहा! अहा! रूपसि! निश्चय तुम्हीं एक पुरुष की आँखों की ज्योति हो! आज तक किसी भी लोक में, किसी भी काल में तुम्हारी-जैसी अतुल रूप-सृष्टि नहीं! निश्चय अब तक देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, किसी ने भी तुम्हें नहीं देखा। अयि सुवासिते! नील-वसने! देहियों की इन्द्रियों को स्वस्थ, स्फूर्त करने के लिए तुम्हारी सर्वोत्तम सृष्टि विधाता ने की है!"

कामी दैत्य-नायकों की ओर कटाक्ष की तीक्ष्ण चोट कर मोहिनी मुस्किरायी। उत्कण्ठ होकर वे महावीर दिति-पुत्र सुन्दरी के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। मोहिनी बोली—"हे कश्यप के पुत्र! तुम लोग व्यर्थ मेरा अनुसरण न करो। मैं गणिका हूँ। मुझ पर पण्डितगण विश्वास नहीं करते! गणिका नित्य नये-नये युवक की खोज करती है, इसलिए उसकी मित्रता से हानि होती है।"

मोहिनी के इस कथन से असुरों के हृदय को अविश्वास न होकर विश्वास ही हुआ। उन लोगों ने उसे अपनी परम सिद्धि की दात्री प्रेयसी माना, और वह अमृत वाला पात्र उसे ही बाँटने के लिए दे दिया। अमृत-पात्र ले मुस्किराती दुई मोहिनी दैत्यों से बोली—"मेरी कारवाई पर तुम लोग सहमत हो? कहो, तो मैं सबमें ठीक-ठीक हिस्सा-बांट लगा दूं?" दैत्य-प्रधानों को मोहिनी की बात स्वीकृत हो गयी।

दोनों दलों के सब लोग अच्छी तरह सज्जित होकर, ब्राह्मणों के स्वस्त्ययन के साथ-साथ, आसन ग्रहण कर बैठ गये। वह बड़े-बड़े उरोजोंवाली मोहिनी, जिसकी आँखें मद से आयत हो रही थीं, देह की लता यौवन के समीर-स्पर्श से मधुर-कम्पित हो रही थी, हाथ में अमृत का कलश लेकर बाँटने लगी।

असुरगण मोहिनी के रूप से ऐसे मुग्ध थे कि वह क्या कर रही थी, इसका कुछ ज्ञान न था। सुवसना, गाती हुई बटवारेवाली जगह नूपुर-मुखर चल-कुण्डला मोहिनी की छवि एकटक देख रहे थे। दो पंक्तियों में सुवेश बैठे हुए देव और दैत्यों में मोहिनी अपने छल से दैत्यों को वशीभूत कर देवों में अमृत बाँटने लगी। दैत्यों को वह सुरा पिला रही थी, जिससे वे क्रमशः बेहोश होते जा रहे थे, और मोहिनी के कार्य को न देखकर केवल रूप देख रहे थे। दैत्यों में राहु छिपकर देवताओं के बीच बैठा था। इसलिए उसके पात्र में भी अमृत पड़ा और उसने पी लिया। उसका यह कार्य सूर्य और चन्द्र ने देख लिया, और अपने प्रकार से हरि को भी दिखला दिया। तब भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन-चक्र द्वारा राहु का मस्तक काट डाला।

पर चूँकि उसके मुख में अमृत लग चुका था, इसलिए उसका सिर अमर हो गया। वैर के विचार से वही राहु ग्रहण के समय सूर्य और चन्द्र को निगलता रहता है।

सहस्रबाहु की कथा

सहस्रबाहु का असली नाम कार्तवीर्यार्जुन था। वह क्षत्रिय तथा हैहय-वंश का राजा था। उसने सेवा द्वारा नारायण के अंश से हुए भगवान् दत्तात्रेय को सन्तुष्ट किया। उनसे उसे हजार हाथों का वर मिला, और वह अमित-विक्रम हुआ। वह इन्द्रियों के वश, ऐश्वर्यशाली, महाप्रभाव, बलवान् और योग-युक्त था। उसने उस ईश्वर को भी प्राप्त किया था, जिसमें अणिमा और लघिमा आदि विभूतियाँ हैं। इन कारणों से कोई ऐसा न था, जो उसकी गति में रुकावट डालता। मद से मत्त हो सहस्रबाहु अर्जुन अनेक सुन्दरियों के साथ नर्मदा में जल-क्रीड़ा कर रहा था। इससे जल का प्रवाह रुक गया। उसी समय दिग्विजय के लिए निकला हुआ रावण माहीष्मतीपुरी के पास शिविर डाले हुए पड़ा था। कार्तवीर्य से जल-प्रवाह रुककर उल्टा वह चला, और फिर किनारों को छापकर बाहर गिरने लगा। बाढ़ के जल से रावण का शिविर बह चला। यह देख रावण को बड़ा क्रोध आया। वह अर्जुन को उचित दण्ड देने के लिए उसके पास पहुँचा। पर वीर सहस्रबाहु ने अपनी प्रणयिनी स्त्रियों के सामने ही रावण को बन्दर की तरह पकड़कर अपनी पुरी में कैद कर रक्खा। फिर उसे किसी वीर में न गिनकर अवज्ञा से छोड़ दिया।

एक दिन वह शिकार के लिए निकला, और घूमता-फिरता ऋषि जमदग्नि के आश्रम में पैठा। ऋषि ने कामधेनु द्वारा सहस्रबाहु का उसके सामन्त सरदारों-सहित आतिथ्य किया। कामधेनु को अपने ऐश्वर्य से अधिक मूल्यवाली जानकर हैहय-वंशवालों ने कामधेनु लेने की इच्छा प्रकट की। जमदग्नि के आतिथ्य से प्रसन्न न हुए। सहस्रबाहु ने अपने आदमियों को ऋषि की धेनु हरने की आज्ञा दी। वे लोग बछड़े साथ रोती धेनु को अपनी राजधानी माहीष्मती की ओर ले चले। राजा के जाने पर मुनि जमदग्नि अपने पुत्र परशुराम के आश्रम में गये। पिता से परशुराम ने सहस्रबाहु के अत्याचार का हाल सुना। क्रोध से उनके ओंठ फड़कने लगे। उन्होंने अपना कराल फरसा, धनुष, तूण, तीर और वर्म आदि लेकर हाथियों की ओर झपटते हुए सिंह-जैसे राजा का पीछा पकड़ा। अपने नगर में घुसते-घुसते कार्तवीर्य ने देखा, परशुराम फरसा और धनुष लिये हुए, वर्म पहने बड़े वेग से दौड़े चले आ रहे हैं, उनकी जटाएँ झूम रही हैं, उनका चेहरा सूर्य-जैसा चमकीला है। यह देखकर सहस्रबाहु ने सत्रह अक्षौहिणी सेना सब अस्त्रों से सुसज्जित परशुराम का सामना करने के लिए भेज दी। परन्तु भगवान् परशुराम ने देखते-देखते सम्पूर्ण सेना ध्वस्त कर दी। केलों के पेड़-जैसे अर्जुन की सेना परशुराम के फरसे के प्रहार

से कट-कटकर गिर गयीं। जब सहस्रबाहु ने देखा, उसकी सेना काम आ गयी, खून की धारा बह रही है, और परशुराम विजय के दर्प से शत्रु के रुधिर से रँगा हुआ निश्शंक जटा बाँध रहा है, तब क्रोध में भरकर स्वयं मैदान में पहुँचा। एक ही बार पाँच सौ धनुष लेकर तेज पाँच सौ तीर उसने परशुराम पर छोड़े। पर परशुराम ने अपने एक ही धनुष से लघु सन्धान से उसके सब तीर काट दिये। पुन: अर्जुन के धनुष भी काट डाले। तब अर्जुन अपने हाथों से पहाड़ उठाकर परशुराम की तरफ दौड़ा। पर महावीर परशुराम ने अपने कुठार द्वारा शत्रु के हजारों हाथ काट डाले, फिर उसका मस्तक भी धड़ से जुदा कर दिया। पिता की मृत्यु सुनकर सहस्रबाहु के दस हजार पुत्र भय से भाग गये। बछड़े-सहित कामधेनु परशुराम ने पिता को लाकर दी।

महिषासुर की कथा

देवासुर-युद्ध में देवताओं को परास्त कर महिषासुर ने इन्द्रत्व पर अधिकार कर लिया। सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम और वरुण आदि सभी देवता अपने-अपने अधिकार से च्युत होकर पृथ्वी पर साधारण मनुष्यों की तरह विचरण करने लगे। देवगण दु:खी हो, महादेव और विष्णु के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाते हुए प्रार्थना करने लगे, हम लोग आपके शरणागत हैं, आप हमारे उद्धार का उपाय बतलाइए। देवताओं की दु:ख-कथा से भगवान् विष्णु और शिव को क्रोध आ गया। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव के क्रुद्ध मुखों से महान् तेज निकलने लगा। उसी समय इन्द्रादि देवताओं के शरीर से भी तेज निकला। इस व्याप्त शिखा को जलते हुए पहाड़ की तरह देवताओं ने देखा। क्रमश: देवताओं की देह से निकली हुई वह ज्योति नारी-रूप में परिणत हो गयी। उस कान्ति से तीनों लोक उद्भासित हो गये। तब समस्त देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र देकर देवी को रण के लिए सुसज्जित किया। देवी के सिंहनाद से नभोमण्डल पुन:-पुन: गूँजने लगा। यह महा-नाद सुनकर देवताओं के शत्रु असुर युद्ध के लिए तैयार होने लगे। चौंककर महिषासुर देवी के शब्द की ओर अपने वीरों को लेकर धावित हुआ।

देवी के साथ असुरों का युद्ध आरम्भ हो गया, और लड़ते-लड़ते महिषासुर के बड़े-बड़े वीर सेनापति चिक्षुर, परिवारित, विड़ालाक्षा, असिलोमा, उदग्र आदि मारे गये। महिषासुर क्रुद्ध हो देवी पर अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करने लगा। पर देवी ने पाश फेंककर असुर को बाँध लिया। तब उसने भी अपना महिषाकार परित्याग कर दिया, और सिंह-रूप धारण किया। पर महाशक्ति दुर्गाजी उसका सिर काट ही रही थीं कि उसने एक पुरुष का रूप धारण कर लिया। देवी ने बाण द्वारा खड्ग और चर्म-सहित उसे बिद्ध कर दिया। पर वह झट हाथी के आकार का बन

गया, और सूँड़ से देवी के सिंह को आकर्षित करता हुआ चिंघाड़ने लगा। तब तुरन्त देवी ने खड्ग द्वारा उसकी सूँड़ काट दी। तब फिर वह भैंसे का रूप धारण करके त्रिलोक को क्षुब्ध करने लगा। यह हाल देखकर चण्डिका ने पुनः-पुनः मदिरा पी। उनकी आँखें लाल हो गयीं, और वह बार-बार अट्टहास करने लगीं। बल, वीर्य और मद से उद्धृत वह असुर भी सिंहनाद करता हुआ पहाड़ उठा-उठाकर देवी पर फेंकने लगा। पर चण्डिका ने शरों द्वारा पर्वतों को रज कर दिया। देवी का मुख-मण्डल नशे से लाल हो रहा था। और भी मद पीकर, क्रोध से असुर के कन्धे पर पैर रखकर शूल से उसकी छाती पर चोट करने लगीं। मुख से उसका दूसरा शरीर निकलने लगा, तब बलपूर्वक उसे रोककर खड्ग से उसका मस्तक काट लिया।

केतु की कथा

केतु और राहु की एक ही कथा है, जो कही जा चुकी है। असुर सैंहिकेय का अमृत-पान के समय भगवान् विष्णु ने सिर काटा, तो उसका धड़ केतु कहलाया और सिर राहु। केतु ग्रह में गृहीत हुआ, जो बड़ा ही अशुभ कहा गया है।

कुम्भकर्ण की कथा

रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण स्वभाव का बड़ा उग्र था। उससे ब्राह्मण और देवता आरी आ गये थे। शरीर-बल में वह प्रचण्ड था ही, फिर तप द्वारा आत्मिक बल भी प्राप्त करने लगा। देखकर देवताओं का हृदय दहल उठा। बचने का कोई उपाय न सूझता था। उधर कुम्भकर्ण उग्र-से-उग्रतर तपस्या करने लगा। वह ब्रह्मा की आराधना कर रहा था। दीर्घकाल बाद उसका जप पूरा हुआ। तब मारे भय के देवताओं के होश उड़ गये। देवी सरस्वती के पास जाकर उन लोगों ने प्रार्थना की कि माता, हमारी रक्षा कीजिए। यदि कुम्भकर्ण को इच्छित वर मिल गया, तो हम लोग कहीं के न रह जायेंगे। भगवती वीणावादिनी देवताओं पर प्रसन्न होकर उनकी रक्षा करने के उद्देश्य से कुम्भकर्ण के पास गयीं। जप पूरा होने पर ब्रह्मा भी भक्त को वर देने चले। भगवती वाणी अविद्या के रूप से कुम्भकर्ण के भीतर पैठ गयीं। ब्रह्मा ने जब कुम्भकर्ण से कहा—"वत्स, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो," तब उसने कहा—"हे विधि, मुझको यह वर दीजिए कि मैं छ महीने सोऊँ और एक दिन जगूं।"

ब्राह्मण दुष्ट राजा वेण की दोनों बाँहें मथने लगे। इससे एक पुरुष निकला और एक स्त्री। इनको देखकर ब्राह्मण बहुत सन्तुष्ट हुए, और दोनों को भगवान् विष्णु और लक्ष्मी का अंश कहने लगे। पुरुष का नाम पृथु हुआ, और इन्हें राज-चक्रवर्ती मानने लगे। जो कुन्द-से दाँतोंवाली, सुन्दरता से भी सुन्दर साक्षात् लक्ष्मी-स्वरूपा स्त्री उत्पन्न हुई, इसका नाम अर्चि रक्खा। पृथु से इसका विवाह हुआ। पृथु के लिए कहा, यह भगवान् का अंश-रूप प्रजा की रक्षा के लिए आया है।

पृथु के आविर्भूत होने पर सिद्ध, देव, किन्नर, गन्धर्व, चारणगण आकाश में दुन्दुभि बजाने, फूल बरसाने लगे। अप्सराएँ नाचती हुई गाने लगीं। जगद्गुरु ब्रह्मा ने सब देवताओं के साथ आकर देखा, पृथु के दाहने हाथ में चक्र और पैर में पद्म है। तब निश्चय हुआ कि यह पुरुष भगवान् का ही अंश है। पुनः पृथु के अभि-षेक के लिए जगह-जगह लोग सामग्री एकत्र करने लगे। राज्याभिषेक हुआ। सभी देवताओं ने उन्हें अपना-अपना वांछित उपहार दिया। वरुण, वायु, इन्द्र, यम, सरस्वती, विष्णु, शिव, चन्द्र, अग्नि, सूर्य, आकाश, पृथ्वी, लक्ष्मी, अम्बिका आदि सबने अस्त्र-शस्त्र, पुष्प-माल्य, ऐश्वर्य आदि से पृथु को पूरा कर दिया। चारणगण स्तव-स्तुतियों से तुष्ट करने लगे, तो पृथु ने कहा, अभी मेरी स्तुति का कोई भी विषय प्रस्तुत नहीं हुआ, इसलिए मैं ऐसे चाटु वाक्य न सुनूंगा।

पृथु को ब्राह्मणों ने प्रजा की रक्षा के लिए आविर्भूत किया था। वेण द्वारा प्रजा को महान् कष्ट मिले। फिर बार-बार पृथ्वी पर अकाल पड़ा। महाराज पृथु को प्रजा का दुःख विदित हुआ। भूख से पीड़ित प्रजा का कष्ट दूर करने के विशद उद्देश्य से पृथु निकले। वह समझ गये, पृथ्वी ने सब प्रकार के अन्न-बीज और ओषधियों को ग्रस्त कर लिया, इसीलिए शस्य नहीं पदा हो रहा। यह सोचकर पृथ्वी पर क्रुद्ध हो उन्होंने अस्त्र-सन्धान किया। भयभीत हो पृथ्वी गो-रूप धारण कर भग चली। पृथु धनुष और तीर लिये हुए उसके पीछे हो लिये। स्वर्ग, मर्त्य, अन्तरिक्ष, सब जगह पृथ्वी भगी, पर पृथु ने पीछा न छोड़ा। तब विकल हो धरित्री ने विनय शब्दों में कहा—"आप धर्मज्ञ हैं। प्रजा के पालन का आपने उत्तरदायित्व लिया। आप मुझे क्षमा करें।" पृथु ने कहा—"हे पृथ्वि! तुम मेरा अनुशासन नहीं मान रहीं, इसलिए मैं तुम्हारा संहार करूँगा।" पृथ्वी ने पृथु की वश्यता स्वीकृत कर कहा—"महाराज, जब उपद्रव बढ़ने लगा, आप-जैसे लोकपालों ने भी चोरों को दबाकर, सजाएँ देकर मेरा पालन न किया, तब यज्ञ के लिए सब ओषधियाँ मैंने छिपा लीं। यदि मैं ऐसा न करती, तो दुष्टजन उन्हें खा जाते, और आपको उन ओषधियों के नाम भी मालूम न होते। अब आप उपाय द्वारा उनका उद्धार कीजिए। मैं प्राणियों के जीवन का मूल-कारण अन्न निकालने का प्रयत्न करती हूँ।"

पृथ्वी बीहड़ हो गयी थी। ऊँचे-ऊँचे पर्वत उस पर थे। पृथु ने अपने धनुष के अगले हिस्से से पहाड़ों की चोटियों को चूर्ण कर बराबर कर दिया, और जगह-

जगह प्रजा के जनपद निर्दिष्ट कर दिये। इस प्रकार ग्राम, नगर, व्रज, शिविर, पत्तन, दुर्ग आदि तैयार हुए। मनु को वत्स बनाकर पृथु ने पृथ्वी का दोहन किया। पृथु की तरह अपर लोग भी पृथ्वी का दोहन करने लगे। ऋषि आदि अपर पन्द्रह आदमी भी वश हुई पृथ्वी को अपने इच्छानुसार दुहने लगे। ऋषियों ने बृहस्पति को वत्स बनाकर वाक्य, मन और श्रवण-रूप पात्र में पृथ्वी से वेदमय पवित्र दूध दुहा। देवतों ने इन्द्र को वत्स बनाया, और सोने के पात्र में अमृत, मन, इन्द्रिय और देह की शक्तिवाला दूध दुहा। दैत्य और दानवों ने प्रह्लाद को बछड़ा बनाकर लोहे के पात्र में सुरा और आसव दोहन किया। गन्धर्व और अप्सराओं ने विश्वा-वसु को वत्स बनाकर कमल के पात्र में सौन्दर्य और माधुर्य दुहा। पितरों ने अर्यमा को वत्स बनाकर कच्ची मिट्टी के पात्र में श्रद्धा के साथ काव्य दोहन किया। सिद्धों ने कपिल को वत्स बनाकर आकाशपात्र में अणिमादि सिद्धियाँ दुहीं। विद्याधर और खेचर आदिकों ने भी कपिल को वत्स बनाकर आकाशपात्र में विद्या निकाली। किंपुरुषादि ने पथ को वत्स कर माया निकाली। यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि ने भगवान् रुद्र को वत्स बनाकर कपालपात्र में रक्त-आसव दुहा। साँप और बिच्छुओं ने तक्षक को वत्स बनाकर अपने मुख-पात्र में विष-दुग्ध दोहन किया। पशुओं ने वृषभ को वत्स बनाकर अरण्य के पात्र में धरणी से दूध दुहा। इसी तरह जन्तु, पक्षी, पादप और पर्वतों ने अपने-अपने अनुकूल वत्स बनाकर दोहन किया। यह कार्य समाप्त होने पर पृथु ने पृथ्वी पर प्रसन्नता प्रकट की।

पुन: पृथु ने मनु के राज्य ब्रह्मावर्त में सरस्वती नदी के किनारे वेदी बनायी, और सौ अश्वमेध पूरे करने का संकल्प किया। इन्द्र को यह खबर हुई, तो वह बहुत घबराया। उस यज्ञ में साक्षात् विष्णु यज्ञपति थे। ब्रह्मा, शिव, गन्धर्व, अप्सराएँ, लोकपाल आदि सब उपस्थित थे। अप्सराएँ विष्णु भगवान् के गुण गा रही थीं। सब प्रकार के द्रव्य अतिथियों के सम्मानार्थ संगृहीत थे। सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, सुनन्द, नन्द, कपिल, नारद, दत्तात्रेय आदि सब पहुँचे थे। जब अन्तिम अश्वमेध करके पृथु ने विष्णु का पूजन किया, तब छिपकर इन्द्र यज्ञ-पशु चुरा ले गया। उसे ईर्ष्या थी कि कहीं पृथु ने सौ यज्ञ पूरे कर लिये, तो इन्द्रत्व का अधिकारी बन जायगा। इन्द्र घोड़ा लेकर आकाश-मार्ग से भगा जा रहा था कि अत्रि मुनि की नजर पड़ गयी। अत्रि ने पृथु के पुत्र से कहा—"वह घोड़े का चोर जा रहा है, उसे पकड़कर जान से मार दो!" पर पृथु का पुत्र इन्द्र को साक्षात् धर्म समझकर लौट आया। अत्रि ने पुन: उसे उत्साह देकर भेजा कि यह तुम्हारे पिता के यज्ञ को नष्ट करनेवाला इन्द्र है, इसका अवश्य वध करो। सुनकर राजपुत्र ने देवराज का पीछा किया। राजकुमार को आते देखकर इन्द्र घोड़ा छोड़कर भग गया। राजकुमार अश्व को यज्ञशाला में ले आये। वह घोड़ा यूप-काष्ठ में बाँधा गया, तो बड़ा अन्ध-कार फैला, और उसी अँधेरे में छिपकर इन्द्र फिर घोड़े को चुरा ले गया। अत्रि ने फिर पृथु के पुत्र से कहा, और इस बार इन्द्र पर वह शर छोड़ने लगा। फिर इन्द्र ने घोड़ा छोड़कर पलायन किया। पृथु को इन्द्र का यह चौर्य मालूम हुआ, तो क्रोध से काँपने लगे, और इन्द्र को मारने के लिए तैयार हुए। तब ब्राह्मणों ने उन्हें बहुत समझाया। वह शान्त हुए। पृथु का यज्ञ पूरा हुआ। उन्होंने इन्द्र से मित्रता की,

और यज्ञ समाप्त होने पर स्नान कर देव और ऋषियों की पूजा की, और उन्हें प्रसन्न किया।

गणेश-पूजन

एक बार देवताओं में वाद-विवाद हुआ कि सबसे पहले कौन पूजनीय है। ब्रह्माजी ने कहा, पृथ्वी की परिक्रमा करके सब लोग आओ। अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर सब चल दिये। गणेशजी भी चले, पर इनका चूहा न चल पाता था। इससे बहुत उदास हुए। रास्ते में नारदजी मिले। हाल सुनकर उन्होंने सलाह दी कि राम-नाम लिखकर परिक्रमा करके पितामह के पास चले जाओ। राम-नाम से परे और कौन-सी दुनिया है ? गणेशजी ने ऐसा ही किया। देवता सब बाद को आये। उन्हें पहले पहुँचा हुआ देखकर आश्चर्य करने लगे। किसी-किसी ने कहा, यह गये ही नहीं। पर मतलब समझकर ब्रह्माजी ने उन्हें ही प्रथम पूज्य बनाया।

सौ करोड़ रामायणें

वाल्मीकिजी ने सौ करोड़ रामायणें लिखीं। शिवजी को सुनाने गये। हाल पा देवता भी गये। कैलाश-पर्वत पर रामायण हो रही थी। एक वर्ष तक होती रही। रामायण में देवताओं को भाग माँगते हुए देखकर शंकरजी ने 33 करोड़ 33 लाख 33 हजार 333 श्लोक और 10 अक्षर ब्रह्मा आदि देवताओं को दिये। यह सब स्वर्ग गया। इतना ही अंश पाताल-वासी शेषजी को दिया। इतना ही मर्त्यलोक के मुनियों को दिया, जिसका सातो द्वीप और नवो खण्डों में विस्तार हुआ। स्वयं राम-नाम लेकर रहे।

प्रह्लाद की कथा

दैत्यराज हिरण्यकशिपु के अपार पराक्रम से तीनो लोक काँपने लगे। देवता उससे सदा डरते थे। एक बार सोने से मढ़ी अपनी मनोहर राजधानी छोड़कर हिरण्यकशिपु तपस्या करने वन गया। उसकी राजधानी को सूनी देखकर देवताओं ने उस

पर आक्रमण कर दिया। असुर परास्त हो गये। हिरण्यकशिपु की पत्नी उस समय गर्भवती थी। इन्द्र ने उन्हें कैद कर लिया। दैत्य-राज-महिषी रोने लगीं। इसी समय वहाँ नारदजी आ गये। गर्भिणी स्त्री को कैद में देखकर नारदजी ने छोड़ देने के लिए कहा। पर इन्द्र ने कहा, "यह जो सन्तान गर्भ में है, यदि लड़का हो, तो पैदा होकर देवताओं को बहुत दुःख देगा, क्योंकि यह हिरण्यकशिपु का पुत्र होगा।" तब नारदजी ने इन्द्र को समझाया कि "गर्भस्थ बालक किसी प्रकार वैर में नहीं लाया जा सकता, वह निर्दोष है, पुनः इसके गर्भ में जो लड़का है, वह भगवद्भक्त है, तुम उसे मार नहीं सकते।" नारदजी की बात से इन्द्र ने असुर-राज-महिषी को छोड़ दिया। उन्हें दुखी देखकर नारदजी का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह असुर-राज-महिषी को अपने यहाँ ले गये, और बड़ी तत्परता से उनकी देखरेख करने लगे। प्रायः उन्हें ज्ञानोपदेश दिया करते थे। गर्भस्थ बालक यह सब सुना करता था।

वर प्राप्त कर हिरण्यकशिपु लौटा, और देवताओं से लड़कर अपना खोया हुआ राज्य लौटा लिया। प्रतिदिन फिर उसका प्रताप बढ़ने लगा। बालक प्रह्लाद की पढ़ने के लिए गुरुगृह जानेवाली उम्र हुई। हिरण्यकशिपु ने बड़े स्नेह से पुत्र को पढ़ने के लिए भेजा। शुक्राचार्य के दो पुत्र षण्डामर्क वहीं रहते थे। प्रह्लाद को उन्हीं के पास पढ़ने के लिए भेजा। प्रह्लाद हर तरह गुरुओं की आज्ञा मानकर चलते थे। पर यह अपना है और वह पराया, ऐसा भेद-बुद्धिवाला पाठ प्रह्लाद को पसन्द न आया। एक दिन दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद में बैठालकर पूछा—"वत्स, कहो तो, तुम किस वस्तु को संसार-भर में श्रेष्ठ समझते हो?" प्रह्लाद ने विनयपूर्वक पिता से कहा—"पिताजी, मेरे विचार से भगवान् विष्णु सबसे बढ़कर हैं।" हिरण्यकशिपु अपने शत्रु का नाम सुनकर जल गया। उसने सोचा, वैष्णवों का कहीं साथ हो गया है, जिससे बालक पर दूसरों की बुद्धि का असर पड़ गया है। फिर अच्छी तरह प्रह्लाद की निगरानी रखने की आज्ञा दी। आचार्य बालक को भेद-बुद्धि पैदा करनेवाले शास्त्र पढ़ाने लगे। पर प्रह्लाद पर उनकी चाल कारगर न हुई। तब खूब पीटा। फिर भी कुछ फल न हुआ। जब किसी तरह प्रह्लाद की भगवद्-भक्ति की लत नहीं छुड़ा सके, तब दैत्यराज के पास ले गये। हिरण्यकशिपु ने पुत्र को सस्नेह गोद में बैठालकर पूछा—"वत्स, इतने दिनों तक गुरु-गृह रहकर जो शिक्षा प्राप्त की हो, कहो।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"पिताजी, ईश्वर की भक्ति मेरी समझ में सबसे अच्छी शिक्षा है।" सुनकर हिरण्यकशिपु गुरु-पुत्रों पर बहुत बिगड़ा। तब आचार्यों ने कहा—"प्रह्लाद को इस सम्बन्ध की किसी ने भी शिक्षा नहीं दी—यह इसकी स्वाभाविक बुद्धि है।" हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद से पृथ्वी पर फेंक दिया, और अपने आदमियों को बुलाकर कहा—"इसे वध करो—जिसने भाई हिरण्याक्ष को मारा, यह उसी कुल-शत्रु की पूजा करता है।" दैत्यपति की आज्ञा पा मार-मार कहते हुए असुरगण प्रह्लाद के देह में शूल चुभाने को उद्यत हुए। परन्तु प्रह्लाद का चित्त ईश्वर में लीन था, इसलिए भक्त के शरीर को किसी प्रकार की चोट न आयी।

जिन लोगों ने प्रह्लाद पर वार किये थे, वे सब भी प्रह्लाद के शिष्य हो भगवान्

विष्णु की आराधना करने लगे। राज्य में यह कथा तेजी से फैल गयी। सभी जगह पूजा-पाठ बन्द हो चुका था। भक्तगण इस संवाद से बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ हिरण्यकशिपु को भी यह समाचार मिला। तब उसने सोचा, प्रह्लाद का नाश हुए बिना यह विष्णु-भक्ति दब नहीं सकती। उसने प्रह्लाद की छाती पर पत्थर बाँधकर अथाह जल में डलवा दिया। पर भगवत् कृपा से पत्थर पानी पर तैरने लगा।

अब चारो ओर प्रह्लाद की और भी प्रसिद्धि बढ़ गयी, और हिरण्यकशिपु जलने लगा। इसे ज्यों-ज्यों क्रोध होता था, इसकी बुद्धि घटती जा रही थी। एक दिन इसने अपने आदमियों से कहा, "प्रह्लाद को पहाड़ से नीचे डाल दो, तो यह जरूर मर जायगा।" अनुचरों ने ऐसा ही किया। पर नीचे खड़े हुए भगवान् ने अपने भक्त को गोद पर ले लिया—प्रह्लाद को कहीं जरा-सी भी चोट न आयी।

क्रमशः प्रह्लाद के भक्त बढ़ने लगे। राज्य में पूजार्चा शुरू हो गयी। हिरण्यकशिपु क्रोध से अधीर हो गया। प्रह्लाद को मारने का कोई उपाय न सूझता था। तब उसकी बहन होलिका ने कहा, "मुझे वर है, मैं नहीं जलती, प्रह्लाद को लेकर मैं बैठ जाऊँगी, आप लकड़ियों के ढेर में आग लगवा दीजिए; इस तरह वह जरूर जलकर मर जायेगा।" ऐसा ही किया गया। ढेर में होलिका प्रह्लाद को लेकर बैठी, और आग लगा दी गयी। पर भक्त-वत्सल भगवान् अग्नि में भी थे। प्रह्लाद को बिलकुल आँच न आयी, और होलिका भस्म हो गयी। दूसरे दिन लोगों ने देखा, प्रह्लाद होलिका की राख उड़ा रहे थे।

प्रह्लाद की प्रसिद्धि राज्य-भर में हो गयी। उनके साथ के पढ़नेवाले सभी बालक उनके भागवत धर्म के अनुयायी हो गये। गुरुओं ने दैत्यराज हिरण्यकशिपु से पुनः विनय की कि अब दैत्यवंश के और-और लड़के भी प्रह्लाद की तरह विष्णु के उपासक हो गये हैं। क्रोध से हिरण्यकशिपु का ज्ञान बिलकुल ही जाता रहा। उसने प्रह्लाद को बुलवाया, और डाँटकर पूछा—"तू जिस विष्णु को पूजता है, तेरा वह मालिक कहाँ रहता है?" प्रह्लाद ने विनयपूर्वक कहा—"वह तो सभी जगह हैं।" हिरण्यकशिपु ने सक्रोध पूछा—"इस खम्भे में हैं?" प्रह्लाद ने उसी विनय से उत्तर दिया—"हाँ, इस खम्भे में भी हैं।" मोह-वश हिरण्यकशिपु को खम्भे में भगवान् नहीं दिखायी पड़े। वह अपने भाई का वैर भी विष्णु से निकालना चाहता था। उसने सोचा—'यदि मैं प्रह्लाद को मारूँगा, तो इसका स्वामी विष्णु इस खम्भे में या जहाँ होगा, वहाँ से आकर इसकी रक्षा जरूर करेगा, तब मैं उससे अपने भाई का बदला ले सकूँगा।' यह सोचकर उसने प्रह्लाद पर प्रहार करना चाहा। भगवान् नरसिंह-रूप धारण कर खम्भे से निकले, और हिरण्यकशिपु का संहार कर डाला।

उस समय भगवान् इतने क्रुद्ध थे कि ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, किन्नर, गन्धर्व आदि समस्त विश्व की स्तुति से भी शान्त नहीं हुए। लक्ष्मी भी घबराईं, उनका क्रोध दूर न कर सकीं। केवल भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद के स्तव करने पर भगवान् नरसिंह का क्रोध दूर हुआ, और त्रिलोक को शान्ति मिली। वह प्रह्लाद को स्नेह कर, राज्य दे अन्तर्धान हुए।

ध्रुव की कथा

स्वायंभुव मनु ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होकर नर-सृष्टि के जनक हैं। उनकी पत्नी शतरूपा देवी हैं। इनके दो लड़के हुए—प्रियव्रत और उत्तानपाद। ये भगवान् वासुदेव के अंश से पैदा हुए। पश्चात् दोनों राजा होकर पृथ्वी का पालन करने लगे। महाराज उत्तानपाद ने दो विवाह किये। [पत्नियों में से] एक का नाम सुनीति और एक का सुरुचि था। ध्रुव सुनीति के पुत्र हैं।

राजा सुरुचि का ज्यादा आदर करते थे। उसने पति को अपने वश कर रक्खा था। एक दिन महाराज उत्तानपाद सुरुचि के साथ सिंहासन पर बैठे हुए सुरुचि के पुत्र उत्तम को खेला रहे थे। पास ही भूमि पर ध्रुव भी खेल रहे थे। पिता की वत्सलता से आकृष्ट होकर ध्रुव भी पिता की गोद पर चढ़ने लगे। पर विमाता सुरुचि ने उन्हें रोक लिया, और डाँटकर कहा, "ध्रुव ! तू राजकुमार अवश्य है, पर मेरा पुत्र नहीं, इसलिए तू सिंहासन पर नहीं बैठ सकता। अगर तुझे सिंहासन पर बैठना हो, तो जा, भगवान् की तपस्या कर, और उनके वर से मेरे गर्भ में जन्म लेकर सिंहासन पर बैठने का अधिकारी बन।" विमाता की कठोर बातों से बालक ध्रुव के कोमल हृदय को बड़ा धक्का लगा। वह फूट-फूटकर रोने लगे, और पिता का स्थान परित्याग कर माता के भवन को चले। बालक को रोता हुआ देखकर माता ने गोद में ले लिया, और चुमकारकर रोने का कारण पूछने लगीं। सुरुचि के इस व्यवहार से खिन्न होकर वहीं के कुछ लोग सुनीति के पास आये, और उनसे ध्रुव के निरादर का कारण बतलाया। रानी सुनीति की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा, "बेटा, मैं बड़ी हतभागिनी हूँ। तुम्हारी विमाता ने ठीक कहा है। तुम राजकुमार अवश्य हो, पर मेरे पुत्र हो। मुझे महाराज पत्नी स्वीकार करते हुए लज्जित होते हैं। बेटा, तुम्हारी विमाता ने ठीक कहा है कि यदि तुम्हें भाई उत्तम की तरह राजसिंहासन पर बैठने की इच्छा हो, तो भगवान् की तपस्या करो।" यह कहकर आँसुओं से सिक्त पुत्र के कपोलों को बार-बार चूमकर रानी सुनीति ने उसे गोद से उतारा। ध्रुव के मन में भगवान् को पाने की आशा प्रबल हो गयी। मन से वह भगवान् के पास ही चले गये। इस प्रकार मन को संयत कर वह पिता के आवास से बाहर निकले। रास्ते में नारदजी मिले। उन्होंने शोक-ताप को दूर करनेवाले अपने पवित्र दाहने हाथ से बालक का मस्तक स्पर्श किया। फिर मन-ही-मन विचार करने लगे—'क्षत्रियों का कैसा स्वभाव है। ध्रुव अभी निरा बालक है। परन्तु अपमान को सहन नहीं कर सका। इसके हृदय में विमाता के वचन अंगारों की तरह रक्खे हुए हैं।' फिर खुलकर बोले, "वत्स ध्रुव ! अभी तुम बालक हो। इस अवस्था में तुम्हें अपमान का विचार नहीं करना चाहिए। फिर तुम जिसके लिये जा रहे हो, वह बड़ा कठिन कार्य है। तुम इस उद्यम से विरत होकर लौट जाओ।" ध्रुव ने कहा, "प्रभो ! सुख-दुख पाकर मनुष्य उसे देख नहीं सकते, आप इसलिए मुझे लौटा रहे हैं। मैं विमाता के कटु वचनों से बहुत ही पीड़ित हुआ हूँ। अब इस फटे हृदय में शान्ति की जगह नहीं। मैं लौट भी नहीं

सकता। मैं वह स्थान पाना चाहता हूँ, जिस पर मेरे पितृ पुरुषों ने भी कभी अधिष्ठान नहीं किया, जो तीनो लोक में सबसे ऊँचा पद है। आप मुझ पर कृपा कर वह उत्तम स्थान बता दें।" देवर्षि नारद ने कहा, "वत्स ! तुम्हारी माता ने जैसा कहा है, तुम्हारे लिए इच्छानुसार अर्थ पाने की वही जगह है। तुम भक्ति-भाव से ईश्वर का भजन करो। यमुना के तट पर मधुवन नामक जो वन है, भगवान् वहाँ सदा अवस्थान करते हैं। तुम वहीं जाओ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। मैं तुम्हें मन्त्र देता हूँ। नियम-पूर्वक केवल सात दिन इस मन्त्र का पाठ करने पर मनुष्य देवताओं के दर्शन करता है। वह मन्त्र है—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'।"

देवर्षि नारद से मन्त्र ग्रहण कर, उन्हें प्रदक्षिण और प्रणाम कर ध्रुव उद्देश सिद्धि के लिए चल दिये, और नियत स्थान पर पहुँचकर तपस्या करने लगे। हर तीसरे दिन कैथा और बेर खाते थे। एक महीना इस प्रकार पार किया। दूसरे महीने सूखे पत्ते, घास-फूस खाकर रहे। तीसरे महीने, नवें दिन केवल जल पीकर, समाधि-योग करते रहे। इसके बाद पन्द्रहवें दिन वायु-मात्र भक्षण कर, श्वास-विजय करके ध्यान-योग द्वारा भगवान् की धारणा करने लगे। चार महीने बीत गये। पाँचवें महीने श्वास को जीतकर एक पैर से खड़े हो स्थाणु की तरह रहने लगे। इस प्रकार ध्रुव की कठोर तपस्या से तीनो लोक डगमगाने लगे। ध्रुव जब एक पैर से खड़े होते थे, तब पृथ्वी उनके अँगूठे की दाब सह न सकती थी। देवता भी डरे, और भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् वासुदेव ने देवताओं को अभय दिया।

ध्रुव की तपस्या सिद्ध हुई। उन्हें अपने भीतर भगवान् वासुदेव के दर्शन हुए। आँखें खोलीं, तो बाहर भी वही स्वरूप देख पड़ा। तब हाथ जोड़कर भक्ति-योग से भगवान् वासुदेव की स्तुति करने लगे। ध्रुव की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा—"वत्स ध्रुव ! तुम धन्य हो। हे तपस्वि-क्षत्रिय बालक ! तुम्हारा कल्याण हो। मैंने तुम्हें अमर स्थान दिया। वहाँ से ग्रह-नक्षत्र आदि के चक्र सम्बद्ध हैं। पर वह स्थान तुम राज्य के भोग के पश्चात् प्राप्त करोगे। तुम्हारे पिता तुम्हें राज्य देकर वन-गमन करेंगे। तुम तिरसठ हजार वर्ष तक राज्य करोगे। पर तुम्हारी इन्द्रियाँ कभी चपल न होंगी। तुम्हारा भाई उत्तम मृगया के लिए निकलकर लापता हो जायगा। तुम्हारी विमाता सुरुचि उसकी खोज के लिए निकलकर उसके ध्यान में पागल होकर दावाग्नि में प्रवेश करेगी।" यह कहकर भगवान् वासुदेव गरुड़ कर चढ़कर आकाश में अन्तर्धान हो गये। इष्ट की आज्ञा को शिरोधार्य कर ध्रुव अपने पिता की राजधानी को लौटे।

राजा उत्तानपाद को दूत के मुख से मालूम हुआ कि ध्रुव आ रहे हैं। वह बड़ी धूमधाम से स्वागत की तैयारियाँ करने लगे। हाथी, घोड़े, रथ, पालकियाँ सजवायीं। सेना साथ ली। एक पालकी पर रानी सुनीति और सुरुचि को बैठाला। शंख, दुन्दुभि, वंशीध्वनि और वेद-पाठ आदि के मधुर शब्द होने लगे। महाराज ने उत्तम को भी साथ लिया। उपवन के पास ध्रुव को आते हुए देखकर महाराज पालकी से उतर पड़े, और बड़े प्रेम से पुत्र को गले लगाया। ध्रुव के हृदय में

भगवान् का वास था। इसलिए उन्हें भेटकर महाराज को परम प्रसन्नता हुई। ध्रुव ने विमाता, माता और पिता को प्रणाम किया। उत्तम को गले लगाया। महारानी सुनीति की आँखों से आनन्द के आँसू बह चले। उन्होंने बड़े स्नेह से पुत्र का कोमल मुख चूमा। राज्य के लोग ध्रुव को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। सब लोग, आनन्द में डूबे हुए, राज्य को लौटे।

ध्रुव भगवान् वासुदेव के आदेशानुसार राजा हुए। दीर्घकाल तक प्रजाजनों का पालन और यक्ष आदि का शासन किया। अन्त में, समय आने पर, अपने ध्रुव-लोक को, जहाँ किसी दूसरे की स्थिति नहीं होती, प्रस्थान किया।

अजामिल की कथा

कान्यकुब्ज देश में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण था। उसने एक दासी बैठा ली थी। सदा उसी के साथ रहता था, इससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। क्योंकि धर्म-कर्म सब छूट गया। शुभ आचरणों से रहित हो, वह सदा अपवित्र रहने लगा। चोरी कर, दूसरों को ठगकर तथा जुवा खेलकर वह अपना परिवार पालता था। जीवों को दुःख देते हुए उसे दर्द न होता था। ऐसे निंद्य कर्मों से दासी के पुत्रों की परवरिश करते हुए उसकी जिन्दगी के अस्सी साल पूरे हो गये। इस बूढ़े अजामिल के उसी दासी से दस लड़के हुए। सबसे छोटे का नाम नारायण था। उसे माता-पिता, दोनो बहुत प्यार करते थे। अजामिल का हृदय उस बालक ने सोलहो आने ले लिया था। उसकी तोतली मधुर वाणी सुनकर, उसकी क्रीड़ा और कौतुक देख-कर अजामिल को बड़ा आनन्द होता था। स्नेह के वश बूढ़ा अजामिल स्वयं भोजन करता चबाता हुआ उस लडके को भी खिलाया करता था। इसी तरह के कार्यों में वह आजीवन लगा रहा, और कभी यह न समझा कि काल निकट आ रहा है। धीरे-धीरे घर-गृहस्थी के मोह में पड़े हुए अजामिल का मृत्यु-काल भी आ पहुँचा। एक दिन उसने देखा, टेढ़े मुँह, ऊपर को उठे रोओंवाले, बड़े भयानक-भयानक तीन पुरुष हाथ में पाश लिये हुए उसके सामने आकर खड़े हो गये। उसका लड़का नारायण कुछ दूर पर खेल रहा था। डरकर बड़े जोर से उसने नारायण-नारायण कहकर पुकारा। अजामिल के मुख से भगवान् का नाम सुनकर विष्णु-दूत भी आ पहुँचे। उस समय यम-दूत दासी के पति अजामिल के प्राणों को पाश से बाँधकर खींचते हुए निकाल रहे थे। यह देखकर विष्णु-दूतों ने उन्हें डाटकर मना किया। यम-दूतों ने रोके जाने पर पूछा, तुम लोग कौन हो, जो हमें धर्मराज के आज्ञा-पालन से रोक रहे हो ? विष्णु-दूत हँसने लगे, और यम-दूतों से, धर्म की आज्ञा-कारिता करने के कारण, धर्म का तत्त्व पूछा। यम-दूत धर्म-तत्त्व कहने लगे। फिर अजामिल के जीवन के सम्बन्ध में कहा— "यह पहले बड़ा सच्चा, वेदपाठी ब्राह्मण

था। इसमें अनेक गुण थे। यह सदा व्रत करनेवाला, सत्यवादी तथा पवित्र था। पिता का आज्ञाकारी भी था। एक दिन यह पिता की आज्ञा से वन गया हुआ था। वहाँ से फल-फूल, समिधा और कुश लेकर लौट रहा था, ऐसे समय काम-क्रीड़ा करते हुए एक शूद्र और दासी को इसने देखा। दासी मैरेय मधु पिये हुए थी। उसकी आँखें चढ़ी हुई थीं। वह मतवाली थी, और उसकी कमर का बन्ध ढीला था। दोनो गाते हुए हँसी-मजाक कर रहे थे। शूद्र युवती दासी को आलिंगन कर रहा था। अजामिल के भीतर भी इससे वासना पैदा हुई। फिर निरन्तर उसी युवती की उसे चिन्ता रहने लगी। वह अच्छे-अच्छे द्रव्यों से उसकी साधना करने लगा। क्रमशः उसी के वशीभूत हो गया। अपनी युवती पत्नी को छोड़ दिया। फिर इसने हर तरह का अन्याय किया।" विष्णु-दूतों ने कहा—"इसने मरते समय नारायण-स्मरण किया है। भगवान् के नाम से कोटि-कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। अब यह तुम्हारे अधिकार में नहीं रहा।" यह कहकर उसे विष्णु-लोक ले गये। उसकी मुक्ति हुई।

गजेन्द्र-मोक्ष

त्रिकूट नाम का एक मनोहर पर्वत है, जो क्षीर-सागर से घिरा हुआ है। यह दस हजार योजन ऊँचा है, और इतना ही चारो ओर से घिरा हुआ। उसकी तीन चोटियाँ सोने, चाँदी और लोहे की आभा से विभासित हैं, जिनसे दिशाएँ चमकती रहती हैं, और सागर भी प्रतिफलित रहता है। उसमें और भी चोटियाँ हैं, जो भिन्न-भिन्न रत्नों और धातुओं की प्रभा से जगमग रहती हैं। उसमें असंख्य सुन्दर-सुन्दर पेड़, लताएँ, तृण-गुल्म आदि हैं। पर्वत से सुखद कल-कल जल-शब्द करती उतरती हुई एक बड़ी ही सुहावनी निर्झरिणी है, जो अपने शुभ्र-स्वच्छ जल से पर्वत के चरण धोती, दिगन्त को मधुर ध्वनित करती, बहती चली जाती है। पर्वत-राज ने वहाँ की पृथ्वी को हरे मरकत की आभा से ढक रक्खा है। उसकी गुहाओं में सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर और अप्सराएँ विहार किया करती हैं। उनके गीत-स्वर से गिरि की गुहा-गुहा मुखर रहती है। ऐसी मधुर ध्वनि के उत्तर में कहीं-कहीं सिंह-व्याघ्र गरजते रहते हैं। पुनः चोटियों के हरे-हरे उपवन सुन्दर-सुन्दर पक्षियों के कलरव से गूँजते हुए स्वर्ग का पूरा दृश्य आँखों के सामने रख देते हैं। नदी और सरोवर के तट की बालू तथा उपल रत्नों की तरह चमकते रहते हैं। सिद्धों की स्त्रियों और कुमारियों के स्नान से उनका अंगराग गल-गलकर दिक्-समीर को सुरभित किया करता है। उसी पर्वत में महात्मा वरुण का ऋतुमत् नाम का एक उपवन है, जो दिव्य शाखाओं के चारो ओर से फल और फूलों से सुशोभित है। मन्दार, पारिजात, चंपक, पाटल, पियाल, कटहल, नारियल, खजूर, दाड़िम,

मधुक, तमाल, ताल, वट, अर्जुन, अरिष्ट, किंशुक, चन्दन, देवदार, सरल, द्राक्षा, रंभा, जंबु, वदरी, हरीतकी, आमलकी, विल्व, जंबीर आदि भाँति-भाँति के पेड़ और लताएँ त्रिकूट की विशाल देह को चारो ओर से घेरे हुए हैं। वह रमणियों के पद-चार से सदैव सुन्दर रहता है। वहीं एक बहुत बड़ा सरोवर है, जिसमें सोने-से कमल खिले रहते हैं, जिनके चारो ओर प्रमत्त भौंरे मधुर-मधुर गूँजते रहते हैं। हंस, कारण्डव, चक्रवाक और सारस आदि जल-कूल में केलि करते फिरते हैं। पानी में मछली और कछुओं के चलने से कमल हिलते और उनके पराग पानी में झर-झरकर मानो सोने से रँग देते हैं। किनारे कदम, बेंत, वकुल, कुरुवक, कुन्द, अशोक, कुटज, शिरीष, चमेली, जालक आदि तरु हैं। किसी-किसी से मालती, माधवी, लवंग आदि लताएँ लिपटी हुई सरोवर की शोभा बढ़ा रही हैं।

एक दिन उसी वन में रहनेवाला गजेन्द्र हस्तिनियों के दल के साथ विचरण करता, शाखाएँ तोड़ता और लताएँ छिन्न करता हुआ उस सरोवर के किनारे पहुँचा। हाथियों के शरीर की गन्ध से वहाँ के सिंह, बाघ, गण्डार आदि हिंस्र पशु वह वन छोड़-छोड़कर भय से भगने लगे। तेज धूप से तपा हुआ गजेन्द्र हथिनियों के दल के साथ कमल से युक्त उस सरोवर में धँसा। सूँड़ में पानी भरकर वह अपनी हथिनियों और हाथियों पर फौवारे की तरह छीटे डालने लगा, और प्रेमोन्माद से, संसारियों की तरह, जल-विहार करने लगा।

उस सरोवर में एक बड़ा पराक्रमी मगर रहता था। उसने उस प्रमत्त हाथी का पैर पकड़ लिया। वह गजेन्द्र भी बड़ा बलवान् था। पैर पकड़ जाने पर पूरी ताकत से वह तट की ओर पैर खींचने लगा। मगर हाथी से कम बलवान् न था। फिर पानी में होने के कारण उसे ज्यादा जोर मिल रहा था। मगर को बड़े बल से खींचते हुए और गजेन्द्र को कातर देखकर हथिनियाँ चिंघाड़ने लगीं। तब दूसरे हाथी गजेन्द्र की सूँड़ पकड़कर खींचने लगे, पर मगर से उसे किसी तरह छुड़ा न सके। हाथी और मगर का जल के बाहर और भीतर खींचने का युद्ध हजार वर्ष तक होता रहा। उस लम्बे समय के भीतर किसी की मृत्यु न हुई। देवताओं को यह युद्ध बड़ा अद्भुत मालूम दिया। क्रमशः जल में खिचते-खिचते गजेन्द्र थक गया। उसका उत्साह और इन्द्रिय-बल घट गया। उधर मगर में स्फूर्ति, उत्साह और इन्द्रिय-बल बढ़ गया। देहधारी होने के कारण संकट में अपने को छुड़ाने से असमर्थ हो गजराज व्याकुल हुआ। उसने सोचा, 'मैं थक गया हूँ; जब मेरी जाति-वाले हाथी मिलकर मुझे छुड़ाने में समर्थ नहीं हो रहे, तब मैं अकेला अब अपनी रक्षा न कर सकूँगा। जिनसे यह विश्व निर्मित है, जो माया के पति हैं, जो प्रकाश के भी प्रकाशक हैं, मैं उन भगवान् विष्णु के चरणों की शरण लेता हूँ। हे भगवान्! आप सर्वज्ञ और समर्थ हैं, आप मेरी रक्षा करें।' गजेन्द्र की पुकार सुनकर भगवान् गरुड़ पर सवार हो चल दिये। आकाश-मण्डल में गरुड़ पर सवार नारायण के दर्शन कर, कमल तोड़कर गजेन्द्र ने उन पर चढ़ाया और कहा—"हे नारायण, हे संसार के गुरु, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।" गजेन्द्र को दुःख में देखकर भगवान् गरुड़ की पीठ से उतर पड़े, और करुणा की दृष्टि से गजराज को देखते हुए मगर-सहित उसे बाहर निकाल लिया। फिर चक्र से मगर को काटकर देवताओं के सामने

गजेन्द्र को मुक्त कर दिया।

ब्रह्मा, शंकर आदि देवता तथा ऋषि-मुनि-गण भगवान् के करुणा-पूर्ण कार्य पर फूल बरसाने लगे। स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी। गन्धर्व और किन्नर गाने तथा अप्सराएँ नाचने लगीं। चारण और सिद्धगण स्तुति करने लगे।

देवल के शाप से हूहू नाम के एक गन्धर्व ने मगर होकर शरीर धारण किया। भगवान् की कृपा से मुक्त हो उसने अपना गत दिव्य रूप पाया। भक्ति-भाव से भगवान् की प्रदक्षिणा तथा प्रणाम कर गुण-गान करता हुआ अपने स्थान को चला गया।

गजेन्द्र भी भगवत्-स्पर्श से उन्हीं का-जैसा दिव्य सुन्दर चतुर्भुज शरीर प्राप्त कर पीत वस्त्र से शोभित हुआ। पूर्वजन्म में वह पाण्ड्य देश का राजा इन्द्रद्युम्न था। उस समय उसके ऐसा द्रविड़ देश में दूसरा साधु न था। वह भगवान् विष्णु का उपासक था। महात्मा की तरह कुलाचल-पर्वत पर आ, कुटी बनाकर वह भगवद्-भजन करने लगा। उपासना के समय वह मौन रहता था। इसी समय महामुनि अगस्त्य अपने शिष्यों के साथ उसके पास आये। वह उन्हें देखकर उठा नहीं। इससे मुनि को क्रोध हुआ। उन्होंने कोप कर शाप दिया कि दुष्ट, तुझे शिक्षा नहीं मिली, इसीलिए आज तूने ब्राह्मण का अपमान और अनादर किया—तू गज की तरह जड़ होकर बैठा रहा, जा यही रूप प्राप्त कर। अज्ञान में शाप की बात सोचता हुआ वह गज हुआ। गज-जन्म होने पर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। पर हरि-भजन के प्रभाव से इन्द्रद्युम्न गज होकर भी अपना पहला विवरण नहीं भूला। गरुड़-वाहन भगवान् ने गजेन्द्र को अपना स्वरूप दे अपना पारिषद् बनाया, और अपने लोक में, पास ही, जगह दी।

गणिका की कथा

प्राचीन काल में पिंगला नाम की एक वेश्या विदेह-नगर में रहती थी। उसका काम राह चलते धनी मनुष्यों को अपने जाल में फँसाना था। इस तरह उसने बहुत धन प्राप्त किया। बड़े ठाट-बाट से रहती थी। पर उसका हृदय सूना रहता था। दिन-दिन तृष्णा की आँच से वह और जलने लगी। एक रोज वैसे ही सज-बजकर अपने छज्जे पर बैठी। जो भी भला आदमी उस रास्ते से होकर गुजरता, उसके लिए वह सोचती, यह धनी है, मेरे पास आकर अर्थ दे जायगा। जब वह उसके पास से होकर चला जाता, तब वह दूसरे धनिक की राह देखती। इस तरह आशा के फेर में उसकी आँख न लगी। उसे कायिक कष्ट होने लगा। घर के भीतर जा आशा की प्रेरणा से फिर बाहर छज्जे पर आयी। क्रमशः उसकी अस्थिरता बढ़ गयी। वह बहुत व्याकुल हुई। बड़ी रात बीत गयी, पर नींद न लगी, तब उसे होश हुआ कि

मैं दुराशा के फेर में पड़ी हूँ। जब तक यह फाँस न कट जायगी मुझे सुख की निद्रा नहीं हो सकती। वह सोचने लगी—'मैं कितनी मन्द बुद्धिवाली हूँ! कितनी छोटी-छोटी वस्तुओं की कामना मैं करती हूँ! मैंने ईश्वर की उपासना तो छोड़ दी, पर अनित्य विषय को अब तक न छोड़ा! जो मेरे हृदय में विराजमान हैं, जो मुझसे सदा प्रेम-पूर्वक मिले हुए हैं, जो नित्य मुझे नये-नये तरीके से प्यार करते हैं, जो स्वयं हृदय में वास कर सब प्रकार के ऐश्वर्य के अर्जन की शक्ति देते हैं, जो सत्य-स्वरूप हैं, उन्हें मैंने छोड़ दिया, और जो मनुष्य इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते, जो दुःख, शोक, भय और पीड़ा के देनेवाले तुच्छ से भी तुच्छ हैं, उन्हें मैंने अपनाया! हाय! मैं कितनी नीच वेश्या-वृत्ति में पड़ी हुई हूँ! मैंने ईश्वर का भजन भुला दिया! मैंने कामी, लोभी, दुराचारी और सब प्रकार से गिरे हुए मनुष्यों द्वारा खरीदी जाकर धन और रति की इच्छा की! हाड़ और मांस की बनी देह, जिसका कुछ भी पवित्र नहीं है, जिसके नौ द्वार पनाले की तरह हैं, लिपटा-लिपटाकर काम-वासना पूरी की। मेरे सिवा क्या कोई दूसरी स्त्री भी काम की सेवा करेगी? इस विदेह-नगर में मेरी तरह बुद्धिहीन और कोई न होगा। अब ऐसा मुझसे न होगा। जो शरीर के स्वामी, जीवों के प्यारे मित्र, ईश्वर और आत्मा हैं, अब अपने को उन्हीं के हाथ सौंपकर उनकी लक्ष्मी बनकर रहूँगी। पर मुझमें जो परिवर्तन, जो अनुताप पैदा हुआ है, इससे मालूम होता है, मेरे किसी शुभ कर्म के फल से भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हुए हैं। अब मैं पहले-जैसी दुश्चिन्ता के चक्र में कभी न पड़ूँगी। सन्तोष और श्रद्धा रक्खूँगी। इससे मुझे जो कुछ प्राप्त होगा, उसी पर शरीर धारण करती हुई साक्षात् रमण भगवान् विष्णु से विहार करती रहूँगी। मैं संसार-कूप में पतित हूँ, विषयों ने मेरी आँखें फोड़ दीं, काल-रूप सर्प अब मुझे डसना चाहता है, अब बिना भगवान् विष्णु के दूसरा कौन मेरा उद्धार करेगा? जब मैं देखूँगी—यह संसार कालरूपी सर्प से ग्रस्त है, और उन मूढ़, भोग के भिक्षुक, सांसारिक मनुष्यों से विरक्त हूँगी, तब अपनी रक्षा मैं आप कर सकूँगी।' ऐसा निश्चय कर पिंगला ने उप-पतियों की कामना छोड़ दी, और शान्ति-पूर्वक अपनी सेज पर जाकर लेटी। पिंगला को सुख की नींद लग गयी।

दक्ष के पराजय की कथा

बहुत काल हुआ, विश्व-स्रष्टाओं के यज्ञ में देवता, मुनि और अग्नि आदि एकत्र हुए। शिव और ब्रह्मा भी वहाँ थे। आकाश के तारों-से वहाँ देवता और ऋषि अपने-अपने प्रकाश में चमक रहे थे। इसी समय दिवाकर-जैसे तेजःपुंज प्रजापति दक्ष उपस्थित हुए। बुझते प्रकाशवाले नक्षत्रों-से सब देवता और ऋषि उन्हें देखकर, आसन छोड़कर उठे, उनका स्वागत किया। सभा में उन्हीं का प्रकाश चारो

और फैल गया। उन्होंने सबकी तरफ प्रकाशपूर्ण ऊँची दृष्टि से देखते हुए शिव और ब्रह्मा को भी देखा। ये बैठे हुए थे। दक्ष के स्वागत के लिए खड़े नहीं हुए। अपर देवता तथा ऋषि तब तक खड़े हुए प्रजापति दक्ष के बैठने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अपर सभासदों पर दक्ष के प्रकाश का जो प्रभाव पड़ा था, उसका लेश-मात्र भी शिव और ब्रह्मा पर लक्षित न हो रहा था।

दक्ष प्रजापति थे। उनके आने पर उठकर खड़े होना और बैठने के बाद बैठना उनका ऐसा ही सम्मान प्रजा में प्रचलित था; इसका उल्लंघन वह सहन न कर सके। अपना घोर अनादर समझकर दृष्टि से झुलसाते हुए सभा में कहने लगे—"हे ऋषियो, हे देवताओ, हे अग्नियो, आज इस सभा में शिव ने ऐसा दुराचरण किया है, जो कदापि सहनयोग्य नहीं। मैं शिष्टाचार तथा आदर्श की रक्षा के लिए कहता हूँ। मेरा उद्देश निष्प्रयोजन ही किसी को कलंक लगाना नहीं। आप लोग ध्यानपूर्वक ये बातें सुनिए। शिव की तरह बेहया दूसरा नहीं। लोकपालों का यश इन्हीं के कारण नष्ट हुआ। इन्होंने साधु आचरणों को छोड़कर मन्द मार्ग अपना लिया है। इस कारण पुराने ध्रुव पथ का लोगों में तिरस्कार-सा हो चला। यह बन्दर की-सी गुच्चू आँखोंवाला मूढ़ मेरी रूप और गुणों की खान, निष्कलंक, चाँद-सी सुन्दर, मृगाक्षी, विदुषी कन्या से विवाह कर मेरा शिष्य न हुआ? परन्तु आप लोगों ने देखा, आसन छोड़कर मेरे लिए सम्मान-प्रदर्शन भी इसने उचित नहीं समझा। चूंकि यह स्वयं क्रिया-कलाप से भ्रष्ट हो चुका है, इसलिए दूसरों के लिए भी अन्ध हो रहा है। शौच और मर्यादा का इसे ज्ञान नहीं। इसे कन्या-प्रदान करने की मेरी इच्छा न थी, पर इस विचार से कि वेद-वाणी शूद्र को भी देने की उदारता की जाती है, मैंने अपनी सुलक्षणा कन्या इसे अर्पित कर दी। अब आप लोग ही इस असभ्य के आचरणों को देखें। यह कहलाता तो शिव है, पर है वास्तव में अशिव। हमेशा भूत और प्रेतों के साथ नग्न रहकर गर्हित कार्यों में लिप्त रहता और भक्ष्याभक्ष्य भोजन करता है। तमोगुणवाले, मतवाले मनुष्य मादक द्रव्य और उन्माद आदि भूत-विशेष इसके प्रिय हैं।"

इतने पर भी शिव को क्रोध न हुआ। वह शान्त भाव से बैठे रहे। दक्ष निन्दा करके भी चुप न रहे, उन्होंने यह शाप दिया कि यज्ञ में इन्द्र और उपेन्द्र आदि देवताओं के साथ इस अधम शिव को भाग प्राप्त न हो। इस प्रकार क्रोध से शाप देकर दक्ष अपने स्थान को चले गये।

शिव के अनुचरों के प्रधान नन्दीश्वर से स्वामी का अपमान न सहा गया। मारे क्रोध के उनके अधर स्फुरित होने लगे, आँखें रक्ताभ हो गयीं। वहाँ जिन ब्राह्मणों ने दक्ष का समर्थन किया था, उन्हें शाप देते हुए उन्होंने कहा—"हे ब्राह्मणो, तुम्हारी हृदय की दृष्टि लुप्त हो गयी है। भगवान् भव किसी का बुरा नहीं करते। वह आकाश की तरह समदर्शी हैं। जो मूढ़ दक्ष की चमक-दमक देखकर मुग्ध हैं, वे सन्मार्ग से पतित हो चुके हैं। वे परमार्थ की साधना नहीं कर सकते। वेदों के अर्थवाद में पड़कर वे मूर्ख बुद्धि से भ्रष्ट हो गये हैं। सुखों के फेर में कर्मकाण्ड का आश्रय लेकर वे प्रवंचन और कूट धर्म फैलाते रहें। वे दक्ष के पक्षवाले अब देह को ही आत्मा समझें, और आत्मतत्त्व को भूल जायँ। दक्ष पशु-

तुल्य स्त्री-कामी हो, और शीघ्र उसका मुख बकरे के मुखानुरूप हो जाय। जो अविद्या को विद्या समझता है, वह वास्तव में बकरा है। दक्ष की आज्ञा में आने-वाले ब्राह्मण जीविका के लिए जप-योग आदि तपस्या तथा व्रतों को धारण करें, अर्थ के लिए धर्माचारी हों, देह और इन्द्रिय को सुख समझें।"

ब्राह्मणों के प्रति नन्दी का यह भयंकर शाप भृगु से न सहा गया। उन्होंने भी शाप दिया—"जो शिव का अनुसरण करें, वे शास्त्रों से विमुख हों। जहाँ गौड़ी, पैष्टी और मादकी सुरा का बड़े प्रेम से पान होता है, वहाँ शौच का ज्ञान न रखने-वाले भ्रष्ट-बुद्धि मनुष्यों का प्रवेश हो।"

भृगु का शाप सुनकर भगवान् भव कुछ देर चुपचाप सभा में बैठे रहे। फिर शान्त चित्त से उठकर, अनुचरों को साथ लेकर चल दिये।

त्रिपुर की कथा

शिव-पुत्र स्कन्द ने तारकासुर का वध किया, तो उसके तीन पुत्र पृथ्वी पर घोर तप करने लगे। बड़े का नाम तारकाक्ष, मँझले का विद्युन्माली और छोटे का कमलाक्ष था। ये तीनो बराबर बलवाले थे। तीनो जितेन्द्रिय, संयमी और सत्य-वादी थे। सब प्रकार के भोगों को छोड़कर मेरु की मनोहर गुफा में जाकर तीनो तपस्या करने लगे। ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर के सम्पूर्ण उपद्रवों को धीरता-पूर्वक सहन करते रहे। अनेकानेक प्रकारों से दीर्घ काल तक उन्होंने तप किया। उनकी साधना सिद्ध हुई, तो ब्रह्माजी उनके सामने आकर उपस्थित हुए, और मधुर कण्ठ से आश्वासन देते हुए बोले—"हे दैत्यवीरो, तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे माँगो।" ब्रह्मा को प्रसन्न होकर वर देते हुए देखकर तारक-पुत्रों ने कहा—"हे पितामह, आप देवों में श्रेष्ठ हैं। हम कोई भी वर आपसे माँगें, समय आने पर उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा, क्योंकि मृत्यु के अधिकार में श्री, सम्पत्ति, बल, विक्रम, सबकुछ है इसलिए हमारा विचार है कि इस प्रकार का कोई भी वर हम न लेंगे, हम आपसे यही चाहते हैं आप हमें अजर-अमर कर दें।" सुनकर ब्रह्माजी को बड़ी घबराहट हुई। पर मन को स्थिर करके उन्होंने कहा—"हे तारकनन्दनो, यह वर अदेय है, क्योंकि पैदा होकर सभी को एक दिन मरना पड़ता है। इसलिए तुम दूसरा वर माँगो।" ब्रह्मा की बात सुनकर महावीर तारक-पुत्र बोले—"हे पितामह, हमारे पास कोई ऐसी जगह नहीं, जहाँ हम अपने को सुरक्षित रख सकें, और वहाँ सुख से निवास करें। हमें आप तीन अद्भुत पुर बनवा दीजिए, जहाँ सब प्रकार की सम्पदा हो, और देवता जिसे तोड़ न सकें।" तारकाक्ष ने कहा—"मुझे सुवर्ण का पुर चाहिए।" कमलाक्ष ने कहा—"मुझे चाँदी का चाहिए।" विद्युन्माली ने कहा—"मुझे लोहे का बनवा दीजिए।"

ब्रह्मा ऐसा ही होगा, कहकर चले गये, और मय दानव को इसी प्रकार के तीन पुर बना देने की आज्ञा दी। मय ने बड़े परिश्रम से तीनों पुरों का निर्माण कर दिया।

तारक-पुत्र आनन्द-पूर्वक धन-धान्य से युक्त होकर इन पुरों में रहने लगे। इनका प्रताप धीरे-धीरे इस प्रकार फैला कि इन्द्र आदि देवताओं का तेज हत हो गया। वे तारक-पुत्र शिव के बड़े भक्त थे। उनकी शक्ति भी इसलिए दिन-पर-दिन बढ़ती गयी।

एक दिन देवता खिन्न होकर भगवान् शिव के पास गये, और अपने दुःख का कारण कहा। शिवजी ने उत्तर दिया—"हे देवतो, तारक के पुत्र अपने धर्म में अचल हैं, इसलिए मैं उनका नाश नहीं कर सकता। जब उनका धर्म नष्ट होगा, तभी उनके नाश का उपाय हो सकता है।"

तब देवता विष्णु के पास गये। देवों का दुःख भगवान् विष्णु से न देखा गया। उन्होंने देवों को धैर्य देते हुए कहा—"मैं ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे ये पराक्रमी तारक-पुत्र धर्म से च्युत होकर शक्ति तथा श्री रहित हों।" यह कहकर भगवान् विष्णु ने अपनी माया से एक महापुरुष प्रकट किया। उसका सिर घुटा हुआ था, वस्त्र मैले थे। एक हाथ में गुंफि (पात्र) लिये और एक में बढ़नी, पद-पद पर बहारता हुआ, मुख में वस्त्र लपेटे, धर्म-धर्म चिल्लाता हुआ, प्रकट हुआ। भगवान् विष्णु उससे बोले—"तुम मरुस्थल को जाओ। तुम्हारा बड़ा नाम होगा। तुम सोलह हजार श्लोकों में एक शास्त्र का निर्माण करो, जो श्रुति-स्मृति आदि के विरुद्ध हो। वह शास्त्र अपभ्रंश शब्दों (धम्म लाभोदु) से युक्त हो। उसके निर्माण के लिए मैं तुम्हें शक्ति देता हूँ। अनेक प्रकार की माया तुम फैला सकोगे। तुम त्रिपुर के रहनेवाले सब दैत्यों को अपनी माया से मोहित करो।"

भगवान् ने त्रिपुर-वासी दैत्यों को बरगलाने के लिए नारद को भेज दिया, और कह दिया कि पहले तुम्हीं उस मायावी मुण्डी से दीक्षा ग्रहण करना। नारद ऐसा ही करके त्रिपुर को गये, और तारक-पुत्रों से इस उत्तम धर्म की तारीफ की। वे लोग नारद की बातों में आ गये, और प्राचीन धर्म को छोड़कर मायावी मुण्डी से नया धर्म ग्रहण कर लिया, फिर वे सब 'सोऽहम्' बनकर तरह-तरह के अनाचार करने लगे। उनके उपद्रवों से पृथ्वी को दुःख पहुँचने लगा। लक्ष्मी उनका स्थान छोड़कर चली गयीं। वहाँ माया और अलक्ष्मी का वास हो गया।

शिवजी के पास देवता फिर गये, और तारक-पुत्रों के अत्याचार की कथा कह सुनायी। शिवजी ने कहा—"मैं जिस रथ पर बैठकर लड़ूँगा, न वह रथ है, न सारथी और न धनुष ही है।"

शिवजी के लिए सब देवतों ने मिलकर विश्वकर्मा से प्रार्थना की। तब उन्होंने एक दिव्य रथ तैयार किया। वह सर्वभूतमय, सर्वसम्मत सुवर्ण का रथ था। चन्द्र और सूर्य उसके पहिए थे। संवत्सर वेग और चारो वेद चार घोड़े बने। भगवान् ब्रह्मा सारथी और सब देवता रश्मि। शैलराज मेरु धनुष हुए और शेषजी गुण। सरस्वती टंकार हुईं और विष्णुजी बाण। ऐसे रथ पर शंकरजी सवार होकर त्रिपुर के नाश के लिए चले। त्रिपुर के पास जाकर, शिव ने अपना नाम सुनाकर

कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस बाण को छोड़ दिया। बाण की प्रचण्ड ज्वालों से तीनो पुर और दैत्यगण क्षण-मात्र में दग्ध हो गये।

वीरभद्र की कथा

भगवान् भूतनाथ को मालूम हुआ कि मेरा अपमान न सहकर सती ने पिता के यज्ञकुण्ड में शरीर की आहुति दे दी, पर यज्ञ से ऋभु आदि देवतों ने जन्म पाकर शिव-गणों को पराजित कर दिया है। इस संवाद से भगवान् रुद्र को बड़ा क्रोध हुआ। उनकी त्योरियाँ चढ़ गयीं, होंठ वारम्वार प्रकम्पित होने लगे, चेहरे का रंग आग-जैसा जलता हुआ हो गया। उसी समय उन्होंने अपने मस्तक से एक जटा उखाड़ ली। क्षण मात्र में वह बिजली की तरह चमकीली हो गयी। पुनः-पुनः उससे भयानक ज्वालाएँ निकलने लगीं। फिर हँसते हुए भगवान् भव ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया। इसी से विशालकाय वीरभद्र की उत्पत्ति हुई। इनका इतना ऊँचा शरीर हो गया कि मस्तक स्वर्ग को स्पर्श करने लगा। मेघों से काले-काले हजार हाथ हो गये। सूर्य-सी जलती हुई तीन आँखें। मूलियों से भी बड़े तीक्ष्ण दाँत और बाल लपटों से जलते हुए, पीले। गले में खोपड़ियों की माला पड़ी हुई, हाथ में सँभाला हुआ दिव्य-अस्त्र। देह पाने के पश्चात् मेघ की तरह गर्जना कर वीरभद्र ने देव-श्रेष्ठ शिव से हाथ जोड़कर कहा—"मुझे अब क्या करना होगा, भगवन्, आज्ञा दीजिए।" महादेव ने उदात्त स्वरों से कहा—"हे वीरभद्र! तुम मेरे अंश हो। योद्धाओं में तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हें मैं अपनी सेना का नायक बनाता हूँ। जाओ, दक्ष और उसके यज्ञ का नाश करो। ब्रह्म-तेज का सामना करो।" भगवान् भव की आज्ञा प्राप्त कर वीरभद्र ने उन्हें प्रदक्षिण कर प्रणाम किया। ऐसे समय आत्मा के भीतर वीरभद्र को अपार बल का अनुभव होने लगा। प्रभु की आज्ञा पा अपर शिव-गण भी सिंहनाद करने लगे, और वीरभद्र के साथ चलने को तैयार हो गये। भयंकर शूल लेकर वीरभद्र ने भी वज्र-गर्जना की। फिर वह समस्त दल को साथ लेकर चले। उनके पदक्षेपों पर पैरों के नूपुर भी रण-घोष करने लगे। चारो ओर से धूल उठ-उठकर सूर्य को ढकने लगी। यहाँ दक्ष के यज्ञ के ब्राह्मण, ऋत्विक्, यजमान और उनकी पत्नियाँ आकाश में धूल देखकर बड़ी व्याकुल हुईं। सब सोचने लगे—'राजा प्राचीनवर्हि के रहते उधर से डाकुओं का आना भी बिलकुल असम्भव है; ऐसी हवा भी नहीं चल रही, जो कहें कि इससे धूल उड़ रही है।' दक्ष की स्त्री कहने लगी—"यह सब रुद्र के कोप का कारण है। समझ में नहीं आता, आगे क्या होनेवाला है। पतिदेव ने अपर कन्याओं के सामने सती का अनादर करके अच्छा नहीं किया। यह सब अनर्थ सती के शरीर-त्याग के कारण हो रहा है। प्रलय के समय भयंकर रूप धारण कर, शूल से दिग्दन्तियों को बिद्ध

कर, शास्त्ररूपी बाँहों को उठाकर महोल्लास से ताण्डव-नृत्य करनेवाले भगवान् भव का अपमान बड़े कठोर उपद्रव का कारण होगा। जिनकी हँसी में मेघ-गर्जन होता है, दिशाएँ त्रस्त हो उठती हैं; उनके कोप से तो, ईश्वर ही जाने, क्या हो!" इस प्रकार अनेकानेक कल्पनाएँ हो रही थीं कि वीरभद्र के साथ शम्भु-गण सभा में आ उपस्थित हुए। शिव-गण अद्भुत अद्भुत आकार के थे। उन्हें देखकर भय होता था। आते ही उन्होंने यज्ञ-ध्वंस करना आरम्भ कर दिया। मण्डप तोड़ डाला। खम्भे उखाड़ दिये। हविर्धान, यजमान-गृह, पाक-भोजनशाला, सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कोई यज्ञ-कुण्ड में पेशाब करने लगा, कोई पात्र फोड़ने लगा, कोई वेदी की मेखला तोड़ चला। कुछ ऋषियों के पीछे पड़ गये। मणिमान नाम के रुद्र-गण ने भृगु को बाँध लिया। दक्ष वीरभद्र के चंगुल में पड़े। सूर्यदेव को चण्डेश ने और भगदेव को नन्दीश्वर ने बाँध लिया। भगे हुए ब्राह्मणों पर शिला-प्रहार होने लगे। महर्षि भृगु ने अपनी दाढ़ी दिखाकर भगवान् भव का उपहास किया था, इसलिए वीरभद्र उनकी दाढ़ी उखाड़ने लगे। भग ने आँखों से अपमान का इशारा किया था, इसलिए नन्दीश्वर ने भग की आँखें फोड़ दीं। फिर वीरभद्र ने पूषा के दाँत तोड़ दिये। कारण, महादेव की निन्दा से यह हँसे थे। पश्चात् दक्ष को पटककर वीरभद्र चढ़ बैठे, और अपने शूल से छेदने लगे। पर किसी तरह दक्ष का प्राणान्त न होता देखकर, यज्ञ के पशु मारनेवाले यन्त्र पर उठाकर पटका, इससे दक्ष का मस्तक कटकर अलग जा गिरा। शिव-गण आनन्द से नृत्य करने लगे। वीरभद्र ने दक्ष के कटे सिर की वहीं दक्षिणाग्नि में आहुति दे दी। ब्राह्मणों में हाहाकार फैल गया। रुद्र-गण यज्ञ ध्वंस कर कैलास को चल दिये।

दक्ष के पुत्रों को नारद का उपदेश

प्रचेताओं के औरस और अप्सरा के गर्भ से दक्ष की उत्पत्ति हुई। विंध्यगिरि के पास एक छोटी-सी पहाड़ी पर अघमर्षण-नामक तीर्थ की बगल में हंसगुह्य स्तोत्र का पाठ करते हुए दक्ष भगवान् हरि की आराधना करने लगे। क्रमश: श्रद्धा का भाव प्रबल हुआ, और यथासमय दक्ष को सिद्धि मिली—विशाल आठ भुजाओं में शंख, चक्र, असि, चर्म, धनु बाण, पाश और गदा लिये हुए, गरुड़ पर सवार, वन-माला से भूषित, श्रीवत्स चिह्न धारण किये भगवान् दक्ष के सामने उपस्थित हुए। उन्हें अनेक प्रकार के उपदेशों से तुष्ट कर बोले—"वत्स, तुम प्रजापति हो। मैं तुम्हें एक सुन्दरी युवती कन्या देता हूँ। यह प्रजापति पंचजन से पैदा हुई है। इसे पत्नी-रूप से ग्रहण कर तुम रमण करो। इससे प्रजा की वृद्धि होगी। बाद को सृष्टि मैथुनी हो जायगी।" यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। उस पंचजन की कन्या, असिक्नी, से रमण कर दक्ष ने हर्यश्व नाम के दस हजार पुत्र पैदा

किये। ये सब बड़े सुबोध तथा सुन्दर हुए। पिता दक्ष ने इनसे सृष्टि उत्पन्न करने के लिए कहा। ये सब पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर पश्चिम को चले, और वहाँ पहुँचे, जहाँ सिन्धुनद समुद्र से मिला है। वहाँ 'नारायण-सर' नामक एक प्रधान तीर्थ है, उसके जल को छूते ही मनोमल दूर हो जाते हैं। ऐसा ही दक्ष के पुत्रों को भी हुआ। वे परम पवित्र हो गये। उनकी परमहंस-वृत्ति हो गयी। पर पिता की आज्ञा का विचार कर वे लोग सृष्टि के लिए कठोर तप करने लगे। देवर्षि नारद को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतनी पवित्र बुद्धि को प्राप्त करके भी वे प्रजा-वृद्धि की सोचें, उनका यह भाव नारद को सह्य न हुआ। नारद उन लोगों के पास पहुँचे, और बोले—"हे दक्ष-पुत्रो, अभी तो तुम लोगों ने भूमि का अन्त भी नहीं देखा, और प्रजा-वृद्धि की बातें सोचने लगे। अरे, तुम लोग नादान ही रहे। सुनो, एक राज्य है, वहाँ पुरुष एक ही है, और वह एक बिल है, पर उस बिल से कोई निकलता नहीं, एक स्त्री है, उसके बहुत-से रूप हैं; एक पुरुष है—वह कुलटा का पति है; एक नदी है – वह दोनों तरफ बहती है; एक बड़ा विचित्र मकान है—वह पचीस पदार्थों से बना है। वहीं तरह-तरह की बोलियाँ बोलनेवाला एक हंस है; वहाँ धुर और वज्र की बनी हुई आप ही घूमनेवाली एक चीज है। यह सब जाने बिना अपने सर्वज्ञ पिता की आज्ञा का तुम कैसे पालन कर सकते हो?—फिर तुम सृष्टि भी कैसे करोगे?" दक्ष के पुत्र नारद के इस कूट कथन का मतलब पहले न समझ सके, पर क्रमशः विचार करते हुए समझ गये। तब उनका विचार बदल गया। वे सब परमात्मा की प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगे। इस प्रकार उनका कामना-जन्य शरीर नष्ट हो गया।

यह खबर दक्ष को मिली, तो वह बड़े दुखी हुए। पर ब्रह्मा ने उन्हें सान्त्वना दी। पुत्रों की कामना से उन्होंने पुनः पांचजनी से रमण किया, और इस बार हजार पुत्र हुए। बड़े होने पर इन्हें भी दक्ष ने प्रजा-वृद्धि का उपदेश देकर तपस्या के लिए भेजा। ये भी उसी जगह गये, जहाँ इनके बड़े भाई गये थे, और उसी प्रकार 'नारायण-सर' के जल-स्पर्श से शुद्ध हो गये। इस बार भी नारद आये, और पहले की तरह इनसे भी कूट कथन किया। फिर कहा, "हे दक्ष-पुत्रो, तुम अपने बड़े भाइयों के प्रति देखो। उनका भी यही उद्देश था। वे ही तुम्हारे सच्चे बन्धु तथा मार्ग-प्रदर्शक हैं। जो अपने धर्मज्ञ भाइयों का अनुसरण करते हैं, मरुद्गण उन्हें ही पा प्रसन्न होते हैं।" यह कहकर नारद चले गये। नारद की बात दक्ष-कुमारों के हृदय में बैठ गयी। वे अपने पहलेवाले भाइयों की तरह उस कूट कथन का अर्थ लगाते हुए मनुष्य-शरीर से युक्त हो ईश्वरानन्द में लीन हुए। प्रजापति दक्ष को फिर मालूम हुआ कि पहले की तरह इस बार भी नारद ने उनके पुत्रों का शरीर नष्ट कर दिया है। दक्ष पुत्रों के शोक से विलाप करते हुए मूर्च्छित हो गये। होश में आकर उन्होंने नारद को शाप दिया—"देख, तू साधु का वेश तो किये हुए है, पर तू साधु है नहीं। तूने मेरे पुत्रों को लक्ष्य-भ्रष्ट कर दिया। मेरे पुत्र पिता के ऋण से मुक्त नहीं हो सके—उनकी मुक्ति असम्भव है। जा, तू हरि के यश का नाशक हो।" नारद ने दक्ष का शाप शिरोधार्य कर लिया।

चित्रकेतु की कथा

सूरसेन देश में पहले एक माण्डलीक राजा चित्रकेतु नाम के रहते थे। उनके राज्य में सभी प्रकार के अन्न पैदा होते थे। प्रजा को बड़ा सुख था। राजा के एक करोड़ रानियाँ थीं। पर कोई सन्तान न थी। इससे उन्हें बड़ा दुख रहता था। इतनी सम्पदा, सुलोचना स्त्रियाँ, रूप, गुण, विद्या, बल, कुलीनता और भूमण्डल का राज्य रहने पर भी राजा के मन को शान्ति न थी। सन्तान के सोच में सदा मुरझाये रहते थे।

इसी समय महर्षि अंगिरा पृथ्वी का भ्रमण करते हुए राजा के राज्य में गये। राजा ने बड़े आदर-भाव से महर्षि का स्वागत किया। उठकर उन्हें अपने दिव्य भवन में ले जाकर उनके पैर धोये, फिर चन्दन से चर्चित कर, सुगन्ध फूलों की माला पहनाकर सिंहासन पर बिठा उत्तमोत्तम भोजन कराया। जब महर्षि की राह चलने की थकावट दूर हुई, वह स्वस्थ हुए, तब राजा को चिन्ता से ग्रस्त देखकर बड़े प्रेम से पूछा—"हे राजन्, ! तुम्हारी सब कुशल तो है?" राजा ने बड़े विनय-भाव से कहा—"हे ऋषि-श्रेष्ठ ! आपकी कृपा से और तो सब कुशल है, पर एक दुःख शूल की तरह सदा ही हृदय को छेदता रहता है।" मुस्किराते हुए महर्षि ने उस दुःख को प्रकट करने की आज्ञा की। राजा ने कहा—"भगवन् ! यह विशाल राज्य, सभी प्रकार के सुख, विद्या, बल, वैभव, प्रसाद और प्रजा एक सन्तान के विना व्यर्थ हैं। मेरे न रहने पर इस सम्पदा का भी नाश होगा। यह समस्त वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। इतनी शोभा के भीतर रहता हुआ मैं सदा इसकी क्षीणता को ही देखता रहता हूँ। सन्तान के विना मुझे यह सब निःसार मालूम दे रहा है।" राजा के दुख से भरे हुए इन वाक्यों को सुनकर महर्षि मुस्किराये। बोले—"राजन् ! विधाता की इच्छा पर किसी का वश नहीं चलता।" ऋषि की मर्मकथा राजा की समझ में न आयी। अज्ञ की तरह वह फिर कह चले—"भगवन् ! पर इससे जी को सन्तोष नहीं होता। मैंने पहले बाहरी सम्पदा की रक्षा की बात आपसे कही थी। पर आप ही सोचें, मनुष्य-शरीर प्राप्त कर यदि किसी को तर्पण और पिण्ड की आशा न रही, तो उसे कितना दुःख होता है, मृत्यु के बाद भी उसका उद्धार नरक से नहीं होता। आप मुझ पर ऐसी कृपा अवश्य करें, जिससे मुझे नरक से उद्धार प्राप्त हो।" राजा की प्रार्थना से द्रवित होकर ब्रह्मपुत्र अंगिरा ने स्वयं हवि पाक कर त्वष्ट्र नाम के देवता का याग किया; फिर शेष भाग राजा की बड़ी रानी कृतद्युति को खिला दिया। फिर चलते हुए कहा—"हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र तो होगा, पर वह तुम्हारे लिए हर्ष और शोक दोनों का कारण होगा।"

रानी कृतद्युति गर्भवती हो गयीं। यथासमय एक सुन्दर कुमार भूमिष्ठ हुआ। राजभवन में आनन्द की छटा फैल गयी। अनेक प्रकार के उत्सव और मंगल-गीत होने लगे। ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा दी गयी। प्रजावर्ग के आनन्द का ठिकाना न रहा। राजा को पहले जितना दुःख था, अब उससे दूना सुख भी हुआ।

इस आनन्द-मंगल में केवल राजा की दूसरी रानियों को दुःख हुआ। पहले

राजा अपनी सभी रानियों का समान आदर करते थे। अब वे सब सोचने लगीं—'राजकुमार की माता होने के कारण अब केवल कृतद्युति का ही राजा की दृष्टि में आदर और सम्मान होगा। हमारी तो दासियों से भी बुरी दशा होगी। कृतद्युति हमसे सखी की तरह न मिलेगी। जब वह राज्य के उत्तराधिकारी अपने पुत्र के गर्व से हमारी तरफ देखेगी, तब हमारी कैसी शोचनीय दशा हो जायेगी—मारे लज्जा और क्षोभ के हमें मिट्टी में गड़ जाना होगा। इस जीवन से हमारे लिए मृत्यु अच्छी है।' इस प्रकार रानियों में सौत का डाह पैदा हो गया। क्रमशः रानी कृतद्युति के प्रति उनकी ईर्ष्या और बढ़ गयी। एक दिन उन्होंने राजकुमार को ज़हर देकर मार डालने का निश्चय किया।

कुछ काल बाद रानी कृतद्युति अपने बरामदे में टहल रही थीं। राजकुमार बड़ी देर से सोया हुआ था। रानी ने धात्री से राजकुमारको ले आने के लिए कहा। जब धात्री बड़ी देर से सोते हुए राजकुमार को जगाने के लिए गयी, तो देखा कि राजकुमार की आँखें चढ़ी हुई हैं, और साँस बन्द हो गयी है। धात्री वहीं पछाड़ खाकर गिरी। रानी कृतद्युति भी शंकित होकर पुत्र के पास दौड़ीं। पुत्र को मरा हुआ देखकर वहीं मूर्च्छित हो गयीं। सारे राजभवन में यह शोक-संवाद बात की बात में फैल गया। जिन रानियों ने विष खिलाकर बच्चे की जान ली थी वे भी दौड़ीं, और छाती पीट-पीटकर ऊँचे स्वर से विलाप करने लगीं। राजा भी शोक से बेहोश हो गये।

मृत्यु का यथार्थ कारण ज्ञात न होने से राजा और रानी विधाता के ही सिर सारे कलंक का आरोप करने लगे। इसी समय ऋषि अंगिरा के साथ देवर्षि नारद राजा से मिलने के लिए आये। शोक के कारण राजा इतने दुर्बल हो गये थे कि वह महर्षि अंगिरा को पहचान नहीं सके। महर्षि अंगिरा ने स्वयं कहा—"राजन्! शोक के कारण तुम्हें मेरी याद भी नहीं रही। मैं ही तुम्हें यह पुत्र प्रदान करने-वाला अंगिरा हूँ। यह तुम्हारे सामने खड़े हुए ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद हैं।" राजा ने बड़े विनय भाव से प्रणाम किया। नारद ने राजा को महोपनिषद् का उपदेश दिया, जिससे राजा का शोक दूर हुआ, और नारायण के प्रति भक्ति और विश्वास की वृद्धि हुई। राजा का पहलेवाला भाव बदल गया। उनके हृदय में नारायण के दर्शनों की इच्छा प्रबल हो गयी। नारदजी की आज्ञा के अनुसार राजा चित्रकेतु सात दिनों तक केवल जल पीकर रहे, और नारदजी की दी विद्या को धारण किया। इससे उन्हें विद्या को धारण करने की शक्ति प्राप्त हुई। इसी विद्या के प्रभाव से उन्हें श्रीभगवान् के दर्शन हुए। उन्होंने देखा चारो ओर से सिद्ध मनीश्वरों से भगवान् संस्तुत हो रहे हैं। उनकी देह में पीताम्बर है, मस्तक पर किरीट। मुख प्रसन्न और प्रकाश सूर्य से भी अधिक और स्निग्ध! राजा को भगवद्-दर्शन से बड़ा आनन्द हुआ। वह भगवान की स्तुति करने लगे। श्रीभगवान् ने अनेक प्रकार से चित्रकेतु को ज्ञानोपदेश दिया।

विद्या के प्रभाव से चित्रकेतु की गति अबाधित थी। वह आकाशचारी थे। लाखों वर्ष वह इस दिव्य योनि में रहकर विहार तथा भगवद्भजन करते रहे। एक बार चित्रकेतु विष्णु के दिये तेजोमय विमान पर भ्रमण करते हुए चले जा रहे थे।

उन्होंने देखा, भगवान् शिव भवानी को गोद में बैठाये आलिंगन करते हुए सिद्ध मुनियों की सभा में बैठे हुए हैं। भगवान् भव को कामी पुरुष की तरह अनाचार करते हुए देखकर अहम्मन्यता के वश हो चित्रकेतु हँस दिये। यह देखकर भगवती क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने राजा को वर के प्रभाव से दुर्विनीत हुआ जानकर शाप दे दिया। कहा—"रे मन्दबुद्धि, क्षत्रियों में अधम राजा, अपने को इतना बड़ा ज्ञानी समझने लगा कि जिनकी सेवा स्वयं ब्रह्मपुत्र ऋषि और मुनि आकर करते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिन्हें मस्तक झुकाकर सम्मान प्रदर्शन करते हैं, जो जगद्गुरु हैं, उनके कृत्य को न समझकर तूने उनका उपहास किया, इसलिए शीघ्र तू अधम राक्षस योनि में जाकर जन्म ले।"

राजा में पहले से ईश्वर के प्रति भक्ति होने के कारण भगवती भवानी के शाप से ज्ञानोदय हो गया। सिर झुकाकर शान्त चित्त से शाप को ग्रहण कर धीरे-धीरे वह वहाँ से चले गये। बाद को वही राजा वृत्रासुर होकर पैदा हुए।

तारकासुर की कथा

कश्यप की बड़ी स्त्री दिति के दो पुत्र हुए, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। भगवान् विष्णु ने इन दोनों को मार डाला, हिरण्याक्ष को वराह और हिरण्यकशिपु को नृसिंह-रूप से। इनकी मृत्यु से देवता बहुत सुखी हुए। पर दिति को बड़ा दुःख हुआ, पति की सेवा कर उन्होंने फिर गर्भ धारण किया, पर मौका पाकर इन्द्र पेट में समा गया, और गर्भ के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। पर गर्भ नष्ट न हुआ। सोती हुई दिति के गर्भ से वे 49 पुत्र होकर निकले। वे सब मरुत नामवाले देवता हुए, और इन्द्र को अपना भाई मानकर स्वर्ग को चले गये। दिति को इस पर सन्तोष न हुआ। वह फिर अपने पति कश्यप की सेवा करने लगी, कश्यपजी बोले—"पवित्र होकर ब्रह्माजी के दस हजार वर्ष तक तपस्या करो, तो तुम्हारे बड़ा तेजस्वी पुत्र होगा।" दिति उसी प्रकार शुद्ध-चित्त होकर तपस्या करने लगी। समय पूरा होने पर वज्रांग नाम का बड़ा प्रतापी बालक दिति के उत्पन्न हुआ। माता की आज्ञा से उस पुत्र ने बलपूर्वक इन्द्र का निग्रह किया। अपर देवतों को भी उसने बाँध लिया। तब ब्रह्माजी कश्यप के पास गये और देवतों को छुड़ाया। वज्रांग ने देवतों को छोड़ दिया, और सरल भाव से ब्रह्मा से तत्त्व की बात पूछी। ब्रह्मा ने तत्त्व की सारस्वरूप वरांगी नाम की एक स्त्री वज्रांग को दी। फिर कश्यप को लेकर चले गये। वरांगी पति की सेवा करती रही। तपस्या करते-करते वज्रांग के भीतर से देवतों से वैर-भाव दूर हो गया था। पर वरांगी के मन में तेजस्वी पुत्र की आशा लगी हुई थी। वह चाहती थी कि ऐसा पुत्र हो, जो इन्द्र को जीत ले। वज्रांग ने समझाया, "प्रिये, तुम वैर-भाव से पुत्र की कामना करती हो, पर देवतों से दुश्मनी न करनी चाहिए,

यह मुझे अच्छा नहीं लगता।" वज्रांग के उपदेश का वरांगी पर प्रभाव न पड़ा। तब उसे बड़ी घबराहट हुई। उसने सोचा, 'अगर मैं पत्नी की इच्छा पूरी करता हूँ, तो देवतों के वैर का अपराधी होता हूँ; और यदि नहीं पूरी करता तो पत्नी के दुखी रहने का मुझे पाप लगता है।' अस्तु। वज्रांग ब्रह्मा की तपस्या करने लगा। बहुत समय तक ब्रह्मचारी रहकर उसने इष्ट-प्राप्ति के लिए तप किया। ब्रह्मा प्रसन्न होकर उसके पास गये, तब उनसे प्रिया को प्रसन्न करनेवाला वर वज्रांग ने माँगा। ब्रह्माजी तथास्तु कहकर दुखी होकर चले गये।

पश्चात् वरांगी के गर्भ के लक्षण दिखलायी पड़े। समय पूर्ण होने पर उसके एक पुत्र हुआ। यह दृढ़ शरीरवाला, महाबली और दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला हुआ। उसके उत्पन्न होने पर पृथ्वी पर अनेक प्रकार के उत्पात हुए। महाशब्द करते हुए भीषण उल्कापात होने लगे। जहाँ-तहाँ केतुओं का उदय हो गया। पर्वतों के साथ पृथ्वी डगमगाने लगी। दिशाएँ जलने लगीं। नदियाँ क्षुब्ध हो गयीं। समुद्र उद्वेल होकर तट को डुबोने लगा। पर्वतों के विवरों से शब्द उठने लगे। चारो ओर से बार-बार घरघराहट सुनायी देने लगी। पुनः-पुनः सूर्य और चन्द्र को राहु ग्रास करने लगा। अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे। कश्यप ने बड़ा विचारकर लड़के का नाम तारक रक्खा। कुछ ही समय में वह बालक बढ़कर बहुत बड़ा सुन्दर युवा हो गया, और अपनी माता से उसने तपस्या करने की आज्ञा माँगी। माता की आज्ञा पाकर मधुवन में आकर, विधाता को प्रसन्न करने के लिए वह कठोर तपस्या करने लगा। सौ वर्ष तक एक पैर उठाकर सूर्य की तरफ मुँह किये हुए उसने तपस्या की। सौ वर्ष तक एक अँगूठे के बल खड़ा रहा। सौ वर्ष तक पानी पीकर, सौ वर्ष तक केवल पवन-पान कर, सौ वर्ष तक जल में और सौ वर्ष तक स्थल पर बैठकर तपस्या की। सौ वर्ष तक आग तापी और सौ वर्ष तक सिर नीचे और पैर ऊपर उठाकर रहा। सौ वर्ष तक हाथ के सहारे, पैर ऊपर उठाये तप करता रहा। सौ वर्ष तक डाल में पैर फाँसकर लटका रहा। उसकी प्रचण्ड तपस्या से तीनों लोक काँपने लगे। ऋषियों और देवतों को बड़ा दुःख होने लगा। दैत्यराज तारक के शरीर से ऐसा तेज निर्गत होने लगा कि इन्द्र घबरा गये। उसके तेज के सामने इन्द्र की रूह फना हो गयी।

इसी समय तारक की तपस्या पूरी हुई जानकर ब्रह्मा वर देने गये। ब्रह्मा को देखकर तारकासुर ने बड़ा ही कठिन वर माँगा। उसने कहा—"हे पितामह, आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यह वर दीजिए कि जहाँ तक आपकी सृष्टि है, उसमें मुझसे अधिक बलवान् कोई न हो। यदि शिव के वीर्य से पुत्र सम्भव हो, तो वही मुझे मारे।" ब्रह्मा तथास्तु कहकर चले गये।

तारकासुर प्रसन्न होकर शोणितपुर को लौट आया। वहाँ दैत्य-गुरु-शुक्राचार्य ने असुरों की मण्डली में उसका त्रिलोकी के आधिपत्य पर अभिषेक किया। यथा-रीति तारक तीनो लोक का राज्य करने लगा। देवता उसके शासन से बहुत पीड़ित हुए, उस महावीर वज्रांगनन्दन तारक ने इन्द्र से रत्न माँगे, उसके भय से इन्द्र ने दे दिये। इन्द्र ने ऐरावत दे दिया, कुबेर ने निधियाँ, वरुण ने श्वेतवर्ण के घोड़े, ऋषियों ने कामधेनु, सूर्य ने दिव्य उच्चैःश्रवा घोड़ा, मारे भय के समुद्र ने रत्न दे दिये।

विना जोते हुए पृथ्वी बीज ग्रहण कर फल देने लगी। प्रजा इच्छानुसार उससे अन्न, फल मूल, रत्नादि लेने लगी। सूर्य उतना ही तपता, जिससे किसी को कष्ट न हो। चन्द्रमा सब समय स्निग्ध किरणों से नहलाया करता। वायु सदा अनुकूल बहती रहती। त्रिलोकी को वश करके वह स्वयं इन्द्र हुआ। वह अद्भुत स्वामी और अद्वितीय सम्राट् हुआ।

देवता बड़े पीड़ित हुए। तारक नाम की अग्नि से सब जलने लगे। इन्द्र, यम, वरुण, दिक्पाल आदि सब उसके आज्ञाकारी थे। दुःखी होकर देवतों ने ब्रह्मा से विनय की--"हे पितामह, अब तो प्राणों की आ पड़ी है, संसार में कहीं बचने की जगह नहीं रह गयी। दया कीजिए; देवता आप ही के आश्रित हैं।" ब्रह्मा ने कहा, "हे देवतो ! दक्ष की कन्या सती मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई है। शिवजी अवश्य उसका विवाह करेंगे। फिर भी तुम्हें उपाय करना होगा। पार्वती से शिव का विवाह होगा, तो ऊर्ध्वरेता शंकर के वीर्य का वह आकर्षण कर सकेंगी। दूसरी स्त्री से यह न होगा।"

पश्चात् शम्भु-शुक्र से सम्भव कार्तिकेय ने उत्पन्न होकर तारकासुर का वध किया।

मदन और रति की कथा

ब्रह्म की त्रिगुणात्मिका सृष्टि हो चुकी थी। रज से ब्रह्मा, सत्त्व से विष्णु और तम से महेश्वर उत्पन्न हो चुके थे। तीनो के अलग-अलग अधिकार भी बँट चुके थे। स्थूल सृष्टि का क्रम जारी हो चुका था। मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरस, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष, और भृगु सृष्टि के महान् आधार-स्तम्भ महाकाश में आ चुके थे। इसी समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के दिगन्त-व्याप्त मानस-पट में सर्वोत्तम नारी-प्रकृति की सृष्टि सन्ध्या के रूप में हुई। पश्चिम आकाश में सुनहली किरणों से गठित, शान्त, शिष्ट मुखमण्डल और शरीरवाली, पीनोरु, क्षीण-कटि, तनु-भुज, आयत-दिव्य-नेत्रा सन्ध्या आविर्भूत हुई। अचपल, सुष्टु भौंहें, विनत दृष्टि देखकर स्वयं सृष्टिकर्त्ता चंचल हो उठे। हृदय में जो मनोभाव उत्पन्न हुआ, उसी से एक दिव्य पुरुष ने जन्म पाया। यही पंचशर काम है। सुन्दर श्यामवर्ण, ऊँचा, चौड़ा वक्षःस्थल, सुडौल, मनोहर नासिका, चारु मुख, उत्तम कटि और जाँघें। भौंरे-से काले, घुंघराले बालोंवाले इस युवक के प्रति ब्रह्मा और उनके मानस पुत्रगण अनिमेष आँखों से देखते रहे। कमलों की शोभा को लज्जित करनेवाली इसकी रोमावली, पूर्ण चन्द्र-सा कान्तिमान् मुख, श्याम गज के सदृश आकार, नील-पद्म-गन्ध से वासित देह, रक्ताभ तलवे, क्षीण-मध्य-भाग, दाड़िम-दशन, मन्द-गति, सुन्दर शंख-सी ग्रीवा, ध्वजा में मत्स्य, फूलों के पाँच बाण और फूलों का धनुष,

शृंगार की अनुपम छवि, अपराजित आँखें। ऐसे मनोभाव को सशरीर सामने खड़ा देखकर ब्रह्मपुत्रों का चित्त विकृत हो गया। काम मुस्किराता हुआ ज़रा सिर झुकाकर संसार-सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा को प्रणाम कर बोला—"हे ब्रह्मन् ! मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है ? मैं संसार में सर्वजयी होकर रहना चाहता हूँ।" ब्रह्मा बोले—"काम, तुम्हारी अत्यन्त सुन्दर रूप-रेखाओं को देखकर मैं चकित हो गया हूँ, परन्तु तुम्हारी सृष्टि का कारण अब मेरी समझ में आ गया है। जाओ, तुम विश्व-विजयी होगे। त्रिलोक में देवता भी तुम्हारा उल्लंघन करने में समर्थ न होंगे। मैं, विष्णु और शिव भी तुम्हारी शक्ति के वशीभूत होंगे। तुम गुप्त रूप से जीवों के हृदय में प्रवेश कर सृष्टि-विस्तार करो।"

यह कहकर ब्रह्मा अपने पुत्रों के मुख की ओर देखते हुए कमलासन पर आसीन हो गये। मरीचि आदि ऋषियों ने काम के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए उसके अनेक नाम रख दिये। फिर कहा—"चूँकि दृष्टि-मात्र से तुमने हमारा और ब्रह्माजी का चित्त मथ दिया, इसलिए तुम्हारा नाम मन्मथ भी होगा। सुन्दरता की संसार में तुम्हीं एक उपमा होगे। तुम्हारे बराबर किसी दूसरे देवता में शक्ति न होगी। इसलिए तुम सर्वव्यापी होगे।"

काम ऋषियों से वर प्राप्त कर खड़ा चुपचाप सोचता रहा। उसके पास हर्षण, रोचक, मोहन, शोषण और मारण, ये पाँच महाशक्ति-पूर्ण सायक थे ही। उसने सोचा सृष्टि के जनक ब्रह्मा पर ही अपनी शक्ति की परीक्षा करूँगा। निश्चय कर कुछ हटकर धनुष में शर-योजना की। सामने विरंचि की सर्वोत्तम नारी-सृष्टि स्वर्णाभा, फुल्ल-यौवना सन्ध्या खड़ी थी, जो सृष्टि-सम्बन्ध से ब्रह्मा की कन्या थी। पुष्प-शर खींचकर काम ने ब्रह्मा पर चला दिया। एकाएक चारों से सुगन्ध वायु बहने लगी, प्रकृति ने सब प्रकार से सम्मोहन रूप धारण कर लिया। ब्रह्मा और उनके मानस-पुत्र अन्य मुनि मुग्ध हो गये। उनमें इन्द्रिय-विकार पैदा हो गया। सन्ध्या को देखकर उनके शरीर में उंचास भाव उत्पन्न हुए। सन्ध्या के मधुर कटाक्ष से ब्रह्मा और उनके पुत्रों की दशा शोचनीय हो गयी। वहीं धर्म भी थे। पिता और भाइयों की विकृत दशा देखकर उन्होंने देवाधिदेव महादेव का स्मरण किया। शिव के आविर्भाव से ब्रह्मा और ऋषि-गण प्रकृतिस्थ हुए। शिव ने ब्रह्मा से कहा—"ब्रह्मन्, कन्या को देखकर आपमें काम का भाव कैसे आ गया ? यह तो वेद-विरुद्ध है।" शिव के शब्द सुनकर ब्रह्मा लज्जित हो गये। उस लज्जा से जो स्वेद प्रवाहित हुआ, उससे अग्निष्वातादिक पितृगण उत्पन्न हुए। उसी समय दक्ष के शरीर से जो जल पृथ्वी पर गिरा, उससे एक अपूर्व गुणमयी कन्या उत्पन्न हुई, यह तन्वंगी, कृश-कटि, सूक्ष्म रोमावलि, कुन्द-दशना, विद्युत-प्रभा रति थी। ब्रह्मा को लज्जा के बाद काम के प्रति क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने काम को शाप दिया कि तू शंकर की तपोवह्नि से दग्ध हो जायगा, परन्तु काम के अपूर्व प्रभाव से प्रसन्न रति ने उसे पति-रूप ग्रहण किया।

०००

महाभारत

कलकत्ते की प्रिय स्मृति में
पं. रामशंकरजी शुक्ल के कर-कमलों में

लखनऊ
26-7-39

—निराला

भूमिका

यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृहदेवियों और बालकों के लिए लिखी गयी है। इससे उन्हें महाभारत की कथाओं का सारांश मालूम हो जायगा। भाषा सरल है। भाव के ग्रहण में अड़चन न होगी। पुस्तक लिखते समय मैंने कई छोटी-बड़ी पुस्तकों का आधार लिया है—संस्कृत, बंगला और हिन्दी। मुझे विश्वास है, साधारण जन इस पुस्तक से लाभ उठाकर मुझे कृतज्ञ करेंगे।

इति शम्

लखनऊ
26-7-39

—**निराला**

आदिपर्व

वंश-परिचय

देव और दानवों में सदा युद्ध छिड़ा रहता था। दैत्य देवों से शहज़ोर पड़ते थे, क्योंकि वे देवों के बड़े भाई थे, पुनः उनमें प्राण-शक्ति अधिक थी। एक और भी कारण था। दैत्यों के पूज्य गुरु शुक्राचार्य मुर्दे को जिला देनेवाला संजीवन-मन्त्र जानते थे। यद्यपि देवता अमर थे, और बुद्धि में असुरों से श्रेष्ठ, फिर भी बारम्बार असुरों की मरी हुई सेना को पुनः जीवित होते देख घबरा गये थे।

देवों के गुरु बृहस्पति ने देवों को बचाने का एक उपाय सोचा। श्रद्धा, भक्ति तथा सेवा आदि दिव्य गुणों से असुर-गुरु को प्रसन्न कर, उन्हें शिष्य-प्रीति द्वारा आकर्षित कर, उनसे संजीवन-मन्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने परम रूपवान् सरल स्वभाव, ब्रह्मचारी पुत्र कच को उनके पास भेजा। कच की सेवा, श्रद्धा और गुरु-भक्ति देखकर असुर-गुरु शुक्राचार्य द्रवित हो गये, और उपयुक्त अधिकारी जान उसे संजीवन-मन्त्र सिखलाने का निश्चय कर लिया। आचार्य शुक्र की कन्या देवयानी कच के रूप और गुणों की दिव्य छटा देखकर उस पर मुग्ध हो गयी, और उसे हृदय से प्यार करने लगी। जब असुरों को यह मालूम हुआ कि बृहस्पति-पुत्र कच आचार्य के पास अध्ययन करने के लिए आये हुए हैं, उन्हें स्वभावतः शंका हुई; कहीं ऐसा न हो कि जिस विद्या के बल पर हम लोग विजयी होते हैं, वह आचार्य की कृपा से इसे प्राप्त हो जाय। उन लोगों ने, शत्रु-पक्ष का होने के कारण, विद्यार्थी का प्राणान्त कर देने का निश्चय कर लिया। पर आचार्य से डरते थे, इसलिए छिपकर ऐसा करने का संकल्प किया। और, एक दिन कच को उन्होंने मार भी डाला।

जब यह हाल देवयानी को मालूम हुआ, उसने पिता से कह मन्त्रशक्ति द्वारा कच को पुनः जीवित करा लिया। असुरों ने फिर भी कई बार कच के प्राण लिये, पर देवयानी के प्रेम तथा शुक्राचार्य के संजीवन-मन्त्र के प्रताप से वह प्रति बार बचता रहा। यथासमय कच ने वह मन्त्र-शक्ति भी आचार्य से प्राप्त कर ली। अध्ययन समाप्त हो चुका था। गुरु की आज्ञा तथा पद-धूलि ग्रहण कर बिदा होते समय कच देवयानी से भी मिलने गया। देवयानी को कच के बिछोह से बड़ी व्याकुलता हुई, और उस समय लाज के परदे में ढका हुआ कच के प्रति अपना अपार प्रेम

प्रकट किया। परन्तु गुरु-कन्या जानकर कच ने उस प्रेम का प्रत्याख्यान किया। इससे देवयानी को क्रोध हुआ। कच को प्राण-दान अब तक उसी ने दिया था—एक बार नहीं, अनेक बार, अतः उसके प्राणों की वह अधिकारिणी हो चुकी थी। पर कच अपने प्राणों की बाजी लगाकर एक उद्देश्य की सिद्धि के लिए वहाँ गया था, पुनश्च देवयानी उसके गुरु की कन्या थी जिसे सदा ही वह धर्म-बहन समझता आ रहा था; इसलिए धर्म तथा उद्देश्य को ही उसने प्रधान माना। देवयानी ने कच के दिल की कचाई देखकर प्रेम के उन्माद में शाप दिया, उसकी सीखी हुई विद्या निष्फल हो जाय। कच ने भी उद्देश्य की दृढ़ता पर अटल रहकर शाप दिया कि उसका यह अवैध प्रेम विवाह की हीनता को प्राप्त हो — उसे ब्राह्मण-जाति का कोई पुरुष पत्नी-रूप में ग्रहण न करे। अमरावती पहुँचकर कच ने वह विद्या दूसरे को सिखा दी, और देवताओं का मनोरथ सफल किया।

दैत्यों के महाराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से देवयानी की गहरी मित्रता थी। पर स्पर्द्धा-भाव दोनों में प्रबल था। देवयानी एक तो गुरु-पुत्री और ब्राह्मण-कन्या होने के कारण अपने को श्रेष्ठ समझती थी; दूसरे, स्वभाव से भी उसकी सिर उठाकर चलनेवाली वृत्ति थी। महाराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा राजकुमारी ही थी, इसलिए उसमें बड़प्पन का भाव रहना स्वाभाविक था। एक दिन दोनों में तकरार हुई। शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएँ में ढकेल दिया। दैव-योग से महाराज ययाति वहाँ मृगया के लिए आये थे, उन्होंने देवयानी को कुएँ से बाहर निकाला। कालान्तर में उन्हीं के साथ देवयानी का विवाह भी हो गया।

बदले का उग्र भाव देवयानी में था ही। उसने हठ किया कि राजकुमारी शर्मिष्ठा को अपनी दासियों के साथ मेरी सेवा के लिए महाराज वृषपर्वा भेज दें। इस खबर से दैत्य-वंश में बड़ी खलबली मच गयी। दैत्यराज वृषपर्वा भी घबराये। उन्हें यह चिन्ता हुई कि गुरु-कन्या की आज्ञा का उल्लंघन किया गया, तो सम्भव है, गुरु रुष्ट हो जायँ। पिता को बड़े सोच में देख राज्य तथा जाति के कल्याण के विचार से शर्मिष्ठा ने स्वयं पिता से आज्ञा लेकर देवयानी की सेवा स्वीकार कर ली। शर्मिष्ठा के रूप, यौवन, शील और सेवा-भाव से महाराज ययाति मुग्ध हो गये और देवयानी की आँख बचाकर उससे विवाह कर लिया। इस गुप्त विवाह का कारण यह था, वह शुक्राचार्य को वचन दे चुके थे कि शर्मिष्ठा से विवाह न करेंगे। परन्तु विवाह का भेद कुछ ही दिनों तक छिपाया जा सकता है। एक दिन यह परदा देवयानी की आँखों के सामने से उठ गया। पति की इस कुचेष्टा से क्रोधित होकर उसने पिता से सारा हाल कहा। महर्षि शुक्राचार्य ने महाराज ययाति को इन्द्रिय-श्लथ तथा वृद्ध हो जाने का शाप दिया। यद्यपि ययाति के तब तक कई पुत्र हो चुके थे, तथापि उनकी भोगेच्छा का उपशम न हुआ था। उन्होंने नम्रतापूर्वक शुक्राचार्य से क्षमा-प्रार्थना करते हुए शाप से मुक्त होने का उपाय पूछा। शुक्राचार्य ने कहा कि यदि उनका कोई पुत्र उन्हें अपना यौवन देकर उनकी व्याधि अपने शरीर में धारण करे, तो वह पुनः गत यौवन प्राप्त कर सकते हैं। महाराज ययाति ने अपने पुत्रों को बुलाकर उनसे यौवन की याचना की। परन्तु एक-एक कर सबने इनकार कर दिया। शर्मिष्ठा के गर्भ से पैदा हुए पुरु ने पिता की

इच्छा पूर्ण की। महाराज ययाति ने तब पुरु को सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित किया। पुरु के वंश में महाराज दुष्यन्त, शकुन्तला-पुत्र भरत और कुरु आदि तेजस्वी राजा हुए। इन्हीं कुरु के वंशज ही बाद में कौरव कहलाये। महाराज ययाति के पुत्र यदु से यदुवंशियों की शाखा चली।

महाराज शान्तनु और देवव्रत

इसी कुरु-वंश में महाराज प्रतीप के पुत्र महाराज शान्तनु बहुत पराक्रमी और तेजस्वी राजा हुए। इनकी राजधानी हस्तिनापुर में थी। यहीं से क्रमशः हटती हुई आज की दिल्ली द्वापर के बाद से अब तक हिन्दुओं, पठानों और मुगलों के पश्चात् अँगरेजों की राजधानी हुई। शान्तनु प्रजा पालने में तत्पर और बलिष्ठ, सुन्दर राजा थे। उन्हें प्राप्त कर उनकी राजधानी नवीन सूर्य के उदय से पृथ्वी की तरह प्रसन्न हुई। सब लोग अपने-अपने कार्यों की देख-रेख करते हुए उन्नति करने लगे।

एक दिन महाराज शान्तनु गंगा के तट पर शिकार खेलने के विचार से गये हुए थे। देखा, एक परम रूपवती युवती तट पर खड़ी बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी तरफ देखकर मुस्करा रही है। उसके अंगों में सूर्य की आभा गंगा की तरंगों पर पड़ती हुई-सी चमक रही है। हिलोरों की तरह उसका दिव्य वस्त्र हवा से उड़ते, उठते और मुड़ते हुए सैकड़ों हाथों से जैसे महाराज शान्तनु को बुला रहा है। उसके खुले, लहरीले बालों की सहस्रों पतली नागिनों ने महाराज शान्तनु को दूर ही से जैसे डस लिया हो। उसी की दृष्टि की अमृत-औषधि की ओर वासना के जहर से जर्जर महाराज शान्तनु के अज्ञात पद बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों महाराज उसके निकट होते गये, त्यों-त्यों उन्हें ज्ञात होने लगा कि पृथ्वी पर ऐसी छवि विरल है—स्वर्ग में भी होने का मन को संशय हो चला। महाराज के ऐश्वर्य का सारा भाव उस रूपसी के रूप के सामने कुछ भी न ठहरा। उसके बिना गुण के रंगीन धनुष के सामने वे स्वयं ही शिकार की तरह बढ़ते गये।

पास जाते-जाते आकाश में सूर्य की रश्मि-शोभा की तरह महाराज के मन का सारा ऐश्वर्य युवती की अपलक दृष्टि में समा गया। उन्होंने अपना सर्वस्व उसे दे डाला। हृदय में केवल प्रिया को पाने की वासना रह गयी। सरल स्वर से बोले, "सुलोचने, मैं तन-मन से तुम्हारे रूप का दास हो गया हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी, अपने राज्य की रानी बनाऊँ। तुम मेरे रिक्त पात्र को अपने प्रेम से भर दो। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ।"

सुन्दरी प्रसन्न होकर बोली, "महाराज ! आप जिस भाषा में बातचीत कर रहे हैं, वह हृदय की भाषा है। मैं एक साधारण स्त्री हूँ, पर मेरे लिए अपने राज्यैश्वर्य का विचार आपने नहीं किया। मुझे आप अपने वैभव से बड़ा मान गये, इससे बड़ा सौभाग्य नारी दूसरा नहीं समझती, इसलिए मैं हर तरह से आप ही की हूँ। फिर भी आप यह प्रतिज्ञा करें कि आप मेरे किसी काम में दखल न देंगे, तो मैं आपका सम्बन्ध स्वीकार कर लूँगी।"

प्रेम परिणाम नहीं देखता। महाराज शान्तनु को युवती की आज्ञा मंजूर हुई, और वह उससे विवाह कर वहीं गंगा-तट पर महल बनवाकर रहने लगे।

यह सुन्दर स्त्री साक्षात् भगवती गंगा थीं। महर्षि वशिष्ठ से वसुओं को तस्करता के कारण शाप मिला था कि उन्हें मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करना होगा। इस शाप से वे बहुत घबराये। किसी मानवी के गर्भ से जन्म लेने की उनकी इच्छा न थी। वे चाहते थे, जब शाप भोगना ही है, तब किसी दिव्य-प्रकृति के गर्भ से जन्म लेने में ही मर्यादा है। यह विचार करते-करते चिन्ता से मुरझाये हुए आठों वसु गंगाजी के तट पर आये। उन्हें याद आया कि गंगाजी यदि उनकी माता बनना स्वीकार कर लें, तो उनका बहुत-कुछ कलंक मिट सकता है। उन्होंने गंगाजी का स्मरण कर उन्हें अपने दुखी हृदय की कहानी सुनायी। गंगाजी ने स्वीकार किया कि वह वसुओं की माता होंगी। यह गंगाजी ही महाराज शान्तनु को मुग्ध कर वसुओं को जन्म देने के विचार से उनके साथ-साथ पत्नी-रूप में रहने लगीं।

महाराज शान्तनु के दिन बड़े सुख से कटने लगे। दिन-रात प्रेम के प्रसंग, बहती हुई अनर्गल हवा की तरह, चलते रहे। प्रिया का हृदय चन्दन की सुगन्ध की तरह उन्हें शीतल करता रहा। महाराज शान्तनु अपनी पत्नी से सबकुछ प्राप्त कर सके, केवल उसका परिचय वह नहीं मालूम कर सके। कभी उन्हें पूछने का साहस भी न हुआ। पत्नी अपनी महिमा में सदैव अटल रहती थीं। यथासमय पत्नी के एक लड़का पैदा हुआ। पत्नी पुत्र-प्रसव करने के पश्चात् उसे गंगा में ले जाकर बहा आयीं। महाराज शान्तनु हृदय थामकर रह गये। इसी प्रकार एक-एक करके सात बालकों को देवीजी ने गंगा में बहाया। शान्तनु हर बार पत्नी का मुँह देखकर रह जाते थे। प्रिया को बहुत प्यार करते थे, और फिर प्रतिज्ञा-बद्ध भी थे, इसलिए उसकी स्वतन्त्रता में कभी बाधा नहीं दी। चुपचाप पुत्र-स्नेह की पीड़ा पत्नी-स्नेह के कारण सहते गये। धीरे-धीरे रानी के आठवाँ गर्भ हुआ। महाराज शान्तनु के हृदय को पुत्रों का नाश देख-देखकर सख्त चोट लग चुकी थी। जब आठवाँ पुत्र हुआ, और रानी उसे लेकर गंगा की ओर चलीं, तो महाराज ने हाथ पकड़कर कहा, "देखो, अब इसे तो जीने दो। तुम्हारी इस हृदयहीनता को देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।"

रानी इतना सुनकर हँस दीं। कहा, "राजन्, आपको-पुत्र-स्नेह है, तो लीजिए, मैं आपके स्नेह में बाधक न हूँगी। आप इतिहास नहीं जानते। पहले मैं आपको बतला देना चाहती हूँ, आपका-मेरा सम्बन्ध आज से समाप्त होता है, अब आज से आप मुझे पत्नी-रूप से प्राप्त न कर सकेंगे; केवल पुत्र की रक्षा में मैं सहायक रहूँगी।"

महाराज प्रेयसी रानी की यह बात सुनकर दंग रह गये। अब वह स्वतन्त्रा नायिका की तरह उन्हें छोड़कर चली जायगी, सुनकर सोचने लगे, 'क्या इसके हृदय में मेरे साथ इतने दिनों तक के सहवास का कुछ भी असर न हुआ कि पति के प्रति इसकी अनुरक्ति बढ़ती? क्या इसने मेरे साथ जो मधुर सम्बन्ध रखा था, वह केवल आडम्बर-मात्र था?'

महाराज को सोच-विचार में पड़ा देख रानी बोलीं, "महाराज, मैं मानवी नहीं, जो काम-वश हो आपके पास आती। मुझे शम्भु-जटा-विभूषण-मणि गंगा कहते हैं। जिन लड़कों को मैंने जीवित प्रवाह कर दिया है, वे आपके पुत्र नहीं,

शाप-भ्रष्ट वसु हैं। मैं उनको जन्म देकर शाप से मुक्त करने के लिए यहाँ आयी थी। यह आठवाँ बालक द्यु है। इसी के अपराध से आठों वसुओं को दण्ड भोगना पड़ा था। लीजिए, इसकी रक्षा कीजिए। मैं अब इसे लेकर जाती हूँ। समय पर आपको यह पुत्र मिल जायेगा। अभी इसके पालन-पोषण की चिन्ता आपको न करनी होगी।"

सत्यवती और भीष्म

अदिका नाम की एक अप्सरा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर यमुना में मछली होकर रहती थी। राजा उपरिचर के वीर्य को खाकर वह गर्भवती हो गयी। इसे मछुओं ने पकड़ा और पेट चीरा, तो एक बालक और बालिका निकली। यह खबर राजा उपरिचर को मिली, तो बड़े चकित हुए, और बालक को अपने यहाँ ले गये। यही बालक बाद को मत्स्य नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। बालिका का नाम पहले मत्स्यगन्धा था, फिर वही सत्यवती कहलायी। यमुना के किनारे इसके रक्षक पिता का निजी मकान था। वहाँ रहकर अपूर्व रूप और यौवन का उसमें प्रकाश फैला। कभी-कभी पिता के न रहने या किसी काम से लगे होने पर स्वयं यात्रियों को यमुना पार ले जाती थी। इसी समय एक बार पराशर ऋषि यमुना पार होने के लिए आये। सत्यवती उन्हें पार उतारने गयी। पराशर की उससे भोग करने की इच्छा हुई। उसने ऋषि की इच्छा पूरी की। इसी से व्यासदेव की उत्पत्ति हुई। पहले मत्स्य-गन्धा की देह से मछली की बू आती थी। ऋषि की इच्छा पूरी करने के बाद, उनके वर से, उसकी देह से एक योजन तक सुगन्ध निकलने लगी। इससे उसका नाम योजनगन्धा हुआ। उसके आत्मज व्यास ईश्वर के अवतारों में गण्य हुए। महाभारत की उन्हीं ने रचना की।

एक दिन महाराज शान्तनु मृगया करते हुए गंगा के तट पर पहुँचे, तो देखते हैं, वहाँ का समस्त दिङ्मण्डल शरों से ढका हुआ है। उनके निकटवर्ती होने पर बालक देवव्रत ने अपनी आजन्म शक्ति से पहचान लिया, परन्तु सोचा कि माता को चलकर यह संवाद दूँ, नहीं तो पिताजी मुझे पहचान न सकेंगे। यह सोचकर, देवव्रत अन्तर्धान होकर माता के पास गये, और उनसे पिता के आगमन का सारा हाल कहा। श्रीगंगाजी देवव्रत को साथ लेकर महाराज शान्तनु के पास आयीं, और मुस्कराती हुई बोलीं, "महाराज, शर-जाल से अन्तरिक्ष को समाच्छन्न करने-वाला यह आप ही का आत्मज देवव्रत है। अब यह शस्त्र और शास्त्रों में निपुण हो गया है। वशिष्ठ, परशुराम आदि महदाधार गुरुजनों से मैंने इसे शिक्षा दिलाकर सुयोग्य कर दिया है। अब आप इसे अपनी राजधानी ले जा सकते हैं।" यह कहकर गंगादेवी ने देवव्रत का हाथ पिता को पकड़ा दिया, फिर अदृश्य हो गयीं।

महाराज शान्तनु देवव्रत को अपनी राजधानी ले आये, और उन्हें युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया। उनका प्रजाजनों से बड़ा मधुर व्यवहार होता था। उच्च, नीच, ब्राह्मण-चाण्डाल, धनी-गरीब, सबको वह एक ही दृष्टि से देखते थे। कभी विचार में पक्षपात नहीं किया। इससे वह थोड़े ही समय में प्रजाजनों को प्राणों से

भी प्यारे हो गये। उनका उज्ज्वल अनुकरणीय चरित्र घर-घर प्रशंसा पाने लगा। वाणिज्य, व्यवसाय, शिक्षा, रण-कौशल आदि राज्य के आवश्यक सभी अंगों की उन्होंने श्री-वृद्धि की। देखते-देखते वर्षा के बादवाली शस्य-श्यामला भूमि की तरह उनकी राजधानी लहलही हो गयी।

एक दिन महाराज शान्तनु शिकार करने के लिए यमुना के किनारे गये। दूर से एक विचित्र प्रकार की सुगन्ध उन्हें मिली। ऐसी सुगन्ध राजा होकर भी उन्होंने कभी नहीं सूँघी थी। उस खुशबू की ओर खिचकर बढ़े, तो कुछ दूर चलकर, एक बड़ी ही सुन्दरी, रूप और यौवन की प्रतिमा-जैसी युवती उन्हें देख पड़ी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह धीवर की कन्या है।

महाराज शान्तनु को बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह गोरी लड़की मछुए की कैसे हो सकती है। महाराज ने स्वयं उस कन्या से पूछा। उसने उत्तर में ऐसा ही कहा कि वह मछुए की लड़की है। उसके रूप और लावण्य पर महाराज तन-मन से आसक्त हो गये, और उसके पिता के पास जाकर बोले, "मैं उससे विवाह कर उसे अपनी रानी बनाना चाहता हूँ।"

धीवर महाराज की बात सुनकर गम्भीर हो गया। बोला, "महाराज, मेरी कन्या का आप पाणि-ग्रहण करना चाहते हैं, इससे बड़ी और कौन मेरे सौभाग्य की बात होगी! पर, यदि आप यह अंगीकार करें कि मेरी कन्या से जो लड़का होगा, वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा, तो मैं खुशी से अपनी कन्या आपको विवाह दे सकता हूँ।" मछुए की बात सुनकर महाराज शान्तनु स्तब्ध हो गये। उन पर जैसे वज्रपात हुआ। वह जैसे सत्यवती के प्रेम-पाश में बँध चुके थे, वैसे देवव्रत से भी अपार स्नेह करते थे, इसलिए मछुए की बात का कुछ भी उत्तर न दे चुपचाप अपनी राजधानी को लौट आये। ब्रह्मचारी, महावीर देवव्रत ने देखा, पिता कुछ दिनों से मुरझाये हुए रहते हैं, उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। पिता की सेवा पुत्र का पहला धर्म है, यह विचारकर एक दिन उन्होंने पिता से उदास रहने का कारण पूछा। पिता देवव्रत को बहुत प्यार करते थे। पुनः समर्थ पुत्र के सामने कोई पिता अपने वासनाजन्य पुनर्विवाह का प्रसंग नहीं उठा सकता। इसलिए महाराज शान्तनु ने कहा, "बेटा, तुम बड़े हो गये हो, तुम्हारी उन्नति में कोई बाधा न पड़े, यही चिन्ता हमें रहती है।"

देवव्रत पिता को प्रणाम कर चले आये, हृदय में उथल-पुथल जारी रही। किससे पूछें विचार करते हुए मन्त्री के पास गये। उस शिकार में मन्त्री भी महाराज के साथ थे। उन्होंने सोचा, पिता के सेवक पुत्र से सच्ची घटना को छिपाना पाप है; क्योंकि ऐसा ही पुत्र पिता के ऐसे दर्द की दवा कर सकता है। बोले, "राजकुमार, आप जैसे वीर, विद्वान् और लोकाचार में पटु हैं, वैसे ही तेजस्वी, ब्रह्मचारी और पिता के परम भक्त पुत्र हैं, मैं आपके पिता की व्याधि के उपशम होने के विचार से आपसे विनय करता हूँ। महाराज के कोई व्याधि नहीं, उन्हें केवल काम-ज्वर है। विवाह द्वारा यह व्याधि दूर हो सकती है। पर, इसमें कुछ ऐसा प्रसंग आ पड़ा है कि महाराज को विवाह करने पर भी तुम्हारे कारण कष्ट होगा।" यह कह मन्त्री कुछ काल के लिए मौन हो गये।

इससे देवव्रत की व्याकुलता बढ़ गयी। वह बोले, "आप जल्द बतलाने की कृपा करें कि मैं इस प्रसंग में किस प्रकार हूँ, जो महाराज को मेरे कारण कष्ट होगा ?"

मन्त्री ने मुस्कराकर कहा, "आप-जैसे पुत्र की इसको जानने के लिए इतनी उतावली ठीक ही है। महाराज यमुना के तट पर सत्यवती नाम की एक धीवर-कन्या के रूप और यौवन को देखकर मुग्ध हो गये हैं, उससे विवाह करना चाहते हैं; धीवर राजी भी है, पर वह कहता है, 'मेरी कन्या के गर्भ से जो पुत्र होगा, वही राजा होगा, यदि महाराज ऐसी प्रतिज्ञा करें, तो मैं विवाह कर देने को सम्मत हूँ।' महाराज को तुम्हारा भी ध्यान है। वह धर्म-विरुद्ध ऐसा कार्य कर नहीं सकते; क्योंकि तुम बड़े लड़के हो। तुम्हारे लिए उनका स्नेह भी सत्यवती के प्रेम से घट-कर नहीं। इसी कारण वह उभय संकट में पड़े हुए आजकल मुरझाते जा रहे हैं।" कहकर मन्त्री चुप हो गये।

देवव्रत ने कहा, "आप मुझे वह स्थान ठीक तौर से बतला दें, मैं पिता के काम-ज्वर का प्रशम कर दूँगा। मैं उनका पुत्र हूँ। उनका सन्तोष ही मेरा सुख, सौभाग्य और धर्म है।"

यथासमय राजकुमार देवव्रत यमुना के तट पर गये। सत्यवती के पिता से मिले। राजकुमार के साथ साक्षी के तौर पर राज्य के और भी कई प्रधान कर्म-चारी थे। उन्होंने धीवर ने कहा, "महाराज शान्तनु के साथ आप अपनी कन्या का विवाह कर दें। मैं राज्य का उत्तराधिकारी न बनूंगा।"

धीवर बोला, "हे कुमार, विवाह करने के लिए तो मैं पहले से सम्मत हूँ, पर मुझे आपके वचन पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि आपको युद्ध में जीतने की शक्ति दूसरे में नहीं। मैं घबराता हूँ कि कहीं आप आगे चलकर अपनी कही हुई बात से टल गये, तो मेरी कन्या के पुत्र का क्या होगा।"

धीवर के अविश्वास पर महातेजस्वी देवव्रत का मुख तपस्या की दिव्य ज्योति से जगमगा उठा। उनकी ओर देखकर धीवर की आत्मा में भी श्रद्धा पैदा हुई। वहाँ के समस्त जन स्तब्ध भाव से उन्हें देखने लगे। परम ब्रह्मचारी देवव्रत ने कहा, "धीवरराज ! समस्त प्राणियों में भास्वर आत्मा को, सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र से चमत्कृत सृष्टि को साक्षी मानकर कहता हूँ, मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, पिता के सिंहासन पर तुम्हारी कन्या के पुत्र का अधिकार होगा। मैं सदैव उस महाराज की सेवा में तत्पर रहूँगा। प्रकृति का कोई पदार्थ अपने भाव को बदलकर दूसरा भाव ग्रहण करे, पर मैं कभी अपनी प्रतिज्ञा से न डिगूंगा।"

सत्यव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर पितृभक्ति की पराकाष्ठा से वहाँ के सभी लोग मन्त्र-मुग्ध होकर उन्हें देखने लगे। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण उसी दिन से उनका नाम संसार में भीष्म प्रसिद्ध हुआ।

उन पर प्रसन्न होकर धीवरराज ने अपनी कन्या सत्यवती को उनके सुपुर्द कर, बड़ी नम्रता से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा, "हे महावीर ब्रह्मचारी ! यह लो, तुम्हारी इस माता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मैं तुम्हें अर्पण कर निश्चिन्त होता हूँ। मुझे अब अणु-मात्र भी शंका नहीं रही।"

राजधानी हस्तिनापुर पहुँचकर महावीर भीष्म ने सत्यवती को पिता के हाथ अर्पित किया। वहाँ शास्त्रानुसार उसके साथ महाराज शान्तनु का विवाह हुआ। पुत्र की इस कीर्ति से उन्हें हार्दिक सन्तोष हुआ, उनकी वासना तृप्त हुई। कालान्तर में सत्यवती से दो कुमार हुए—चित्ररथ और विचित्रवीर्य। इसके बाद महाराज शान्तनु का स्वर्गवास हुआ। भीष्म ने भाइयों की शिक्षा का पूरा-प्रबन्ध किया। पारंगत पण्डितों को बुलाकर उन्हें शिक्षा दी। दोनों धीरे-धीरे जवान हो चले। इसी समय गन्धर्वराज ने राजधानी पर आक्रमण किया। चित्ररथ इस युद्ध में मारे गये।

विचित्रवीर्य का विवाह : धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

चित्ररथ की मृत्यु से विधवा सत्यवती को बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु महामना भीष्म ने माता को धैर्य दिया। वह संसार को नश्वर सोचकर आँसू पोंछकर चुप हो रहीं। छोटा पुत्र विचित्रवीर्य उनका सहारा हुआ। भीष्म को विचित्रवीर्य के विवाह की चिन्ता हुई। इसी समय काशीराज की कन्याओं का स्वयंवर था। निमन्त्रण हस्तिनापुर भी गया था। भीष्म विचित्रवीर्य को लेकर काशी गये।

सभा की बड़ी सजावट थी। तोरण, वितान, पताका, कलश, बन्दनवार आदि से काशी की गली-गली में स्वयंवर की सूचना थी। सभा का दृश्य और भी मनोहर था। सुसज्जित, विशाल मण्डप में देश-देश के राजाधिराज आकर एकत्र हुए थे। रत्नों, वस्त्रालंकारों तथा अस्त्र-शस्त्रों की प्रभा से सभा जगमगा रही थी। महावीर भीष्म भी एक तरफ जाकर बैठ गये। यथा-समय राजकुमारियाँ—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका—मण्डप में पधारीं। रूप की किरणों से सभा के सभ्यों की आँखें खुल गयीं। कन्याएँ जयमाला लिये हुए एक-दूसरी की तरफ देखती हुई चलीं तो भीष्म ने सोचा, कहीं ऐसा न हो कि ये किसी दूसरे के गले में माला छोड़ दें, यहाँ का आना व्यर्थ हो जाये। यह सोचकर वह उठे, और तीनों कन्याओं को पकड़कर रथ पर बैठा लिया।

राजाओं ने इसे अपमान समझा, और सम्मिलित होकर भीष्म के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। जहाँ पहले श्रृंगार का दृश्य था, वहाँ घोर रण-कोलाहल उठने लगा। चारों दिशाएँ अस्त्र-शस्त्र से चमकने लगीं। रथों की घरघराहट गूंजने लगी। परन्तु महावीर भीष्म ने सम्मिलित सभी राजाओं को परास्त कर दिया, और कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे।

वहाँ महारानी सत्यवती से परामर्श कर विचित्रवीर्य से तीनों कुमारियों का विवाह करने का निश्चय हुआ, परन्तु अम्बा ने विनयपूर्वक भीष्म से कहा, "हे वीरश्रेष्ठ, आपने बल से मेरा हरण किया, पर धर्म के विचार से मैं किसी दूसरे को वरण नहीं कर सकती। पहले से ही शाल्वराज को मैं पति-रूप से स्वीकार कर चुकी हूँ। उनकी भी सम्मति मुझे प्राप्त हो चुकी है। मेरे पिता की भी इससे सहानुभूति थी।"

अम्बा की इस बात से महावीर भीष्म ने बड़ी इज्जत से उसे शाल्वराज के पास भेजवा दिया; परन्तु दूसरे से हरण की हुई होने के कारण शाल्वराज ने उससे

विवाह करने से इन्कार कर दिया। इससे अम्बा को बड़ा दुःख हुआ। भीष्म के प्रति उसको क्रोध भी हुआ। दूसरा उपाय न देखकर प्रतिकार के लिए वह अपने वनवासी, तपस्वी नाना होत्रवाहन की सलाह से भीष्म के गुरु परशुराम के पास गयी। उसकी दुःख-कथा सुनकर परशुराम को बड़ा क्रोध हुआ। वह भीष्म के पास उसे लेकर आये, और विवाह करने के लिए कहने लगे। भीष्म ने गुरु का बड़ा आदर-सत्कार किया, और निवेदन किया कि ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा करने के कारण वह अब किसी कुमारी का पाणि-ग्रहण नहीं कर सकते। परशुराम ने गुरु-आज्ञा के तौर पर फिर भी जोर डाला, और कहा कि विवाह किये बिना उनका कार्य शास्त्र के विरुद्ध होगा, क्योंकि उन्होंने अम्बा का हरण किया है। पर भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। भीष्म के इस कार्य से परशुराम को क्रोध आ गया। उन्होंने भीष्म को युद्ध के लिए आवाहन किया। गुरु और ब्राह्मण जानकर भीष्म लड़ने से पहले इनकार करते रहे, पर जब पीछा न छूटा, तब अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में आ डटे। घोर युद्ध छिड़ा। परशुराम ने भीष्म को मारने के लिए दिव्यास्त्र सन्धान किया। भीषण अस्त्र को देखकर महावीर भीष्म ने भी उसी के जोड़ का अमोघ शर धनुष में जोड़ा। दोनों के संघर्ष से सृष्टि का नाश हो जायगा, ऐसी शंका कर देवता भीष्म के पास गये, और कहा, "आप विरत हों, और हार स्वीकार कर लें, क्योंकि परशुराम आपके गुरु हैं। गुरु से हारना हार नहीं।" पर भीष्म ने कहा, "कुछ भी हो, मैं हार नहीं स्वीकार कर सकता, क्योंकि मैं क्षत्रिय हूँ। क्षत्रिय के लिए इससे बड़ा कलंक दूसरा नहीं। सृष्टि रहे या न रहे।" भीष्म से निराश होकर देवता परशुराम के पास गये, और विनय की। देवताओं पर दया कर सृष्टि को बचाने के निमित्त, परशुराम ने हार स्वीकार कर ली, पर साथ-साथ प्रतिज्ञा की कि वह किसी क्षत्रिय को अस्त्र-विद्या की शिक्षा न देंगे।

अम्बा निराश हो गयी। उसका बदला न चुका। अपमान करनेवाले भीष्म को क्षत्रिय की कन्या होकर वह किसी तरह परास्त न कर पायी, इस खेद से शंकर की तपस्या करने लगी। भगवान् शंकर ने उसे आशीर्वाद दिया कि दूसरे जन्म में वह भीष्म के वध का कारण कहलाये। वर प्राप्त कर अम्बा वहीं चिता लगाकर जल गयी। फिर वह राजा द्रुपद के यहाँ पैदा हुई। उसका नाम शिखण्डिनी रखा गया। एक दानव के वर से वह कन्या से पुरुष हुई।

अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य से हुआ। विचित्रवीर्य के यौवन के दिन बड़े सुख से बीतने लगे। उत्तरोत्तर उनकी भोगवासना बलवती होती गयी। इस कारण स्वास्थ्य भी क्रमशः क्षीण हो चला। धीरे-धीरे रुग्ण होकर वह नश्वर संसार से सदा के लिए विदा हो गये। उनकी दोनों पत्नियाँ विधवा हो गयीं।

दीर्घकालीन शोक के पश्चात् महारानी सत्यवती को वंश-रक्षा की चिन्ता हुई। भीष्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। अब क्या किया जाय, ऐसा सोचकर नियोग की इच्छा से उन्होंने अपने पहले पुत्र वेदव्यास को बुलाया। अम्बिका और अम्बालिका नियोग के लिए राजी नहीं हो रही थीं। बड़ी मुश्किल से वंश-रक्षा के लिए कहना माना, परन्तु हृदय में एक धड़कन बनी रही। जटाधर,

महातपस्वी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासदेव को अपने पास आते देखकर अम्बिका ने आँखें मूँद लीं। इससे नाराज होकर व्यासदेव ने कहा कि इसके व्यवहार के अनुसार इसका लड़का अन्धा होगा। फिर वह अम्बालिका के पास गये। अम्बालिका भी व्यासजी का काला, भयावना चेहरा देखकर पीली पड़ गयी। उसका भी यह स्वागत करना देखकर व्यासजी प्रसन्न नहीं हुए। बोले, उसका लड़का पाण्डुरोग से ग्रस्त होगा। इन पुत्रों को क्षीणांग देखकर सत्यवती ने फिर व्यासजी को बुलाया। इस बार कोई बहू नहीं गयी। एक दासी को उत्तम वस्त्र पहनाकर भेज दिया। उसने अच्छे भाव से व्यासदेव का स्वागत किया। इससे शिष्ट और धर्मात्मा बालक पैदा हुआ। इस प्रकार अन्ध धृतराष्ट्र, पाण्डुरोग से ग्रस्त पाण्डु और धार्मिक विदुर की उत्पत्ति हुई।

गान्धारी और कुन्ती

महामना भीष्म राजकुमारों के रक्षण के लिए पूरी तत्परता रखने लगे। भीष्म की देख-रेख में राज्य की श्री-वृद्धि होती रही। इधर राजकुमार भी धीरे-धीरे शिक्षा प्राप्त करते हुए तारुण्य को प्राप्त हुए। उपयुक्त शासक का अभाव महावीर भीष्म को बराबर खलता रहा। ये राजकुमार धृतराष्ट्र और पाण्डु भी ऐसे न थे कि राज्य की अच्छी तरह परिचालना कर सकते। पहला अन्धा, दूसरा रोग-ग्रस्त। इसलिए इनका विवाह कर अच्छे राजकुमारों की उत्पत्ति की उन्हें बराबर चिन्ता बनी रही। एकमात्र वही राज्य के कर्णधार थे।

गान्धार देश की राजकुमारी गान्धारी के सम्बन्ध में उन्होंने सुना कि वह शील-स्वभाव में बड़ी अच्छी, विद्या-बुद्धि तथा कला-कौशल में निपुण, स्वस्थ, सुन्दरी राजकुमारी है। गान्धारी से पैदा हुए बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा होगा, ऐसा विचार कर उन्होंने गान्धार देश के राजा के पास विवाह का आमन्त्रण भेजा। परन्तु धृतराष्ट्र को अन्धा जानकर गान्धारी के पिता पहले राजी नहीं हो रहे थे। बाद को भीष्म की वीरता से डरकर तथा कुरुवंश की प्रसिद्धि का विचार कर शकुनि के साथ गान्धारी को हस्तिनापुर भेज दिया। वहीं महावीर भीष्म ने धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का शुभ विवाह किया। बड़े समारोह तथा उत्सव द्वारा यह परिणय वैदिक रीति के अनुसार पूरा किया गया। गान्धारी जैसी सुन्दरी थी, वैसी ही पति-परायणा तथा चारुशीला भी दिखायी पड़ी। विवाह के बाद पति को अन्धा जानकर उसने आँखों में पट्टी बाँध ली, जिससे वह दूसरे पुरुष का मुख न देखे। जिस मुख को उसके पति ने नहीं देखा, जिस मुख को उसके पति की दृष्टि ने सार्थक नहीं किया, उस मुख का उसके पास कोई महत्त्व नहीं रहा। इसलिए पति की तरह संसार का मुख देखने से विरत हो उसने आँखों में पट्टी बाँध ली। उसके स्वभाव तथा सेवा से घर के सभी लोग प्रसन्न रहते थे।

अब भीष्म को पाण्डु के विवाह की चिन्ता हुई। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिए राजगद्दी पर पाण्डु बैठाये गये थे। पाण्डु का स्वभाव भीष्म की आज्ञाकारिता में रहकर तैयार हुआ था, इसलिए सभी प्रजाजनों को प्रिय था। इस समय यदुवंश के राजा सूरसेन की कन्या पृथा का स्वयंवर था। पृथा का पालन-पोषण उनके पिता

के मित्र तथा बुआ के पुत्र भोजराज कुन्ती के यहाँ हुआ था। इसलिए उसे भी कुन्ती कहकर पुकारते थे। कुन्ती स्वभाव की बड़ी सरल थी। अतिथियों का बड़ा सम्मान करती थी। एक बार ऋषि दुर्वासा उनके यहाँ गये थे। कुन्ती ने अपनी सेवा द्वारा उन्हें प्रसन्न कर लिया। ऋषि ने कुन्ती को एक मन्त्र बतलाकर कहा कि जिस देवता का स्मरण कर वह उस मन्त्र का जप करेगी, वह देवता तत्काल उसके पास आयेगा, और उसे एक पुत्र देगा। ऋषि चले गये। कुन्ती अभी केवल तरुणी हो चली थी। बाल-चापल्य के वश एक दिन स्नान कर, मन्त्र पढ़कर उसने सूर्यदेव का आवाहन किया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि सूर्यदेव आकाश-मार्ग से उतरते हुए उसके पास आ रहे हैं। जब सूर्यदेव पास आ गये, तब कुन्ती बहुत घबरायी। प्रेयसी समझकर सूर्यदेव ने आश्वासन दिया कि डरने की बात नहीं, तुम्हारा कुछ भी अहित न होगा। ऋषि का मन्त्र व्यर्थ नहीं होता, तुम्हारे कुण्डल-कवचधारी एक पुत्र होगा। यह कहकर दिव्य भाव से रमण कर सूर्यदेव चले गये। यथासमय कुन्ती के वैसा ही एक पुत्र हुआ। पर समाज से डरकर कुन्ती ने उसे नदी में प्रवाहित कर दिया। वह बालक कौरव-राजकुल के अधिरथ नाम के एक सारथि को प्राप्त हुआ। उसने अपनी स्त्री राधा को वह बालक लाकर दिया। राधा ने बड़े स्नेह से उसे पाला। वही बालक बाद को कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुन्ती के स्वयंवर में भीष्मदेव ने पाण्डु को भेज दिया। तब तक पाण्डु का नाम संसार में फैल चुका था। वह विशाल राज्य तथा उत्तम कुल के राजा हैं, यह जानकर वहाँ के लोगों ने उनका बड़ा स्वागत किया। कुरुवंश की मर्यादा कुन्ती को मालूम थी। उसने पाण्डु को ही वरमाला पहनायी। बड़ी धूम-धाम से कुन्ती का विवाह हुआ। हस्तिनापुर में स्वागत की तैयारियाँ हुईं। महावीर भीष्म आदरपूर्वक वर और वधू को वरण कर राजमहल ले गये। पाण्डु और कुन्ती यौवन के आरम्भिक दिन बड़े प्रेम से पार करने लगे। मद्र-राज की विदुषी कुमारी माद्री से भी कुछ दिनों बाद पाण्डु का विवाह हुआ।

महामति भीष्म ने विदुर का भी खयाल नहीं छोड़ा था। विदुर यद्यपि दासी-पुत्र थे, फिर भी उसी लाड़-प्यार से पले थे, जिससे धृतराष्ट्र और पाण्डु। इनकी शिक्षा अपर दोनों भाइयों की अपेक्षा मार्जित थी। यह धर्म-शास्त्र तथा नीति-शास्त्र के पूर्ण पण्डित थे। इनका पालन-पोषण बिल्कुल राजकुमारों का-सा हुआ था। इनसे राजकार्य की परिचालना में भीष्म को बड़ी सहायता मिलती थी। इनकी प्रखर बुद्धि को देखकर भीष्म हृदय से इन्हें प्यार करते थे। सुबल के राजा देव की सुन्दरी कन्या पाराशवी के साथ इनका विवाह भी भीष्म ने कर दिया।

वंश-विस्तार और पाण्डु

कहा जा चुका है कि धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिए पाण्डु सिंहासन पर बैठे थे। उनका पाण्डु-रोग ऐसा न था कि शरीर को हानि पहुँची हो। वह लड़ने-भिड़ने में पूर्ण रीति से सक्षम थे। महावीर भीष्म की अनुमति लेकर वह दिग्विजय के लिए चतुरंगिनी सेना के साथ बाहर निकले, और भारत के दूसरे समस्त राज्यों को अपने अधिकार में कर लिया। उनसे कर लेकर प्रसन्न-चित्त अपनी राजधानी

लौटे। भीष्म ने पाण्डु की इस वीरता की प्रशंसा की। अब हस्तिनापुर देश के सभी राज्यों में श्रेष्ठ हो गया। यहाँ के राजा की सम्राट् या राजचक्रवर्ती की उपाधि हुई।

अपने उत्कर्ष में प्रसन्न पाण्डु एक बार वन में शिकार खेल रहे थे। उन्होंने एक हिरन का जोड़ा दूर से देखा, और तीर मारा। उस समय दोनों विहार कर रहे थे। तीर लगते ही हिरन आर्त-स्वर से चिल्लाया। उसकी आवाज मनुष्य की आवाज-जैसी थी। पाण्डु उसके पास दौड़कर आये, तो मालूम हुआ, ये दोनों ऋषि और ऋषि-पत्नी मृग-रूप से विहार कर रहे थे। घायल मृग-रूपी ऋषि से हाथ जोड़कर पाण्डु अपने अज्ञानकृत अपराध के लिए क्षमा-प्रार्थना करने लगे। उस शरविद्ध ऋषि ने कहा, "महाराज, यह सच है कि आपने जान-बूझकर ब्रह्महत्या नहीं की, फिर भी आपको विहार करते हुए मृग का वध नहीं करना था। आपको इसका फल अवश्य भोगना होगा। आप भी इसी प्रकार वन में विहार करके पंचत्व को प्राप्त होंगे।" यह कहकर ऋषि स्वर्गलोक प्रस्थान कर गया।

महाराज पाण्डु तब से खिन्न तथा चिन्ताग्रस्त रहने लगे। उन्होंने राज-पाट का सारा काम छोड़ दिया। जंगल में रानियों-सहित एकान्तवास करने लगे। इस समय राज्य का भार धृतराष्ट्र ने ग्रहण किया। बहुत दिन हो गये। एक बार शत-शृंग के महर्षि स्वर्ग-यात्रा कर रहे थे। पाण्डु से भी चलने के लिए कहा, पर बाद को उन्होंने पाण्डु को निस्सन्तान जानकर लौटा दिया। पाण्डु को जब यह मालूम हुआ कि बिना सन्तान के कोई स्वर्ग नहीं जा सकता, तब उनका कष्ट और बढ़ गया, पर सन्तान की इच्छा-पूर्ति अपने अधीन नहीं। उन्हें खिन्न देखकर एक दिन कुन्ती ने अपने वरवाली बात उन्हें सुनायी। पाण्डु को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देवता के आवाहन से पुत्रोत्पत्ति के लिए कुन्ती को प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। पति की आज्ञा शिरोधार्य करके कुन्ती ने धर्मराज का आवाहन किया। उनसे युधिष्ठिर की उत्पत्ति हुई। फिर पवन को आमन्त्रित किया, उनसे भीम पैदा हुए। इसके बाद इन्द्र का स्मरण किया। इन्द्र से अर्जुन भूमिष्ठ हुए।

एक बार व्यासदेव हस्तिनापुर पधारे। महारानी गान्धारी ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। गान्धारी के आतिथ्य से प्रसन्न होकर व्यासदेव ने एक सौ पुत्र होने का वर दिया। महारानी गान्धारी के गर्भ तो महारानी कुन्ती से पहले हुआ, पर वह दो साल तक स्थायी ही रहा। लड़का न हुआ। इसी समय महारानी कुन्ती के पुत्र होने का समाचार हस्तिनापुर पहुँचा। इस संवाद से गान्धारी को बड़ा क्षोभ हुआ कि अब कुन्ती का पुत्र सिंहासन का अधिकारी होगा। इस क्षोभ से उन्होंने पेट में कसकर एक ऐसा घूँसा मारा कि गर्भ-पात हो गया। तब तक गर्भ के बालक के अंग न बने थे। इस पिण्ड को नदी में फेंकने की तैयारियाँ हो रही थीं कि वहाँ महातपस्वी व्यासदेव का फिर शुभागमन हुआ। व्यासदेव ने पिण्ड के सौ भाग किये, जिनका गलती से एक भाग और हो गया। फिर उतने ही घड़े मँगवाकर, उनमें घी भरकर, एक-एक खण्ड रखकर एकान्त में रखवा दिया। दो वर्ष बाद उन्हीं से एक सौ पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्रों के साथ एक कन्या दुःशला गान्धारी के गर्भ से इस प्रकार पैदा हुए। धृतराष्ट्र

की एक और पत्नी थीं। उनसे युयुत्सु नाम का बालक हुआ।

उधर दो पुत्र माद्री से हुए, नकुल और सहदेव। इस प्रकार धृतराष्ट्र का वंश प्राचीन कौरव नाम से प्रसिद्ध हुआ, और पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहलाये।

पुत्रों के मुख देखकर पाण्डु प्रसन्न रहने लगे। उनका मनोभाव बदल गया। शाप की बात भी सुख के दिनों में याद न रही। इसी समय एक बार वन में वसन्त-ऋतु का राज्य था, लता-द्रुम नये पल्लवों से लहलहे हो रहे थे, नये-नये फूलों से वन्यश्री की अपार शोभा थी, आकाश और पृथ्वी एक नये जादू से रँगे हुए दिखायी पड़ते थे, मन्द-मन्द समीर बहकर हृदय को शीतल कर रहा था, पक्षी कलकण्ठों से वासन्तिक रागिनी गा-गाकर ऋतुराज का स्वागत कर रहे थे, झरने मधुर, मन्द स्वर से झर-झर बहते हुए वन-प्रान्त से होकर निरुद्देश हो रहे थे। शृंगार की छवि प्रकृति के हर दृश्य पर अंकित थी। महाराज पाण्डु इस शुभ मुहूर्त में माद्री के साथ वनविहार के लिए निकले। वन की श्री से पूर्ण शोभा को देखकर प्रिया से युक्त महाराज पाण्डु ने माद्री को प्रेम की दृष्टि से देखा। शापवाली बात माद्री को याद थी। पति की भावना को लक्ष्य कर माद्री का हृदय शंका से काँपने लगा। पर लाज तथा संकोच के कारण वह कुछ कह न सकी, केवल बातों में बहलाकर वन्य-श्री की तारीफ करती हुई, कि 'महाराज, यह फूल देखिए—कैसा खिला है, वह लता देखिए, पेड़ से कैसी लिपटी हुई है—पेड़ ही बेचारी की रक्षा का कारण है,' टालती रही। पर काम की उत्तेजना टलनेवाली नहीं होती। महाराज बलात् माद्री से विहार करने लगे। पश्चात् वहीं उनका प्राणान्त हो गया। तमाम राज्य में इस खबर से शोक की काली घटा छा गयी। सहस्रों आँखों से दुःख के आँसू झरने लगे। माद्री और कुन्ती के दुःख का क्या कहा जाये? पति के शव के साथ महा-रानी कुन्ती सहमरण के लिए तैयार हुईं, पर रानी माद्री रोती हुई बोली, "दीदी, संसार से मैं बिलकुल अनजान हूँ, आप बालकों की रक्षा कीजिए। महाराज की मृत्यु मेरे कारण हुई है, इसलिए मैं ही महाराज के साथ जाऊँगी।" यह कहकर रानी माद्री पति की चिता पर सती हो गयीं। राजमाता सत्यवती इस दुःख से महा-रानी अम्बिका और अम्बालिका को लेकर वन में तपस्या करने चली गयीं।

कौरव और पाण्डव

धीरे-धीरे कौरव और पाण्डव एक सौ पाँचो भाई महामना पितामह भीष्म की देख-रेख में पलते हुए बड़े हो चले। इनका शैशव-काल राजमहल में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं में, माताओं की स्नेह-गोद में, बीता। अब ये बाल्य के प्रथम चरण में आ पहुँचे, और खेलते हुए राजधानी के प्रान्त भाग में भी चले आया करते थे। इनकी दो टुकड़ियाँ स्वभावतः रक्त के प्रभाव के अनुसार थीं। एक सौ कौरव एक में सम्मिलित थे, और पाँच पाण्डव एक में। दुर्योधन कौरवों का सरदार था, और युधिष्ठिर पाण्डवों के। इनको बढ़ते हुए देखकर पितामह भीष्म को इनकी शिक्षा-दीक्षा की चिन्ता हो गयी।

एक दिन नगर के प्रान्त भाग में ये सब भाई गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते गेंद कुएँ में गिर गया। सब लड़के हताश होकर कुएँ की जगत पर खड़े हुए नीचे

झाँक-झाँककर देख रहे थे। इसी समय एक कृष्णकाय, तेजस्वी पुरुष उधर से आते हुए देख पड़े। लड़कों को हताश भाव से कुएँ के नीचे झाँकते देखकर उन्होंने कारण पूछा। लड़कों ने कहा, "हमारा गेंद गिर गया है।" ब्राह्मण ने हँसकर अव्यर्थ शस्त्र-चालना द्वारा गेंद को बाहर निकाल लिया। राजकुमार प्रसन्न हो उन्हें पितामह भीष्म के पास तारीफ करने तथा पुरस्कार दिलवाने के लिए ले चले। पितामह को घेरकर लड़कों ने ब्राह्मण की बड़ी तारीफ की। महावीर भीष्म पहले से राजकुमारों की शिक्षा के लिए एक अच्छे आचार्य की तलाश में थे। द्रोण को देख, उन्होंने प्रणाम कर बड़े आदर से अपने पास बैठाया, फिर उनकी कुशल पूछी।

द्रोण ने कहा, "हे महात्मन्! मैं आजीविका की खोज में भटकता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। मैंने आर्य परशुराम से दिव्य अस्त्र-शिक्षा प्राप्त की है। वह जब अपना धन ब्राह्मणों को दान कर रहे थे, तब मैं उनके पास देर से पहुँचा। तब तक वह अपना सर्वस्व दे चुके थे। मैंने उनसे अस्त्र-शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने मुझे जो दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं, मैं उनके बल पर जीवकोपार्जन का प्रयत्न करके भी सफल नहीं हो सका। आप कृपाचार्य को जानते हैं, जो शरद्वान के पुत्र होकर, आप ही के आश्रय में पलकर पुष्ट हुए हैं। उनकी बहन कृपी मेरी धर्मपत्नी है। एक पुत्र भी अश्वत्थामा नाम का है। हम लोग अत्यन्त दरिद्र हैं। एक बार अश्वत्थामा ने पड़ोस के बालकों को दूध पीते देखकर, घर आकर दूध माँगा। हमारे गऊ न थी। हमें प्रयत्न करने पर गऊ न मिली। बालकों ने अश्वत्थामा को बेवकूफ बनाने के विचार से आटा घोलकर, दूध कहकर, पिलाया। बालक अश्वत्थामा उसी के स्वाद से मग्न होकर नृत्य करने लगा, देखकर, बालक तालियाँ पीटकर हंसने लगे। मुझे अपनी बेबसी का बड़ा दुःख हुआ। दरिद्र होने के कारण मेरी जातिवाले ब्राह्मण भी मुझे छोड़ चुके थे। सहायता की एक सूरत मुझे याद आयी। द्रुपद मेरा सहपाठी था। मैंने सोचा, मित्रता का विचार कर मेरी सहायता करेगा। मैं उसके यहाँ गया, पर उसने कहा, 'मित्रता राजा राजा की होती है, राजा और रंक की नहीं।' इस प्रकार मेरा अपमान कर उसने मुझे चले आने को विवश किया। अब यहाँ भाग्य ने लाकर डाला है।"

द्रोण की कथा सुनकर भीष्म ने उन्हें धैर्य दिया, कहा, "अब आपको भोजन की चिन्ता न करनी होगी। आज से आपको आचार्य द्रोण कहकर राजकुमार तथा राजधानी के लोग पुकारेंगे। आप इनकी अस्त्र-शिक्षा का भार ग्रहण करें।"

भीष्म ने द्रोणाचार्य को बड़े आदर से राजमहल में टिकाकर उनके रहने तथा खर्च आदि का प्रबन्ध कर दिया। बहुत दिनों बाद द्रोणाचार्य की किस्मत खुली। वह वीरोचित कृतज्ञता के साथ महात्मा भीष्म को धन्यवाद देकर राजकुमारों के धनुर्वेदाचार्य होकर सुख से रहने लगे।

कौरवों और पाण्डवों की परस्पर न बनती थी। कौरव उद्दण्ड थे, पाण्डव शान्त। पाण्डवों की शिक्षा भी अब तक बहुत-कुछ अग्रसर हो चुकी थी। दुर्योधन पाण्डवों में भीम से बहुत खिंचा रहता था। भीम शान्त होने पर भी बड़े बलवान् थे। वह अकेले कभी-कभी उन सौवों की खबर लेते थे। दुर्योधन बराबर भीम को धोखा देकर नीचा दिखाने के प्रयत्न में रहता था, पर उसकी चलती न थी।

इसलिए भीम को वह प्रायः अपनी टुकड़ी में न रखता था।

माद्री का बड़ा लड़का, अर्जुन से छोटा, नकुल दिन-दिन दुबला होता जा रहा था। पर किसी से अपने दुःख का कारण न कहता था। एक दिन भीम ने एकान्त में बुलाकर पूछा, "क्यों रे नकुल, तू दिन-दिन दुबला क्यों होता जा रहा है ? पहले तू कैसा अच्छा था, अब तो बिलकुल कुम्हला गया है।" नकुल ने रोनी आवाज में कहा, "दादा, गुलहड़ में मैं हार गया हूँ। मुझे रोज दाँव देना पड़ता है। वे लोग बहुत दौड़ाते हैं। अभी तक मुझे दाँव नहीं मिला।"

भाई का दुःख भीम से न सहा गया। वह समझ गये कि नकुल को कौरवों की चालाकी से दाँव नहीं मिल रहा। उन्होंने बड़े स्नेह से नकुल से कहा, "आज तू यहीं रह। तेरा दाँव देने मैं जाता हूँ।" यह कहकर भीम वहाँ गये। भीम को देखकर दुर्योधन वगैरह कौरवों ने कहा, "भीम, नकुल को कहाँ छोड़ आये ? वह चोर है, हमारा दाँव कौन देगा ?" भीम ने कहा, "अच्छा भाई, वह चोर है, तो दाँव मुझसे ले लो।" सब कौरव बहुत खुश हुए कि अब आज भीम को नाकों चने चबवायेंगे। भीम डण्डा रखकर खड़े हो गये। सब कौरव इधर-उधर पेड़ों पर चढ़ गये। जब सब सतर्क हो गये, तब भीम ने एक पेड़ की डाल पकड़कर हिलायी। कई नीचे आये। छूकर सबको चोर किया। फिर खुद पेड़ पर चढ़े। मौका पाकर, कूदकर डण्डा चूम लिया। टाँग के नीचे से डण्डा फेंका जाता है; चोर जब तक उठाकर लाता है, शाह लोग पेड़ पर चढ़ते हैं; यह कायदा है। भीम का फेंका डण्डा फर्लांगों की खबर लेता था। दुर्योधन से लेकर कौरवों के कई भाइयों को भीम ने उस रोज चोर बनाकर छकाया। इस तरह कई दिनों तक दौड़ाया। स्वयं दोबारा चोर न हुए।

भीम की ऐसी हरकतों से कौरव उनसे बहुत नाराज रहते थे। खासतौर से दुर्योधन बहुत चिढ़ा रहता था। एक दिन उसने नयी युक्ति निकाली। गंगाजी चलकर जल-केलि करने का प्रस्ताव हुआ। इस यात्रा में भीम भी आमन्त्रित किये गये। गंगा के तट पर पहले से खीमे गड़ चुके थे। राजकुमारों के लिए पूरा-पूरा इन्तजाम हो चुका था। वहाँ जाकर दुर्योधन ने भीम के लड्डुओं में विष मिला दिया। जल-पान कर सब लोग जल-केलि करने लगे। भीम को धीरे-धीरे नशे से बेहोशी आने लगी। समय पर सब लोग नहाकर निकले, और अपने-अपने खीमे की तरफ चले। पर भीम गंगा के तट पर ही पड़े रहे। सन्ध्या का अन्धकार घनीभूत हो आया। इसी समय चुपचाप भीमसेन को लता से बाँधकर दुर्योधन ने गंगा में बहा दिया। भीमसेन बहते हुए नागलोक पहुँचे। वहाँ बड़े जहरीले साँप थे। भीम को देखकर काटने लगे। उनके जहर से भीम का नशा उतर गया। आँखें खोलीं, तो दूसरा ही दृश्य नजर आया। भीम ने लता-बन्धन को तोड़कर नागों को मारना शुरू कर दिया। तब वे सब अपने राजा वासुकि के पास गये। पूछने पर वासुकि को मालूम हुआ कि उन्हीं के दौहित्र कुन्तिभोज के दौहित्र हैं। फिर उन्होंने भीम की बड़ी सेवा की। उन्हें अमृत पिलाया। भीम को इससे दस हजार नागों का बल प्राप्त हुआ। फिर बड़े आदर से वासुकि ने भीम को बिदा किया। घर में माता कुन्ती तथा चारों भाई रो रहे थे। सब खोजकर हैरान हो चुके थे। दुर्योधन

के भाई आनन्द मना रहे थे। इसी समय हँसते हुए भीमसेन हस्तिनापुर पधारे। माता तथा भाइयों के चेहरे फिर उन्हें देखकर फूलों की तरह खिल गये।

इस प्रकार आपसी झगड़े और वैमनस्य के साथ-साथ दोनों वंश के राजकुमारों की अस्त्र-विद्या भी होती रही। अर्जुन धनुर्वेद में सर्वश्रेष्ठ निकले। वह बड़े फुर्तीले थे। उनका तीर व्यर्थ न जाता था। बड़े लक्ष्य से लेकर पत्ते के डण्ठल तक काटने का लक्ष्य वह बेध सकते थे। भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध में प्रवीण हो चले। एक दिन द्रोणाचार्य ने शिष्यों की परीक्षा ली। दूर एक डाल पर काठ की एक चिड़िया रखकर, युधिष्ठिर को धनुष-बाण देकर लक्ष्य पर सन्धान करने के लिए कहा। युधिष्ठिर ने सन्धान किया, तो आचार्य ने पूछा, "वत्स! तुम क्या देखते हो?" युधिष्ठिर ने कहा, "मैं आपको देखता हूँ, पेड़ को देखता हूँ..." युधिष्ठिर कह ही रहे थे कि द्रोणाचार्य ने उनके हाथ से तीर और धनुष छीनकर दुर्योधन को दिया। ऐसा ही जवाब दुर्योधन ने भी दिया। तब उससे भी उन्होंने धनुष ले लिया, और भीम को दिया। भीम ने भी उससे मिलता-जुलता उत्तर दिया क्रमशः धनुष सब राजकुमारों को दिया गया। पर किसी के उत्तर से आचार्य को सन्तोष न हुआ। बाद को उन्होंने अर्जुन को धनुष दिया। निशाने पर अर्जुन ने ठीक-ठीक सन्धान किया, तो आचार्य ने उनसे भी पूछा, "वत्स अर्जुन! क्या देखते हो?" अर्जुन ने कहा, "मैं केवल चिड़िया की गर्दन देखता हूँ।" आचार्य ने तीर मारने को कहा। अर्जुन ने अचूक निशाना मारा। द्रोणाचार्य प्रसन्न होकर प्रिय शिष्य के मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

ज्यों-ज्यों राजकुमार बड़े होने लगे, त्यों-त्यों शिक्षा भी ऊँची-से-ऊँची दी जाने लगी। अस्त्र-शस्त्रों के बाद व्यूह-रचना, सैन्य-चालना, आक्रमण करने की विधियाँ, हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों का संचालन आदि द्रोणाचार्य सप्रेम सिखलाने लगे। आचार्य का एक प्रिय शिष्य होता है। यहाँ राजकुमारों में अर्जुन द्रोण के सबसे ज्यादा प्यारे हो गये थे। इसी समय एकलव्य नाम का निषाद-राज का एक लड़का द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखने के लिए आया। पर उसे शूद्र होने के कारण द्रोणाचार्य ने शिक्षा देने से इनकार कर दिया। इस तिरस्कार का उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह गम्भीर होकर वहाँ से लौट गया। पर गुरु के चरणों में उसकी अपार श्रद्धा रही। वन में गुरु द्रोण की एक मूर्ति बनाकर वह स्वयं ही अस्त्र चलाना सीखने लगा। गुरु के हृदय ने उसे सच्चा मार्ग दिखलाया। वह वहीं रहकर अर्जुन की तरह का धनुर्वेद-विशारद हो गया। कभी-कभी राजकुमारों को शिकार के लिए वन भी जाना पड़ता था। एक बार कुछ कुत्तों को लेकर शिक्षार्थी राजकुमार उस वन में गये, जहाँ एकलव्य धनुर्विद्या सीख रहा था। आगे चलता हुआ एक कुत्ता उसे देखकर भूँकने लगा। एकलव्य ने सात तीरों के गुच्छ से उसका मुँह ऐसा भर दिया कि वह मरा तो नहीं, पर उसका भूँकना बन्द हो गया। वह राजकुमारों के पास उस दशा में, मुक्ति के लिए, लौट आया। उसे देखकर राजकुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कारण, तीर चलाने का ऐसा चमत्कार उन्होंने तब तक न देखा था। वे एकलव्य के पास गये। उसका और उसके गुरु का नाम पूछा। एकलव्य ने अपना नाम बतलाकर द्रोणाचार्य की मूर्ति की ओर इंगित कर

कहा, "यह आचार्य द्रोण मेरे गुरु हैं।"

राजकुमार राजधानी लौटे, और आचार्य से अभिमानपूर्ण स्वर में कहा, "आप हमें दिव्यास्त्रों की शिक्षा देने के लिए कहते थे। पर आप अपने शिष्य निषाद-कुमार एकलव्य को अपनी उत्तम शिक्षा प्रदान करते हैं।"

द्रोणाचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह राजकुमारों के साथ उस जगह गये। एकलव्य से पूछने पर उन्हें सच्चा हाल मालूम हुआ। द्रोण एकलव्य की भक्ति देखकर बड़े लज्जित हुए। फिर हृदय को दृढ़ करके कहा, "वत्स! यदि तुम मुझे गुरु मानते हो, तो दक्षिणा-स्वरूप दाहिना अँगूठा काटकर मुझे दो।" एकलव्य ने अकातर होकर गुरु की आज्ञा पूरी की।

एक दिन आचार्य द्रोण अपनी शिष्य-मण्डली लेकर गंगा नहाने के लिए गये। नहाते समय एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। इच्छा करने पर आचार्य स्वयं उससे मुक्त हो सकते थे। परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों की परीक्षा ली। ऊँची आवाज से सबको पुकारकर कहा, "हमारा पैर मगर ने पकड़ लिया है, तुम लोग जल्द हमारी रक्षा करो।" राजकुमार यह सुनकर ऐसे डरे कि उनका कर्त्तव्य का ज्ञान जाता रहा। तब अर्जुन ने तूण से दो तीर निकालकर ऐसे मारे कि मगर पैर छोड़कर पानी में व्याकुल फिरने लगा। द्रोणाचार्य ने जल से निकलकर बड़े स्नेह से प्रिय शिष्य को गले लगाया, और ब्रह्मशिरा नामक दिव्य अस्त्र देते हुए समझाया, "वत्स! कभी मनुष्य पर इसका सन्धान न करना।" मस्तक झुकाकर अर्जुन ने आचार्य का दिया दिव्य अस्त्र तूण में लेकर रखा।

बालकों की शिक्षा बहुत-कुछ अग्रसर हो चुकी थी। द्रोणाचार्य से सलाह कर पितामह भीष्म ने एक शुभ दिन प्रदर्शन के लिए नियत किया। हस्तिनापुर में घर-घर इसके लिए आनन्द होने लगा। सुन्दर, प्रशस्त रंग-स्थल बनवाया गया। सब तरह के लोगों के बैठने का इन्तजाम हुआ। अनेक प्रकार के बन्दनवारों, तोरणों तथा सुगन्ध-द्रव्यों से उसकी शोभा बढ़ायी गयी। यथासमय पितामह भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र तथा सब राजपुरुष, रानियाँ और हस्तिनापुर के सर्व-साधारण वहाँ आकर यथोचित आसनों पर बैठे। उत्साह बढ़ाने के लिए रण-वाद्य बजने लगा। एक ओर द्रोणाचार्य रंगभूमि के भीतर गम्भीर मुद्रा में बैठ गये। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन, दुश्शासन आदि राजकुमार दिव्य युद्ध-सज्जा से सजकर आचार्य के दोनों ओर बैठ गये। जब सब लोग आ गये, तब पितामह भीष्म की आज्ञा से प्रदर्शन शुरू हो गया। व्यूह की रचना, सैन्य का संचालन, रथ का एक दिशा से दूसरी दिशा को मोड़ना, रथी का सेना-निरीक्षण के साथ युद्ध करते रहना आदि रणभूमि के प्रशस्त कौशल दिखलाये गये। फिर तलवार, बर्छे आदि से युद्ध शुरू हुआ। भीमसेन और दुर्योधन का गदा-युद्ध हुआ। राजकुमारों की निपुणता देखकर जनता बहुत प्रसन्न हुई। भीष्म मुस्करा रहे थे। विदुर महाराज धृतराष्ट्र को समझा रहे थे, कुन्ती गान्धारी को।

इसके बाद द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को बुलाया। अर्जुन की तारीफ सब लोग सुन चुके थे। बड़ी उत्सुकता से लोग अर्जुन को देखने लगे। अर्जुन की प्रत्येक भाव-भंगिमा से स्वर्गीय छटा निकल रही थी। वह जैसे शिष्ट और संयत

थे, वैसे ही तीव्र और तीक्ष्ण। धनुष-बाण लेकर वह अपनी दिव्य अस्त्र-शिक्षा प्रदर्शित करने लगे। अग्निशर से एक ओर आग पैदा कर दी। फिर वरुण-बाण द्वारा उसे बुझा दिया। फिर पवन-शर छोड़कर पानी सुखा दिया। पुनः सर्प-तीर द्वारा आँधी बन्द कर दी, शर से पैदा हुए सैकड़ों नाग हवा पी गये। इसके बाद गरुड़ास्त्र द्वारा साँपों का संहार कर दिया। पुनः दिव्यास्त्र छोड़कर सारी माया गायब कर दी। दौड़ते रथ से लक्ष्य-वेध किया, पुनः चल-लक्ष्य को भी चल-रथ से विद्ध किया। असि-चालना तथा अन्यान्य सूक्ष्म समर-कौशल प्रदर्शित किया। लोग देखते हुए मुग्ध हो गये। अर्जुन की प्रशंसा से बार-बार रंगस्थल गूँजने लगा। माता कुन्ती तथा युधिष्ठिर और भीम आदि भाइयों की आँखों से आनन्द के आँसू बह चले। प्रदर्शन समाप्त कर महारथ कुमार अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य की वन्दना की। स्नेह-पुलकित आचार्य ने प्रिय शिष्य के उष्णीश-शोभित मस्तक पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

अर्जुन की ऐसी प्रशंसा सुनकर वीरवर कर्ण से न रहा गया। वह स्वयं रंगस्थल के भीतर कूदकर दर्शकों को सम्बोधित कर कहने लगे, "हे हस्तिनापुर के दर्शकवृन्द ! जैसे प्रदर्शनों से आप लोगों को अर्जुन ने मुग्ध किया है, वे सब मैं भी करके दिखा सकता हूँ।" कर्ण सूत-पुत्र के रूप में प्रसिद्ध थे। वहाँ उनका नाम वसुसेन था। उनकी इस गर्वोक्ति पर सभा के लोगों ने कोई उत्तर न दिया। पर दुर्योधन को इससे बड़ा हर्ष हुआ। वह अर्जुन का यह आदर देख न सकते थे। उन्होंने प्रोत्साहन देकर कर्ण से कहा, "अवश्य-अवश्य, वीरवर, आप वैसी धनुर्विद्या प्रदर्शित करें; हम लोग देखने को उत्सुक हैं।" कर्ण ने एक-एक कर वे सभी प्रदर्शन दिखलाये। लोगों ने देखकर दाँतों-तले उँगली दी। दुर्योधन आदि सौ भाई पुनः-पुनः कर्ण की तारीफ करने लगे। अर्जुन शान्त भाव से आचार्य की बगल में बैठे सुनते रहे। कर्ण ने पुनः कहा, "अब मैं अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करना चाहता हूँ।" सुनकर दुर्योधन आदि बहुत प्रसन्न हुए। पर सूत-पुत्र को यहाँ तक बढ़ता देखकर कृपाचार्य से न रहा गया। उन्होंने कहा, "राजकुमार से द्वन्द्व-युद्ध वही कर सकता है, जो राजकुमार हो।" दुर्योधन ने कहा, "वीर की कोई जाति नहीं होती, जो वीर है, वह क्षत्रिय अवश्य है। परन्तु अगर आप राजवंश चाहते हैं, तो मैं इस वीर का अभी अभिषेक करता हूँ।" यह कहकर सोने के सिंहासन पर बिठलाकर दुर्योधन ने महावीर वसुसेन को अंग-देश का राजा बनाया। शोर-गुल सुनकर, भय से संकुचित होकर सारथि अधिरथ वहाँ उपस्थित हुए। महावीर कर्ण ने अपनी पद-मर्यादा का कुछ भी विचार न कर, उठकर पिता को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। इस पर भीम ने सारथि-पुत्र कहकर कर्ण का उपहास किया। पर कर्ण विचलित न हुए। उन्होंने द्वन्द्व-युद्ध के लिए पुनः पास जाकर अर्जुन को ललकारा। महारथ अर्जुन संयत दृष्टि से कर्ण को देखते हुए बोले, "सूतपुत्र, तुम उत्तम धनुर्धर हो, इसमें सन्देह नहीं, पर तुम्हारी स्पर्द्धा देखकर मुझे हँसी आती है। तुम अपने को वीर समझते हो, समझो, पर दूसरा भी तुम्हारी स्पर्द्धा कर सकता है, याद रखो। मैं तुम्हारी बातें सुनकर बिलकुल नहीं घबराया। भागना और पीठ दिखाना मैं नहीं जानता।" अर्जुन की बातों में अणु-मात्र भय न था। बल्कि वहाँ

सभी वीरों को अर्जुन की उक्ति पसन्द आयी। अब शाम हो आयी थी। इसलिए यह प्रदर्शन बन्द कर दिया गया। कर्ण और अर्जुन के मन में प्रतिस्पर्द्धा का भाव सदा के लिए रह गया।

द्रोणाचार्य के हृदय में द्रुपद से हुए अपमान की आग जल रही थी। क्षत्रिय-वृत्ति के द्रोण ने बदले के जल से उसे शीतल करना चाहा। एक दिन उन्होंने शिष्यों को सस्नेह बुलाकर कहा, "वत्स! मैं तुम लोगों से गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ। वह यह है कि तुम लोग द्रुपद को बाँध लाओ। उसने मेरा अपमान किया है।" द्रोणाचार्य को गुरु-दक्षिणा देने के उत्साह से युवक वीर राजकुमार पांचाल-राज्य पर चढ़ गये। महावीर भीम तथा महारथ अर्जुन के सामने द्रुपद के शूर-सामन्त टिक न सके। अद्भुत समर-कौशल से अर्जुन ने उन्हें बाँध लिया, और दक्षिणा-स्वरूप गुरु के चरण-कमलों में ला डाला। द्रोण को देखकर द्रुपद की आँखें झुक गयीं। द्रोण ने द्रुपद को, इस प्रकार अपमान कर, बदला चुकाकर छोड़ दिया।

राजधानी को लौटकर द्रुपद ने द्रोण से बदला चुकाने के अभिप्राय से महर्षि याग और उपयाग की सहायता लेकर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया। द्रोण का वध करनेवाला धृष्टद्युम्न तथा महाभारत की प्रधान पात्री कृष्णा (द्रौपदी) इसी यज्ञ से पैदा हुई।

लाक्षा-गृह-दाह

अब बड़े होने पर कौरवों का पाण्डवों के प्रति द्वेष बढ़ गया था। इसके दो मुख्य कारण थे—एक यह कि युधिष्ठिर बड़े होने के कारण सिंहासन के अधिकारी कहे जा रहे थे, दूसरा यह कि लोगों में पाण्डवों का आदर दिन-पर-दिन बढ़ रहा था। लोग समझते थे, पाण्डव धार्मिक, विद्वान् तथा नीति के माननेवाले हैं। जब किसी समर्थ की अयोग्यता के कारण तारीफ नहीं होती, तब उसका कोप बढ़ जाता है। महाराज धृतराष्ट्र पाण्डवों को प्यार करते थे, पर उनकी योग्यता के कारण दुर्योधन आदिकों की तारीफ नहीं हो रही, यह वह सहन नहीं कर सकते थे। अन्धा केवल कानों से सुनता है। पर जब अपना प्रिय शब्द नहीं सुनता, तब उसकी कमजोरी, देखने के अभाव के कारण, कई हिस्से और बढ़ जाती है। धृतराष्ट्र जब सुनते थे कि पाण्डवों की योग्यता के सब लोग तरफदार हैं, और महात्मा भीष्म भी युधिष्ठिर को ही राजसिंहासन पर बैठने के योग्य समझते हैं, तब उनके न देखे हुए दुर्योधन के मुख पर उनकी सहस्रों गुना प्रीति बढ़ जाती थी, और यही पाण्डवों के प्रति हार्दिक ईर्ष्या में बदलकर, मन के लिए अनर्थकारिणी बन जाती थी। इस द्वेष का एक कारण यह भी था कि धृतराष्ट्र ही बड़े होने के कारण सिंहासन के अधिकारी थे; पाण्डु को उनके अन्धे होने से सिंहासन मिला था। पर अब दुर्योधन ही पिता के राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता है। यही हक के सम्बन्ध में दुर्योधन भी समझता था।

एकान्त में हित की बातें समझाते हुए दुर्योधन ने महाराज धृतराष्ट्र को अपने वश कर लिया। उसने कहा, "यदि पाण्डव कुछ काल के लिए देवाराधन तथा प्रकृति-निरीक्षण के विचार से वारणावत भेज दिये जायँ, तो यहाँ लोकमत अपने

अनुकूल तैयार हो जायगा। द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि हमारी तरफ हो जायँगे। कर्ण और शकुनि आदि हैं ही। विदुर का कोई डर नहीं, क्योंकि वह हमारे अन्न से ही पलते हैं। पाण्डवों की लोकप्रियता तब हमारे हाथ लगेगी।" पुत्र-स्नेह के कारण धृतराष्ट्र का दुर्बल हृदय दुर्योधन की बात मान गया। एक दिन भरी सभा में धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा, "वत्स, तुम लोग वारणावत जाकर कुछ काल वहीं रहो। वहाँ धर्म की अच्छी आराधना हो सकेगी, और वहाँ की प्रकृति भी सुहावनी है।"

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाण्डवों को मंजूर करनी पड़ी। पर युधिष्ठिर भीतर-ही-भीतर डरे। राजाज्ञा शिरोधार्य कर नियत समय पर माता तथा भाइयों के साथ वारणावत चलने को तैयार हुए। यहाँ दुर्योधन ने पुरोचन नामक एक प्रसिद्ध कारीगर को यथेष्ट धन देकर पाण्डवों के रहने के लिए लाख का भवन बनाने को भेज दिया। निश्चय हुआ कि जब पाण्डव यहाँ आकर रहने लगें, तब किसी कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी तिथि को आग लगा दी जाये। इस तरह पाण्डवों के नाश का निश्चय हुआ। पुरोचन ने समय से पहले जाकर बड़ी तत्परता से जल्द मकान तैयार कर दिया।

माता कुन्ती के साथ, समय आने पर, पाँचों भाई पाण्डव वारणावत के लिए रवाना हुए। उनका जाना हस्तिनापुर के निवासियों को बड़ा दुःखद प्रतीत हुआ। सब लोग रोने-पीटने तथा मन-ही-मन धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन को कोसने लगे। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, कृप, अश्वत्थामा, गान्धारी आदिकों को प्रणाम कर पाण्डव विदुर से बिदा होने गये। इशारे से विदुर ने युधिष्ठिर को समझाया कि अज्ञात स्थान में बहुत होशियारी से रहना चाहिए; जब तक दूसरा संवाद विदुर न भेजें, तब तक पाण्डव कौरवों के दिये मकान में न रहकर दूसरे मकान में रहें। गृह-प्रवेश की एक लम्बी तिथि नियत कर लें। विदुर से समझकर उस मकान में जायँ, क्योंकि उन्हें दुर्योधन आदि से बहुत सँभलकर चलना है।

हस्तिनापुर को शोक-सागर में डुबाकर माता कुन्ती के साथ पाँचों पाण्डव वारणावत चले। हस्तिनापुरवासी तरह-तरह की कटु आलोचनाएँ धृतराष्ट्र और दुर्योधन पर करने लगे। वारणावत के लोग पाण्डवों के आने का समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। गाँव से कुछ दूर आगे चलकर उनके स्वागत के लिए प्रतीक्षा करने लगे। पाण्डवों के पहुँचने पर उनसे खुले हृदय से मिले, जैसे अपने इष्टदेवों से मिल रहे हों। धर्मात्मा पाण्डवों ने लोगों का बड़ा आदर किया। वे सबको अपने बराबर समझकर वार्तालाप करते थे। बड़प्पन के इस भाव को पाण्डव जितना ही मिटा रहे थे, लोगों के हृदय में उनकी उतनी ही इज्जत बढ़ रही थी। वारणावत में इस प्रकार अन्यत्र पाण्डवगण बस गये। भगवद्भक्ति और भगवच्चर्चा से सुखपूर्वक दिन बिताते रहे।

दुर्योधन का बनवाया मकान अब तैयार हो चुका। गृह-प्रवेश के समय एक दूत विदुर ने भेजा। उससे सब मर्म पाण्डवों को मालूम हो गया। युधिष्ठिर दुर्योधन के इस मनोभाव से बहुत घबराये। उन्होंने भाइयों से सारा हाल बयान किया। फिर जैसी विदुर ने सलाह दी थी, वैसा ही किया। उसी मकान में एक सुरंग तैयार

कराकर प्रवेश-पथ के पास एक खम्भा लगा दिया गया था।

युधिष्ठिर को विदुर ने सूचित कर दिया कि आग लगने पर इस खम्भे को भीम से उखड़वाकर इसी रास्ते से तुम लोग बाहर निकल जाना। समय पर कुन्ती-सहित पाण्डव वहाँ गये। वे बड़े शंकित रहा करते थे, विशेषतः कृष्णा चतुर्दशी के दिन। एक दिन पाण्डवों ने वहाँ यज्ञ किया, और गरीबों को भोजन कराया। उस रोज एक नीच जाति की स्त्री पाँच बच्चों-सहित भरपेट भोजन कर वहीं रात को सो रही। भीतर पुरोचन भी सुख की नींद सो रहा था। उपयुक्त समय जानकर, भीम ने मशाल लेकर मकान में आग लगा दी, और उसी सुरंग की राह, खम्भे को उखाड़कर, बाहर निकल गये। प्रातःकाल गाँव में बड़ा हाहाकार उठा। हस्तिनापुर को भी खबर गयी। खोजने पर केवट की स्त्री और उसके पाँचो पुत्र जले हुए मिले। लोगों ने समझा, ये पाण्डव और माता कुन्ती हैं। दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई।

गंगा के किनारे विदुर ने अपना आदमी भेजकर नाव की व्यवस्था कर रखी थी। पाण्डव उसी नाव से गंगा पार कर गये।

धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन आदिकों को हस्तिनापुर-निवासी गालियाँ देने लगे। राजभवन में भी दिखलावे के तौर पर शोक मनाया गया। पुनः पाण्डवों के क्रिया-कर्म की व्यवस्था होने लगी।

हिडिम्ब तथा बक राक्षस का संहार

समय का फेर ऐसा होता है, वह क्षण-मात्र में गरीब को अमीर और अमीर को दर-दर का भिक्षुक बना देता है। ये पाण्डव महाराज शान्तनु के प्रपौत्र और महावीर भीष्म के पौत्र थे, हस्तिनापुर-राज्य का इन्हें अधिकार प्राप्त था, पर आज असहायों की तरह, विना किसी वाहन के, वन-वन भटकते फिरते थे। कभी पैदल चलने की आदत न थी। पैरों में छाले पड़ गये थे। फिर भी इन्हें रास्ता तय करना पड़ रहा था। भाग्य कितना बलवान् होता है! माता कुन्ती और छोटे भाई नकुल और सहदेव जब बिलकुल अक्षम हो जाते थे, तब भीम उन्हें कन्धे पर बैठाकर दुर्गम पथ पार करते थे।

माता कुन्ती तथा भाइयों के शिथिल हो जाने पर भीम ने एक बरगद के पेड़ के नीचे सबको बैठाला। माता तथा युधिष्ठिर के पैर दबाये, पत्ते तोड़कर, काँटों से उन्हें जोड़कर पंखा झला। प्यास के मारे सबके आकण्ठ प्राण हो रहे थे। माता तथा भाइयों की करुणा से भीम बड़े दुखी हुए। पानी की कोई सूरत नजर न आयी। एक ऊँचे पेड़ पर चढ़कर चारों ओर देखा, तो कुछ दूर पर आकाश में पक्षी उड़ते हुए देख पड़े। वहाँ जल की सम्भावना मानकर, पेड़ से उतरकर भीम उस तरफ को चले। वहाँ पानी मिला। हाथ-मुँह धोकर, अँगोछा भिगोकर भाइयों के पास लौट आये। मुँह धुलाकर इन्हें भी वहाँ पानी पीने के लिए ले जाने का विचार किया। पास आकर देखा, माता कुन्ती तथा चारों भाई थकावट के कारण घोर निद्रा में मग्न हो रहे थे। उन्हें न जगाकर बैठे हुए उनकी खबरदारी करने लगे।

उस वट के पास एक दूसरे बड़े पेड़ पर हिडिम्ब नाम का एक राक्षस रहता था,

जो नर-घातक तथा नर-मांस-भक्षक था। इन मनुष्यों पर उसकी निगाह गयी, तो उसकी जीभ से लार टपकने लगी। उसके एक बहन हिडिम्बा नाम की थी। उसने उसे ही मनुष्यों को मार लाने के लिए भेजा। हिडिम्बा पास आयी, तो सुन्दर पुरुषों को देखकर दया से वह द्रवित हो गयी। ऐसे रूपवान मनुष्य उसने न देखे थे। न जाने कहाँ से उनके प्रति उसका स्नेह पैदा हो गया। फिर बैठकर पहरा देते हुए पुष्टकाय भीम को उसने देखा। देखते-देखते वह भीम पर मोहित हो गयी, और अपने माया-जाल को छोड़कर सुरूपा षोडशी कुमारी के वेश में भीम के पास आकर बोली, "हे वीर! मैं तुम पर मोहित हो गयी हूँ, और तुमसे विवाह करना चाहती हूँ, पर मैं राक्षस की बहन हूं जो यहीं पर रहता है। वह बड़ा क्रूर, मनुष्य-घाती है। तुम लोगों को मारने के लिए उसने मुझे भेजा था। तुम लोग उठो, तो मैं अपने माया-बल से तुम्हें बचा सकती हूँ; अन्यथा वह आ जायगा, तो तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालेगा।"

भीम ने कहा, "हे सुरूपे, तुम घबराओ मत। मैं अपनी माता तथा भाइयों को कच्ची नींद में न जगाऊँगा। तुम भी न डरो। तुम्हारा भाई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

हिडिम्बा की भीमसेन से इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि उधर क्रुद्ध हिडिम्ब बहन को गालियाँ देता, आता हुआ देख पड़ा। भीम सजग होकर खड़े हो गये। पहले वह हिडिम्बा को ही मारना चाहता था, पर महावीर भीमसेन ने उसे पकड़ लिया। दोनों का मल्लयुद्ध होने लगा। इस शोरगुल में माता कुन्ती तथा चारों पाण्डवों की नींद खुल गयी। उन्होंने देखा, एक राक्षस के साथ भीमसेन का द्वन्द्वयुद्ध छिड़ा हुआ है। भीम ने उसे गिराकर, उसके पैर पकड़कर चारों ओर घुमाया। फिर कई बार जोर-जोर से पटका। इससे उसके प्राण निकल गये, हिडिम्बा भीमसेन की वीरता से बहुत प्रसन्न हुई। सब हाल सुनकर माता कुन्ती ने हिडिम्बा से भीम को विवाह कर लेने की आज्ञा दे दी। भीमसेन के औरस तथा हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच नाम का एक बड़ा पराक्रमी बालक पैदा हुआ। हिडिम्बा से बिदा होकर, माता कुन्ती के साथ, पाँचों भाई पाण्डव दूसरे प्रदेश के लिए रवाना हुए।

अनेकानेक नगर, नदी, पहाड़, वन, उपवन तथा मनोहर दृश्यों को पार करते हुए पाण्डव एकचक्रा नामक नगरी में पहुँचे। पाण्डवों का भिक्षुक वेश था। भिक्षा से जीवन-निर्वाह कर रहे थे। सबके मुख-मण्डलों पर साधुस्वभाव की छाप पड़ी हुई थी। लोगों में उन्हें देखकर भक्ति तथा श्रद्धा का उद्रेक होता था। एकचक्रा में, एक ब्राह्मण के मकान में, उन्होंने आश्रय लिया था। भीख माँगकर अपना उदर भरते थे। एक रोज कुन्ती बैठी हुई थीं। ब्राह्मण के घर से रोने की आवाज आयी। सुनकर कुन्ती का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह उठकर भीतर ब्राह्मण के मकान में गयीं। ब्राह्मण ने रोते हुए कहा, "यहाँ वक नाम का एक राक्षस रहता है। उसके लिए एक कानून है; रोज एक आदमी, दो भैंसे तथा गाड़ी-भर पूड़ी-पकवान उस राक्षस के लिए भेजना पड़ता है। आज मुझ ब्राह्मण की बारी है। बड़ी चिन्ता यह है कि मैं जाता हूँ, तो घर को सँभालनेवाला दूसरा नहीं रहता; पुत्र जाता है, तो

माता की स्नेह के कारण अकाल-मृत्यु होगी। फिर घर और गृहस्थी किस काम आयेगी ! इसी सोच में हम लोग रो रहे हैं।" माता कुन्ती का हृदय करुणा से आर्द्र हो गया। उन्होंने ब्राह्मण को धैर्य दिया, और सस्नेह कहा, "ब्राह्मण, तुम दुःख न करो। तुमने मुझे आश्रय दिया है। अब तुम्हारे दुःख के समय तुम्हारी सहायता करना भी मेरा धर्म है। तुम भोजन आदि का प्रबन्ध करो। आदमी तुम्हें न देना होगा। मेरे पाँच पुत्र हैं। मैं उनमें से एक को राक्षस के पास भेज दूंगी।" ब्राह्मण रोएँ-रोएँ से कृतज्ञ हो गया। बड़ी प्रसन्नता से पकवान तथा भैंसों का इन्तजाम करने लगा। माता कुन्ती ने भीम से सब हाल आकर कहा। भीम राक्षस के पास जाने को तैयार हो गये।

गाड़ी में पकवान भरकर, काफी जल पीने के लिए रखकर, दोनों भैंसों को नहकर भीमसेन वकासुर से मिलने के लिए चले। बहुत दिनों से भीमसेन का पेट न भरा था। उन्होंने सोचा, जब तक वकासुर से मुलाकात होती है, तब तक यहाँ पेट-पूजा समाप्त कर लूं। वह निश्चिन्त होकर एक तरफ से पकवान-भोजन करने लगे। गाड़ी धीरे-धीरे चल रही थी। देर भी हो गयी थी। राक्षस गुस्से में कुछ जमीन आगे बढ़ आया था। भीमसेन को अपना भोज्य पकवान आदि खाते देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। घनघोर गर्जना कर भीम की ओर दौड़ा। भीम भी भोजन समाप्त कर चुके थे। पानी पीकर, हाथ-मुंह धोकर राक्षस के स्वागत के लिए तैयार हो गये। एक तो देर से भूखा, उस पर पकवान के खा जाने से नाराज राक्षस आँधी की तरह भीमसेन पर टूटा। उसका बल सँभालकर एक ही उखाड़ में भीम ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया, और घूंसों और रद्दों की झड़ी लगा दी। राक्षस के प्राण भीम के कठोर प्रहारों को न सह सके। उसे मारकर भीमसेन ठण्डे होकर घर लौटे। माता कुन्ती और युधिष्ठिर, अर्जुन आदि भाई भीम को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

द्रौपदी का स्वयंवर तथा विवाह

एकचक्रापुरी से अनेक देशों का भ्रमण कर आये हुए एक साधु-स्वभाव ब्राह्मण से पाण्डवों को द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार मिला। सुनकर अर्जुन तथा भीम को एक प्रकार की चंचलता होने लगी। माता कुन्ती ने क्षत्रिय राजकुमारों के मनो-भावों को समझकर वहाँ से चलने की आज्ञा दे दी। इसी समय व्यासजी भी वहाँ पहुँचे, और स्वयंवर में जाने की सलाह दे गये।

गंगा के किनारे से होकर पाण्डवगण पांचाल-देश की यात्रा कर रहे थे। रात के अँधेरे में हाथ में मशाल लेकर अर्जुन आगे-आगे चल रहे थे। एक जगह चित्ररथ गन्धर्व अपनी स्त्रियों को लिये हुए गंगा में जल-विहार कर रहा था। अर्जुन को देखकर वह क्षुब्ध हुआ। उस रास्ते न आने के लिए उसने अर्जुन को डाँटा, पर अर्जुन चलते गये। तब उसने कहा, "देखो, गंगा में दिन को मनुष्य नहाते हैं, रात को हम लोग। हमारे आनन्द में रुकावट न डालो।" अर्जुन ने कहा, "नदी, पर्वत, प्रान्तर आदि सब समय के लिए प्रशस्त हैं, वहाँ कोई बाधा नहीं हो सकती।" सुनकर चित्ररथ लड़ने को तैयार हो गया, और अर्जुन पर बाणों की वर्षा कर चला। गन्धर्व के वार को रोककर अग्निबाण के प्रहार से इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने चित्ररथ का

रथ जला दिया। चित्ररथ भी घायल होकर गिर गया। उसकी दशा देखकर उसकी पत्नी ने युधिष्ठिर की शरण ली। स्त्री-जाति पर दया कर चित्ररथ को छोड़ देने के लिए युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी। अर्जुन ने उसे छोड़ दिया। गन्धर्व ने पार्थ की वीरता से प्रसन्न होकर मैत्री कर ली। चित्ररथ ने घोड़े दिये, अर्जुन ने आग्नेयास्त्र। घोड़े आवश्यकता पड़ने पर लेने के लिए कहकर अर्जुन चित्ररथ से बिदा हुए। यहाँ से पाण्डवों ने उत्कोचतीर्थ की यात्रा की। वहाँ से धौम्य नाम के ब्राह्मण की तपस्या तथा उसका कर्मकाण्ड पर अधिकार देखकर पाण्डवों ने उसे अपना पुरोहित स्वीकार किया।

वहाँ से ये लोग पांचाल-देश के लिए रवाना हुए। इनका वेश ब्राह्मणों का-सा था ही। रास्ते में बहुत-से ब्राह्मण दक्षिणा पाने की आशा से तथा स्वयंवर की विशेषताएँ देखने के लिए पांचाल-देश की यात्रा करते हुए मिले। पाण्डवों को अपना साथी समझकर सब खुले दिल से स्वयंवर की बातचीत कर रहे थे। उनसे पाण्डवों को मालूम हुआ कि यहाँ भारत-भर के राजा एकत्र होंगे। स्वयंवर के लिए बड़ा समारोह किया गया है। देश-देश के गुणी वहाँ अपने गुणों का प्रदर्शन करेंगे। कृष्णा यज्ञ से निकली है, और उसके रूप की प्रशंसा नहीं हो सकती। मत्स्य-लक्ष्य को वेधनेवाला ही द्रौपदी को ब्याह सकता है।

ब्राह्मणों की बातों को सुन-सुनकर अर्जुन को बड़ा उत्साह हो रहा था। पाण्डव प्रतिदिन दूना रास्ता तय करने लगे। मनोहर दृश्य, हरे-भरे खेत, बहती हुई स्वच्छ सलिला नदी, ऊँचे-ऊँचे आकाश को चूमनेवाले पहाड़, मधुर कलरव कर-करके बहते हुए स्फटिक-चूर्ण और जल-झरनों को पार कर, पाण्डव पांचाल-राज्य के प्रान्त भाग में आकर उपस्थित हुए।

बहुत-कुछ सोच-विचार कर माता कुन्ती की आज्ञा से ब्राह्मणों के वेश में पाण्डवों ने एक कुम्हार के घर में आश्रय लिया। यहाँ से राजभवन बहुत दूर न था।

स्वयंवर का जमाव शुरू हो गया था। देश-देश के राजा चतुरंगिनी सेना लेकर पांचाल में डेरा जमा चुके थे। कुरु-वंश के दुर्योधन भी अपने मित्र कर्ण के साथ गये थे। राजा द्रुपद ने समागत राजा-महाराजों के लिए बड़ी तैयारियाँ कर रखी थीं। द्रुपद के अतिथि-सत्कार की चारों ओर प्रशंसा हो रही थी। उस भोजन-पान, नृत्य-गीत और दान-दक्षिणा आदि से हुए अतिथि-सत्कार को देखकर इन्द्र भी लज्जित होता था।

निश्चित समय आने पर स्वयंवर शुरू हुआ। ऊँचे मंच पर उत्तमोत्तम वेश-भूषा किये हुए देश-देश के राजा सुशोभित थे। एक ओर ब्राह्मणों का दल आशीर्वाद की सामग्री लिये हुए शोभा पा रहा था। पुनः शंखों की ध्वनि गूँज रही थी। विशाल मण्डप में बन्दनवार लगे थे, मंगल-कलश रखे हुए थे। मध्य भाग में जयमाला लिये हुए भाई धृष्टद्युम्न के साथ कृष्णा खड़ी थी। राजागण मुग्ध दृष्टि से कृष्णा की अलौकिक रूप-राशि का अवलोकन कर रहे थे।

वहीं बीचोबीच मत्स्य-लक्ष्य का स्थान था। ऊपर आकाश में मत्स्य था। उसके नीचे एक चक्र बराबर घूम रहा था। जमीन पर रखे हुए जल में उसकी

छाया पड़ रही थी। चक्र में एक तीर के पार होने-भर का छिद्र था। जल में छाया को देखते हुए जो मनुष्य लक्ष्य-वेध करेगा, उसे ही कृष्णा पति के रूप से वरण करेगी, यही महाराज द्रुपद ने प्रतिज्ञा की थी। कृष्णा के लिए तो राजाओं को बड़ा लालच था, पर लक्ष्य को देखकर सबके दिल धड़क रहे थे! यथासमय धृष्टद्युम्न ने महाराज द्रुपद की प्रतिज्ञा सुनाकर राजाओं को लक्ष्य-वेध करने के लिए आमन्त्रित किया। एक-एक करके राजा लोग उठने लगे, और तीर मारकर लज्जित हो-होकर बैठते गये। धीरे-धीरे सभी राजा इस प्रकार परास्त हो गये। सबके तीर चक्र से टकराकर जमीन पर आ गिरे। राजाओं का दल पराजित हुआ देखकर धृष्टद्युम्न ने क्षत्रिय-नरेन्द्रों को दुख-भरे कुछ अपमानसूचक शब्द कहे। इससे क्रुद्ध होकर महावीर कर्ण लक्ष्य-वेध के लिए उठे, पर जनता को यह कहते हुए सुनकर कि 'यह सूतपुत्र है,' कृष्णा ने कह दिया कि 'कर्ण द्वारा लक्ष्य-वेध होने पर भी मैं उससे विवाह न करूँगी।' कृष्णा के शब्दों से अपमान मानकर महावीर कर्ण ने शरासन रख दिया। राजन्यवर्ग लज्जा से सिर झुकाकर मौन रह गया।

इसी समय ब्राह्मणों की गोल से एक बड़ा ही सुन्दर युवक मृगेन्द्र-गति से लक्ष्य-स्थान की ओर चला। उसे देखकर सब ब्राह्मण उसका मजाक करने लगे कि जहाँ बड़े-बड़े शूर-वीर नरेन्द्रों की न चली, वहाँ यह महाराज अपनी मूर्खता-प्रदर्शन के लिए साबित-कदम हो रहे हैं। उन्हीं में से किसी-किसी ने कहा कि किसी का बल-विक्रम समझे बिना ऐसा नहीं कहना चाहिए; सम्भव है, इस नवयुवक से यहाँ ब्राह्मणों का मुख उज्ज्वल हो। इस प्रकार वाद-विवाद चल रहा था कि ब्राह्मण-वेशधारी महावीर अर्जुन ने लक्ष्य-स्थान पर जाकर धनुष उठा लिया। कृष्णा बड़े प्रेम से युवक को देख रही थी। नरेन्द्र-मण्डल में ब्राह्मण-युवक की संयत मुद्रा से आतंक फैल गया। वीर अर्जुन ने एक तीर लेकर जल में लक्ष्य का चित्र देखकर निशाना मारा। तीर अचूक मछली की आँख पर लगा। ब्राह्मणों में जय-जय होने लगी। धृष्टद्युम्न ने भी लक्ष्य-विद्ध होने का समाचार दिया, पर नरेन्द्र-मण्डल ने विश्वास न किया। यह देखकर उसी शान्त भाव से अर्जुन ने दूसरा तीर धनुष में जोड़कर मारा, जिससे चक्र कट गया, और बेधा हुआ मत्स्य जमीन पर आ गिरा। अब किसी को शंका करने की गुंजाइश न रही। कृष्णा ने बड़े प्यार से युवक ब्राह्मण के गले में जयमाला डाल दी।

राजाओं में बड़ी हलचल मच गयी। कुछ की राय हुई कि ब्राह्मण को कुछ धन देकर कन्या ले ली जाय। इसी दल के अन्तर्भुक्त दुर्योधन भी था। अर्जुन की बगल में ही कृष्णा खड़ी थी। कुछ मूर्ख राजकुमारों ने अर्जुन के पास जाकर, धन लेकर कृष्णा को देने का प्रस्ताव किया भी, पर महावीर पार्थ ने इनकार कर दिया। नरेन्द्र-मण्डल इससे बड़ा क्षुब्ध हो गया। सब अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर कृष्णा को ब्राह्मण से छीन लेने पर कटिबद्ध हो गये। स्वयंवर-सभा युद्ध-क्षेत्र में बदल गयी। भयानक युद्ध होने लगा। एक ओर अर्जुन अकेले, दूसरी ओर सम्पूर्ण राजाओं का समुदाय, पर आँधी जिस तरह दिगन्त को व्याप्त कर लेनेवाले मेघों को उड़ा देती है, उसी तरह महावीर अर्जुन के प्रखर तीरों की चोट न सहकर राजाओं का दल छिन्न-भिन्न होकर दूर हो गया, और स्वयंवर-सभा में शान्ति आ गयी। कृष्णा

का हाथ पकड़कर महावीर अर्जुन घर की ओर चले। राजा की पुत्री कृष्णा ने पति का अनुसरण किया, पर उसका हृदय अपनी भिन्न अवस्था की भावना से धड़क रहा था। धृष्टद्युम्न को भी चैन न था। यह अज्ञात-कुल-शील ब्राह्मण कौन है, जानने की उसकी इच्छा प्रबल हो रही थी। बहन कृष्णा के भाग्य का फ़ैसला देखने के लिए उत्सुक होकर वह भी इन दोनों की दृष्टि बचाकर इनके साथ-साथ चला। मार्ग में एक छोटी नदी के किनारे कृष्णा के विश्राम कर लेने के विचार से महावीर अर्जुन एक शिला-खण्ड पर उसे बैठाकर बैठ गये, और बड़े स्नेह से आश्वासन देते हुए बोले, "शुभे! घबराओ मत, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं महाराज शान्तनु का प्रपौत्र, महात्मा भीष्म का पौत्र और महाराज पाण्डु का तीसरा पुत्र अर्जुन हूँ। हम लोग लाक्षा-गृह-दाह से बचकर भिक्षाटन करते हुए यहाँ तक पहुँचे हैं।" सुनकर कृष्णा के हर्ष की सीमा न रही। छिपे हुए धृष्टद्युम्न ने भी यह बात सुन ली। अर्जुन ने यह भी कहा कि हम लोग अमुक जगह एक कुम्हार के घर पर टिके हुए हैं। पूरा पता मालूम कर धृष्टद्युम्न चुपचाप लौट गया, और पिता को सारा संवाद सुनाया। महाराज द्रुपद को इस खबर से बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने वेदोक्त रीति से विवाह करने के विचार से पाण्डवों को अपनी राजधानी में बुला लाने के लिए धृष्टद्युम्न और प्रमुख वीरों को उस कुम्हार के यहाँ भेज दिया।

कृष्णा को साथ लेकर अर्जुन माता के यहाँ पहुँचे। माता कुन्ती मकान के भीतर थीं। अर्जुन ने प्रसन्नता से माता को पुकारकर कहा, "मा, आकर देखो, आज बड़ी अच्छी चीज लाया हूँ।" माता ने भीतर से ही कहा, "बेटा, बड़ी खुशी की बात है, पाँचों भाई बाँट लो।" बाहर आकर देखा, तो कृष्णा खड़ी थी! अर्जुन ने सब समाचार कहा, प्रसन्न होकर माता ने विजयी पुत्र को गले लगाकर बहू को सस्नेह चूमा।

इसी समय महाराज द्रुपद के भेजे हुए, धृष्टद्युम्न प्रमुख राजपरिवार के लोग तथा सेनापति आदि पाण्डवों को राजधानी ले चलने के लिए पहुँचे, और माता कुन्ती तथा द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों को राजमहल में लिवा लाये। महाराज द्रुपद बड़े आदर-भाव से युधिष्ठिर से मिले, और अर्जुन के साथ कृष्णा के विवाह की बातचीत करने लगे। युधिष्ठिर ने कहा, "महाराज, अर्जुन हममें तीसरे हैं। अभी तो हमीं दोनों का विवाह नहीं हुआ।" द्रुपद ने कहा, "तो आप ही कृष्णा से विवाह कीजिए।" महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "हमारी माता सत्य की मूर्ति हैं, उनकी आज्ञा है, हम पाँचों भाई कृष्णा से विवाह करें।" इस पर महाराज द्रुपद को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु उसी समय वहाँ भगवान् वेदव्यास आ गये, और उन्होंने द्रुपद को समझाया कि गत जन्म में द्रौपदी ऋषि की कन्या थी, और महादेवजी की पूजा करके पाँच बार 'पति' कहकर वर माँगा था, इसलिए इसके पाँच पति होने का भगवान् शंकर ने वर दिया था, इस जन्म में वह फलीभूत हुआ है। इससे महाराज द्रुपद की शंका मिट गयी, और बड़े समारोह से पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का शुभ विवाह सम्पन्न कर दिया। यहाँ श्रीकृष्ण से भी पाण्डवों की भेंट और मैत्री हुई।

द्रौपदी के विवाह की खबर देश के तमाम राज्यों में फैल गयी। महाराज धृतराष्ट्र ने भी सुना। भीष्म और द्रोण आदि को लाक्षा-गृह से पाण्डवों के बच जाने पर बड़ा हर्ष हुआ, पर दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला प्रचण्ड हो गयी। वह फिर किसी छल से पाण्डवों पर अनर्थ करना चाहता था, किन्तु उस समय उसकी न चली। भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर आदि धर्मात्मा मनुष्यों ने महाराज धृतराष्ट्र को समझाया कि जब पाण्डव बचे हुए हैं, और राज्य के हकदार हैं, तब उन्हें बुलाकर उनका आधा हिस्सा उन्हें दे देना ही ठीक होगा; अन्यथा वे अब द्रुपद के साथ मिल गये हैं, और स्वयं भी वीर हैं, अपने हक के लिए युद्ध करेंगे, तो व्यर्थ को वंश-नाश होगा। महाराज धृतराष्ट्र को यह बात जँच गयी। उन्होंने विदुर को पाण्डवों के पास बुला लाने के लिए भेज दिया। महाराज द्रुपद से मिलकर विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र का शुभ समाचार सुनाया, और पूरा आदर-सम्मान प्राप्त कर श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों को साथ लेकर हस्तिनापुर लौटे। यहाँ महामना भीष्म आदि ने दुर्योधन के वैर को बचाने के उद्देश्य से पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ देकर, वहीं जाकर राजधानी बनाने की सलाह और प्रोत्साहन दिया। गुरुजनों की पद-धूलि मस्तक पर धारण कर पाण्डव हस्तिनापुर से दूर खाण्डवप्रस्थ चले गये। वहाँ के लोगों ने पाण्डवों का बड़ा स्वागत किया। पाण्डवों ने भी कृषि, वाणिज्य और शिक्षा आदि के विस्तार से खाण्डवप्रस्थ को हस्तिनापुर की तरह उन्नतिशील बना लिया, और सुखपूर्वक निवास करने लगे।

अर्जुन का वनवास और सुभद्रा से विवाह

पाँचों पाण्डव आनन्दपूर्वक खाण्डवप्रस्थ में रहने लगे। एक दिन वहाँ देवर्षि नारद पाण्डवों से मिलने आये। धर्मात्मा पाण्डवों ने उनका बड़ा सम्मान किया। नारद ने पाण्डवों से कहा, "तुम पाँच पुरुषों के एक ही स्त्री है, पर तुम लोगों ने पत्नी के साथ रात्रि-वास करने का नियम नहीं बनाया। यह अच्छा नहीं। इससे आपस में वैर होने की सम्भावना है। सुन्द और उपसुन्द नाम के दो भाई थे। तिलोत्तमा पर मुग्ध होकर, दोनों आपस में लड़कर मर गये। तुम लोग समझदार धर्मात्मा हो। पत्नी से रमण करने के नियम बना लो।" देवर्षि नारद की युक्ति सबको पसन्द आयी। एक-एक मास प्रत्येक भाई द्रौपदी के साथ रहेगा, ऐसा नियम बन गया।

धीरे-धीरे कुछ काल और व्यतीत हो गया। एक दिन एक ब्राह्मण रोता और पाण्डवों को गालियाँ देता हुआ राजभवन के द्वार पर आया। उस समय महावीर अर्जुन द्वार पर बैठे थे। उसने फरियाद की कि चोर उसकी गौएँ चुरा ले गये हैं। सुनकर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ, किन्तु वह उस समय निरस्त्र थे। उनके अस्त्र जिस मकान में थे, वहाँ महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। अर्जुन विचार में पड़ गये: यदि अस्त्र लेकर ब्राह्मण की गौएँ बचाने जाते हैं, तो नियम-विरुद्ध कार्य होता है। महाराज युधिष्ठिर उस घर में द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। बारह साल का वनवास स्वीकार करना होगा। यदि नहीं जाते, तो ब्राह्मण का शाप पड़ता है। अन्त में उन्होंने जाने का निश्चय किया।

सिर झुकाकर अस्त्रागार में चले गये, और अपना धनुष तथा तरकस उठा लाये। चोरों को खदेड़कर ब्राह्मण की गौएँ छुड़ा लीं। ब्राह्मण आशीर्वाद देता हुआ प्रसन्न होकर घर गया।

महावीर अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर के सामने अपराधी की तरह हाजिर हुए, और अपने दोष का उल्लेख किया। और-और भाई भी थे। महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "बड़े के रहते छोटे के जाने में कोई दोष नहीं; फिर तुम अपने किसी कार्य के लिए नहीं गये, दूसरे के उपकार के लिए जाकर तुम अपराधी नहीं हुए।" धर्मराज का यह आश्वासन अर्जुन को पसन्द न आया। उन्होंने कहा, "जो प्रतिज्ञा हो चुकी है, उसका पालन न करना पाप है। आप स्नेह के वश ऐसा कह रहे हैं। मैं बारह साल के लिए अवश्य वनवास स्वीकार करूँगा।" यह कहकर धर्मराज तथा भीम को प्रणाम कर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी से मिलकर धनुर्धर महावीर पार्थ बिदा हुए।

देश-देशान्तरों का भ्रमण करते हुए अर्जुन एक बार गंगा में स्नान कर रहे थे। उनके अनुपम रूप पर मुग्ध होकर कौरण्य नामक नागराज की कन्या उलूपी उन्हें आकर्षित कर नागलोक में ले गयी। एक परम सुन्दरी षोडशी युवती को अनिमेष प्रेम-दृष्टि से अपनी तरफ देखते हुए देखकर अर्जुन ने पूछा, "हे वरानने, तुम कौन हो?"

स्नेह से सिक्त कोमल स्वर में उलूपी ने कहा, "वीरवर, मैं नागराज-कन्या उलूपी हूँ। आपकी पुरुष-प्रभा को देखकर आपसे विवाह करने की इच्छा से मैंने आपको यहाँ आकर्षित किया है।"

अर्जुन ने कहा, "भद्रे! मैं प्रतिज्ञा-बद्ध होकर ब्रह्मचर्य-पालन कर रहा हूँ।"

उलूपी प्रसन्न होकर बोली, "हे पाण्डुनन्दन! मैं आपका व्रत खण्डित करना नहीं चाहती। मुझसे विवाह करने पर आपके व्रत को और बल प्राप्त होगा, क्योंकि उसके साथ मेरी प्रसन्नता भी जाकर मिलेगी। आपको ब्रह्मचर्य का सत्य-रहस्य मालूम होगा।"

अर्जुन नागकन्या उलूपी से विवाह कर एक रात वहीं रहे, पश्चात् कुछ दिनों तक गंगा-तट पर रहकर उन्होंने अंग, वंग, कलिंग आदि देशों में भ्रमण करते हुए अनेकानेक तीर्थों के दर्शन किये। विचरण करते हुए अर्जुन समुद्रतट पर अवस्थित मणिपुर नाम की राजधानी में गये। वहाँ की राजकन्या चित्रांगदा पर मुग्ध होकर उसके पिता के पास उससे विवाह करने की आज्ञा लेने के लिए गये। उसके पिता ने कहा, "यदि पाण्डु-पुत्र यह स्वीकार करें कि मेरी कन्या से हुआ पुत्र नाना के वंश के अन्तर्गत होगा, तो मैं अपनी कन्या चित्रांगदा से अर्जुन का विवाह कर दूंगा।" अर्जुन को यह प्रस्ताव मंजूर हुआ। चित्रांगदा के साथ उनका शुभ विवाह हो गया, और तीन साल तक वह चित्रांगदा के साथ मणिपुर में रहे। बभ्रु वाहन नाम का एक सुन्दर शिशु चित्रांगदा के गर्भ से भूमिष्ठ हुआ।

पत्नी से बिदा होकर महावीर पार्थ प्रभास-तीर्थ की ओर चले। रास्ते में पड़नेवाले तीर्थों के दर्शन कर, वर्गा नाम की अप्सरा को शाप से मुक्त कर वह प्रभास पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्ण ने इनका बड़ा स्वागत किया। कृष्ण से द्रुपद के यहाँ

मिलकर अर्जुन उनके परम भक्त हो गये थे। उनसे इनकी मैत्री भी हो गयी थी। वनवास का कुल वृत्तान्त, कृष्ण के पूछने पर, अर्जुन ने बतलाया। कृष्ण ने अर्जुन के मनोरंजन के लिए रैवतक-पर्वत पर सारा प्रबन्ध करा दिया। नृत्य-गीतादि से अर्जुन का बड़ा सत्कार किया गया। द्रौपदी-स्वयंवर के बाद पाण्डवों का परिचय खुलने पर अर्जुन की वीरता की देश-देश में ख्याति हो गयी थी। यादवों ने भी उनकी प्रशंसा सुनी थी। अब, अर्जुन के आनेपर, श्रीकृष्ण ने स्वयं एक दिन यादवों को एकत्र कर अर्जुन का अद्‌भुत अस्त्र-कौशल दिखवाया। आनन्द-मंगल में इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो गया। इसी समय यादवों का एक त्योहार पड़ा। वे लोग बड़ी साज-सज्जा से अपनी पत्नियों के साथ मद्य-पान कर रैवतक-पर्वत पर यह उत्सव मनाते थे। पुर के सभी युवक-युवती वहाँ एकत्र होने लगे। श्रीकृष्ण महावीर पाण्डुनन्दन को साथ लेकर चारों ओर घूम-घूमकर मेला दिखा रहे थे। उसी समय दिव्य वस्त्राभूषणों से सजी हुई बलदेवजी की बहन सुभद्रा सखियों के साथ आती हुई देख पड़ी। महावीर पार्थ एक दृष्टि से युवती कुमारी सुभद्रा को देख रहे थे।

मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण ने व्यंग्य किया, "मित्र अर्जुन, तपस्वी ब्रह्मचारी को स्त्री की तरफ आँख न उठाना चाहिए।"

अर्जुन लज्जित होकर बोले, "हाँ, मित्र, आप ठीक कहते हैं, पर जो तीर हाथ से निकल चुका हो, उसके लिए क्या किया जाय ?"

"मित्र अर्जुन !" श्रीकृष्ण बोले, "यह मेरी बहन सुभद्रा है। इसे पाने की तुम्हारे लिए एक ही सूरत है। स्वयंवर होने पर पता नहीं, यह किसे वरण करे। क्षत्रियों में एक उपाय हरण करने का भी प्रचलित है। यदि तुम इसे पाना चाहते हो, तो इसका हरण करो; पर तुम्हें अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिए।"

अर्जुन ने समय का निश्चय कर भीमसेन को सेना लेकर मिलने के लिए लिख दिया। बलराम दुर्योधन को प्यार करते थे। उन्होंने उसे आने का निमन्त्रण भी दिया था। अपनी सेना के साथ दुर्योधन भी रवाना हो चुका था। भीम भी चुनी हुई सेना लेकर सूचना के अनुसार आ रहे थे।

उपयुक्त अवसर देखकर उत्सव समाप्त होने के समय, बलपूर्वक अर्जुन ने सुभद्रा को रथ पर बैठाकर घोड़े बढ़ाये। बात-की-बात में खबर चारों ओर फैल गयी, वीर यादवों ने अर्जुन को पकड़ने के लिए पीछा किया। घोर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन का अद्‌भुत समर-कौशल देखकर सुभद्रा मुग्ध हो गयी। पति को कठिनता में पड़ा देखकर स्वयं सारथि का काम करने लगी। यादव वीर अर्जुन की बाण-वर्षा के सामने न टिके। रथ क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बहुत दूर निकल आया। इधर भीमसेन भी आ पहुँचे। फिर क्या था ? चिरकाल के पश्चात् महावीर अर्जुन को देखकर तथा वीरतापूर्वक यादवों की राजकुमारी सुभद्रा का हरण सुनकर भीम-प्रमुख पाण्डवों की सेना पुनः-पुनः सिंहनाद करने लगी। श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण समाचार मालूम थे। उन्होंने बलराम तथा अपर यादव वीरों को समझाया, और युद्ध बन्द कर देने के लिए दूत भेजा। लड़ाई बन्द हो गयी। यादवगण समादरपूर्वक

अर्जुन तथा भीमादि को ले गये। वहाँ शास्त्रानुसार सुभद्रा के साथ अर्जुन का शुभ विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। फिर प्रिय पत्नी को लेकर वनवास के बाकी दिन पुष्कर-तीर्थ में पूरे कर बडे हर्ष से अर्जुन खाण्डवप्रस्थ में भाइयों से आकर मिले। यथासमय सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु नामक बालक पैदा हुआ।

खाण्डव-दाह

सुखपूर्वक सखा कृष्ण के साथ अर्जुन खाण्डवप्रस्थ में निवास कर रहे थे। एक दिन ब्राह्मण के वेश में अग्निदेव द्वार पर उपस्थित हुए। अर्जुन से बोले, "हे महावीर पाण्डुनन्दन, मैं अग्नि हूँ। सौ वर्ष तक श्वेत राजा के यज्ञ में हवि खाते-खाते मुझे अजीर्ण हो गया है। यदि खाण्डव-वन के जीव मुझे दग्ध करने को मिलें, तो मेरा रोग दूर हो जाये, परन्तु इसके लिए एक बड़ी अड़चन है। वहाँ तक्षक रहता है। वह इन्द्र का मित्र है। वहाँ आग लगने पर इन्द्र उसकी मदद करेगा, वरुण को बुलाकर जल द्वारा आग बुझवा देगा। वन को दग्ध करने में आप मेरी सहायता कीजिए।"

अर्जुन ने कहा, "मुझे आपकी सेवा मंजूर है, परन्तु मेरे ऐसे अस्त्र नहीं, जिनसे मैं इन्द्र का सामना कर सकूँ। यदि आप मुझे दिव्य अस्त्र प्रदान करें, तो अवश्य मैं आपके कार्य में सहायक हूँगा।"

सुनकर अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गाण्डीव नाम का विशाल धनुष, हमेशा तीरों से भरा रहनेवाला अक्षय नाम का तरकस और वरुणदेव से प्राप्त कर कपिध्वज नाम का विशाल रथ अर्जुन को दिया। अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र की मदद के लिए सारथि होना स्वीकार कर लिया। अर्जुन अग्निदेव की इच्छा पूरी करने के लिए खाण्डव-वन को चले।

देखते-देखते खाण्डव-वन सहस्रों ज्वालाओं से प्रज्वलित हो उठा। जीव-जन्तु घोर चीत्कार करने लगे। हाथी, बाघ, सिंह, चीते, गेंडे, रीछ, साँप और अनेक जातियों के पक्षी उस वन में वास करते थे। सब उस प्रचण्ड अग्नि में जलकर भस्म होने लगे। श्रीकृष्ण बड़ी तेजी से वन के चारों ओर तेजस्वी घोड़ों से चक्कर लगा रहे थे। जो पशु बाहर भागने का प्रयत्न करता था, वह अर्जुन के बाण से विद्ध होकर प्राण खोता था। आकाश-मार्ग से उड़कर भागनेवाले पक्षी भी शर-विद्ध होकर जलती हुई अग्नि में गिरकर भस्म होते थे। खाण्डव-वन दाह की खबर इन्द्र को भी हुई। उन्होंने मेघों को भेजकर जल-वर्षा द्वारा अग्नि को बुझा देने की आज्ञा दी। चारों ओर काली-काली भयानक छटा छा गयी। कृष्ण ने अर्जुन को सचेत करते हुए समझाया कि 'ये इन्द्र के भेजे हुए बादल हैं, बहुत सम्भव है, देवराज से तुम्हें युद्ध करना पड़े।' वीर पाण्डुनन्दन पार्थ ने वायव्य अस्त्रों द्वारा मेघों को उड़ा दिया। तब इन्द्र स्वयं युद्ध करने के लिए आये। बड़ी देर तक दोनों ओर से बाणों की वर्षा होती रही। अर्जुन का पराक्रम प्रबल पड़ता गया। अपने मित्र तक्षक को इन्द्र न बचा सके। इन्द्र ने जब किसी तरह विजय की आशा न देखी, तब साक्षात् कृष्ण और अर्जुन के सामने प्रकट हुए और समर-कौशल के लिए बारम्बार अर्जुन की तारीफ करने लगे। देवराज को प्रसन्न देखकर अर्जुन ने

उनसे दिव्यास्त्र माँगे। इन्द्र ने कहा, "यह मनोरथ भगवान् आशुतोष की आराधना से सिद्ध होगा।" यह कहकर, पुत्र को स्नेह देकर देवराज इन्द्र कृष्ण और अर्जुन से विदा हुए। अब तक अग्निदेव का कार्य भी समाप्त हो चुका था। इस दाह में केवल छः प्राणी बचे थे—अश्वसेन, मयासुर और शार्ङ्ग पक्षी के रूप में रहनेवाले मन्दपाल मुनि के चार पुत्र। अग्निदेव प्रसन्न होकर अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। मयासुर भी अर्जुन के पास आया और प्राणों की भिक्षा पाने के कारण कृतज्ञ होकर अपनी सेवा के लिए विनय करने लगा। श्रीकृष्ण ने उससे कहा, "हे शिल्पि-श्रेष्ठ! महाराज युधिष्ठिर के लिए खाण्डवप्रस्थ में तुम ऐसा उत्तम भवन निर्माण करो, जैसा लोगों की दृष्टि में आज तक न पड़ा हो।"

सभापर्व

सभा-भवन, राजसूय-यज्ञ और जरासन्ध-वध

कृष्ण के कहने पर मय दानव कैलास के उत्तर गया। वहाँ दानवों की एक राज-धानी थी। वहीं, विन्दु नाम के सरोवर के पास, दानवों के यज्ञ के लिए बनाये गये सुविशाल सभा-भवन के मनोहर कारीगरी के चित्ताकर्षक सामान रखे थे। मय दानव वह सब एकत्र कर खाण्डवप्रस्थ ले आया।

खाण्डव-दाह के बाद कृष्ण अर्जुन के साथ पाण्डवों के पास चले आये। मय को देखकर कृष्ण बहुत प्रसन्न थे, उन्होंने महाराज युधिष्ठिर से उसकी तारीफ की। शुभ मुहूर्त देखकर सभा-भवन की नींव डाली गयी। मय पूरी तल्लीनता से सभा-निर्माण करने लगा।

कुछ दिनों तक पाण्डवों के यहाँ रहकर कृष्ण ने द्वारका की यात्रा की। पाँचों पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा ने सजल नेत्रों से उन्हें विदा किया। कृष्ण बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलाकर गये थे। पाण्डवों की, विशेषकर भीम और अर्जुन की, अपार शक्ति को प्रत्यक्ष कर, उनमें यथेष्ट उत्साह भर गये थे। यथासमय सभा-भवन निर्मित हो गया। उसमें मणि, मोती, हीरे, पन्ने, पुखराज आदि कितनी कीमत तक के लगे थे, इसका हिसाब नहीं हो सकता। दिव्य सरोवर, उद्यान, फर्श आदि ऐसे थे, जैसे उस समय भारतवर्ष में और कहीं न थे। उस सभा-भवन की सजावट तथा विभूति देखकर जागता हुआ मनुष्य भी स्वप्नावेश में हो जाता था। कहीं-कहीं ऐसी स्वच्छता थी कि फर्श जल-भरा सरोवर ज्ञात होता था। मणि के सोपान, कमल और हंस आदि देखकर लोग मुग्ध हो जाते थे। वाटिका में सब रत्नों की कारीगरी थी, पर देखकर लोग समझते थे कि असमय में गन्धराज, बेला, चमेली, चम्पा, यूथिका आदि पुष्प खिले हुए हैं, उनमें फूलों की रूह इस तरह भर

दी गयी थी कि वे सुगन्ध भी देते थे।

शुभ समय निश्चित कर महाराज युधिष्ठिर इसी भवन में राजसिंहासन पर आसीन हुए। भाँति-भाँति के उत्सव होने लगे। ब्राह्मणों को पकवान आदि भोजन करा के प्रचुर दक्षिणा दी गयी। देश-देश के कलावन्त आये और अपनी विद्या का प्रदर्शन कर गये। इसी समय देवर्षि नारद ने आकर युधिष्ठिर की बड़ी प्रशंसा की। सभा-भवन को देखकर, महाराज युधिष्ठिर के अपार ऐश्वर्य का निश्चय कर नारदजी ने उन्हें राजसूय-यज्ञ करने के लिए कहा।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर ने मन्त्रियों को बुलाकर उनकी भी राय ली। सबने समस्वर से राजसूय-यज्ञ के लिए सलाह दी। परन्तु इसके लिए दिग्विजय की आवश्यकता है, और यह प्रजा के पूर्ण सहयोग से ही हो सकती है, ऐसा विचार कर महाराज युधिष्ठिर ने एक दिन उसी सभा-भवन में अपनी सारी प्रजा का आव हन किया। प्रजा युधिष्ठिर के शासन से परम प्रसन्न थी। उसकी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध हो चुका था। वाणिज्य का विस्तार भी प्रजा की श्री-वृद्धि के लिए किया जा चुका था। उन्हें शास्त्र तथा शस्त्रों में पारंगत करने के उद्योग भी जारी थे। उनकी सेवा-शुश्रूषा का भी राज्य की ओर से प्रबन्ध था। पुनः, पाण्डव पाँचों भाई उनसे अपने सगे-सम्बन्धियों की तरह वार्तालाप करते थे। राजा-प्रजावाला भाव न रखते थे। इसलिए प्रजाजन एकत्र होकर राजसूय-यज्ञ की बातें सुनकर फूले न समाये और बड़े हर्ष से महाराज युधिष्ठिर की सहायता के लिए तैयार हो गये।

सब तरफ से निश्चय कर युधिष्ठिर ने दूत भेजकर द्वारका से कृष्ण को बुलवाया। महाराज युधिष्ठिर का आमन्त्रण पढ़कर उसी समय कृष्णजी भेजे हुए रथ पर सवार होकर महाराज युधिष्ठिर से मिलने के लिए चल दिये।

श्रीकृष्ण को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, राजसूय-यज्ञ का संकल्प उन्हें सुनाया। श्रीकृष्ण भारत में धर्म-राज्य की स्थापना चाहते थे। उसका बीज अंकुरित हो रहा है देखकर, उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को इस कार्य के लिए प्रोत्साहन दिया। एक अड़चन बतायी कि मगध राज्य का राजा जरासन्ध जब तक जीवित है, तब तक यह शुभ कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको रोकेगा, और उसके पराक्रम के भय से दूसरे नरेश इस यज्ञ में सम्मिलित न होंगे। पुनः श्रीकृष्ण ने कहा, "महाराज पाण्डुनन्दन, उसकी महाशक्ति से पराजित होकर हमने मथुरा छोड़ दी, और समुद्र के बीच द्वारका में राजधानी स्थापित की है। वह राजाओं को कैद कर नरमेध-यज्ञ करना चाहता है। यदि हम उस पर विजय प्राप्त कर सकें, तो अनेक राजे प्राण-दान पाकर हमेशा के लिए हमारे पक्ष में हो जायँगे।" महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की आज्ञाकारिता स्वीकार कर ली। कृष्ण भी भीम और अर्जुन को साथ लेकर राजगृह के लिए रवाना हुए।

तीनों ने ब्राह्मण-वेश बना लिया। इन्द्रप्रस्थ से चलकर अनेकानेक नदी-नद पार करते हुए, मगध में गोरथ-पर्वत के पास से राजगृह की शोभा देखते हुए, जरासन्ध के पिता बृहद्रथ के बनाये मन्दिर का ऊपरी हिस्सा तोड़कर, चुपचाप चारदीवारी पार कर सीधे जरासन्ध की सभा में पहुंचे। ब्राह्मण जानकर जरासन्ध पैर धुलाने के लिए उठा। पर कृष्ण ने इनकार कर दिया, और अपना परिचय देते

हुए युद्ध के लिए ललकारा। जरासन्ध स्वाभिमानी वीर था। भीम से उसकी कुश्ती तय हो गयी। देखने के लिए नगर-भर के लोग एकत्र हुए। चौदह दिनों तक घोर द्वन्द्वयुद्ध होता रहा। अन्त में जरासन्ध थक गया। भीम ने उसके पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया, और उसका एक पैर लात से दबाकर, दूसरा पकड़कर बीच से फाड़ डाला। जरासन्ध के वध से नगर के लोग बड़े भयभीत हुए। पर कृष्ण ने सबको धैर्य दिया। फिर कोटागृह में जाकर राजाओं को मुक्त किया। भीम का पराक्रम देश-देशान्तरों तक फैल गया। राजागण भीम तथा कृष्णार्जुन के कृतज्ञ होकर अपने-अपने राज्य को गये। प्रसन्न-चित्त से सब लोग इन्द्रप्रस्थ में महाराज युधिष्ठिर से मिले।

दिग्विजय और शिशुपाल-वध

राजसूय-यज्ञ के लिए दिग्विजय आवश्यक हो गयी। राजाओं से कर लेकर उन्हें आमन्त्रित करना था। महाराज युधिष्ठिर ने सलाह करके चारों भाइयों को एक-एक दिशा में भेजा, सबके साथ विशाल चतुरंगिनी सेना चली। भीम पूर्व दिशा को चले। कोशल, काशी, पांचाल, विदेह, वंग आदि राजाओं को जीतकर हीरे-मोती, सोना-चाँदी आदि धन-रत्न और बहुमूल्य वस्तुएँ लेकर, उन्हें निमन्त्रण देकर लौटे। अर्जुन उत्तर तरफ गये। उन्होंने प्राग्ज्योतिष, उलूक और कश्मीर आदि राज्यों को जीता। इसके बाद उत्तर-कुरु नाम के गन्धर्व-राज्य में गये। उसे मायापुरी कह-कर द्वारपालों ने कर देकर अर्जुन को बिदा किया। वह भी प्रचुर धनराशि अपने साथ लाये। नकुल पश्चिम गये। महेश्व, जैरीषक, रोहित, शिवि, दशार्ण और त्रिगर्त आदि राज्यों को जीतकर, राजाओं को निमन्त्रण देकर, अपार धन-संग्रह कर लाये। सहदेव दक्षिण के मथुराधिप, कुन्तिभोज और मत्स्यराज आदि मित्र राजाओं से मिलते हुए किष्किन्धा में वानरों के राज्य में पहुँचे। सात दिन तक सहदेव से वानरों का घोर संग्राम हुआ। अन्त में वानरों ने प्रसन्न होकर, धन रत्नादि देकर सहदेव को बिदा किया। पश्चात् कच्छ, द्रविड़, कलिंग, पुरी आदि राज्यों से उन्होंने कर वसूल किया, और खबर भेजकर विभीषण से भी मैत्री-रूप मोती आदि मँगवा लिये। सब भाई दिग्विजय कर यथासमय इन्द्रप्रस्थ वापस आये। महाराज युधिष्ठिर के खजाने में धन-रत्नों के ढेर लग गये।

बड़े समारोह से यज्ञ की कार्यवाही होने लगी। भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास इस यज्ञ के प्रधान नियत किये गये। धौम्य तथा याज्ञवल्क्य, वसु के पुत्र और पौत्र होता हुए। इनके शिष्यादि सहायक रहे। बड़े उपचारों से यज्ञ का अनुष्ठान शुरू हुआ। देश-देश के वेदज्ञ ब्राह्मण बुलाये गये। दिन-रात वेद-मन्त्रों का गान होने लगा। कश्यप, पराशर, वामदेव, जैमिनी, वैशम्पायन, च्यवन, विश्वामित्र, कण्व, गौतम, मैत्रेय, भरद्वाज आदि ऋषि-महर्षि भी आमन्त्रित होकर आये।

द्रुपद, विराट, जयद्रथ, शिशुपाल, भगदत्त, बलराम, धृष्टद्युम्न आदि-आदि नरेन्द्रगण चारों दिशाओं से एक-एक कर यथासमय उपस्थित होने लगे। हस्तिना-पुर से भी भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन, दुःशासन आदि आमन्त्रित होकर यज्ञ देखने के लिए पधारे। कृष्ण की राय से महाराज

युधिष्ठिर ने सबको यथोचित कार्य का भार दिया। भीष्म और द्रोण को यज्ञ की कार्यावली के निरीक्षण का भार सौंपा, कृपाचार्य को सुवर्ण-रत्नों की परीक्षा तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का, महाराज दुर्योधन को राजा-महाराजाओं के उपहार स्वीकार करने का, अश्वत्थामा को ब्राह्मणों के सत्कार का, दुःशासन को भोजन-भाण्डार का; श्रीकृष्ण ने स्वयं ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य स्वीकार किया।

जब सब राजा एकत्र हो गये, और सबके आदर-सत्कार की बारी आयी, तो महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म को प्रणाम करके पूछा कि किसकी पूजा पहले होनी चाहिए। भीष्म ने कहा, "यहाँ उपस्थित लोगों में कृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ हैं।" सुनकर सहदेव कृष्ण के पैर पखारने लगे। शिशुपाल को यह कार्य बड़ा बुरा लगा। वह भीष्म तथा कृष्ण को गालियाँ देने लगा। उसने कहा, "यह राजाओं का अपमान किया गया है। वृद्ध भीष्म की बुद्धि मारी गयी है। यहाँ तो कृष्ण के पिता भी मौजूद हैं, तो क्या वह अपने पिता से भी बढ़कर हो गया? भगवान् व्यासदेव, आचार्य द्रोण आदि पूज्यपाद पुरुष-प्रवरों के रहते कृष्ण की पूजा करके पाण्डवों ने तथा वृद्ध भीष्म ने मूर्खता प्रदर्शित की है। यदि राजा की पूजा करनी थी, तो यहाँ नरेन्द्र शिरोमणि दुर्योधन, शाल्व, शल्य, रुक्मी आदि विद्यमान थे। मेरी समझ में न आया कि कृष्ण सर्वश्रेष्ठ कैसे हो गया?" शिशुपाल के तरफदार दुर्योधन आदि राजाओं को इस भर्त्सना से बड़ी प्रसन्नता हुई। पर पितामह को कुवाक्य कहते हुए सुनकर भीम से न रहा गया। गुस्से से उनका सारा बदन भर गया। वह झपटकर शिशुपाल की ओर चले, तो भीष्म ने उन्हें पकड़कर स्नेह की दृष्टि से देखते हुए शान्त किया। श्रीकृष्ण चुपचाप खड़े हुए गालियाँ सुनते रहे। शिशुपाल कृष्ण की बुआ का लड़का था। बचपन में शिशुपाल को बदमाश जानकर उसकी माता ने कृष्ण से कहा था, 'इसके सौ कसूर भी माफ कर देना।' कृष्ण इसलिए शान्त भाव से खड़े सुन रहे थे। कृष्ण को गालियाँ देकर शिशुपाल फिर भीष्म को जली-कटी सुनाने लगा, "इन राजाओं को धन्यवाद है, जिनके कारण, हे भीष्म, तुम्हारी और कृष्ण की जान बची हुई है।" कई गालियाँ खा चुकने पर भीष्म का धैर्य जाता रहा। वह क्रोध में आकर बोले, "चेदीश्वर शिशुपाल! तुम मुझे जानते हो। तुम तो एक शिशु हो, तुम मेरे मुकाबले क्या आ सकोगे! तुम्हारे तरफदार सब राजाओं के साथ क्षण-मात्र में मैं तुम्हें यमलोक दिखा सकता हूँ।" महावीर भीष्म के भव्य मुख-मण्डल की चढ़ी हुई आँखें और टेढ़ी भौंहें देखकर शिशुपाल दब गया। पर आवेश में आकर फिर कृष्ण को गालियाँ देने लगा। सभा के सभी नरेन्द्र स्तब्ध हो रहे थे, और शीघ्र किसी विपत्ति के होने की शंका कर रहे थे। कृष्ण क्षमा करते गये, इधर शिशुपाल की सौ गालियाँ पूरी हो गयीं। पर क्रोधान्ध कब रुकता है? उसने पुनः गाली दी। इस बार कृष्ण के होंठ फड़क उठे, आँखें लाल हो गयीं। उनका वह चेहरा ही बदल गया। उन्हें देखकर उसके विरोधी दहल उठे। कृष्ण ने अपना प्रसिद्ध अस्त्र सुदर्शन चक्र लेकर शिशुपाल की ओर चला दिया। देखते-देखते उसका सिर कटकर जमीन पर आ गिरा। नरेन्द्र मण्डल में आतंक फैल गया। महाराज युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कृष्णजी की विनय करते हुए उन्हें शान्त किया, पश्चात्

राजाओं को परितृप्त किया। पुन: शिशुपाल के पुत्र महीपाल को उसके पिता के सिंहासन पर अधिरूढ़ किया।

इस प्रकार शान्ति होने पर पुन: यज्ञ की कार्यावली शुरू हुई। चारों ओर पाण्डवों की प्रशंसा होने लगी। इसी समय राजप्रासाद में विचरण करता हुआ दुर्योधन वहाँ पहुँचा, जहाँ मय ने स्थल का जल-रूप में निर्माण किया था। जल समझकर दुर्योधन कपड़े समेटने लगा। वहीं कुछ दूर पर द्रौपदी खड़ी थीं। दुर्योधन का दृश्य देखकर हँसने लगीं, और सुनाकर बोलीं, "अन्धे के अन्धा ही पैदा होता है।" आवाज दुर्योधन के कान में पड़ी। उसका चेहरा उतर गया। पर कुछ न कह-कर उस अपमान को दुर्योधन पी गया। पुन: कुछ दूर चला, तो वहाँ एक ऐसा आईना था, जो पारदर्शी था। दुर्योधन की समझ में न आया कि यहाँ आईना जड़ा हुआ है। वह उसे रास्ता समझकर सीधे चलता गया, इससे उसका सर आईने से टकरा गया। साथ भीम भी थे। अब की भीम को भी हँसी आ गयी। राजा और खास तौर से दुर्योधन-जैसे अभिमानी राजा के लिए यह साधारण अपमान न था। पर कोई उपाय न था ! इसलिए जलकर दुर्योधन अपनी ही आत्मा में उस आग को दबाकर रह गया। बदले के लिए समय की प्रतीक्षा करने लगा।

यज्ञ सकुशल समाप्त हुआ। दु:शासन अजस्र दान कर-करके भाण्डार को खाली कर देना चाहता था, पर वह साक्षात् लक्ष्मी का भाण्डार था। स्वयं विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण पाण्डवों से सहयोग कर रहे थे। वह कैसे रिक्त होता ? फल यह हुआ कि आशा से अधिक भोजन-पान तथा दान-दक्षिणा आदि पाकर ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए, और पाण्डवों का यशोगान करते हुए अपने-अपने घरों को गये। देश-देश के कलावन्त भी पाण्डवों की कीर्ति-गाथा और आदर-सत्कार आदि की चारों ओर प्रशंसा करने लगे। नरेन्द्र-मण्डल भी सब तरह से सुखी तथा पाण्डवों के आतिथ्य से प्रीत होकर बिदा हुआ।

श्रीकृष्ण को काफी समय लग गया। सबके चले जाने के बाद उनकी बिदाई हुई। उनकी बहन सुभद्रा भी भाई के साथ गयीं। द्वारका पहुँचकर कृष्ण ने देखा, द्वारका की वह शोभा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि शिशु-पाल का मित्र शाल्व, अपने मित्र का बदला लेने के लिए, कृष्ण की अनुपस्थिति में, वायुयान द्वारा आकाश-मार्ग से द्वारका पर चढ़ आया था। साथ उसकी सेना भी आकाश-मार्ग से लड़ रही थी। द्वारका के अधिकांश वीर पाण्डवों के यहाँ आमन्त्रित होकर चले गये थे। शत्रु-पक्ष आकाश-मार्ग से परशु, भल्ल, शक्ति, तोमर, शतघ्नी आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर द्वारका को ध्वस्त करने लगा ! तब प्रद्युम्न के सेनापतित्व में एक सेना शत्रु का सामना करने के लिए चली। शाल्व पराजित होकर भग गया है, सुनकर कृष्ण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसी क्षण चतुरंगिनी सेना लेकर शाल्व की राजधानी पर चढ़ाई की। शाल्व वायुयान पर चढ़कर समुद्र की ओर भग गया। कृष्ण के पास वायुयान न था। वह भूमि से ही उसका मुकाबला करने के लिए समुद्री तट घेरे रहे। वह लौटा, और कृष्ण पर शरों के प्रहार करने लगा। कृष्ण ने नीचे से ही उसके तीर काट दिये, और दिव्यास्त्र द्वारा उसके वायु-यान के दो खण्ड कर दिये। शाल्व पृथ्वी पर चक्कर खाता हुआ आ गिरा। कृष्ण

ने उसे पकड़कर खड्ग द्वारा उसके दो टुकड़े कर दिये। इस प्रकार बदला लेकर द्वारका लौटे।

द्यूत-क्रीड़ा और द्रौपदी का चीर-हरण

बिदा होकर हस्तिनापुर आने पर दुर्योधन की ईर्ष्या की आग सहस्रों लपटों से जलने लगी। पाण्डवों को जलाने का विचार करता हुआ वह खुद उससे जलने लगा। इससे उसका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। जो काँटा दिल में चुभा हुआ था, उसके निकलने का कोई उपाय नजर न आता था। एक दिन वह महाराज धृतराष्ट्र के पास बैठा था। पुत्र-स्नेह से धृतराष्ट्र उसके शरीर पर हाथ फेरने लगे। पहले से उसे दुर्बल देखकर सस्नेह पूछा, "वत्स, तुम दिन-दिन दुबले क्यों हुए जा रहे हो ? तुम्हारा स्वास्थ्य तो इतना गिरा हुआ कभी न था।" दुखी होकर दुर्योधन बोला, "पिताजी, पाण्डवों की तारीफ सुनकर तथा उनकी श्रीवृद्धि देखकर मैं सदा चिन्ताग्रस्त रहता हूँ। वे देखते-देखते संसारप्रसिद्ध हो गये, और मुझसे कुछ भी न किया गया।" धृतराष्ट्र ने धैर्य देकर समझाया कि सच्चे भाव से रहने पर समय स्वयं सबको यश तथा कीर्ति के लिए सुयोग देता है। कर्ण तथा शकुनि भी उस समय वहाँ थे। कर्ण ने कहा, "मित्र, तुम व्यर्थ के लिए चिन्ताग्रस्त हो। चलो, हम लोग सलाह करके कार्यक्रम का निश्चय कर लें। तुम्हें पाण्डवों से अधिक कीर्ति तथा यश मिल जायगा।" मामा शकुनि ने मुस्कराकर कहा, "वत्स दुर्योधन, तुमने पहले यह बात कही होती, तो अब तक तुम्हीं संसारप्रसिद्ध नजर आते, छल हमेशा बल से बड़ा माना गया है। मैं ऐसे-ऐसे दाँव तुम्हें दिखाता कि तुम भी समझते, मामा के पास कैसे-कैसे जौहर छिपे हैं।"

प्रसन्न होकर कर्ण और शकुनि को साथ लेकर दुर्योधन एकान्त में गया। वहाँ आपस में तीनों की मन्त्रणा होने लगी। शकुनि बोला, "जिस तरह पाण्डवों ने सभा-मण्डप बनवाया है, उसी तरह तुम भी एक बनवाओ। उन्होंने यज्ञ किया है, तुम वहाँ जुआ खेलो। महाराज धृतराष्ट्र को मना लो। वह तुम्हें प्यार करते हैं। तुरन्त आज्ञा दे देंगे। फिर जुआ तो बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं का ही खेल है। जिसको पेट-भर भोजन नहीं मिलता, वह क्या जुआ खेलेगा। सभा-भवन बन जाने पर भीष्म, द्रोण, कृप, महाराज धृतराष्ट्र आदि सबको बुलाओ, और युधिष्ठिर को बुलाकर पहले से जुआ खेलने के लिए राजी कर लो। वह डरपोक है, पहले जरूर इनकार करेगा, पर शकुनि की जबान सरस्वती को चरका बताती है, बेचारा युधिष्ठिर तो कल का छोकरा है। ऐसी दलीलें पेश करूँ कि बच्चे की अक्ल ठिकाने आ जाये। वह तो वह, उसके पीर भी जुआ खेलें। तब तुम देखो मामा के दाँव-पेंच, चार चालों में मात करता हूँ। घबराओ नहीं, मेरे पास सिद्ध पाँसा है। मैं हार नहीं सकता। तुम यह फ़ैसला कर लेना कि युधिष्ठिर के साथ मेरी तरफ से मामाजी खेलेंगे—बस, जाओ, बच्चे की तरह खुश रहो, खाओ और मौज करो। देखो, मैं तुम्हें थोड़े दिनों में कितना प्रसिद्ध करता हूँ!"

शकुनि की बात सुनकर कर्ण को बड़ी खुशी हुई। उसने दुर्योधन पर बाढ़ रखते हुए कहा, "मित्र, इससे अच्छा पाण्डवों को नीचा दिखलाने का दूसरा उपाय न

होगा। जो पाण्डव आज संसारप्रसिद्ध हो रहे हैं, वे जुए में हारकर हमारे गुलाम हो जायँगे। इससे उनकी प्रशंसा मिट जायगी, और उनका सारा वैभव हमारे पास आ जाने पर हमीं सब देशों में सबसे नामी कहलायेंगे।" दुर्योधन इतने सीधे उपाय से इतना बड़ा और मुश्किल काम बनते हुए देखकर मारे खुशी के अंग में फूला न समाया। वह सीधे धृतराष्ट्र के पास गया, और सारी बातें एकान्त में सुनायीं। पुत्र की भलाई चाहनेवाले स्नेह-दुर्बल पिता ने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, अच्छे-अच्छे कारीगर बुलाये गये, और जल्द-से-जल्द अच्छे-से-अच्छा सभा-भवन तैयार करने की आज्ञा दे दी गयी।

दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि आदि की गुप्तमन्त्रणाएँ तथा आमोद-प्रमोद होते रहे। इस तरह की उच्छृंखल प्रसन्नता में समय पार हो रहा था कि सुविशाल भव्य सभा-भवन तैयार हो गया। तब सलाह करके इमारत दिखाने के विचार से दुर्योधन ने पाण्डवों को बुला भेजा। महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँचों भाई यथासमय दुर्योधन के अतिथि-स्वरूप हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। पाण्डवों को देखकर हस्तिनापुर के लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और बडे प्रेम से पाँचों भाइयों से मिले। महाराज युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र और गान्धारी आदि के यहाँ जा-जाकर उन्हें प्रणाम किया। उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर भाई दुर्योधन, दुःशासन आदि से मिले। दुर्योधन बड़ी प्रसन्नता से महाराज युधिष्ठिर आदि को सभा-भवन में ले गया, और उसका कला-कौशल दिखलाया। फिर कहा, "भाई, यह सभा-भवन हमने द्यूत-क्रीड़ा के विचार से बनवाया है। पिताजी ने भी इसके लिए आज्ञा दी है।" महाराज युधिष्ठिर ने सुनकर कहा, "जुआ खेलना तो पाप है।" वहीं शकुनि भी था। जोर से हँसकर बोला, "युधिष्ठिर धर्म की डींग हाँकनेवाले जैसे खुद बेवकूफ होते हैं, वैसे ही दूसरे को भी समझते हैं—तभी तो उन्हें, यह पाप है, और यह पुण्य है, कहकर शिक्षा दिया करते हैं। तुम अक्लवाले आदमी हो। अच्छा बतलाओ, दूसरे का देश जीत लेना, दूसरों का धन बलपूर्वक छीन लेना, और तारीफ यह कि इसके बाद एक यज्ञ करके पुण्य का ढोल पीटना, यह धर्म और सत्य है ? यह पुण्य है ?—बतलाओ, आदमीयत क्या कहती है ? और यहाँ, यहाँ तो दो मनुष्य, दो राजे बैठकर जुआ खेलेंगे, न लड़ाई न झगड़ा; न आदमी कटेंगे, न त्राहि-त्राहि होगी। जो जीता, वह ले गया, बस। इसे तुम पाप कहते हो ! तुमको मालूम हो कि इसके देखने के लिए भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि सब धर्मात्मा बुलाये जायेंगे। महाराज धृतराष्ट्र भी पधारेंगे, और जो नतीजा हासिल होगा, सुनेंगे। फिर यह पाप कैसे हो गया ?"

महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "अगर हमारे गुरुजन भी जुआ देखने के लिए आयेंगे, तो ठीक है।" दुःशासन बोला, "यह जुआ महाराज दुर्योधन और आपमें होगा। महाराज दुर्योधन खुद न खेलेंगे, उनकी तरफ से मामा शकुनि पाँसा फेंकेंगे। हार-जीत महाराज दुर्योधन की होगी।" युधिष्ठिर ने इसका उत्तर न दिया।

दूसरे दिन दरबार लगा। हस्तिनापुर के बड़े-बड़े लोग सभा-भवन में आमन्त्रित होकर आये। भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, विदुर, महाराज धृतराष्ट्र आदि के

आसन सुशोभित हो गये । हस्तिनापुर के खासोआम सब एकत्र हुए । युधिष्ठिर को सादर साथ लेकर दुर्योधन भी भाइयों तथा शकुनि और कर्ण के साथ पहुँचा । दो अलग-अलग टुकड़ियाँ हो गयीं । एक ओर कौरव बैठे, एक ओर पाण्डव । हस्तिनापुर के लोग परस्पर वार्तालाप करने लगे कि दुर्योधन के कारण इस वश की कुशल न होगी । बीच में खेलने की जगह करके दाँव रखा गया । महाराज युधिष्ठिर ने पाँसा फेंका । पर कुछ न हुआ । अब शकुनि पाँसा लेकर उँगलियों में खड़खड़ाने लगा । महाराज युधिष्ठिर ने धन-रत्नों की बाजी लगायी । शकुनि ने पाँसा फेंका, उसका दाँव आ गया । कौरव ठहाका मारकर हँसने लगे । भीष्म और विदुर आदि को यह बड़ा बुरा लगा । पर राजदरबार के विचार से मौन बैठे रहे । दुबारा महाराज युधिष्ठिर ने अपने राज्य की बाजी लगायी । शकुनि का दाँव फिर आया । कौरवों के हर्ष की सीमा न रही । तिबारा युधिष्ठिर ने अपने साथ चारों भाइयों को दाँव पर रखा । फिर शकुनि का पाँसा पड़ा । दुर्योधन ने बड़ी शान से भीम की तरफ देखा । भाई का खयाल कर भीम चुप हो रहे । युधिष्ठिर ने कहा, "अब तो मैं सर्वस्व हार चुका, अब क्या खेलूं ?" शकुनि ने कहा, "अब द्रौपदी को रखो, इस वार तुम जीते, तो जो कुछ हार चुके हो, सब वापस ले जाओ।" युधिष्ठिर को नष्ट सम्पत्ति का लोभ हुआ, दाँव पर उन्होंने द्रौपदी को भी लगा दिया । सभा के सज्जन लोग 'घोर पाप—घोर पाप' की आवाज लगाने लगे । पर कुछ फल न हुआ । शकुनि ने पाँसा फेंका, फिर उसका दाँव पड़ा । द्रौपदी की जीत से दुर्योधन ने जैसे सारे संसार पर विजय कर ली हो, उसे ऐसी खुशी हुई । मन-ही-मन धृतराष्ट्र भी खुश थे ।

दुर्योधन ने विकर्ण को बुलाकर कहा, "जाओ, पाँसे के समाचार द्रौपदी से कहकर उसे सभा-भवन में ले आओ । वह अब हमारी दासी है ।" सभा के लोग भाइयों का ऐसा पतन देखकर रोने लगे । विकर्ण द्रौपदी के पास गया । पाँसे के समाचार सुनकर द्रौपदी ने पूछा, "विकर्ण ! महाराज युधिष्ठिर ने पहले अपनी बाजी लगायी थी या मेरी ?" विकर्ण ने विनीत भाव से कहा, "देवी ! महाराज युधिष्ठिर ने पहले अपने साथ चारों भाइयों की बाजी लगायी थी ।" द्रौपदी ने कहा, "तो जाओ, सभा में कहो कि द्रौपदी नहीं आना चाहती । महाराज युधिष्ठिर खुद हारकर, अपना स्वत्व खोकर, मेरी बाजी नहीं लगा सकते, यह अन्याय है ।" विकर्ण ने सभा में लौटकर द्रौपदी का समाचार दुर्योधन को सुनाया । भीष्म और विदुर आदि विद्वज्जनों ने द्रौपदी की उक्ति का समर्थन किया, परन्तु मदान्ध दुर्योधन को न्याय कब सूझता था ? उसने दुःशासन को सभा में द्रौपदी को पकड़ लाने के लिए भेजा । दुःशासन को देखकर बड़ी विनय से द्रौपदी ने कहा, "दुःशासन, मेरी लज्जा न लो । मैं कुल-वधू हूँ । मेरे धर्म की ओर देखो । फिर इस समय मैं रजस्वला हूँ ।" दुःशासन ने द्रौपदी की विनय पर ध्यान न दिया । उसकी क्रूर मुद्रा देखकर द्रौपदी गान्धारी के महल को भगी, किन्तु दौड़कर दुःशासन ने खुले बाल पकड़ लिये और घसीटता हुआ सभा-भवन को ले चला ।

सभा में पहुँचकर भीष्म की ओर देखकर रोती हुई द्रौपदी बोली, "पितामह ! क्या आपके कुल की यही मर्यादा है ? क्या महाराज युधिष्ठिर अपनी बाजी लगाने

के बाद हारकर मेरी बाजी लगा सकते थे ?"

अब भीष्म से न रहा गया। उन्होंने कहा, "बेटी, न्याय तेरी तरफ है। कौरवों का अत्याचार पृथ्वी सहन न कर सकेगी।" कृष्णा को विवश सजल नेत्रों से असहाय पतियों की ओर देखते हुए देखकर वीर-श्रेष्ठ भीम से न रहा गया। वह भीषण सिंहनाद से सभास्थल को विकम्पित करते हुए बोले, "हे सूर्य, हे व्योम, हे भीष्म, प्रमादग्रस्त युधिष्ठिर के अन्याय-कार्य के कारण निरपराधिनी कृष्णा का जिस हाथ से नीचात्मा दुःशासन ने केशकर्षण किया है, उस हाथ को मैं युद्ध में उखाड़कर फेंक दूंगा, तुम्हें साक्षी कर प्रतिज्ञा करता हूँ।" सभा-स्थल तथा कौरव कुछ काल के लिए भय से थरथर काँपने लगे। अर्जुन ने भीम को पकड़कर आश्वस्त करते हुए बैठाल दिया, पर भीम को उत्तेजित करने के विचार से दुर्योधन द्रौपदी को देखकर अपनी जाँघ पर थपकियाँ मारता हुआ बैठने का इशारा करने लगा। भीम क्रुद्ध थे ही, पुनः दर्प से उठकर खड़े हो गये, और वैसे ही गरजकर बोले, "दुष्ट दुर्योधन ने जिस जाँघ पर बैठने के लिए इशारा करके कृष्णा का अपमान किया है, मैं अपनी भीम-गदा के प्रचण्ड घात से उसकी उस टाँग को तोड़ दूंगा।"

इस बार धृतराष्ट्र को बहुत बुरा लगा, पर सब लोग विपत्ति की चिन्ता करने लगे। अर्जुन ने फिर भीम को शान्त कर बैठाया। चिढ़कर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी, "द्रौपदी मेरी दासी है, इस सभा में उसे नंगी करो।"

त्रस्त होकर द्रौपदी ने सभा के मनुष्य-मनुष्य से लाज बचाने की प्रार्थना की, पर सब लोगों ने सिर झुका लिया। तब कृष्णा को कृष्ण की याद आयी। सजल आँखों ऊँचे स्वर से पुकार-पुकारकर कहने लगी, "हे दीनबन्धु ! हे भक्तवत्सल ! हे करुणासागर, कृष्ण, इस विपत्ति में तुम्हीं मेरे उद्धारकर्त्ता हो। दासी की लाज तुम्हारे ही हाथ है भगवन् !"

भगवान् कृष्ण का मन चंचल हो उठा, वह अपने पूर्ण रूप की ओर जाने लगे, तो द्रौपदी की दशा उनके ध्यान-नेत्रों के सामने आ गयी। वह इस अत्याचार से चकित हो गये, और माया का स्मरण किया। माया हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी। भगवान् कृष्ण ने कहा, "हस्तिनापुर की राजसभा में द्रौपदी का वस्त्रहरण हो रहा है। जाओ, उसे नग्न न होने दो।" द्रौपदी हाथ जोड़े हुए प्रार्थना करती जाती थी, दुःशासन वस्त्र खींचता जा रहा था। वह खींचते-खींचते थक गया, हारकर बैठ गया।

द्रौपदी की प्रार्थना से धृतराष्ट्र को भी दया आ गयी। उन्होंने कहा, "बेटी, तू माँग, क्या माँगती है ?" द्रौपदी ने आँसू पोंछकर कहा, "महाराज, युधिष्ठिर जो कुछ हार चुके हैं, वह सब वापस कर दीजिए।" महाराज धृतराष्ट्र ने कहा, "बेटी, तेरे लिए हमने वह सब वापस कर दिया।" यह कहकर वह सभा-भवन से चले गये। रास्ते में दुर्योधन के मित्रों ने कहा, "आपने दुर्योधन के लिए बड़ा बुरा किया। भीम की प्रतिज्ञा आप सुन चुके हैं।" धृतराष्ट्र को पुत्र-स्नेह ने फिर दवाया। उन्होंने बचने का उपाय पूछा। उन मित्रों ने कहा, "राज्य वापस देकर बारह साल के वनवास और एक साल के अज्ञातवास की बाजी पर फिर जुआ हो। इस तरह पाण्डव हारकर राज्य पाने का मौका ही न पायेंगे, न दुर्योधन मारा जायगा।" धृतराष्ट्र ने फिर आज्ञा दे दी।

लाचार होकर युधिष्ठिर को फिर खेलना पड़ा, क्योंकि राज्यप्राप्ति के लिए धृतराष्ट्र की यह शर्त भी जोड़ दी गयी। इस बार भी युधिष्ठिर ही हारे।

वनपर्व

पाण्डवों का काम्यक-वन के लिए प्रस्थान

जुए में सर्वस्व हारकर बारह साल का वनवास और एक साल का अज्ञातवास भी स्वीकार करके खिन्न-चित्त से पाण्डवों के साथ युधिष्ठिर वन के लिए तैयार होने लगे। चारों भाई और द्रौपदी उनका अनुसरण करते हुए चले। माता कुन्ती वृद्धा हो गयी थीं, इसलिए युधिष्ठिर उन्हें विदुर के घर ले गये, और कष्टों के झेलने की उनकी असमर्थता समझाते हुए भक्तिपूर्वक बोले, "माता, जब तक हम लोग वन-वास और अज्ञातवास की अवधि पूरी करके पापी दुर्योधन से बदला नहीं चुकाते, तब तक आप चाचा विदुर के ही यहाँ रहें।" इसके बाद कृष्णा-सहित पाँचों भाइयों ने उन्हें प्रणाम कर पुरोहित धौम्य के साथ वन के लिए प्रस्थान किया। मलिन वेश धारण किये हुए युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चारों भाई द्रौपदी के साथ चले जा रहे थे। बात-की-बात में खबर हस्तिनापुर में फैल गयी। लोग दुर्योधन तथा आँख के अन्धे होकर भी अक्ल के दुश्मन राजा धृतराष्ट्र की कड़ी आलोचना करने लगे। ब्राह्मणों ने सोचा, 'ऐसे अधम राजा का राज्य इसी समय छोड़ देना चाहिए। जहाँ अन्याय है, जहाँ धर्म की ओर दृष्टि नहीं, वहाँ ब्राह्मणों को कदापि न रहना चाहिए।' वे अन्य पुरवासियों के साथ एकत्र होकर उच्च स्वर से युधिष्ठिर का नाम लेकर पुकारते हुए पीछे-पीछे दौड़े। ब्रह्म-मण्डली तथा पौर-जनों को प्रेमवश पीछा करते हुए देखकर धर्मात्मा युधिष्ठिर खड़े हो गये। ब्राह्मणों ने घेरकर कहा, "धर्मराज, बिना तुम्हारे यह राज्य श्मशान से भी भयंकर है। हम लोग भी तुम्हारे साथ वन चलेंगे। हम पर दया करो, हमें अपने साथ ले चलो, यहाँ हमारा निबाह न होगा।" ब्राह्मणों के साथ तमाम साधारण लोगों को देखकर महाराज युधिष्ठिर चिन्ता में पड़ गये। सोचकर ब्राह्मणों तथा पुरवासियों को धैर्य देते हुए बोले, "हे विप्रगण! आप लोग प्रायः सभी वृद्ध हो रहे हैं। वन के दुःसह कष्टों को न झेल सकेंगे। पुनः, मैं अब राजा नहीं रहा। वन में आप लोगों की उचित सेवा तथा भोजन-पान का प्रबन्ध मैं न कर सकूँगा। इससे मुझे पाप होगा। इसलिए आप लोग अपने-अपने गृह लौट जाइए। अवधि पूरी कर मैं आप लोगों की सेवा में हाजिर हो सकूँ,इसके लिए घर बैठे हुए ही परमात्मा से प्रार्थना कीजिए, इससे मेरा यथेष्ट कल्याण होगा।" पर महाराज युधिष्ठिर के आश्वासन से भी ब्राह्मणों ने पीछा न छोड़ा। अन्य लोग तो लौट गये। ब्राह्मणों ने कहा, "महाराज चौथेपन में तपस्या

करना हमारा धर्म है। आप हमारे भोजन-पान की चिन्ता न कीजिए। हम भिक्षा-भ्रमण कर लेंगे। हम केवल आपके साथ रहना चाहते हैं।" लाचार होकर महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को साथ ले लिया।

ब्राह्मणों को साथ चलते हुए देखकर पुरोहित धौम्य ने महाराज युधिष्ठिर को सूर्यदेव को उपासना द्वारा प्रसन्न करने की सलाह दी। युधिष्ठिर से स्वीकृति होने पर मन्त्र तथा पूजा का विधान भी बतला दिया। भगवान् मरीचिमाली ही संसार को अन्न तथा जल देकर प्रसन्न करते हैं, इस भाव से मन्त्र जपते हुए महाराज युधिष्ठिर उपासना पूर्ण करने लगे। मन्त्र-सिद्धि के समय दिव्य रूपधारी सूर्यदेव युधिष्ठिर के सामने आविर्भूत हुए, और अक्षयथाली देते हुए बोले, "इसे लेकर तुम ब्राह्मणों की सेवा करो।" द्रौपदी भोजन पकाकर उसी थाल में लेकर ब्राह्मणों को खिलाने लगीं। पाण्डवों को भोजन कराकर बाद को स्वयं भोजन करतीं। सब लोगों की तृप्ति होने तक बराबर थाली से अन्न निकलता रहता। इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र होते हुए सरस्वती नदी के किनारे पर काम्यक-वन में जाकर वास करने लगे।

इसी समय एक दिन महाराज धृतराष्ट्र विदुर पर अत्यन्त रुष्ट हो गये। कारण यह था कि विदुर पाण्डवों के पक्ष से प्राय: राजसभा में उनकी तारीफ करते थे। धृतराष्ट्र में पुत्र-स्नेह की दुर्बलता थी। एक दिन उन्होंने विदुर को दुत्कार दिया। उन्होंने सोचा, यह मेरे पुत्रों का अमंगल चाहता है। विदुर को इस अपमान से सख्त चोट पहुँची। वह पाण्डवों के पास रहने के लिए, काम्यक-वन को चल दिये। उनके जाने से पाण्डवों को धृतराष्ट्र के मन्द व्यवहार पर बड़ा क्षोभ हुआ; पर विदुर को वे पिता की ही तरह समझने और उनकी सेवा करने लगे। कुछ दिनों बाद महाराज धृतराष्ट्र को विदुर की सहृदयता का अभाव खटकने लगा। बचपन से उनका जो स्नेह तथा आदर प्राप्त करते आ रहे थे, उसके बिना आत्मा विकल होने लगी; तब संजय को बुला लाने के लिए भेजा। संजय के पहुँचने पर पाण्डवों ने विदुर को जाने की ही सलाह दी। माता कुन्ती उन्हीं के यहाँ रहती थीं। विदुर भी राजाज्ञा तथा अन्य बातों का विचार कर हस्तिनापुर चले गये।

राजकुमार होने के कारण वनवास में पाण्डवों को कष्ट तो होता था, पर स्वभाव के साधु होने के कारण महात्माओं तथा तीर्थों के दर्शन से, उनके अमृतोपम उपदेशों तथा प्राकृतिक दिव्य छटाओं के प्रभाव से उन्हें आत्मिक तथा कायिक प्रसन्नता ही होती थी। पाण्डव काम्यक-वन, द्वैतवन आदि अनेकानेक वनों, शैल-शिखरों, तीर्थों तथा देवालयों की यात्रा करते फिरे। उनके वनवास की खबर अब तक भारतवर्ष-भर में फैल चुकी थी। पांचाल-राज को इससे बड़ा दुःख हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण सुनते ही पाण्डवों से मिलने को चल दिये। प्राणतुल्य पाण्डवों तथा आत्मा के समान प्यारी बहन कृष्णा को देखकर कृष्ण करुणा से विचलित हो गये, आँखों से अनर्गल अश्रु-धार बहने लगी। कृष्णा भी प्रिय कृष्ण को देखकर रोके हुए भाव के प्रबल वेग को न रोक सकी, उन्हें पकड़कर रोने लगी। श्रीकृष्ण ने अपने को सँभालकर द्रौपदी को अनेक प्रकार से धैर्य दिया, पाण्डवों को भी समझाया कि वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि पूर्ण कर, वे हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन से

अपना राज्य वापस माँगें। इस प्रकार की अनेकानेक बातें हुईं। पाण्डवों तथा द्रौपदी ने कृष्ण की बड़ी खातिरदारी की।

पाण्डव धार्मिक तथा राजनीतिक बातों से वनवास का समय पूरा कर रहे थे, इसी समय वेदव्यासजी उनसे आकर मिले। पाण्डव द्वैत-वन से पुनः काम्यक-वन में आकर रह रहे थे। पाण्डवों की तपस्या के समाचार से प्रसन्न होकर भगवान् वेदव्यास ने कहा, "वत्स युधिष्ठिर, मैं चाहता हूँ, जब तक तुम लोग वनमें हो, तब तक भावी युद्ध की तैयारी के लिए दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर लो। दुर्योधन का जैसा स्वभाव है, इससे ज्ञात होता है, तुम्हारे लिए युद्ध करना अनिवार्य होगा, पर बिना पूरी तैयारी किये तुम लोग भीष्म, द्रोण-जैसे महारथ वीरों का मुकाबला न कर सकोगे।" व्यासदेव की यह आज्ञा युधिष्ठिर के चित्त में बैठ गयी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "भगवन्, हमें तो दिव्यास्त्रों की साधना का कोई मार्ग मालूम नहीं, आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा करने के लिए हम तन-मन से तैयार हैं।" मुस्कराकर व्यासजी ने कहा, "वत्स युधिष्ठिर, तुम धर्म-पुत्र हो। साधुओं से किस प्रकार बातचीत की जाती है, यह तुम जानते हो; तुम्हारी सदाशयता से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुममें अर्जुन बुद्धिवृत्ति तथा क्षात्रवीर्य का उत्तम आधार है। तप के द्वारा देवों के शिरोमणि महादेवजी को प्रसन्न करके अर्जुन पाशुपत अस्त्र प्राप्त करे, तो तुम्हारी शक्ति का फिर संसार सामना नहीं कर सकता। इन्द्रादि देवताओं को भी प्रसन्न कर उनके अमोघ अस्त्र प्राप्त करना चाहिए। मैं सलाह दूंगा, कैलासपर्वत पर जाकर अर्जुन भगवान् पशुपति की तपस्या करे। अपर देवों से इसके बाद आप मुलाकात हो जायगी।" इस प्रकार उपदेश देकर व्यासजी ने प्रस्थान किया।

अर्जुन की तपस्या और शस्त्रप्राप्ति

महाराज युधिष्ठिर ने अपर भाइयों तथा द्रौपदी के सामने महावीर अर्जुन को स्नेहपूर्वक बुलाकर कहा, "भाई! हम लोगों में बाण-विद्या-विशारद तुम्हीं हो। महर्षि वेदव्यासजी की आज्ञा तुमने भी सुनी है। दुर्योधन से युद्ध होने के पहले हमें यथेष्ट शक्ति-संग्रह कर लेना चाहिए। अभी हम इतने योग्य नहीं हो सके कि भीष्म-द्रोण-जैसे महावीरों का युद्ध में सामना करें। हमें तैयारी के लिए देवताओं से भी शस्त्र-संग्रह कर लेना चाहिए। भगवान् पशुपति से पाशुपत नामक महास्त्र प्राप्त करना अत्यावश्यक है। इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, यम आदि देवताओं को भी शक्तियों का संग्रह आवश्यक है। तुम उत्तराखण्ड जाकर भगवान् शिव को तपस्या से तुष्ट करके पाशुपत नामक महास्त्र प्राप्त करो। शक्ति को प्राप्त करके ही हम शत्रुओं में आतंक पैदा कर सकेंगे।"

तपस्या; शक्ति-संचय और भावी युद्ध की बात सुनकर अर्जुन रोमांचित हो उठे। उनकी नसों में रक्त की तीव्र धारा बहने लगी। बाँहें वीररस के स्फुरण से फड़कने लगीं। हृदय पुलकित हो बारंबार उच्छ्वसित होने लगा। शौर्य और प्रतिभा से मुख-मण्डल प्रदीप्त हो गया। उन्होंने उसी वक्त अपना तरकस बाँधा, और हाथ में धनुष लेकर यात्रा की तैयारी कर दी। श्रद्धा से धर्मराज और महावीर भीम के चरण छुए। फिर सविनय सिर झुकाकर गद्गद कण्ठ से कहा, "दादा, अब

धर्मराज, कृष्णा, नकुल और सहदेव की रक्षा का आप ही पर भार रहा। देखिएगा इन्हें किसी प्रकार की विपत्ति न हो।" अर्जुन की पीठ सहलाते हुए स्नेह-स्वर से भीमसेन बोले, "वीर ! जाओ। तुम्हारा मार्ग सुगम और साधना सफल हो। यहाँ से निश्चिन्त रहना।" नकुल और सहदेव भूमिष्ठ हो अर्जुन को प्रणाम करने लगे। उन्हें उठाकर स्नेह देकर अर्जुन बिदा हुए।

पति को दीर्घकाल के लिए जाते हुए देखकर कृष्णा वहाँ से चलकर एक कुंज में प्रतीक्षा कर रही थी। अर्जुन ने जाते हुए देखा था, मिलने के लिए गये। कृष्णा के दोनों कपोलों पर अनर्गल आँसुओं की धारा बह रही थी। शीघ्र लौटने का आश्वासन देकर द्रौपदी की दुःख-भरी दृष्टि से अर्जुन ने बिदा ग्रहण की। फिर वीर तपस्वी की तरह त्याग के प्रभाव से परिवार-प्रेम को भूलकर एकचित्त से भगवान् भूतनाथ का ध्यान करते हुए उत्तराखण्ड की ओर चल दिये।

धैर्यपूर्वक चलते-चलते कुछ दिनों में अर्जुन गन्धमादन-पर्वत आदि दुर्लंघ्य शैलों का अतिक्रमण करते हुए कैलास के पास आ उपस्थित हुए। उन्होंने सामने दृष्टि डाली, तो रास्ते पर एक लम्बी जटाओंवाला वृद्ध तपस्वी देख पड़ा। निकट जाकर अर्जुन ने महात्मा जानकर साधु को प्रणाम किया। रुक्ष भाव से साधु ने अर्जुन से कहा, "यह तपोभूमि है। यहाँ कोई अस्त्र लेकर विचरण नहीं करता। तुम कौन हो ? अस्त्र फेंक दो।"

प्रणाम कर अर्जुन बोले, "महात्मन् ! मैं क्षत्रिय हूँ। अभी मैंने अपने इस धर्म को छोड़ा नहीं, फिर अपने अस्त्र कैसे छोड दूँ ?" अपना उद्देश्य छिपाकर भी अर्जुन ने उचित उत्तर दिया। तपस्वी इस वाक्चतुरता से प्रसन्न होकर स्नेह-दृष्टि से अर्जुन को देखते हुए बोले, "वत्स ! मैं देवराज इन्द्र हूँ। तुम्हारा मनोहर उत्तर सुनकर मैं प्रसन्न हुआ। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, तुम मुझसे तदनुकूल वर माँग लो।"

अर्जुन विनम्र होकर बोले, "हे अमरेन्द्र ! मुझे अपने दिव्य अस्त्र प्रदान कीजिए। मैं आपका शिष्य होकर केवल शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ।"

इन्द्र मुस्कराकर बोले, "वत्स अर्जुन ! तुम देवों के देव जिन महादेव की आराधना के लिए आये हो, उन्हें प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त करो; पश्चात् सम्पूर्ण देवता तुम्हें अपने दिव्यास्त्र प्रदान करेंगे। पर वत्स ! यह तो बताओ, इन अस्त्रों को लेकर तुम करोगे क्या ? मनुष्यों पर तो इन अस्त्रों का प्रयोग वर्जित है।"

दृष्टि झुकाये हुए पाण्डुनन्दन महावीर अर्जुन ने उत्तर दिया, "हे देवेन्द्र ! मेरे भाई राज्य से च्युत, क्षीण-बल होकर वनों में दुःख के दिन बिता रहे हैं। हम लोग राजवंश के होकर भी इस समय सर्वथा भिक्षुक की दशा को प्राप्त हैं। शक्ति का संग्रह इसलिए मेरा लक्ष्य हो रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं उसका दुरुपयोग भी करूँगा।"

प्रसन्न होकर इन्द्र ने अर्जुन की पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया, "वत्स ! तुम संसारप्रसिद्ध महावीर होगे। तुम्हारे अपार रणकौशल की सहायता देवताओं को भी लेनी पड़ेगी। तुम भगवान् पशुपति की साधना में सिद्धि प्राप्त करो। अभी भविष्यांश न कहूँगा।"

देखते-देखते देवराज इन्द्र जैसे कुहरे के पिण्ड में बदलते हुए उड़कर शून्य में विलीन हो गये। महावीर अर्जुन कुछ दूर चलकर कैलास-पर्वत के पद-देश पर एक सुहावनी भूमि निश्चित कर तपस्या में संलग्न हुए।

उत्तरोत्तर अर्जुन की तपस्या उग्र से उग्रतर हो चली। पहले उन्होंने भोजन-पान आदि को संयमपूर्वक वश किया, तत्पश्चात् पूर्ण रूप से आहार का परित्याग कर दिया। पुनः ऊर्ध्वबाहु होकर तप करने लगे। कैलास के तपस्वियों के एक दल ने महावीर कुन्ती-पुत्र की उग्रसाधना से घबराकर भगवान् भूतनाथ से जाकर यह प्रार्थना की, "भगवान्, पाण्डुपुत्र अर्जुन किसी रजोगुण की प्रेरणा से अत्युग्र साधना में लीन हो रहे हैं; उनका तेज सत्त्वगुणवाले साधुओं को असह्य हो रहा है; आप दया कर उनकी मनोवांछा पूरी कीजिए।" भक्तों की प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव मुस्कराये, और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले कि बहुत जल्द वह अर्जुन की तपोऽभिलाषा पूर्ण करेंगे। साधुगण शंकर को भूमिष्ठ प्रणाम कर अपने-अपने आश्रम लौट आये।

एक दिन पार्वतीजी को साथ लेकर महादेवजी अर्जुन की तपःस्थली की ओर चले। अर्जुन को तपस्या करते अब तक पाँच महीने हो चुके थे। वह अपने इष्ट की पूजा के लिए पुष्प आदि का चयन कर अपने स्थान को आये ही थे कि देखा, एक सुअर घुरघुराता हुआ वन के एक कोने से आ निकला। सुअर को देखकर उसे मारने के अभिप्राय से वीर अर्जुन ने धनुष में शर-योजना की। परन्तु देखा, एक व्याध उसी सुअर को अपना लक्ष्य बनाये हुए वन से बाहर निकला। अर्जुन ने व्याध की परवा न की और सुअर पर अपना तीर छोड़ दिया। व्याध और अर्जुन दोनों के तीर सुअर को लगे। विकट चीत्कार करता हुआ सुअर क्षण-मात्र में मृत्यु को प्राप्त हुआ। सुअर को मरा देखकर अर्जुन व्याध से अप्रसन्न हुए, बोले, "जब पहले हम उस पर शर-सन्धान कर चुके थे, तब तुमने तीर क्यों छोड़ा?" व्याध ठहाका मारकर हँसा। बोला, "ऐसी बात तो कोई मूर्ख ही कहेगा। सुअर को तो बहुत पहले से हम अपना निशाना बनाये थे।" नीच जाति के व्याध को उचित शिक्षा देने के लिए अर्जुन ने पुनः धनुष में शरसन्धान किया। व्याध खड़ा हँसता रहा। इसे नीच जाति की असभ्यता से हुआ अपना अपमान समझकर अर्जुन ने क्रोध से धनुष को और कसकर खींचा। तीर पूरी ताकत से छुटा! पर व्याध को उसकी चोट न लगी। वह तीर जैसे हवा को पार कर दूसरी ओर मिट्टी में धँसकर रह गया। मन-ही-मन लजाकर अर्जुन व्याध पर बाणों की वर्षा करने लगे। पर व्याध को एक भी बाण न लगा। वह हँसता हुआ उनके बिलकुल नजदीक आ गया। तब केवल धनुष की नोक से अर्जुन उसे खोदने लगे। जब होश में आये, और अपने क्रोधोन्माद के कारण हुए इस बालपन को समझा, तब धनुष फेंककर तलवार खींच ली और उससे व्याध पर प्रहार किया, पर व्याध की देह में लगकर तलवार टुकड़े-टुकड़े हो गयी। मूठ हाथ से दूर फेंककर क्रुद्ध अर्जुन व्याध से मल्लयुद्ध करने लगे, पर तपस्या से क्षीण हुए शरीर को इतना परिश्रम सह्य न हुआ, अर्जुन थककर वहीं बेहोश हो गये।

व्याध खड़ा रहा। होश में आकर अर्जुन ने सोचा, 'बड़ी देर हो गयी, मैंने

अपने इष्ट की पूजा नहीं की। पहले पूजा कर लूँ, तब व्याध से युद्ध करूँ।' अर्जुन की जबान में अब सभ्यता की झलक आयी। उन्होंने व्याध से कहा, "भाई, एक प्रार्थना मैं तुमसे करता हूँ। तुम आज्ञा दो, तो मैं अपने इष्ट श्रीमहादेवजी की पूजा कर लूँ। इसके बाद मैं तुमसे युद्ध करूँगा।" हँसकर व्याध ने कहा, "अच्छी बात है, अब पूजा करके अपनी शक्ति बढ़ा लो।" इस अपमान को चुपचाप पीकर अर्जुन पूजा करने लगे। पर मन से उन्हें बराबर व्याध लिपटा हुआ देख पड़ा। वह सोचने लगे, 'व्याध के रूप में साक्षात् देवाधिदेव तो मेरी परीक्षा लेने के लिए नहीं आये? मुझे इस प्रकार आज तक किसी महावीर के द्वारा भी लांछित नहीं होना पड़ा।' फिर होश में आ अपना मन्त्र जपने लगे। अपने ही हाथों निर्मित मिट्टी की शिव-मूर्ति को माला पहनाकर भक्ति-भाव से भूमिष्ठ हो प्रणाम कर जब अर्जुन उठे, तब यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि शिवमूर्ति पर चढ़ायी हुई उनकी वही माला व्याध के गले में पड़ी थी। अब उन्हें यह समझते हुए भी भ्रम न हुआ कि वह व्याध उनकी तपस्या से प्रसन्न साक्षात् शिव हैं जो उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करने के लिए आये हुए हैं। अर्जुन ने भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर भूमिष्ठ हो व्याध को प्रणाम किया। फिर आँखें खोलकर देखा, तो साक्षात् महादेव पार्वतीजी के साथ उनके सामने खड़े हुए दीख पड़े। भगवान् सर्वभूतों के पति आशुतोष शंकर ने गम्भीर जलद-स्वर में कहा, "वीर अर्जुन, तुम यथार्थ ही क्षत्रिय हो। तपस्या से क्षीण होते हुए भी तुम मन से किंचिन्मात्र दुर्बल नहीं हुए। तुम्हारा क्षत्रियत्व और एकनिष्ठ तपस्या देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मुझसे जो वरदान चाहो, माँग लो।"

इष्टदेव को प्रसन्न देखकर अर्जुन का हृदय-कमल खिल गया। भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन्होंने उमानाथ शंकर से कहा, "भगवन्! हम लोग राज्य से च्युत होकर हीन भिक्षुकों की तरह वनों में मारे-मारे फिरते हैं। अब हममें कोई शक्ति नहीं रह गयी। आप हम पर कृपालु होकर अपना पाशुपत अस्त्र प्रदान करें, आपके पवित्र चरणों में मेरी यही प्रार्थना है।"

प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने अर्जुन को अपना संसार-प्रसिद्ध पाशुपत-अस्त्र दान किया। इसके प्रयोग और संवरण के मन्त्र भी बतला दिये। फिर सावधान कर दिया कि मनुष्यों पर इस अस्त्र का उपयोग वर्जित है। अर्जुन ने अस्त्र लेकर प्रणाम किया। फिर देखा, तो वहाँ से भगवान् शिव अन्तर्धान हो चुके थे।

अर्जुन का स्वर्ग-गमन

वर प्राप्त कर अर्जुन प्रफुल्ल चित्त से अपने पूजा-स्थान से चलकर रास्ते पर आये, तो देवराज इन्द्र के सारथि मातलि को रथ लेकर खड़े प्रतीक्षा करते देखा। अर्जुन को देखते ही बड़े आदर-भाव से सम्बोधन करते हुए मातलि ने कहा, 'हे पाण्डु-नन्दन! आपके तप की सार्थकता से देवलोक में बड़ी प्रसन्नता है। आपको स्वर्ग ले जाने के लिए देवराज इन्द्र ने मुझे रथसमेत यहाँ भेजा है। मैं देवराज का सारथि मातलि हूँ। स्वर्ग में समस्त देवता आपके पदार्पण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहाँ चलकर अपना अभीष्ट पूरा कीजिए, और बदले में अपने प्राप्त महास्त्र के प्रयोग

से देवशत्रु असुरों का विनाश कीजिए।"

मातलि का आमन्त्रण सुनकर अर्जुन देवलोक देखने की पुलकित आशा से उस सजे हुए उज्ज्वल रथ पर बैठ गये। मातलि ने वायु के समान वेगशाली घोड़ों को स्वर्ग की ओर चालित किया। रास्ते में अर्जुन को अनेकानेक ऐसे लोक देखने को मिले, जिनके अस्तित्व की उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। इस पृथ्वी के क्रिया-कलाप से वहाँ आश्चर्य में डालनेवाली अनेक भिन्नताएँ मिलीं। वहाँ की रचना अर्जुन की समझ में न आयी। वह किन-किन क्रमों से चल रही है, मातलि अर्जुन को संक्षेप में समझाते गये। क्रमशः इन्द्रलोक निकट हो आया। मातलि ने बतलाया, "अब रथ शीघ्र स्वर्ग-राज्य में प्रवेश करनेवाला है।"

इन्द्र, यम, वरुण, जयन्त, अग्नि आदि देवता नियत स्थान पर अर्जुन की प्रतीक्षा कर रहे थे। निश्चित समय पर रथ उपस्थित हुआ। देवताओं ने बड़े स्नेह से महावीर अर्जुन का स्वागत किया। रथ से उतरकर पहले वीर पाण्डु-पुत्र ने देवराज इन्द्र को, पश्चात् अन्यान्य देवताओं को प्रणाम किया। इन्द्र आदि देवताओं ने भी स्नेह से उन्हें हृदय से लगाया। फिर बहुत ही सुन्दर एक सुसज्जित स्थान पर उन्हें ले जाकर ठहराया, और भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थों, माला-चन्दन और पारिजात आदि सुगन्धित पुष्पों तथा दिव्य वस्त्राभूषण और दास-दासियों से उनका आतिथ्य-सत्कार किया।

धीरे-धीरे स्वर्ग में महावीर अर्जुन की दिव्य कीर्ति फैलने लगी। देवताओं ने उन्हें अपने दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी। देवों के विरोधी असुरों का, अपनी अद्भुत दक्षता तथा अस्त्र-विद्या से, उन्होंने विनाश कर दिया। इससे स्वर्ग में उनकी अत्यन्त ख्याति हुई। उन्हें वहाँ रहते पाँच साल पूरे होने को हुए।

एक रात को अर्जुन अपने शयन-गृह में लेटे हुए थे। झरोखों से पारिजात की सुगन्ध भर रही थी। स्वर्ग के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और विभूतियों की कल्पना में अर्जुन का मन मर्त्य की लोलुप ईर्ष्या को मिलाकर देख रहा था कि स्वर्ग और मर्त्य के भेदों का कारण क्या है। साथ ही अपने राज्य से च्युत भाइयों और कृष्णा की याद आ रही थी—'अब तक दुर्योधन की ईर्ष्या की आग से वे दग्ध तो न हो गये होंगे?' भीम के अपार बल का भरोसा उन्हें शान्त कर रहा था। कृष्ण, सुभद्रा आदि-आदि प्रियजनों की स्मृति के चक्र में इसी प्रकार मन प्रवर्तित हो रहा था। शस्त्र और गीत-नाट्य की शिक्षा पूरी होने ही को थी, पर अधीरता कभी-कभी उसे अधूरी ही छोड़कर युधिष्ठिर और कृष्ण-कृष्णा आदि से मिलने के लिए निस्संग बढ़ जाती थी। प्रतिज्ञा, संकल्प और सिद्धि आदि के शास्त्रीय विचार उन्हें आश्वासन देकर रोक लेते थे।

इस तरह के विचारों में अर्जुन का एकाकी मन लगा हुआ था, तभी शय्या पर एक अप्सरा के बैठने के स्पर्श से प्रदीप्त कामोत्तेजना से सजग हो वह उठकर बैठ गये। देखा, स्वर्ग की निरुपमा सुन्दरी अप्सरा उर्वशी है, जिसे इन्द्र की सभा में लघु-चपल-पद मनोहर अपूर्व नृत्य करते हुए उन्होंने देखा था। उसकी भंगिमा, वासनासिक्त आयत नेत्र, उसका चन्द्रनिन्दित अतन्द्र कान्ति से खिला शुभ्र मुख, इन्दीवर गन्ध, मुक्त प्रलम्ब केश और चिर-यौवन-भारोत्फुल्ल शोभा देखकर अर्जुन

विस्मित-से देखते ही रहे। दैत्य-विजयी संसार के श्रेष्ठ नर-रत्न को रूप द्वारा परास्त समझकर अप्सरा मुस्करायी। अर्जुन होश में आ उठकर खड़े हो गये। विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले, "माता! ऐसे समय आने का कष्ट क्यों किया?"

अर्जुन के सम्बोधन से उर्वशी दंग हो गयी। बड़ी लज्जा लगी, पर वारांगना अपना संकोच छोड़कर बोली, "पार्थ! तुम ऐसे सम्बोधन से मुझे लज्जित कर रहे हो। अप्सरा कभी माता और वधू नहीं बनती। वह उसी की है, जिसे वह चाहे, उसे जो चाहे। मैं तुम्हें चाहती हूँ। तुम्हारी कामना करके ही मैं यहाँ आयी हूँ।"

अर्जुन धीमे स्वर से बोले, "माता! आपकी यह वासना सफल नहीं हो सकती। आप मेरे वंश की माता हैं। पुनः आप देवराज की अप्सरा हैं। वह मेरे गुरु और पिता हैं। माता! मुझे कृपा की दृष्टि से देखिए, मेरा कल्याण कीजिए। मैं मनुष्य हूँ। रूप के वश हो जाना तो मनुष्य की ही जन्म-सिद्ध दुर्बलता है। रूप-दर्शन के क्षणिक अपराध के लिए मुझे क्षमा कीजिए, और अब आगे कभी इस प्रकार का दोष न हो, ऐसा वर दीजिए। मैं विद्यार्थी हूँ। यहाँ अस्त्र तथा नृत्य-गीत-शिक्षा के लिए आया हुआ हूँ। विद्यार्थी का धर्म भोग नहीं। पुनः संगीत तथा नृत्य-शास्त्र में आचार्य गंन्धर्वों की कोटि में आप भी हैं, इस प्रकार आप भी मेरी आचार्या हैं। मैं इतने अपराधों का भार किस प्रकार उठा सकूँगा, देवि?"

उर्वशी चकित हो अर्जुन को देखती रही। वासना से जर्जर हृदय से दीर्घ निःश्वास छोड़ बोली, "अर्जुन! अप्सरा से भोग में दोष नहीं। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। एक तो मैं जाति से काम की उपासना के लिए पुरुष-विचार से, उच्च-नीच, श्रेष्ठ-अपकृष्ट के द्विधा-संकोच और ग्रहण-त्याग से परे हूँ; दूसरे, स्त्री होकर, तुम्हारे सहयोग की कामिनी हूँ; तुम अपनी ओर से संकोच करके विजयी वीर होकर, कापुरुष, निर्वीर्य न बनो। मेरी वासना तृप्त करो।"

अर्जुन लज्जा और ग्लानि से काँपने लगे। बोले, "मैं आपके सामने धर्मच्युत नहीं हो सकता। आप देवराज इन्द्र की प्रेमिका हैं, मेरी माता हैं। मुझे आप क्षमा करें।"

उर्वशी सँभली। बोली, "लेकिन तुम्हें दूसरे दोष से छुटकारा न मिलेगा।"

अर्जुन ने कहा, "और जो भी दोष होगा, मैं ग्रहण करने के लिए नतमस्तक हूँगा।"

"तो अर्जुन," उर्वशी बोली, "तुम एक वर्ष तक नपुंसक रहोगे। यह मैं कामिनी के रूप में कह रही हूँ, लेकिन वत्स, तुमने मुझे माता कहा है, मैं तुम्हारी इन्द्र-सम्बन्ध से माँ हूँ। माँ होकर तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, यह शाप तुम्हारे लिए वरदान होगा। जब एक साल का अज्ञातवास पूरा करोगे, उस समय नपुंसक के रूप में अपने को छिपाकर रख सकोगे। तुम्हें कोई पकड़ न पायेगा।"

कहकर उर्वशी स्नेह की पवित्र दृष्टि से अर्जुन को निहारने लगी। अर्जुन ने आदर से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

पाण्डवों का कार्यक्रम

कई वर्ष हो गये, पर अर्जुन की खबर न मिली। इससे पाण्डव उदास रहते थे।

अर्जुन की बातें सोचते हुए एकान्त में द्रौपदी की आँखें सजल हो आती थीं, पर कोई चारा न था। आँचल से आँसू पोंछकर बड़े धैर्य से वह अर्जुन की बाट जोहती रहीं। सब भाइयों तथा कृष्णा को अर्जुन के वियोग से दुखी जानकर भीम उनकी साधना तथा तत्परता की बीती कथाएँ सुनाकर धैर्य देते थे। कहते थे, "अर्जुन में बालपन से मैंने जैसी लगन देखी है, कि वह अवश्य अपनी शिक्षा के उद्योग में होगा। वह देवताओं की शरण में गया है, उसका अमंगल तो कभी हो ही नहीं सकता।" भीम के विश्वासपूर्ण मेघ-गम्भीर शब्दों से भाइयों के साथ द्रौपदी को बल प्राप्त होता, वे स्वस्थ हो जाते थे। इस प्रकार दु:ख में भी जप, तप, वेद-पाठ तथा ऋषि-ब्राह्मणों की सेवा में उनके दिन पार होते रहे।

इसी समय एक बार पाण्डवों के यहाँ महर्षि बृहदश्व ने आतिथ्य स्वीकार किया। धर्मराज ने उनका हृदय से स्वागत तथा आदर-सत्कार किया। महर्षि के भोजन-पान के पश्चात् युधिष्ठिर अपने दु:ख की कथा सुनाने लगे। जुए में युधिष्ठिर को राज्य हारा हुआ सुनकर बृहदश्व ने कहा, "राजन्, यदि अब आगे कभी जुआ खेलने की नौबत आये, तो आप मुझे बुलाइएगा। इसके हुनर मेरे अच्छे जाने हुए हैं। आप सीधे, सज्जन मनुष्य हैं, इसीलिए हार गये।" महर्षि जुआ खेलने में कुशल हैं, यह जानकर युधिष्ठिर ने अनुरोध किया कि वह कृपा कर उन्हें वे सब हुनर सिखला दें। महर्षि बृहदश्व को उनकी प्रार्थना मंजूर हुई, और धर्मराज को जुए के दाँव-पेंच बतलाने के लिए वह वहीं कुछ दिनों तक टिके रहे।

कुछ दिनों बाद महर्षि नारद पाण्डवों से आकर मिले। पाण्डवों ने उनका बड़ा सम्मान किया। नारद ने कहा, "महर्षि लोमश इन्द्रलोक से अर्जुन के कुशल-समाचार लेकर शीघ्र आपसे आकर मिलेंगे। आप चिन्ता न करें, स्वर्ग में जब तक अर्जुन अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, तब तक आप महर्षि लोमश के साथ देशाटन तथा तीर्थ-दर्शन कर डालिए।" नारद ने महाराज युधिष्ठिर के आग्रह से अनेक प्रकार की धार्मिक कथाएँ सप्रेम सुनायीं।

नारद के कथनानुसार कुछ दिनों बाद लोमश ऋषि इन्द्रलोक से अर्जुन का शुभ संवाद लेकर पाण्डवों से आकर मिले। उन्हें देखकर पाण्डवों के हृदय की लता हरी हो गयी। बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से युधिष्ठिर-भीम आदि ने उनका स्वागत किया। द्रौपदी ने कुछ जल से और कुछ आँसुओं से उनके पैर धोकर आँचल से पोंछे, और बैठने को पवित्र मृगचर्म बिछा दिया। फिर संचित किया हुआ भोजन, फल, मधु आदि उनकी सेवा में लाकर रखा। तृप्तिपूर्वक भोजन कर ऋषि ने प्रसन्न पाण्डवों को आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर ऋषि से अर्जुन का संवाद पूछा। सब भाई और कृष्णा वहीं उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। प्रसन्न होकर लोमश बोले, "महाराज, अर्जुन ने महादेव को प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त कर स्वर्ग में बड़ी कीर्ति अर्जित की है। अब वहाँ देवों की युद्ध-विद्या सीख रहे हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ भी प्रसन्न उन्हें नृत्य-गीत की शिक्षा दे रही हैं। उनके दिन बड़े सुख से बीत रहे हैं। उन्हें केवल यही कष्ट है कि वह अपनी शिक्षा पूरी कर अभी तक आप लोगों से आकर नहीं मिल सके। देवराज इन्द्र ने आपको धैर्य रखने के लिए सन्देश भेजा है, और कहा है कि कर्ण के कवच की चिन्ता न करें, उसके

लिए देवराज स्वयं प्रयत्न करेंगे। अर्जुन ने आपको और भीमसेन को प्रणाम, नकुल और सहदेव को स्नेह और द्रौपदी को प्रेम सूचित किया है।"

पाण्डवों के मुख पर प्रसन्नता छा गयी। युधिष्ठिर ने अनुरोध किया, "भगवन्! जब तक अर्जुन शिक्षा पूरी करके आते हैं, तब तक हमें आप तीर्थों के दर्शन करा दें। महर्षि नारद ने मुझे आज्ञा की है कि आपके सभी स्थान देखे हुए हैं।"

लोमश शान्त स्वर से बोले, "युधिष्ठिर, तीर्थ-दर्शन की लालसा बड़े भाग्यवान् मनुष्य में पैदा होती है। तीर्थों में बड़े-बड़े तपस्वियों के भी दर्शन होते हैं, और यों तो तीर्थ प्राकृतिक सौन्दर्य के आगार हैं ही। मैं दो बार समस्त भारतवर्ष के तीर्थों की यात्रा कर चुका हूँ। अच्छी बात है, इस पवित्र संकल्प में मैं अवश्य सहायक हूँगा।"

महाराज युधिष्ठिर ने वृद्ध ब्राह्मणों को बुलाकर विनयपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा, "आप लोगों को मेरे साथ तीर्थ-भ्रमण में विशेष कष्ट होगा, अतः आप अब महाराज धृतराष्ट्र के यहाँ लौट जाइए; मुझे विश्वास है वह आप लोगों के प्रति विरोधाचरण न करेंगे; और यदि वहाँ आप लोगों को स्थान न मिले, तो आप लोग पांचाल चले जायँ; वहाँ पांचालराज, सम्बन्ध का विचार कर, आप लोगों को अवश्य ही आदरपूर्वक बसा लेंगे।"

निश्चित पुष्य नक्षत्र में जप, यज्ञ और स्वस्ति-पाठ करके लोमश ऋषि के साथ पाण्डव तीर्थ-भ्रमण के लिए नैमिषारण्य की ओर चले। साथ पुरोहित धौम्य तथा रहे-सहे ब्राह्मण भी थे। मार्ग में तरह-तरह की कथाएँ अपने-अपने गिरोह में होती जाती थीं। यथासमय सब लोग गोमती-नदी के तट पर स्थित सुप्रसिद्ध नैमिषारण्य में आकर उपस्थित हुए। यहाँ से अधिक ऋषि कभी भारत के किसी तपोवन में न थे। सब लोग तपोवन की शान्त शोभा देखकर मुग्ध हो गये।

यहाँ प्रयाग, वेदतीर्थ और गया आदि तीर्थों में ऋषियों तथा प्राकृतिक रम्यता के दर्शन करते, अनेकानेक कथाएँ सुनते हुए सब लोग गंगासागर नाम के प्रसिद्ध तीर्थ में उपनीत हुए। अपार जल-राशि की वीचिसंकुल लीला ब्रह्म और संसार का दिव्य ज्ञान देने लगी। महाराज युधिष्ठिर को तीर्थ बहुत ही सुहावना मालूम दिया। यहाँ से वह दक्षिण की ओर चले। वैतरणी नदी तथा कलिंग-राज्य को पार कर दाहिने हाथ को चलते हुए सुदूर प्रभास तीर्थ में आये।

यहाँ यादवों ने पाण्डवो का बड़ा स्वागत-सम्मान किया। सुभद्रा बड़े स्नेह से द्रौपदी से मिलीं। उनके तीर्थों के चले चरणों की धूलि ग्रहण कर अपने सौभाग्य की प्रशंसा करने लगीं। बलराम जुए के अन्याय का उल्लेख करते हुए पाण्डवों की दशा पर दुखी हुए। कृष्ण ने भाग्य पर सारा दोष मढ़ा। सात्यकि ने रोष में आकर कहा, "इस अन्याय का बदला यह होगा कि हमीं यादव लोग अपनी सेना लेकर कौरवों पर चढ़ाई करें, और उन्हें मारकर पाण्डवों का राज्य उन्हें वापस दें।" धर्म-पुत्र युधिष्ठिर बोले, "नहीं, हमें वनवास की प्रतिज्ञा तो पूरी करनी ही होगी। नहीं तो अधर्म होगा। इसके बाद यदि युद्ध की ही नौबत आयी, तो कोई बात नहीं।" कृष्ण को युधिष्ठिर की नीति से युक्त उक्त पसन्द आयी। बलराम मुस्कराकर

बोले, "युधिष्ठिर सत्य ही धर्मराज हैं।"

बड़ी मेहमानदारी के बाद यहाँ से भी पाण्डवों की चलने की तैयारी होने लगी। यहाँ से वे उत्तर को चले। सरस्वती नदी पार करते हुए सिन्धु-तीर्थ होकर कश्मीर पहुँचे। वहाँ से विपाशा नदी उतरकर हिमालय के सुबाहु-राज्य में पहुँचे। इस पार्वत्य प्रान्त के सभ्य राजा ने पाण्डवों का बड़ा सम्मान किया। यहाँ अतिथि-रूप से रहकर पाण्डवों ने मार्ग-श्रम दूर किया। यहाँ से लोमश मुनि मनोहर पर्वतों के दुर्गम मार्गों से पाण्डवों को गन्धमादन-शिखर की ओर ले चले। पहाड़ी, बीहड़ रास्तों से चलते हुए द्रौपदी को बड़ा कष्ट हुआ। भीमसेन उन्हें सहारा देते हुए धीरे-धीरे ले चले। महर्षि लोमश के बतलाने पर सब लोगों ने गन्धमादन और बदरिकाश्रम के बीच से बहती हुई भगवती भागीरथी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

फिर सब लोग एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। बड़ी ऊँची चढ़ाई थी। इसी समय ज़ोर से आँधी चली। एक-एक गिरिशिला के साथ मिलते हुए शिलाओं के ढेर गिरने लगे। बड़ी मुश्किल से बड़े-बड़े पेड़ों के तने पकड़े आड़ में बैठे हुए पाण्डवों ने जान बचायी। इसके बाद जोर से पानी बरसने लगा। जान आफत में थी। द्रौपदी के पैरों से खून के फौवारे छूटने लगे। ऐसी संकटजनक परिस्थिति देखकर भीम ने घटोत्कच को याद किया। पिता को संकट में पड़ा हुआ जानकर, उसी वक्त वह वीर आकर हाजिर हुआ, और भीम को प्रणाम किया। भीम ने कहा, "तुम्हारी माता द्रौपदी अब चल नहीं सकतीं। मार्ग दुर्गम है। नकुल, सहदेव को भी कष्ट है, पर वे किसी तरह चले चलेंगे।" घटोत्कच ने सहानुभूति-सूचक स्वर में कहा, "पिताजी, मेरे और भी साथी हैं। मैं उन्हें बुलाता हूँ। आपमें से किसी को पैदल न चलना होगा।" यह कहकर उसने क्षण-मात्र में अपने अनेकानेक साथियों को बुला लिया। वे लोग पाण्डवों तथा महर्षि लोमश आदि को कन्धे पर बिठाकर एक अत्यन्त सुहावने स्थान पर ले आये।

भीमसेन की हनुमान्‌जी से भेंट, कमल लाना

बदरिकाश्रम के इस रम्य वन की शोभा पाण्डवों को बहुत पसन्द आयी। कलकल-नाद करते पहाड़ों से झरने उतर-उतरकर जाह्नवी से मिल रहे थे। पर्वतीय रंग-बिरंगी चिड़ियाँ, जैसी समतल भूमि पर उन्हें नहीं देख पड़ीं, डालों पर मधुर स्वर से प्रकृति के मंगल-गीत गा रही थीं। हिम पर पड़ती हुई सूर्य की रश्मि से अनेक प्रकार के आश्चर्यकर सुन्दर वर्ण बदल रहे थे, जैसे स्वर्ग के जगमग चित्रित स्वर्ण-द्वार का ही रूप हो। वहाँ सभी के मुखों पर निष्काम भाव, शान्ति विराज रही थी।

एक दिन हजार दलोंवाला एक कमल किसी तरह हवा से उड़कर द्रौपदी के पास आकर गिरा। उसकी मंजुल शोभा देखकर, उसकी सुगन्ध से दूरतर क्षेत्र को भी मोद मिलता हुआ जानकर द्रौपदी ने भीमसेन से प्रणय का अनुरोध कर कहा, "देखो प्रिय, यह फूल तो मैं धर्मराज को भेंट करने के लिए लिये जा रही हूँ, पर यदि तुम मुझे प्यार करते हो, तो ऐसे ही फूल मेरे लिए और ले आओ—उस तरफ

से उड़कर आया है, कहीं उधर ही खिलता होगा।" कहकर चपल चरणों से द्रौपदी धर्मराज को फूल उपहार देने चली गयी। भीम कुछ देर तक प्रिया की चपलता को देखते रहे, फिर गदा उठाकर उसी तरफ को चल दिये। कुछ ऊँचे चढ़ने पर उन्हें उसे कमल की-सी सुगन्ध मिलने लगी।

पहाड़ चढ़ जाने के बाद भीमसेन को एक बड़ा केले का वन मिला। एक पगडण्डी वन के बीच से गयी थी। उसी पर चलने लगे। जहाँ रास्ता न मिलता, वहाँ केले के पेड़ उखाड़कर रास्ता कर लेते थे। इस उत्पात से वन के बन्दर और हिरन आदि डरकर इधर-उधर भागने लगे। भीमसेन कुछ बढ़े तो देखा, एक बड़ा-सा बन्दर बीच रास्ते में पड़ा हुआ था। उसके पास जाकर भीम ने जोर से हाँक लगायी। उस गर्जना से वहाँ के पशु-पक्षी डरकर चारों ओर भागने और उड़ने लगे, पर बन्दर अपनी जगह से न हिला। भीम ने डाँटकर कहा, "तू रास्ता क्यों नहीं छोड़ता ?"

बन्दर बोला, "बुड्ढा हो गया हूँ। उठ नहीं पाता। मेरी पूँछ को एक तरफ को कर दो, फिर चले जाओ।"

भीम ने सोचा—ठीक है। पूँछ पकड़कर इन्हें ऐसा फेंका जाय कि बिना चढ़े किसी केले के पेड़ पर चढ़ जायँ। सोचकर बायें हाथ से पूँछ पकड़कर उठाया। पर बन्दर न हिला। तब गदा बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से उठाने लगे। फिर भी बन्दर न उठा। यह देखकर भीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ लजाये भी। पर हिम्मत करके गदा जमीन पर रखकर, दोनों हाथों पूरे जोर से पूँछ पकड़कर उठाने लगे। बन्दर फिर भी न हिला। भीमसेन बहुत लज्जित हुए। हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए, और विनयपूर्वक परिचय पूछा। उत्तर मिला, "मैं रामचन्द्रजी का दास हूँ, मुझे हनुमान कहते हैं।" भीमसेन चरणों पर गिर पड़े। पैरों की धूलि मस्तक पर लगायी। महावीर बोले, "भीम, तुम एक रिश्ते में मेरे छोटे भाई हो। तुम्हारा जन्म भी पवन के अंक से हुआ है। मेरी इच्छा तुमसे परिचय प्राप्त करने की थी।"

पुनः प्रणाम कर भीम ने अपने भाइयों की विपत्ति की कथा महावीरजी को सुनायी, और महाभारत में पाण्डवों के पक्ष से लड़ने को आमन्त्रित किया। महावीरजी ने कहा, "भीम, वहाँ हमारा प्रतिभट कौन होगा ? फिर, हम तो केवल राम के कार्य के लिए लड़ सकते हैं।" भीम ने कहा, "तो आप आइए अवश्य, और मेरे भाई अर्जुन के नन्दिघोष रथ की ध्वजा पर बैठकर भारत का युद्ध देखिए।" भीमसेन का यह आमन्त्रण महावीर ने मंजूर किया। भीम ने फिर कमल दिखाकर उसका पता पूछा। महावीर ने सामनेवाले गन्धमादन-पर्वत पर बतला दिया; और कहा कि वहाँ एक सरोवर है, उसके अधिपति कुबेर हैं; उसी सरोवर पर ऐसे कमल खिले हुए हैं; पर वहाँ रक्षक रहते हैं।

महावीर को भक्तिपूर्वक भूमिष्ठ प्रणाम करके भीमसेन उस सरोवर की तरफ चल दिये। गन्धमादन-पर्वत पर पहुँचकर भीम ने देखा, कि कई झरने एकत्र होकर एक जगह सरोवर का आकार प्राप्त कर बह रहे थे। वहीं सहस्रदल कमल खिले हुए थे। पर वह सरोवर यक्षों से सुरक्षित हो रहा था। भीमसेन सरोवर के किनारे

गये, और उतरकर फूल तोड़ने लगे। जब लेकर चले, तब यक्षों ने उन्हें रोककर उनका नाम और उस तपोभूमि में गदा लेकर आने और फूल तोड़ने का कारण पूछा। भीम ने अपना नाम बतलाते हुए कहा कि क्षत्रियत्व की रक्षा के लिए वह अपना शस्त्र गदा लिये रहते हैं, और वहाँ वह युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और कृष्णा के साथ स्वर्ग से अर्जुन के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस समय वह सरोवर से कमल ले जाने के लिए आये थे। रक्षकों ने कहा, "यह हमारे स्वामी कुवेर का प्यारा सरोवर है। वह यहाँ जल-विहार किया करते हैं। आपको फूल तोड़ने का क्या अधिकार था ?" भीम ने कहा, "पूजा के लिए कहीं से भी फूल तोड़े जा सकते हैं। बक-बक मत करो।" रक्षक यक्ष ऐसा उत्तर सुनकर क्रुद्ध हो गये, और वहीं फूल रख देने को कहा। इससे भीम को गुस्सा आया, और वह रक्षकों को मारने लगे। कुछ पिटे हुए रक्षक कुवेर को संवाद देने तथा और सहायक बुला लाने के विचार से भगे हुए गये, और सब हाल कुवेर को जाकर सुनाया। अर्जुन की प्रतीक्षा करते हुए पाण्डव आये हुए हैं, सुनकर कुवेर ने वहीं रहकर फल-मूलादि का इच्छानुरूप भोग करने को पाण्डवों के पास आदर-प्रार्थना के तौर पर कहला भेजा।

भीम को बहुत देर तक लौटते हुए न देखकर धर्मराज ने कृष्णा से पूछा, और यह जानकर कि भीम कमल के फूल लेने गये हैं, भीम से किसीकी तकरार हो जाने की शंका कर अपने साथियों को लेकर घटोत्कच की सहायता से उधर ही को चले। जब धर्मराज अपने दल के साथ वहाँ पहुँचे, उस समय भीमसेन यक्षों को घायल कर गदा लिये हुए लड़ने को ललकार रहे थे। भीम को देखकर धर्मराज बड़े चिन्तित हुए। पास जाकर देखा, तो भीम को कोई चोट न लगी थी। भीम को उन्होंने छाती से लगाकर कहा, "यह सिद्धों की जगह है; यहाँ तुम्हें तकरार न करनी थी।" कुछ देर बाद कुवेर का दूत संवाद लेकर आ पहुँचा।

इस प्रकार प्रियजनों के साथ पाण्डव गन्धमादन में ही अर्जुन की प्रतीक्षा करने लगे। उधर सब प्रकार की शिक्षाओ से पूर्ण हो अर्जुन ने इन्द्र से चलने की आज्ञा माँगी। देवराज ने अनेक प्रकार के आभूषण आदि देकर अर्जुन को विदा किया। मातलि रथ पर उन्हें बैठाकर स्वर्ग से मर्त्य के लिए रवाना हुए। आकाश से उतरते हुए शुभ्र-ज्योति की तरह इन्द्र का रथ अर्जुन को लेकर गन्धमादन-पर्वत पर आया। चारों भाई पाण्डव तथा पांचाली पाँच वर्ष के बाद अर्जुन को पाकर प्रसन्नता के समुद्र में जैसे बह चले। अर्जुन ने गुरुजनों को प्रणाम कर, छोटे भाइयों को स्नेह दे स्वर्ग के पाये हुए उपहार तथा आभरण पांचाली को पहना दिये। फिर आराम तथा भोजन-पान के पश्चात् निश्चिन्त चित्त से सबको अपनी समस्त साधना की कथाएँ सुनाने लगे।

दुर्योधन आदि को बन्धन से मुक्त करना

गन्धमादन पर्वत से पाण्डव द्वैतवन को चले। वहाँ से पुनः काम्यक वन की यात्रा की। यामुन नाम के पर्वत के पासवाले घोर वन में फल-मूल की खोज में गये भीम एक विशाल अजगर की खींची साँस से खिचने लगे। यह सर्पराज पाण्डवों के कुल के शाप-भ्रष्ट राजा नहुष थे। अगस्त्य मुनि ने अपराध के कारण इन्हें शाप दिया

था। भीम बड़ी विषम परिस्थिति में पड़े। इसी समय इन्हें खोजते हुए धर्मराज वहाँ आ पहुंचे। साँप के कुछ धार्मिक प्रश्नों का उत्तर देकर भीम को उसके ग्रास से बचा लाये। पाण्डवों के काम्यक वन पहुँचने पर श्रीकृष्ण उनसे आकर मिले। अर्जुन से बहुत दिनों से मुलाकात न हुई थी। अर्जुन की तपस्या तथा दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति की कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। द्रौपदी को धैर्य देकर कि उनके पाँचों लड़के द्वारका में प्रसन्न हैं, सुभद्रा बड़े स्नेह से उनकी देख-रेख तथा पालन-पोषण करती है, और प्रद्युम्न उन्हें सब प्रकार की अस्त्र-शिक्षा दे रहे हैं, पाण्डवों से विदा होकर वह द्वारका गये। यहाँ से पाण्डव पुनः द्वैतवन को चले गये। धर्मराज की आज्ञा से लौटे हुए ब्राह्मणों के मुख से पाण्डवों की तपस्या तथा कठोर दुःख की कथा सुनकर महाराज धृतराष्ट्र रोने लगे। फिर अर्जुन की तपस्या तथा वर-प्राप्ति की बातें सुनकर बड़ी चिन्ता में पड़ गये, क्योंकि ऐसे वीर को विजय पाने की कोई शंका न थी, और उन्ही के पुत्रों के भाग्य मन्द थे।

पाण्डवों की बातों से जलकर एक दिन दुर्योधन कर्ण और शकुनि के साथ परामर्श करने लगा। निश्चय हुआ कि अपना अपार वैभव पाण्डवों को चलकर दिखाना चाहिए। साथ ही धन-रत्न, हाथी, घोड़े तथा रथों पर अपनी रानियों को भी लेकर चलें। हमारा ऐश्वर्य देखकर पाण्डवों को ईर्ष्या होगी, और उस आग से वे जल-जलकर अशक्त होते रहेंगे। लेकिन महाराज धृतराष्ट्र से यह कहा जाय कि द्वैतवन में हमारी गौएँ रहती हैं, हम उन्हें देखने जा रहे हैं, मौका मिलने पर शिकार खेलने का भी विचार है; पाण्डवों से हम न मिलेंगे।

दुर्योधन ने एक दिन बड़े दुलार से द्वैतवन जाने की इच्छा प्रकट करते हुए पिता से आज्ञा माँगी। महाराज धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की पहले निश्चित की हुई बातें मालूम होने पर भी आज्ञा दे दी। फिर क्या था, बड़ी शान से सजावट होने लगी। हाथियों पर सुनहरे हौदे कस दिये गये। सोने और चाँदी के बड़े-बड़े, हीरे और मोतियों की झालर से जगमगाते हुए, मखमल की ऊँची गद्दीवाले रथ तैयार हो गये। कर्ण और शकुनि के साथ दुर्योधन अपना रनिवास भी साथ लेकर सैन्यों के तुमुल-कोलाहल के मध्य अपने ऐश्वर्य का अद्भुत प्रकाश दरिद्र, राज्यच्युत पाण्डवों को दिखाने के उद्देश्य से चला। यथासमय वह मदमत्त दल द्वैतवन में आ पहुँचा। वन के जीव-जन्तु भीषण कोलाहल से चौंककर चारों ओर भागने लगे। पाण्डवों को भी वहाँ के ऋषियों से महाराज दुर्योधन का रानियों के साथ गोधन देखने और शिकार करने के लिए द्वैतवन आना मालूम हुआ। किसी-किसी ने उनकी अपार साज-सज्जा की तारीफ की। यह भी कहा कि उनका भीतरी उद्देश्य पाण्डवों को ऐश्वर्य दिखाकर चकित कर देना है। धर्मराज युधिष्ठिर सुनकर चुप रह गये।

वन के विशाल भू-भाग में खीमे गड़ चुके थे। कर्ण और शकुनि के साथ दुर्योधन शिकार में मत्त था। रोज बाघ-शेर, वराहादि जंगली जीव मार-मारकर लाये जाते थे। एक दिन दुर्योधन की इच्छा रानियों को लेकर वहीं के सरोवर में स्नान करने की हुई। सरोवर के किनारे पाण्डव कुटी बनाकर रहते थे। दुर्योधन को इस प्रकार वहाँ जल-केलि करके पाण्डवों के समक्ष ऐश्वर्य प्रदर्शन आसान जान

पड़ा। सरोवर के दूसरे किनारे की जमीन साफ करने के लिए आदमी भेजे गये। पर उस समय गन्धर्वों का राजा चित्रसेन अपने साथी गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ जल-केलि के विचार से वहाँ जाकर, उसी तट पर ठहरा हुआ था। दुर्योधन के आदमी वहाँ गये, तो गन्धर्वों ने कहा कि हम पहले से आये हुए हैं, जब तक हम नहाकर चले न जायेंगे, तब तक वहाँ कोई दूसरा नहाने के लिए न आ सकेगा।

सिपाही लौट गये। उनकी जबानी गन्धर्वों की अहंकार-भरी बात सुनकर दुर्योधन तमतमा उठा। कहा, "सशस्त्र सेना साथ लेकर जाओ, और गन्धर्वों को वहाँ से निकाल बाहर करो।" दुबारा दुर्योधन की सेना सरोवर के किनारे गयी। उस समय चित्रसेन अप्सराओं के साथ जल-विहार कर रहा था। कुछ सैनिकों ने जाकर कहा, "ऐ गन्धर्वो! धृतराष्ट्र के पुत्र, कुरुवंश के सूर्य, महाजेता, महाराज दुर्योधन यहाँ शीघ्र स्नान करने आ रहे हैं, तुम लोग बहुत जल्द यह स्थान छोड़ दो।" सैनिकों की ऐसी गर्वोक्ति सुनकर गन्धर्व हँसने लगे। किसी ने कहा, "अन्धे के अन्धा ही होता है।" किसी दूसरे ने कहा, "पीटकर भगा दो इन्हें। लात के लोग बात से राह पर नहीं आते।"

इस तरह दोनों ओर से घोर संग्राम छिड़ गया। गन्धर्वों ने दुर्योधन के सैनिकों को भगा दिया। दुर्योधन के पास भागे हुए सैनिक गये, और सारा समाचार सुनाया। सुनकर कर्ण तथा शकुनि के साथ सारी सेना लेकर दुर्योधन भी मैदान में आ गया, और घोर युद्ध छिड़ गया। कर्ण की करारी चोटों से गन्धर्व बहुत व्याकुल हुए। अब तक चित्रसेन सरोवर में अप्सराओं के साथ स्नान कर ही रहा था। गन्धर्वों की सेना को व्याकुल तथा अस्त-व्यस्त होकर भागती हुई देखकर, अपना विशाल धनुष लेकर वह युद्ध-स्थल पर आ पहुँचा। चित्रसेन अविराम जल-धारा की तरह कौरवों की सेना पर बाण बरसाने लगा। कौरव-सेना व्याकुल होकर भागने लगी। कर्ण को प्रबल पड़ता देखकर उसने सम्मोहनास्त्र का सन्धान किया। तीर के छूटने पर बचे हुए लोगों को मोह आ गया। होश में आते-आते कर्ण को चित्रसेन ने विरथ कर दिया। डरकर कर्ण दूसरे रथ पर चढ़कर भाग गया, पर दुर्योधन डटा रहा। क्रुद्ध गन्धर्वराज ने पाश के प्रयोग से दुर्योधन को बाँध लिया। फिर कौरवों की महिलाओं को भी कैद कर लिया। पश्चात् सबको रथों पर बैठा-कर स्वर्ग ले चला। दुर्योधन बड़ा लज्जित हुआ। महिलाएँ त्रस्त होकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को सहायता के लिए पुकारने लगीं।

महाराज युधिष्ठिर ने अपनी कुटी में बैठे हुए व्योम-मार्ग से सहायता की पुकार सुनी। महिलाएँ यह भी कह रही थीं कि गन्धर्व बाँधे लिये जा रहा है। धर्म-राज अधीर हो गये। भीम ने कहा, "महाराज, दुर्योधन के पापों का प्रायश्चित ईश्वर ने गन्धर्वों द्वारा दिला दिया। अब हमें चुपचाप यहीं बैठ रहना चाहिए।" महाराज युधिष्ठिर असन्तुष्ट होकर बोले—"भाई, यह भाव ठीक नहीं। गन्धर्व दूसरी जाति के हैं। फिर यहाँ हमारी महिलाएँ भी हैं। यह हमारी ही इज्जत जा रही है। हमारा जो आपस का विवाद है, उसे हमीं समझेंगे। जब बाहर का कोई हमें दबायेगा, तब हम एक सौ पाँच भाई उससे लड़ने के लिए हैं। भीम! तुम सेनापति होकर अर्जुन, नकुल और सहदेव को लेकर इसी वक्त जाओ, और अपनी

देवियों तथा भाई दुर्योधन को मुक्त करो।" महिलाओं का पक्ष लेते हुए देखकर युधिष्ठिर के प्रति श्रद्धा से द्रौपदी का मस्तक नत हो गया। उन्होंने धर्मराज की धर्म-मूर्ति को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। भीम भाइयों के साथ मैदान में आकर खड़े हुए, और जोर से हाँक लगाकर गन्धर्व को ललकारा। अर्जुन ने कहा, "दादा, तुम तब तक ठहरो। गन्धर्व आकाश मार्ग में है, मैं उसके रथ की गति रोक दूँ।" यह कहकर वीर अर्जुन ने दिग्बन्धन-शर द्वारा गन्धर्व के रथ की गति रोक दी। इधर भीम बार-बार युद्ध के लिए ललकार रहे थे। चित्रसेन को पहले बड़ा गुस्सा आया। रथ को आगे बढ़ता हुआ न देखकर पाण्डवों को भी वैसी ही शिक्षा देकर आगे चलने का निश्चय किया। आकाश से पाण्डवों पर तीक्ष्ण तीरों की वर्षा होने लगी। पर महावीर अर्जुन से गन्धर्व की अस्त्रविद्या एक न चली। गन्धर्व के सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों को काटकर महाकर्षणअस्त्र द्वारा अर्जुन ने बलपूर्वक गन्धर्व को आकाश-मार्ग से नीचे उतारा। अर्जुन की अद्‌भुत शिक्षा स्वर्ग में भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। चित्रसेन हृदय से घबरा गया। रथ नीचे उतरा। तब भीम रथ के पास गदा लिये पहुँचे, और चित्रसेन को निष्क्रिय देखकर महिलाओं के साथ दुर्योधन को उतार लिया। अर्जुन ने अपनी मन्त्रपूत शर-शक्ति वापस ले ली, फिर हँसते हुए गन्धर्व-राज के पास गये, और मित्र को हृदय से लगाया। चित्रसेन ने कहा, "पाण्डव! तुम्हारी महत्ता को न समझ सकनेवाला दुर्योधन कितना पापी है। वह तुम्हें अपना ऐश्वर्य दिखलाने के विचार से आया था।" दोनों मित्र हँसकर मिले। फिर कौरव-परिवार को साथ लेकर भीमसेन महाराज युधिष्ठिर के पास चले। दुर्योधन ने धर्मराज को लज्जित होकर प्रणाम किया। धर्मराज ने स्नेह से भाई को आशीर्वाद किया। द्रौपदी बड़े प्रेम से कौरव-राज-कुल वधुओं से मिलीं। चलते समय दुर्योधन ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन! तुम हमसे, जो चाहो, वर माँग लो।" अर्जुन ने उत्तर दिया, "दुर्योधन, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो समय आने पर मैं तुमसे वर माँगूंगा।" इस प्रकार पाण्डवों से क्षीण-प्रभ होकर कुरुराज दुर्योधन अपनी राज-धानी को आये।

द्रौपदी-हरण

एक दिन दुर्योधन की बहन दुःशला का पति, सिन्ध का राजा जयद्रथ अपनी सेना के साथ काम्यक वन से होकर गुजरा। पाण्डव उस समय द्वैतवन से चलकर फिर काम्यक वन आ गये थे। उस समय आश्रम सूना था। पाँचों पाण्डव शिकार के लिए निकले थे। केवल द्रौपदी आश्रम में थी। जयद्रथ दूसरे विवाह के इरादे से निकला हुआ शाल्व-राज्य को जा रहा था। द्रौपदी पल्लवों के भार से झुके हुए एक पेड़ की डाल पकड़े एकान्त में खड़ी कुछ सोच रही थी। मुख पर पड़ती सूर्य की किरणें उसकी अपार रूप-राशि को और स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से प्रत्यक्ष करा रही थीं। वन में चारों ओर अधखुली, मधु-भरी, हवा से हिलती कलियों को घेर-कर भौंरे गूंज रहे थे। समय बड़ा ही सुहावना हो रहा था। इसी समय आते हुए सिन्ध-नरेश जयद्रथ ने द्रौपदी की वह दिव्य मुख-कान्ति देख ली। कामी के हृदय को रूप की किरणों के तीर पार कर गये। वह व्याकुल हो गया। फिर कोटिकास्य

नाम के एक दूत को द्रौपदी के पास समझाकर भेजा।

राजपुरुष के रूप से एक अनजाने को आता हुआ देख, द्रौपदी डाल छोड़कर, सँभलकर खड़ी हो गयी। उस पुरुष ने द्रौपदी से कहा, "सुलोचने, मैं शिवराज का पुत्र कोटिकास्य हूँ। वह जो अनिमिष आँखों से उस सरोवर के तट से तुम्हारी ओर देख रहे हैं, महावीर युवक सिन्ध राज्य के अधिपति जयद्रथ हैं। उनके साथ उनके अधीनस्थ कई और राजे हैं। तुम्हारा परिचय क्या है?"

"भद्र!" द्रौपदी बोली, "ऐसे एकान्त स्थान में आपसे वार्तालाप मेरे लिए अनुचित है। आपने अपना विशद परिचय दिया, इसलिए मैं भी आपको अपना परिचय दे दूँ। पश्चात् आप लोगों का यथोचित सत्कार मेरे पति आकर करेंगे। मैं पांचाल-राज द्रुपद की कन्या और पाँचों पाण्डवों की परिणीता पत्नी हूँ।"

टिकने की बात सुनकर, कोटिकास्य प्रसन्न होकर जयद्रथ के पास चला, और सारा हाल उससे जाकर कहा। मौका अच्छा देखकर जयद्रथ आश्रम के लिए चला। द्रौपदी अतिथि-सत्कार के लिए आश्रम में रहे-सहे थोड़े-से फल-फूल लेकर तैयार होने लगी।

जयद्रथ पर काम का पूरा प्रभाव पड़ चुका था और वह द्रौपदी को अपनी पत्नी बनाना चाहता था। कुटी में जाकर आसन ग्रहण करके उसने द्रौपदी से कुशल-प्रश्न किया। संक्षेप में अपने तथा पतियों के मंगल-समाचार देकर द्रौपदी ने भी जयद्रथ के राज्य, सेना और कोश की कुशल-कामना की। द्रौपदी को खिंची हुई जानकर जयद्रथ ने कहा, "सुनो, मैं तुम्हारे पतियों को मारकर तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।" इस नीचता से द्रौपदी को क्रोध आ गया, और जयद्रथ को उसने कुछ कड़ी बातें सुना दीं। कामी जयद्रथ हँसता हुआ बोला, "वामे, तुम्हारी गालियाँ भी मुझे प्रिय मालूम देती हैं।" ऐसा कहकर वह द्रौपदी को पकड़ने के लिए बढ़ा। डरकर कृष्णा धौम्य को पुकारने लगी। पर जयद्रथ ने बल-पूर्वक द्रौपदी को उठाकर अपने रथ पर बैठा लिया। धौम्य ने बहुत फटकारा, और भय दिखाया कि 'पाण्डव तुझे इसका बड़ा बुरा फल चखायेंगे,' किन्तु वह रथ बढ़ाकर वन से भागा।

इसी समय पाण्डव भी शिकार खेलकर आ गये। जयद्रथ बहुत थोड़ी दूर गया था—वन की सीमा भी पार न कर पाया था, कि द्रौपदी-हरण की खबर पाते ही भीमसेन गदा लिये उसी हालत में दौड़े। युधिष्ठिर ने कहा, "भीम, इसे मारना मत, यह बहन दुःशला का पति है।" भीम के पीछे अर्जुन भी दौड़े। भीम थोड़ी ही देर में निकट पहुँच गये। भीम का वज्र-गम्भीर सिंहनाद सुनकर द्रौपदी आश्वस्त हुई। जयद्रथ के दल में खलबली मच गयी। कोटिकास्य रथ बढ़ाकर जयद्रथ की रक्षा के लिए आया, पर क्रुद्ध भीम का उस समय काल भी सामना न कर सकता था। उनके एक ही गदा-प्रहार से रथ और घोड़े-समेत कोटिकास्य का मस्तक चूर्ण हो गया। अर्जुन ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि जयद्रथ की सेना की गति रुक गयी, वे घूमकर लड़ने को विवश होने लगे। पर चोर की जान कितनी! जयद्रथ द्रौपदी को वहीं छोड़कर रथ लेकर भागा। सेना भी छत्रभंग होकर प्राण-रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगी। भीम और अर्जुन द्रौपदी को आदरपूर्वक ले आये।

भीम का गुस्सा ठण्डा न हुआ था। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "महाराज, आप लोग आश्रम में चलकर द्रौपदी को आश्वस्त करें, मैं तब तक जयद्रथ को देख लूँ।" अर्जुन ने कहा, "दादा, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। कृष्णा की रक्षा तथा सेवा नकुल और सहदेव अच्छी तरह कर लेंगे।" युधिष्ठिर ने फिर याद दिला दी कि जान से न मारना।

दोनों भाई दौड़ चले। दूर जयद्रथ के जाते हुए रथ को देखकर, अर्जुन ने अव्यर्थ तीर छोड़कर रथ के पहिए काट दिये। परिस्थिति विषम देखकर जयद्रथ रथ से कूदकर भागा। भीम पकड़ने के लिए दौड़े। अर्जुन पीछे-पीछे दौडते हुए कहने लगे, "दादा, मैं तुम्हारे साथ दौड़ न पाऊँगा, पर उसे जान से न मारिएगा।"

भीम क्षण-भर में जयद्रथ के पास पहुँच गये, और उसे उठाकर दे मारा। नीचे डालकर घोट रहे थे, तब तक अर्जुन भी पहुँच गये। अर्जुन ने छुड़ाकर कहा, "दादा, लाओ इसका सिर मूड़ दें।" भीम पकड़े रहे, अर्जुन ने अर्द्धचन्द्र बाण से उसका सिर मूड़ दिया। फिर बाँधकर द्रौपदी के पास ले चले। जयद्रथ की बुरी दशा देखकर करुणार्द्र हो द्रौपदी ने छुड़वा दिया। इस अपमान से दुखी होकर जयद्रथ वन में जा भगवान् शंकर की तपस्या करने लगा। उन्हें प्रसन्न कर पाँचों पाण्डवों को जीतने का वर माँगा। शंकर ने कहा, "अर्जुन को छोड़कर और किसी से न हारोगे।"

कर्ण को शक्ति-प्राप्ति

वन में गन्धर्व से पराजित होने के बाद कर्ण के मन में पाण्डवों के प्रति द्वेष-भाव बढ़ गया। अर्जुन को पराजित करने की आशा से वह तपस्या करने लगे। पुत्र अर्जुन की मंगल-कामना से इन्द्र कर्ण की तपस्या से बहुत घबराये। उन्होंने निश्चय किया, कर्ण संसार का इस समय सर्वश्रेष्ठ दानी है, यदि ब्राह्मण का वेश धारण कर इससे कुण्डल और कवच माँग लेंगे, तो निःसन्देह अर्जुन का कल्याण होगा। कुण्डल और कवच के रहते अर्जुन कर्ण को मार नहीं सकते। यह सोचकर इन्द्र कर्ण के पास चले।

सूर्य को भी इसी तरह अपने पुत्र कर्ण पर प्रेम था। उन्होंने सोचा, यदि देवराज कुण्डल-कवच माँग ले जायँगे, तो कर्ण के लिए हार अनिवार्य होगी। उन्होंने कर्ण से आकर कहा, "वत्स कर्ण, देवराज इन्द्र तुम्हारे पास भिक्षार्थ आ रहे हैं।" कर्ण ने कहा, "पिता, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। मैं द्वार से प्रार्थी को विमुख न करूँगा, चाहे उस प्रार्थना में मुझे प्राण-संशय भी देख पड़े।" सूर्य बोले, "वत्स, प्राण-संशय ही है। इन्द्र अर्जुन की रक्षा के लिए ब्राह्मण के वेश से तुम्हारे कुण्डल और कवच माँगने आ रहे हैं। उन्हें न देना।"

महावीर कर्ण ने मुस्कराकर कहा, "पिता, मैं सब तरह से देश में अधम गिना जाता हूँ। तुम तो सबकुछ देखते हो। दुर्योधन का साथ मैंने इसलिए ग्रहण किया क्योंकि वह मनुष्य है—उसी ने मुझे मनुष्य के रूप में सब मनुष्यों के बराबर सबसे पहले माना। इसी मनुष्यता की रक्षा के लिए मैं अतिथि को विमुख नहीं करता। यदि देवराज अर्जुन की रक्षा के लिए भिक्षुक होकर कुण्डल और कवच के रूप से

मेरे प्राण लेने के लिए आ रहे हैं, तो आयें; पिता, संसार देखे कि इतना अधम कर्ण अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए प्राणों का भी दान कर सकता है। पर वह पाण्डवों की तरह धर्मात्मा फिर भी नहीं !" महावीर कर्ण का मुख-मण्डल प्रच्छन्न व्यंग्य से उज्ज्वल हो गया। पुत्र को आशीर्वाद देकर भगवान् सूर्य ने दुःख के साथ प्रस्थान किया।

थोड़ी देर में देवराज इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण के वेश में आये। कर्ण ने आदरपूर्वक अतिथि से आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा, "कर्ण, मैंने सुना है, तुम बड़े दानी हो। मैं तुमसे तुम्हारे कुण्डल और कवच माँगने आया हूँ।"

"अच्छा ब्राह्मण !" कर्ण के होंठों पर बड़ी ही मार्मिक मुस्कान खिंच गयी। फिर उस महावीर, महादानी ने तेज शस्त्र से शरीर का कवच और कुण्डल काट-कर इन्द्र को दे दिया। एकटक इन्द्र कर्ण का महान् वीरत्व देखते रहे। उन्हें याद आया, यह वही महापुरुष है, जिसने आचार्य परशुराम से शिक्षा प्राप्त करते समय, जाँघ पर मस्तक रखकर सोते हुए गुरु के निद्रा-भंग की शंका करके, जाँघ में काटते हुए वज्रकीट की पीड़ा सह ली, पर जाँघ नहीं हिलायी। इन्द्र को बड़ी लज्जा लगी। जब वह कुण्डल और कवच लेकर चलने लगे, पैर नहीं उठ रहे थे। अन्त में लजाकर लौट पड़े। बोले, "कर्ण ! तुम धन्य हो। मैं देवराज इन्द्र हूँ। तुम वज्र को छोड़कर मुझसे वर की प्रार्थना करो।" कर्ण ने मुस्कराकर कहा, "देवराज, आप अपने पुत्र की कल्याण-कामना में व्रती हैं, यह मुझे मालूम था।" सुनकर इन्द्र ध्यान करके, असलियत को समझकर बोले, "हाँ कर्ण ! तुम जानते थे। सूर्यदेव ने तुमसे कहा है, पर प्रनिदान में तुम अपनी क्षति-पूर्ति कर सकते हो।" कर्ण ने कहा, "आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो आप मुझे अपनी अमोघ शक्ति दान कीजिए।" इन्द्र ने शक्ति दे दी, फिर कहा, "कर्ण ! तुम जिस शत्रु पर इसे छोड़ोगे, उसका वध अनिवार्य है, पर इसके बाद यह शक्ति हमारे पास चली आयेगी।" यह कहकर अर्जुन के प्राणों की एक दूसरी शंका लिये हुए इन्द्र ने वहाँ से प्रस्थान किया।

यक्ष से भेंट

धीरे-धीरे वनवास की अवधि समाप्त हो आयी, एक साल अज्ञातवास का रह गया। महाराज युधिष्ठिर इस चिन्ता में थे कि कहाँ अज्ञातवास का समय पूरा किया जाय कि दुर्योधन को इसका पता न हो। इस प्रकार की चिन्ता करते हुए, महाराज युधिष्ठिर कृष्ण तथा अपने भाइयों के आश्रम में बैठे हुए थे कि एक रोता हुआ ब्राह्मण सामने आकर खड़ा हो गया। पूछने पर कहा, "यहाँ एक हिरन आश्रम के डण्डे में सींगें खुजला रहा था। मेरी अरणी उसी डण्डे में लटकायी हुई थी, वह हिरन की सींगों में लिपट गयी। हिरन ने छुटाने की कोशिश की, पर छूटी नहीं। मैं छुड़ाने दौड़ा तो हिरन भाग गया।"

ब्राह्मण को दुखी देखकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आज्ञा दी कि हिरन को खोजकर अरणी ला दें। फिर खुद भी धनुष लेकर हिरन की खोज में निकले। बड़ी देर बाद वह हिरन मिला। पर वह पकड़ में न आया। उसे तीर मारने पर न जाने कैसे बच जाता था। पाण्डव बहुत घबराये। अन्त में प्यास से व्याकुल होकर

एक जगह पेड़ की छाँह में बैठ गये। कुछ दूर पर एक तालाब था। पानी पीने और ले आने के विचार से नकुल-सहदेव और अर्जुन-भीम क्रमशः गये, परन्तु एक आकाशवाणी हुई कि पानी पीने से पहले प्रश्न के उत्तर देने की बात न मानकर पानी पी लेने के कारण वे प्राण खो बैठे।

जब युधिष्ठिर गये, तब भी उसी तरह आकाशवाणी हुई, "मेरे प्रश्न के पहले उत्तर दे दो, तब पानी पियो।" युधिष्ठिर प्यास से व्याकुल होने पर भी खड़े हो गये, पर कोई देख न पड़ा। तब उन्होंने कहा, "जो महाशय इस प्रकार बोल रहे हैं, वह सामने आयें।" इस पर युधिष्ठिर ने देखा, एक हंस ने सामने आकर मनुष्य की वाणी में कहा, "हाँ, यह मैं आ गया।" युधिष्ठिर ने पुनः कहा, "आप अपना परिचय दीजिए।" उसने कहा, "मैं यक्ष हूँ।" इसके बाद यक्ष ने प्रश्न करना शुरू किया, युधिष्ठिर उत्तर देते गये। युधिष्ठिर के सभी उत्तर सही हुए। यक्ष ने इस पर वर देने की इच्छा प्रकट की। युधिष्ठिर ने कहा, "अज्ञानवश मेरे भाइयों का विनाश हुआ है, आप कृपा करके उन्हें जिला दीजिए।" यक्ष ने वैसा ही किया। युधिष्ठिर को यक्ष के कार्य से बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विनयपूर्वक पुनः यक्ष से प्रार्थना की कि "ऐसा कार्य कोई यक्ष नहीं कर सकता, मेरे भाई यक्षों से अधिक बलवान् हैं, आप अपना सच्चा परिचय दीजिए।" तब यक्ष ने कहा, "मैं धर्म हूँ, युधिष्ठिर, तुम मेरे पुत्र हो, तुम पुनः वर माँगो।" युधिष्ठिर ने ब्राह्मण की अरणी माँगी। फिर कहा, "वनवास के बारह साल हम पूरे कर चुके हैं, अब तेरहवें साल हमें कोई पहचान न सके, आप ऐसा वर देकर स्थान-निर्देश भी कर दीजिए।" अरणी तथा वर देकर धर्म ने कहा, "तुम लोग रूप बदलकर विराट-नगर में जाकर रहो।" यह कहकर धर्म अन्तर्धान हो गये, और पाण्डव प्रसन्नता से आश्रम को लौटे।

विराटपर्व

पाण्डवों का प्रस्थान और स्थान-ग्रहण

धीरे-धीरे वनवास का समय पूरा होने को हुआ। एक दिन महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से कहा, "हे भूदेवगण ! हमारा वनवास का समय समाप्तप्राय है। अब एक साल हमें अज्ञातवास करना होगा। पर यह वनवास-काल से संकटपूर्ण है, क्योंकि दुर्योधन को यदि हमारा पता मिल गया, तो फिर हमें बारह वर्ष का वन-वास-दुःख उठाना पड़ेगा। आप लोग निश्चिन्त चित्त से ईश्वर का ध्यान कीजिए। हम लोग अज्ञात-वास का समय पूरा कर पुनः आपकी सेवा में दत्तचित्त होंगे।" महाराज युधिष्ठिर की भक्ति-युक्त सरल वाणी सुनकर ब्राह्मण लोग रोने लगे।

पर समय का विचार कर सबने धैर्य धारण किया, और पाण्डवों के कल्याण के लिए जप-यज्ञ करने लगे।

एक दिन ऊषाकाल में इष्टदेव को प्रणाम कर, ब्राह्मणों की चरण-रज मस्तक पर धारण कर द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डव विराट-नगर के लिए रवाना हुए।

अनेक प्रकार के वार्तालाप करते हुए, कई दिनों के बाद, दूर निकल जाने पर, पाण्डव अपने रहने के विचार निश्चित करने लगे। द्रौपदी के साथ पाँचों भाई एक विशाल वृक्ष की छाया में बैठ गये। आस-पास कोई मनुष्य न देख पड़ता था, वहाँ मनुष्य के जाने का कोई कारण भी न हो सकता था। युधिष्ठिर ने कहा, "भाइयो, मैं विराट के यहाँ ब्राह्मण के वेश में जाकर आश्रय माँगूंगा। मैंने जुआ, शतरंज आदि खेल सीख ही लिये हैं, महाराज विराट को अवश्य क्रीड़ा का व्यसन होगा। भाई भीम ! तुम वल्लभ के नाम से विराट-राज के यहाँ रसोइये का काम माँगना, वहाँ तुम्हें भरपेट भोजन तो मिल जाया करेगा। उर्वशी का दिया हुआ शाप ठीक समय पर अपना प्रभाव अर्जुन पर अवश्य छोड़ेगा। इसलिए अर्जुन बृहन्नला नाम धारण कर, स्त्री-भूषणों से अपने को सजाकर नृत्य-गीत की शिक्षा देने की प्रार्थना लेकर जाय। महाराज विराट के शिक्षा-योग्य एक कुमारी है। नकुल ग्रन्थिक नाम से घोड़ों की रखवाली का काम माँगे, और सहदेव तन्त्रिपाल नाम धारण कर चरवाहा होकर रहे। द्रौपदी सैरन्ध्री नाम बतलाकर रानियों की चोटी सँवारने,बाल-कंघी करने का काम करे।" युधिष्ठिर की सलाह सबको पसन्द आयी।

चलते-चलते पाण्डव विराट के राज्य में आ गये। घोर निर्जन स्थान देखकर, सबने अस्त्र छिपाकर वेश बदलने का निश्चय किया। सामने एक विशाल शमी-वृक्ष देख पड़ा, युधिष्ठिर ने कहा, "इसी पेड़ में, घनी शाखाओं के भीतर अस्त्र-शस्त्र बाँध दिये जायँ।"

अर्जुन का गाण्डीव धनुष, अक्षय तूणीर, भीम की गदा और सब लोगों के धनुष और तरकस, वर्म, चर्म और खड्ग आदि एक-एक लेकर नकुल उस विशाल वृक्ष की घनी डालों में बाँधने लगे। यह कार्य समाप्त कर पाण्डवों ने अपना-अपना वेश बदला। फिर सब लोग अलग-अलग राहों से होकर विराट-नगर के लिए चले।

ईश्वर की इच्छा तथा धर्म के वरदान से, राजा विराट से साक्षात्कार होने पर, पाँचों पाण्डव अपने-अपने उद्देश्य में सफल हुए। ब्राह्मण-वेशी कंक का विराट ने बड़ा सम्मान किया, और अपना मित्र बनाकर पाँसा आदि खेलने के लिए रक्खा। वैसे ही वल्लभ को रसोई की अध्यक्षता, बृहन्नला को उत्तरकुमारी की शिक्षा, ग्रन्थिक और तन्त्रिपाल को अस्तबल और गोशाला की देख-रेख का काम मिला।

फटी धोती पहनकर दिव्य आभा-सी महारानी द्रौपदी लोगों को चकित करती, आश्चर्य में डालती हुई महारानी विराट के रनिवास के सामने आकर नीचे खड़ी हुई। महारानी सुदेष्णा ने नीचे खड़ी हुई भिखारिन को ऊपर महल से झांक-कर देखा। देखकर उसके अपार रूप से मुग्ध हो गयीं। भिखारिन से परिचय और आने का कारण जानने की उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। वह नीचे उतरकर द्रौपदी के पास गयीं, और बड़े स्नेह से पूछा—"तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आयी हो ?" द्रौपदी

ने कहा, "मैं विपत्ति की मारी हुई एक साधारण स्त्री हूँ। मेरा नाम सैरन्ध्री है। मैं बाल-कंघी करना और चोटी गूँथना जानती हूँ। आपके यहाँ इसी काम के लिए आयी हूँ। क्या आप मेरे असमय में, मुझ पर कृपाकर, मुझे इस काम के लिए अपनी दासी बना लेना मंजूर करेंगी?" राजमहिषी सुदेष्णा ने कहा, "अच्छा सैरन्ध्री, हमने तुम्हें यह काम दिया। आओ।" "लेकिन रानीजी", सैरन्ध्री ने कहा, "मैं जूठे बरतन न छुऊँगी, न जूठा भोजन करूँगी; मेरे गन्धर्व-पति इससे नाराज होंगे।" रानी को सैरन्ध्री का यह व्रत भी मंजूर हुआ।

इस प्रकार पाण्डव बड़े सुख से अपने अज्ञात-वास के दिन पूरे करने लगे। कृष्णा की भीम से प्रायः मुलाकात होती थी। दासी का रसोई-घर जाना दोनों वक्त का काम है। भीम प्रिया से आँखों में मुस्कराकर इशारे से कुशल पूछते; द्रौपदी आँखों में ही हँसकर 'अच्छी तरह हूँ' कह देती। कभी घाघरा पहने, ओढ़नी ओढ़े, टिकुली लगाये हुए उत्तराकुमारी की आचार्या बृहन्नला मिलती, तो सैरन्ध्री के तिरछे, तीर से भी तेज़ कटाक्ष विश्वविजयी प्रिय की आँखों से चुभकर जैसे पूछते, 'कहो वीर, यह कैसा बाना धारण किया है?' बृहन्नला मुस्कराकर हृदय से पानी-पानी हो जाती। कभी कंक महाशय से मुलाकात होती, तो सैरन्ध्री भी औरों की तरह हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करती, गम्भीर होकर ब्राह्मण कंक आशीर्वाद देते, "ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। तुम्हारे दिन निर्विघ्न हों।"

कीचक-वध

महाराज विराट का सेनापति महारानी सुदेष्णा का भाई कीचक था। इसी के बल के भरोसे महाराज विराट निष्कण्टक राज्य कर रहे थे। कीचक के बल का समस्त भारत में आतंक था। बड़े-बड़े योद्धा उससे घबराते थे। राजा विराट भी उसका विरोध न कर सकते थे।

एक दिन वह अपनी बहन सुदेष्णा के पास बैठा था। इसी समय सैरन्ध्री वहाँ गयी। सैरन्ध्री को देखकर कीचक मुग्ध हो गया। उसने बहन से पूछा, "यह किस देश की राजकुमारी है?" भाई की बात सुनकर महारानी सुदेष्णा घबरायीं। वह अपने भाई के बुरे चरित्र की कई घटनाएँ देख चुकी थीं, और प्रतिकार का उपाय न देखकर चुपचाप सहकर रह गयी थीं। धैर्य के साथ उन्होंने उत्तर दिया, "यह यहीं की एक दासी है।" कीचक ने कहा, "तुम ज़रा उस कमरे में जाओ, मैं इससे कुछ बातें करना चाहता हूँ।" सुदेष्णा का हृदय भय से काँपने लगा। कीचक ने फिर बहन की कोई परवा न की। उठकर, द्रौपदी के पास जाकर कहा, "शोभने, तुम्हारे अतुल रूप को देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। तुम इच्छामात्र से मुझे अपना कृतज्ञ दास बना सकती हो।"

सैरन्ध्री बहुत डरी, पर उपाय न था। बोली, "सेनापति, मैं एक नीच जाति की दासी हूँ। मेरे लिए ऐसे शब्द न कहिए। फिर मैं ब्याही हुई हूँ और आपकी आश्रिता हूँ।"

कीचक कुछ सोचकर रुक गया, फिर एकान्त में बहन के पास जाकर रोने लगा। सुदेष्णा को दया आ गयी। उसने पूछा, "भाई, तुम्हारे इतने विह्वल होने

का क्या कारण है ?" कीचक ने कहा, "सैरन्ध्री के बिना मैं न बचूँगा। उससे जिस तरह हो सके, मिला दो। यह तुम्हारे लिए बहुत आसान काम है।" सुदेष्णा पहले तो चिन्ता में पड़ गयी, पर भाई की सेवा में एक तुच्छ दासी के जाने पर कोई दोष नहीं ऐसा विचार कर बोली, "भाई ! पर्व के दिन मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूँगी, तब अपनी मनमानी कर लेना। तब तक धैर्य रक्खो।"

पर्व करीब था। कीचक ने धैर्य धारण किया। पर्व का दिन आ गया। राज-भवन में उत्सव होने लगे। रानी ने सैरन्ध्री को बुलाकर कहा, "देखो सैरन्ध्री, रानियों के पीने लायक अच्छी शराब, भाई कीचक के पास है, तुम जाकर मेरे लिए ले आओ।"

सैरन्ध्री डरकर काँपने लगी। 'कीचक का स्वभाव अच्छा नहीं,' रानी से अनेक बार कहा, पर रानी बराबर यही कहती रहीं कि कीचक कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि वह जानता है कि दासी रानी की है।

इससे आश्वस्त होकर सैरन्ध्री कीचक के यहाँ गयी, और रानी अच्छी शराब माँग रही हैं, निवेदन किया। कामी कीचक ने द्रौपदी का आँचल पकड़कर खींचा, और समझा दिया कि शराब लेने भेजने का एक बहाना है। विराट के यहाँ कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो कीचक की इच्छा को दबा सके, और सैरन्ध्री अगर चाहे, तो कीचक की प्रिया होकर मत्स्यराज की भी रानी बन सकती है।

कीचक नशे में था। उपाय न देखकर सैरन्ध्री ने कीचक को धकेल दिया, और आँचल छुड़ाकर जान लेकर भागी। पीछे-पीछे कीचक भी दौड़ा। सैरन्ध्री बचने का उपाय न देखकर विराट के दरबार में "महाराज रक्षा कीजिए, महाराज रक्षा कीजिए" पुकारती हुई घुस गयी, पीछे-पीछे कीचक भी आ गया। सैरन्ध्री के लच्छेदार खुले बालों को पकड़कर उसने कई लातें मार दीं। फिर किसी की कुछ परवा न कर चला गया। सभास्थल स्तब्ध हो गया। किसी की हिम्मत न हुई कि खुलकर कुछ कहे। महाराज विराट ने कहा, "मामला दोनों पक्ष का सुने बगैर कोई फैसला कैसे किया जा सकता है?" कंक-रूपी युधिष्ठिर ने सैरन्ध्री को डाँटकर कहा, "सैरन्ध्री, तुम रनिवास में जाओ। तुम्हारे गन्धर्व-पति इसका निर्णय कर लेंगे।"

उसी दिन एकान्त में भीम को पकड़कर द्रौपदी रोने लगी। भीम से कहा, "युधिष्ठिर भीरु हैं, अपनी इज्ज़त की रक्षा नहीं कर सकते, अर्जुन की वीरता समाप्त हो चुकी है—पूरे हिजड़े बन रहे हैं। एक जुआड़ी, दूसरा ज़नखा। अब तुम भी कह दो कि मैं कीचक से तुम्हारी रक्षा न कर सकूँगा। मैं अपना उपाय सोच लूँगी। तुम लोग अज्ञात-वास पूरा करके अपना राज्य वापस लेने का प्रयत्न करो।" कहकर द्रौपदी भीम को पकड़कर रोने लगी। पत्नी को भीम ने प्रबोध दिया। द्रौपदी के अपमान के विचार-मात्र से भीम की मूर्ति भयंकर हो गयी। उस भीषण रूप को देखकर द्रौपदी का हृदय आनन्द से छलकने लगा। भीम ने कहा, "अबके जब तुम्हें छेड़े, तब नाट्यशाला में आधी रात को आने का वादा करके मुझे बता जाना।" प्रसन्न होकर द्रौपदी चली गयी।

कीचक को चैन न था। उसे किसी का भय भी न था। दूसरे ही दिन उसने

द्रौपदी को घेरा। कहा, "सैरन्ध्री, अब बताओ, अब तो तुम्हारे राजा भी मेरा कुछ न बिगाड़ सके।" सैरन्ध्री ने आँखें नचाकर कहा, "तुम बड़े अरसिक हो। आखिर तो सिपाही आदमी ठहरे! सच तो यह है कि मैं खुद तुम्हारे लिए बेचैन हूँ। आज आधी रात को नाट्यशाला में मिलो, फिर देखो, तुम्हें क्या मज़ा चखाती हूँ।"

कीचक कृतार्थ हो गया। घर पहुँचकर रात की प्रतीक्षा करने लगा। बार-बार बाहर निकलकर सूर्य को देखता था। बड़ी अधीरता से वह दिन बीता। सन्ध्या होने पर खूब सजकर, सुगन्धियों से कपड़े शराबोर करके आधी रात को नाट्य-शाला में आया। भीम कुछ पहले से आकर प्रतीक्षा कर रहे थे।

भीम स्त्री-वेश में थे। कमरे में दीपक न था। भीम के पुष्ट अंगों पर हाथ चलाकर कीचक ने कहा, "सैरन्ध्री, तुम भी पूरी पहलवान हो।" भीम ने नक्की स्वर में उत्तर दिया, "हाँ प्यारे, मेरी-तुम्हारी अच्छी जोड़ी है।" कीचक शराब के नशे में था। भीम ने व्यर्थ के प्रेमालाप में समय न खोकर कीचक के बाल पकड़े। कीचक सँभल गया, और हाथ मारकर बाल छुड़ा लिये। भीम कमर में लिपट गये। कीचक समझ गया। दोनों में घोर द्वन्द्व-युद्ध चलने लगा। अन्त में भीम ने उठाकर पटक दिया, और उसके हाथ, पैर और सिर धड़ में घुसेड़कर एक पिण्ड-सा बना दिया। फिर बाहर आकर ठण्डे होने लगे।

सुबह को यह चर्चा फैल गयी कि रात को सैरन्ध्री के गन्धर्व-पतियों ने कीचक को मार डाला। राजमहल में शोक की घटा छा गयी। कीचक को जलाने की तैयारी होने लगी। उसके भाई-बन्धुओं ने कहा, "इस सैरन्ध्री के कारण हमारे भाई की यह दशा हुई है, इसे भी बाँधकर ले चलो, और भाई के साथ फूंक दो।" सबने द्रौपदी को पकड़कर बाँध लिया।

भीम उस समय बाहर खड़े थे। उन्होंने द्रौपदी की पुकार सुनी, "हे मेरे गन्धर्व-पतियो, मुझे कीचक के दुष्ट भाई बाँधे लिये जा रहे हैं; मुझे कीचक के साथ जलायेंगे, मेरी रक्षा करो।" भीम लँगोट पहनकर, मुँह और तमाम देह में कालिख पोतकर श्मशान की ओर दौड़े। पास पहुँचकर एक पेड़ उखाड़ लिया, और उसी से कीचक के भाइयों का वध करने लगे। एक-एक कर कीचक के प्रायः सभी भाइयों को उन्होंने मार डाला, कुछ भाग आये। भीम ने कृष्णा के बन्धन खोल दिये। फिर दूर के एक तालाब में देह साफ़ कर अपने काम पर आ गये। विराट-नगर में सैरन्ध्री का आतंक छा गया। उसके गन्धर्व-पतियों की घर-घर चर्चा होने लगी।

गोधन-हरण

दुर्योधन बड़ी तत्परता से पाण्डवों का पता लगवा रहा था। पर अज्ञातवास के दिन पूरे होने को हुए, फिर भी पाण्डवों का पता न चला। इसी समय विराट-नगर की खबर वहाँ भी पहुँची कि विराट की सैरन्ध्री-नाम की दासी से छेड़छाड़ करने के कारण उसके गन्धर्व-पतियों द्वारा कीचक मारा गया है; पश्चात् उसके भाई भी मार डाले गये। दुर्योधन को भय हो रहा था कि पाण्डव वनवास की अवधि पूरी

करके आ जायँगे, तो कौरव-कुल की कुशल न होगी।

त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा कई बार कीचक से हारा हुआ था। उसके मन में विराट से बदला लेने की बात उठी। उसने कर्ण से कहा, "पाण्डवों से लड़ने की तैयारी में महाराज दुर्योधन को बल-संग्रह करना ही होगा। इसलिए विराट का गोधन यदि ले आया जाय, तो दूध से रसद का पूरा सुभीता रहेगा। मैं तब तक विराट से अपना बदला चुकाता हूँ। आप लोग भी तैयार होगर आइए।" यह कहकर सुशर्मा विराट पर चढ़ाई करने के विचार से चल दिया। यहाँ दुर्योधन भी यथेष्ट सेना तथा भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण आदि महावीरों को लेकर विराट पर चढ़ चला।

सुशर्मा पहले पहुँचा। कुछ गौएँ घेरकर तक़रार की नींव डाल दी। विराट कीचक की याद कर रोने लगे। कंक ने धैर्य देकर कहा, "वल्लभ यहाँ कई कुश्तियाँ जीत चुका है, वह बहुत अच्छा मल्ल है, आप घबराएँ मत, आपकी हार न होगी।" इससे विराट को सन्तोष हुआ। सारी फ़ौज को तैयार होने की आज्ञा हो गयी। कंक की सलाह से वल्लभ (भीम), ग्रन्थिक (नकुल) और तन्त्रिपाल (सहदेव) भी तैयार हो गये। दोनों सेनाओं का सामना हुआ। सुशर्मा और विराट दोनों आमने-सामने थे। युद्ध छिड़ गया। सुशर्मा ने विराट के घोड़ों और सारथि को मारकर बात-की-बात मे विराट को बाँध लिया। यह देखकर मत्स्य-देश की सेना भागने लगी। सुशर्मा विराट को अपने रथ पर बैठाकर ले चला। सेना को राजा की पराजय से भागते देखकर कंक ने वल्लभ को ललकारा। महावीर वल्लभ अपने दोनों तरफ़ ग्रन्थिक और तन्त्रिपाल की सहायता से बढ़ते हुए सुशर्मा के पास पहुँचे, और उसी तरह उसके सारथि और घोड़ों को मार डाला। फिर सुशर्मा को बलपूर्वक पकड़कर बाँध लिया, और महाराज विराट के बन्धन खोल दिये। सुशर्मा को वल्लभ ने कंक के सामने लाकर उपस्थित किया। कंक ने उसे क्षमा करके छोड़ दिया। महाराज विराट कंक और वल्लभ से बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें कीचक की मृत्यु का दुःख जाता रहा। वल्लभ की विराट-नगर में बड़ी प्रशंसा हुई।

विराट, कंक, वल्लभ आदि दूर रण-क्षेत्र से लौटे न थे कि खबर आयी—महाराज दुर्योधन ने सारी गौएँ घेरवा ली हैं, और उनके साथ भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि महारथी भी हैं। इस संवाद से विराट-नगर में आतंक छा गया। भीष्म-द्रोण आदि के साथ युद्ध करना मामूली बात नहीं। इसी समय उत्तरकुमार के सामने बृहन्नला को देखकर सैरन्ध्री बोली, "कुमार, बृहन्नला सारथि का काम बहुत अच्छा जानती हैं, यह एक बार अर्जुन की सारथि बनी थीं। यह अगर तुम्हारे रथ पर बैठ भी जायँ, तो कौरव परास्त हो जायँगे।"

उत्तर ने कहा, "क्यों बृहन्नला, आपने अर्जुन का रथ हाँका था ?"

बृहन्नला ने साफ़ इनकार कर दिया। कहा, "ऐ कुमार, भला मैं रथ हाँकना क्या जानूँ ? नाचने-गाने के लिए कहो, तो और बात है।" यह कहकर वर्म उठाकर बृहन्नला उलटा करके पहनने लगीं। उत्तरकुमार हँसने लगे। सैरन्ध्री ने कहा, "कुमार, उत्तराकुमारी अगर कहें, तो यह तुम्हारे साथ तैयार हो सकती हैं।"

उत्तरा भी सुन रही थी। उसने बृहन्नला का हाथ पकड़कर जाने का अनुरोध

किया। उत्तरा ने अच्छी तरह वर्म पहना दिया। बृहन्नला से उत्तरा ने कहा, "बृहन्नला, कौरवों के अच्छे-अच्छे कपड़े हमारे लिये ले आना। मैं गुड़िया बनाऊँगी।"

बृहन्नला ने हँसकर उत्तर दिया, "राजकुमार जब जीत जायँगे, तब हम ज़रूर तुम्हारे लिये कौरवों के कपड़े ले आयेंगे।" रथ तैयार था। उत्तरकुमार सजकर, अपना धनुष और तूण लेकर उस पर बैठे। बृहन्नला ने घोड़ों की जोत ली। नये जोश में कुमार को कुछ मालूम न था कि युद्ध ऐसा नहीं होता कि एक लाखों के विरुद्ध लड़ सके। इधर अर्जुन को कोई भय-बाधा थी नहीं। इसीलिए दोनों बिना सेना लिये हुए युद्ध-क्षेत्र की ओर चले गये।

उत्तर का रथ अब कौरव-सेना के पास पहुँचा। यहाँ से अभी काफ़ी दूरी थी, पर कौरवों की समुद्र-सी लहराती हुई सेना देख पड़ती थी। उत्तर ने कौरवों की सेना को देखा, तो मारे डर के मुँह का थूक सूख गया। उसने कहा, "बृहन्नला, रथ लौटाल ले चलो। मैं युद्ध न करूँगा।" "क्यों कुमार ?" बृहन्नला ने कहा, "अब लौटने पर सब लोग हँसेंगे।" कहकर बृहन्नला मुस्करा रही थी। उत्तर ने बार-बार रथ लौटा ले चलने को कहा, परन्तु जब बृहन्नला ने न लौटाला, तब उतरकर भागा। दौड़कर बृहन्नला ने पकड़ लिया। उत्तर बहुत घबरा गया था। छोड़ देने को आरज़ू-मिन्नत करने लगा, तब बृहन्नला ने कहा, "अच्छा, मैं लड़ूंगी, तुम मेरे सारथि तो बनोगे ?" उत्तर ने मंजूर किया। तब अर्जुन शमी-वृक्ष की तरफ़ रथ ले गये, और उत्तर से कहा, 'वहाँ पाण्डवों के हथियार बँधे हैं, जाओ, सबसे बड़ा जो धनुष और तरकस है, उन्हें ले आओ। वे अर्जुन के गाण्डीव और अक्षय तूणीर हैं।" उत्तर की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा, "बृहन्नला, वे महाभाग और वह साध्वी द्रौपदी इस समय कहाँ हैं ?" "मैं अर्जुन हूँ, जाओ, देर मत करो।" उत्तर ने विश्वास होने पर अर्जुन के पैर पकड़कर प्रणाम किया, और वृक्ष से गाण्डीव और अक्षय तूणीर उतार लिये। सजते समय सर पर वस्त्र लपेटकर अर्जुन ने बहुत कुछ अपना रूप छिपा लिया। उत्तर ने वेगशाली अश्वों को कौरवों की विशाल वाहिनी की ओर हाँका।

वेगशाली एक ही रथ को बिना भय के बढ़ता देखकर कौरव तरह-तरह की कल्पनाएँ करने लगे। तेरह वर्ष की कठोर साधना, संयम और दुराचारियों को दण्ड देने की प्रतीक्षा, आज तम की रात के बाद उगे हुए सूर्य की तरह, महावीर अर्जुन के मुख-मण्डल पर जगमगा रही थी। इस एक ही रथी की शान कौरवों के सैकड़ों रथियों को लजा रही थी।

बहुतों को यह शंका होनी हुई जानकर कि यह अर्जुन हैं, दुर्योधन ने भीष्म से जाकर पूछा कि वनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी हो चुकी है या नहीं। भीष्म ने कहा, "एक हिसाब से तो पूरी हो चुकी है, और पाँच महीने छः दिन और बढ़ गये हैं, पर दूसरे हिसाब से अभी कुछ दिन बाकी हैं।"

अर्जुन एक दृष्टि से दुर्योधन को खोज रहे थे। एक ओर गर्द उड़ती हुई देखकर उन्होंने निश्चय किया कि वह दुर्योधन ही भागा जा रहा होगा। उत्तर को उसी ओर रथ बढ़ाने को कहा। उत्तर के उस तरफ चलने पर कर्ण ने राह रोक

ली। दोनों का युद्ध होने लगा। अर्जुन गुस्से में भरे हुए थे। देखते-देखते उन्होंने कर्ण के भाई विकर्ण को मार डाला। दोनों में भयंकर संग्राम होने लगा। पर अर्जुन ने बात-की-बात में कर्ण को तेज़ बाणों से जर्जर कर दिया। फिर कृपाचार्य, अश्वत्थामा, द्रोण आदिकों को भी युद्ध में परास्त किया। कौरवों की सेना समुद्र के जल की तरह गरज रही थी। सबको पराजित हुआ देखकर भीष्म ने रथ बढ़ाया। कुछ देर तक युद्ध होता रहा। महावीर अर्जुन ने भीष्म का धनुष काटकर छाती पर एक तीर मारा, जिससे पितामह कुछ देर के लिए मूर्च्छित हो गये। कौरव-दल विकल होकर अधर्म युद्ध करने लगा। इससे महावीर पार्थ को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सम्मोहन शर का सन्धान किया। तीर छूटने पर कौरव-दल मूर्च्छित हो गया। अर्जुन ने उत्तर से कहा, "उत्तर, जाओ, कौरवों के अच्छे-अच्छे वस्त्र ले आओ, पर भीष्म के पास से सजग होकर जाना। वह इसका खण्डन जानते हैं।" उत्तर द्रोण और कृप के सफेद, कर्ण के पीले, अश्वत्थामा और दुर्योधन के नीले वस्त्र, ज़रीन मुकुट आदि ले आये। फिर गौओं को खेदकर अपने यहाँ ले चले।

मूर्च्छा जगने पर दुर्योधन ने अर्जुन को घेरने के लिए कहा, पर भीष्म ने समझाया कि इतना बहुत हुआ, अब लौट चलना ठीक होगा। यदि अर्जुन चाहता, तो सबको मूर्च्छित अवस्था में मार सकता था।

लौटते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा कि उनका भेद वहाँ वह तब तक न जाहिर करें, जब तक पाण्डव स्वयं आत्मपरिचय न दें। इस जीत का श्रेय वह स्वयं लें।

विराट त्रिगर्त को हराकर जब अपनी राजधानी लौटे, तब अन्तःपुर में उन्हें संवाद मिला कि उत्तरकुमार बृहन्नला को लेकर अपनी गौएँ छुड़ाने गये हैं। विराट बहुत घबराये। उन्होंने दूत को देखने के लिये भेज दिया, कि उत्तरकुमार का क्या संवाद है, वह लौटकर कहे। कुछ देर बाद दूत विजय-संवाद लेकर आया। उत्तरकुमार की विजय-वार्ता सुनकर विराट फूले न समाये। बहुत दिनों से उन्होंने पाँसा न खेला था। उस दिन खेलने के लिए मँगवाया। खेल में कंक साथी थे। विराट प्रबल कौरव-दल को जीतनेवाले उत्तरकुमार की तारीफ करने लगे। कंक ने कहा, "महाराज, बृहन्नला के सारथित्व में उत्तरकुमार को जीतना ही था।" कई बार इसी तरह विराट ने उत्तर की तारीफ की और कंक ने बृहन्नला को सराहा। तब क्रुद्ध होकर विराट ने कहा, "कंक, तुम सँभलकर बातें नहीं कर रहे हो। उस एक नाचनेवाले की बार-बार तारीफ करते हो।" कंक बोले, "राजन्, जहाँ महावीर भीष्म, द्रोण, कृप और कर्ण आदि एकत्र हों, वहाँ उत्तरकुमार की विजय पर आप ही को विश्वास हो सकता है, किसी समझदार को नहीं।" विराट को क्रोध आ गया। उन्होंने पासा फेंककर कंक को मार दिया, जिससे उसकी नाक से खून बहने लगा। सैरन्ध्री खड़ी थी। सोने के कटोरे में जल भरकर वह रक्त को उसी में ले रही थी। इसी समय उत्तरकुमार द्वार पर आये, और पिता से मिलने की खबर भेजी। उत्तर के आग्रह से अर्जुन पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी का परिचय दे चुके थे। युधिष्ठिर ने द्वारपाल के कान में कहा, "बृहन्नला को अभी आने से रोक दो।" उत्तर को देखकर विराट बहुत प्रसन्न हुए। कंक के रक्त-स्राव का कारण समझकर उत्तर ने उन्हें प्रणाम कर पिता को ब्राह्मण से क्षमा माँगने के लिए कहा।

पाण्डवों का स्वरूप-धारण

शुभ मुहूर्त देखकर यह निश्चय किया गया कि विराट की ही राजसभा में पाण्डव राजसिंहासन पर बैठकर संसार को अपना परिचय दें। निर्धारित समय प्रातःकाल द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों ने स्नान और अग्निहोत्र किया। फिर सिंहासन पर महाराज युधिष्ठिर तथा द्रौपदी बैठे। नकुल और सहदेव चँवर ढुरने लगे। अर्जुन ने राजच्छत्र किया। भीम सेनापति के रूप से सामने गदा लेकर खड़े हुए।

दरबार के समय राजा विराट आये, और कंक आदि का यह तमाशा देखकर बड़े चकित हुए। पहले तो सोचा, 'शायद कंक ने सुशर्मा के युद्ध में मेरी सहायता की थी, इसलिए मुझे न मानकर अब खुद राजा होना चाहता है।' कंक को पाँसा मारने की बात भी उन्हें याद आयी। बड़े विस्मय से कुछ देर तक देखते रहे। उनका जुआड़ी सखा कंक है! बगल में सैरन्ध्री दासी जो उनके लिए चन्दन घिसती थी! सामने वल्लभ रसोइया! छत्र लिये हुए हिजड़ा बृहन्नला! चँवर ढुरनेवाले ग्रन्थिक और तन्त्रिपाल, एक सईसों का जमादार, दूसरा चरवाहों का मुखिया! हृदय को कड़ा करके विराट ने कहा, "कंक! हमारे सेवक होकर इतनी बड़ी स्पर्धा तुमने की!" सुनकर अर्जुन हँसने लगे। कहा, "महाराज! आपका सिंहासन इनके बैठने योग्य नहीं। इन्हें तो इन्द्र भी अपने साथ बैठाकर अपना सौभाग्य समझते हैं। यह कौरवों के गौरव महाराज युधिष्ठिर हैं।"

द्रौपदी तथा अपर भाइयों के परिचय ज्ञात हो जाने पर भी विराट ने पूछा। अर्जुन ने बतलाया। तब तक उत्तरकुमार भी आ गये। उन्होंने पिता से कहा, "इन महावीर अर्जुन के ही दिव्यास्त्रों की चोटें भीष्मादि नहीं सह सके, और कौरव पराजित हुए। पिता! हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं, जो हमारे यहाँ आश्रय लेकर इन्होंने अपना अज्ञातवास पूरा किया। हमें बड़ा खेद है कि हमने भूल से भी ऐसे महापुरुषों तथा महारानी द्रौपदी से सेवा करायी, अब हमें आजीवन इनकी सेवा करके इसका बदला चुकाना चाहिए।"

विराट गद्‌गद हो गये। हाथ जोड़कर धर्मराज से क्षमा माँगी। विराटनगर में आनन्द का सागर उमड़ने लगा। राजा विराट ने अर्जुन से उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव किया, पर अर्जुन ने कहा, "मैंने अपनी पुत्री के रूप से उसे शिक्षा दी है। यह उचित नहीं। श्रीकृष्ण का भानजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु है, महाराज युधिष्ठिर की इच्छा हो, तो वह विवाह कर सकते हैं।" महाराज युधिष्ठिर ने आज्ञा दे दी। बड़े समारोह से, कृष्ण-बलराम आदि के साथ, द्वारका से बारात आयी, और अभिमन्यु-उत्तरा का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ।

पाण्डव अच्छी तरह प्रकाश में आ गये। अज्ञातवास का समय पूरा हो गया। एक अपूर्व शक्ति का प्रवाह झरने की तरह उनके हृदय से फूट निकला और नवीन जीवन की स्निग्धता उनकी नस-नस में प्रवाहित हो चली। वे संसार को एक नयी ही दृष्टि से देखने लगे। उन पर छल और प्रपंच के जो सांघातिक अत्याचार हुए थे, जिन लांछनों को नत-मस्तक होकर धर्म के विचार से उन्होंने सहन किया था, वे सब उन्हें एक-एक करके याद आने लगे, और उनकी बदले की प्रवृत्ति रह-रहकर नागिन की तरह फन काढ़ने लगी।

उत्तरा के विवाह के पश्चात् पाण्डवों के सखा और हितैषी श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के पक्ष की पुष्टि के विचार से, समागत राजन्यवर्ग को एकत्र करके सभा करने की युधिष्ठिर और भीमार्जुन को सलाह दी, समझा दिया कि जो युद्ध अदूरभविष्यत् में होना अनिवार्य है, उसकी तैयारियों का जल्द-से-जल्द श्रीगणेश होना चाहिए, कौरव पुनः पाण्डवों को राज्य से बहिष्कृत करने के लिए तत्पर होंगे; वे जैसे दुष्ट स्वभाव के हैं, उनसे किसी प्रकार के अनिष्ट की कल्पना की जा सकती है; इसलिए, एक बार धोखा खाकर बार-बार धोखा खाना समझदार का काम न होगा; इस बार उनके दुष्कर्मों का उन्हें फल मिलना ही चाहिए।

शुभचिन्तक श्रीकृष्ण की आज्ञा को पाण्डवों ने शिरोधार्य कर लिया, और विराट के राजभवन में आमन्त्रित राजाओं की एक सभा का आह्वान किया। द्रुपद, विराट, बलराम, कृष्ण, सात्विक आदि जितने शूरवीर अभिमन्यु के विवाह में आमन्त्रित होकर गये थे, उस सभा में एकत्र हुए। पाण्डवों के लिए उनके हृदय में जगह थी। सब पाण्डवों का हित चाहते थे। धर्म के पक्षपात के साथ वे रिश्ते के सूत्र से भी पाण्डवों से सम्बद्ध थे।

सभा में पाण्डव श्रीकृष्ण के विश्वास में सिर झुकाये चुपचाप बैठे रहे। दूसरे राजा भी श्रीकृष्ण के बोलने की प्रतीक्षा में विश्वासपूर्वक उनकी दृष्टि की ओर देखते रहे। सभा का रुख मालूम कर संयत, शान्त, मधुर स्वर से श्रीकृष्ण ने कहना शुरू किया, "भाइयो, मैं आप लोगों के समक्ष उन्हीं बातों को निवेदन के रूप में कहूँगा, जिन्हें कहने के लिए पाण्डव मुझसे अनुरोध कर चुके हैं। आप लोग जानते हैं, महाराज युधिष्ठिर से राज्य छीनने के लिए कर्ण और शकुनि से मिलकर दुरात्मा दुर्योधन ने जुए का प्रपंच रचा था। वह जुआ भी अन्यायपूर्ण था। पुनः दुर्योधन पाण्डवों से केवल राज्य लेकर सन्तुष्ट नहीं हुआ, वन-गमन और अज्ञातवास की शर्त भी पूरी करायी। छलपूर्ण पाँसे से जीतकर, पाण्डवों को देश से निकालकर बिलकुल निष्कण्टक राज्य करने का इरादा पक्का किया। इतना ही नहीं, दाँव पर महारानी द्रौपदी को रखने के लिए भी महाराज युधिष्ठिर को उत्तेजित किया, और उन्हें जीतकर, उनके एक वस्त्रा रजस्वला रहते समय, सभा में केश-कर्षण-पूर्वक पकड़ मँगवाकर विवस्त्रा करने का भी पूर्णोद्यम कराया। पाण्डव इस इतने अत्याचार के होते हुए भी धर्म की ओर दृष्टि किये चुपचाप बैठे रहे। वे भिक्षुकों

से भी इतर अवस्था में घर छोड़कर, अपना सर्वस्व दुर्योधन को अर्पण कर, वन गये। वहाँ भी उनके लिए निश्चिन्त रहना दुश्वार हो गया। अन्य आपत्तियों की तो बात ही क्या, दुरात्मा दुर्योधन राज-पुरांगनाओं-सहित अपने ऐश्वर्य से पाण्डवों को श्रीकातर, हीनवीर्य करने के लिए वन गया। कीचक-वध से संशय में आकर महाराज विराट के ऊपर भी चढ़ाई की, उनकी धेनुएँ चुरायीं। बाल्यकाल से पाण्डवों के प्रति दुर्योधन के अनेकानेक दुर्व्यवहार के प्रमाण मिलते हैं। धर्मतः यह राज्य पाण्डु से आया हुआ पाण्डवों का है; पुनः महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन से वयो-ज्येष्ठ हैं; यह राज्य अधर्मतः लिया गया है। अपरंच दुर्योधन के शासन से राज्य के समस्त प्रजावर्ग दुखी हैं। ऐसे अधार्मिक, अत्याचारी राजा का शासन कदापि शास्त्रविहित नहीं। आप लोगों की जो राय हो—महाराज युधिष्ठिर अपने राज्य की प्राप्ति का प्रयत्न करें या चुपचाप बैठ जायँ इस सभा में निस्संकोच भाव से आप लोग आज्ञा करें।"

श्रीकृष्ण की वक्तृता से प्रभावित होकर महाराज द्रुपद ने कहा, "पाण्डव हमारे सम्बन्धी हैं। इसलिए हमारे कथन में पक्षपात का अंश अधिक हो सकता है। पर देश में धर्म और ज्ञान की दृष्टि से सम्मान्य कृष्ण जब धर्मराज्य की स्थापना के लिए इस प्रकार पाण्डवों का पक्ष ग्रहण कर रहे हैं, तब सम्पूर्ण श ित से उनकी सहायता करना ही हम अपना सुखद कर्त्तव्य समझते हैं। कौरव दुराचारी हैं, यह सर्वजनसम्मत है।"

महाराज द्रुपद की बात समाप्त होते ही महामति बलराम तर्जना करते हुए बोले, "हमारी सम्मति में दुर्योधन निर्दोष है। राज्य वास्तव में उसके पिता महा-राज धृतराष्ट्र का है। उनके अन्धे होने के कारण पाण्डु को राज्य का शासन-भार मिला था। धृतराष्ट्र के पुत्र होने पर उस राज्य पर पाण्डवों का फिर कोई अधिकार नहीं रह जाता। फिर भी दुर्योधन ने राज्य की प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का बलात्कार नहीं किया। महाराज युधिष्ठिर को उसने जुआ खेलने के लिए आमन्त्रित किया, और बाकायदा दाँव पर राज्य जीता। युधिष्ठिर चाहते, तो नहीं भी खेल सकते थे; कोई बाधकता न थी। इस प्रकार एक के जीते हुए राज्य को फिर से दिलाने का प्रयत्न हमारे विचार से अन्याय है। हम इसका विरोध करते हैं। अगर दुर्योधन अत्याचारी है तो इसका निर्णय उसकी प्रजा करेगी, हम और आप नहीं। प्रजा के द्वारा ही इसका उचित प्रतिफल उसे मिलना चाहिए। उसने अपने हिस्से-दारों के प्रति जैसा बर्ताव किया है, वह राजनीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। फिर भी हमारी राय है कि दुर्योधन के पास राजनीति का जानकार कोई योग्य दूत भेजकर मालूम किया जाय कि महाराज युधिष्ठिर के राज्य के सम्बन्ध में वह क्या कहता है—हृतसर्वस्व भाइयों को वह राज्य का आधा हिस्सा देना चाहता है, या केवल गुजारा, या कुछ नहीं।"

महामति बलदेव की सम्मति में महावीर सात्यकि को दुर्योधन के प्रति हुआ पक्षपात मालूम दिया। वह वीर गुस्से को न दबा सका। कहा, "जिस जुए के लिए धृतराष्ट्र तक की सम्मति हो, पाँसे कपट के बने हों, उसे न्यायसंगत कहना बलदेव-जी-जैसे महात्मा को ही शोभा दे सकता है। पाण्डव जिस धैर्य की परीक्षा दे चुके हैं,

वह उनके यथार्थ भाव को अच्छी तरह प्रकट कर देता है। महाराज युधिष्ठिर की जुआ खेलने की कदापि नीयत नहीं हो सकती, न बुद्धिहीन होकर उन्होंने राज्य को अपने सहित भाइयों को, दारा को और बनवास की शर्त को दाँव पर रखा। द्रौपदी को आज तक उनका बचा रखना उनको बाहोश रहना साबित करता है। उन्हें दुर्योधन बार-बार प्रेरित करता रहा। राजा अपने राजसी भाव को छोड़कर कभी कार्पण्य नहीं दिखा सकता। यही कारण है कि महाराज युधिष्ठिर दाँव पर दाँव रखते गये, जब तक वे हार के अन्तिम निर्णय तक नहीं पहुँचे, यह धर्मपुत्र युधिष्ठिर ही कर सकते थे। मेरी समझ में, नीच दुर्योधन के पास दूत भेजना पहले से अपनी हार स्वीकार करना है। आचार्य अर्जुन की सहायता से मैं अकेला समस्त कौरवों को बाँध सकता हूँ।"

सात्यकि को उत्तेजित देखकर महाराज द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए, पर सभा के विचार से बात बनाकर बोले, "यद्यपि वीर सत्यकि की बातें सत्य की दृष्टि से मर्म को स्पर्श करनेवाली हैं, फिर भी महामति बलराम की सम्मति का हमें सम्मान करना ही चाहिए। हमारी समझ में कौरव-सभा में दूत भेजने के साथ-साथ समस्त देश के राजाओं के पास रण-निमन्त्रण भेजना चाहिए। उनके सहयोग से हमारी शक्ति बढ़ेगी और उनकी राय भी इस तरह हमें मालूम हो जायगी, और यद्यपि हमारे इस कार्य की कौरवों को बहुत जल्द गुप्तचरों द्वारा सूचना मिल जायगी, फिर भी हमारे परिपुष्ट दल का प्रभाव उन पर जरूर पड़ेगा, और इसका फल पाण्डवों के हक में अच्छा होगा।"

श्रीकृष्ण को राजा द्रुपद की यह सलाह बहुत पसन्द आयी, और रण-निमन्त्रण के साथ कौरवों की सभा में दूत भेजने का ही निश्चय रहा।

अन्त में सभी सभासदों की पूर्ण प्रसन्नता से सभा विसर्जित की गयी।

युद्ध की तैयारियाँ

सभा-भंग के पश्चात् जोरों से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। अल्प-संख्यक होने पर भी पाण्डवों के पक्ष में अपार उत्साह उमड़ पड़ा। राजा द्रुपद और विराट ने अपनी-अपनी समस्त शक्ति पाण्डवों के अधिकार में कर दी। श्रीकृष्ण द्वारका को गये, और गृह-हीन पाण्डव द्रुपद और विराट की सेना के साथ कुरुक्षेत्र के पास शिविर-निवेश करके ठहरे। दुर्योधन को सारा भेद मालूम हो गया। वह भी युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। दोनों ओर से देश के समस्त राजाओं के पास युद्ध का निमन्त्रण जाने लगा। अधिकांश राजा, जो यह देखते थे कि दुर्योधन राजा हैं—उसके हाथ हस्तिनापुर की समस्त शक्ति है—पुनः, भीष्म और द्रोण-जैसे महावीर योद्धा उसकी तरफ हैं, पाण्डव वनवास से आये हुए, हीन-वीर्य हैं, वे कौरवों का पक्ष लेते थे। पर जो यह समझते थे कि पाण्डव धर्मात्मा हैं—उनमें अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति है—अर्जुन विश्वविजयी वीर है—भीम महापराक्रमशाली है—पुनः, उनके साथ इस समय के सर्वश्रेष्ठ पुरुषरत्न श्रीकृष्ण का सहयोग है, वे पाण्डव-पक्ष में आते थे। ये सब राजा अपने-अपने देश से चलकर कुरुक्षेत्र के विशाल प्रांगण में आ-आकर ठहरने लगे।

इन दिनों यादवों की शक्ति देश की एक प्रबल शक्ति हो रही थी। इनके नायक श्रीकृष्ण थे। कृष्ण का देश में बड़ा सम्मान था। इसलिए इन्हें आमन्त्रित करने के लिए महाराज दुर्योधन स्वयं चले। वहाँ आचार्य बलदेवजी की भी आज्ञा लेनी थी। दुर्योधन पूरे राजसी ठाट से थे। कृष्ण को आमन्त्रित करना पाण्डव का पहला कर्तव्य था। कृष्ण के बिना पाण्डव अपने को निःशक्त समझते थे। अस्तु, महावीर अर्जुन श्रीकृष्ण को आमन्त्रित करने के लिए चले। संयोगवश महाराज दुर्योधन और वीरवर अर्जुन एक ही समय द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ लोगों ने इनका स्वागत किया, अच्छी-अच्छी जगह ठहराया। अर्जुन की तो वहाँ ससुराल ही थी। बाहर के लोगों से मिल-जुलकर अर्जुन जब श्रीकृष्ण के मन्दिर में गये, तब श्रीकृष्ण योग-निद्रा में सोये हुए थे। अर्जुन ने देखा, उनके सिरहाने अकड़ के साथ राजा दुर्योधन बैठा हुआ है। अर्जुन कुछ न बोले, पायताने की तरफ नम्र भाव से बैठ गये। यथा-समय कृष्ण की आँख खुलने पर उन्होंने पायताने की तरफ देखा, अर्जुन बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की कुशल और आने का कारण पूछा। अर्जुन भक्तिपूर्वक आदरणीय मित्र से सब हाल कहते गये। इसके बाद महाभारत-समर का उल्लेख कर कृष्ण को निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण स्वीकार कर श्रीकृष्ण फिरे। देखा, सिर-हाने राजा दुर्योधन बैठे हुए थे। मुस्कराकर श्रीकृष्ण ने उसी प्रकार दुर्योधन से भी कुशल और आगमन-समाचार पूछा। दुर्योधन ने अपना कुशल-समाचार कहते हुए कहा, "हम दोनों एक ही उद्देश्य से यहाँ आये थे, मैं बल्कि अर्जुन से पहले आया हुआ हूँ। इसलिए आपको अपने पक्ष में पाने का मेरा पहले अधिकार है।" कृष्ण हँसे। अर्जुन को स्नेह की दृष्टि से देखते हुए बोले, "कौरवराज, मैं महावीर अर्जुन से वचनबद्ध हो चुका हूँ, इसलिए आपका पक्ष अब न ग्रहण कर सकूँगा, और करता भी तो मुझसे आपकी उद्देश्य-सिद्धि न होती, क्योंकि मैं कौरव और पाण्डव दोनों को समदृष्टि से देखता हूँ, इसलिए भारत-युद्ध में मैं अस्त्र ग्रहण न करूँगा; वीरवर अर्जुन ने आमन्त्रित किया है, इसलिए उनके साथ रहूँगा, बस। आप पहले आये हैं, इसलिए मैं आपको उसी रूप से सम्वर्धित करूँगा। युद्ध करनेवाली मेरी नारायणी सेना है, मैं वह सेना आपकी बल-पुष्टि के लिए देता हूँ। इस तरह आपका उद्देश्य सफल होगा।" दुर्योधन यही चाहता था। नारायणी सेना पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

माद्री के भाई, पाण्डव के मामा, राजा शल्य दूत से महाभारत-समर की सूचना पाकर अपनी समस्त सेना लेकर पाण्डव के पक्ष-समर्थन के लिए चले। दुर्योधन को यह खबर मिली, तो वह चतुर कार्यकर्ताओं को लेकर शल्य के मार्ग में पहुँचा और सेना के ठहरने के लिए जगह-जगह बड़ा ही अच्छा प्रबन्ध करवाया। कूप, सरोवर, फुलवाड़ी आदि जहाँ-जहाँ थे, वहीं-वहीं पड़ाव का मुकाम बनवाया; अच्छे-अच्छे खीमे लगवा दिये, रसद सब प्रकार की एकत्र कर दी; भोजन, पान और प्रमोद आदि की भी सुव्यवस्था कर दी, जिससे राजा शल्य को किसी प्रकार का मार्गश्रम न हो, बल्कि वह अपनी राजधानी से भी अधिक सुख का अनुभव करे। ऐसा ही हुआ। राजा शल्य सब प्रकार के आराम और शान्ति से मार्ग पार करते हुए कई पड़ाव ठहर चुके। सुप्रबन्ध देखकर वह आश्चर्यचकित हो गये। बार-बार

युधिष्ठिर की और आराम के स्थानों की रचना करनेवाले शिल्पियों की प्रशंसा करते रहे। दुर्योधन साथ छिपा हुआ चल रहा था। उसे यह संवाद मिलता जाता था। एक दिन राजा शल्य ने कहा, "जिस शिल्पी ने ऐसी मनोरम रचना की है, हम उसे पुरस्कार देना चाहते हैं, महाराज युधिष्ठिर को इससे बुरा न मानना चाहिए, उस शिल्पी को हमारे सामने लाकर हाजिर करो।" यह खबर भी दुर्योधन के पास गयी। वह बहुत प्रसन्न हुआ, और समय जानकर मामा शल्य के सामने बड़े विनय-भाव से आकर खड़ा हुआ। दुर्योधन को देखकर शल्य आश्चर्य में पड़ गये, ससम्भ्रम भानजे को पास बैठाते हुए आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने मर्यादा-पूर्ण कण्ठ से कहा, "मामा, आपने उस शिल्पी को पुरस्कृत करने के लिए याद किया है, जिसने आपके श्रमापनोदन के लिए ऐसी चारुता की रचना की है ?—वह इस रचना का विधायक मैं ही हूँ। मेरे लिए जैसी आज्ञा हो।" शल्य समझ गये। यथार्थ वीर की तरह प्रसन्न होकर बोले, "वत्स, माँगो, मैं तुम्हारी प्रार्थना पूरी करूँगा।" दुर्योधन ने कहा, "तो यह वरदान दीजिए कि आपके साथ आपकी समस्त सेना का सहयोग भारत-समर के लिए मुझे प्राप्त हो।" 'तथास्तु' कहकर शल्य ने दुर्योधन को समादृत किया। प्रसन्न होकर दुर्योधन चला आया। पश्चात् पाण्डवों से शल्य का साक्षात् हुआ। पाण्डवों ने अपनी स्वाभाविक विनम्रता से मामा का स्वागत किया और ठहराने का प्रयत्न करने लगे। शल्य ने युधिष्ठिर को प्रबोध देते हुए कहा, "वत्स युधिष्ठिर, हमारे साथ छल हो गया है। हम तुम्हारी ही सहायता को चले थे, परन्तु मार्ग में दुर्योधन ने हमारे ठहरने का प्रबन्ध करा रखा था; हम समझते आते थे—यह सब तुम्हारा किया हुआ है। अन्त में उस मनोहर रचना के दक्ष शिल्पी को पुरस्कार देने के लिए हमने बुलवाया, तो कौरवपति दुर्योधन हमसे आकर मिले और यह पुरस्कार माँग लिया कि हम अपनी समस्त सेना के साथ कौरव-पक्ष की मदद करें।" बेचारे पाण्डव मन-ही-मन श्रीकृष्ण का स्मरण कर रह गये। कौरवों को मिली हुई सहायता इस समय भी उनकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। इस पर शल्य की सेना भी सम्मिलित होने जा रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर इस पर कुछ कह न सके। शल्य के चलते समय उन्होंने इतना ही कहा, "मामा, कर्ण से अर्जुन का युद्ध होने पर बहुत सम्भव है, आपके सारथ्य की आवश्यकता हो। कारण, श्रीकृष्ण-जैसा कुशल सारथि उस ओर कोई नहीं, और आप देश-भर में इस कला के लिए प्रसिद्ध हैं; उस समय कर्ण का उत्साह तोड़े रहिए, आपसे इतनी ही प्रार्थना है।" युधिष्ठिर का निवेदन स्वीकार कर राजा शल्य कौरवों के शिविर की ओर चले।

श्रीकृष्ण द्वारकापुरी से पाण्डवों के यहाँ आये, और बातचीत से मालूम किया कि राजा द्रुपद ने सन्धि के प्रस्ताव से अपना पुरोहित हस्तिनापुर में भेजा था, वह यह संवाद लेकर लौटा है कि बिना युद्ध के आधे राज्य की बात तो दूर है, सुई के अग्रभाग के इतनी जमीन भी दुर्योधन पाण्डवों को न देगा।

इस पर कृष्ण पाण्डवों से मन्त्रणा करने लगे कि वास्तव में आगे क्या करना उचित होगा। पाण्डव, खासकर महाराज युधिष्ठिर, स्वभाव के विनम्र थे; युद्ध द्वारा वंश-नाश हो, यह उनका अभिप्राय न था। अर्जुन की वर्जित शिक्षा के कारण

यद्यपि यह विश्वास था कि वह युद्ध में कौरवों को परास्त कर सकते हैं, फिर भी भीष्म और द्रोण आदि के समक्ष अस्त्र ग्रहण करते उन्हें लज्जा होती थी। भीम भीतर से तो युद्ध चाहते थे, पर बाहर से महाराज युधिष्ठिर का अदब करते थे। नकुल और सहदेव की अपनी कोई राय न थी। वे अपने बड़े भाइयों की आज्ञा के अनुसार चलना चाहते थे। फलतः श्रीकृष्ण से महाराज युधिष्ठिर की जो बातचीत हुई, उसमें सन्धि की व्यंजना प्रधान रही, और आधे राज्य की जगह यह स्थिर हुआ कि दुर्योधन पाण्डवों को रहने-भर के लिए पाँच गाँव दे दे। सन्धि का यह सन्देश ले जाना श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया; भीतर से यद्यपि जानते थे कि कौरवों की मनोवृत्ति के अनुसार युद्ध होना अनिवार्य है।

पाण्डवों से मिलकर कृष्ण द्रौपदी से मिलने गये। कृष्णा ने कृष्ण का बड़ा आदर किया। हाथ पकड़ स्नेह से आसन पर बैठाकर जलपान कराया, और दासी के बदले स्वयं खड़ी वायु-व्यंजन करती रही। कृष्ण को जलपान करा, पान खिला, रुक्मिणी, सत्यभामा और प्रद्युम्न आदि की बातें पूछने लगी। कृष्ण एक-एक कर सबके कुशल-समाचार कहते गये। इसके बाद आवेग में भरकर कृष्णा बोली, "तुम्हें आमन्त्रित करने के लिए तीसरे पाण्डव गये थे, महाभारत युद्ध होनेवाला है—तुमने सुना होगा।" कृष्ण ने कहा, "लेकिन, महाराज युधिष्ठिर की इच्छा सन्धि की है; भीमार्जुन उनसे सहमत हैं, कम-से-कम लेकर वे सन्धि कर लेंगे। हकवाली कोई बात नहीं; वे भाइयों से युद्ध नहीं चाहते। हमें सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाने-वाला दूत बनाया है।" द्रौपदी का वह भाव बदल गया, कमल पर जैसे तुषार पड़ा। बोली, "केशव, क्या तुम्हारी भी यही इच्छा है? मेरे अपमान की तुम्हें याद नहीं रही?" इसके बाद अपने खुले हुए लम्बे-लम्बे बालों का एक गुच्छा पकड़कर कृष्ण को दिखाती हुई बोली, "इनकी बेली अभी नहीं बँधी यदुपति!" कहते-कहते द्रौपदी के नील नयनों से आँसू बहने लगे। कृष्ण स्थिर होकर बोले, "कृष्णे, धैर्य करो, दुर्योधन सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार न करेगा, युद्ध अनिवार्य है. एक तो स्वभाव से ही वह मन्द है, पुनः राजमद, इस पर कर्ण और शकुनि-जैसे उसके मन्त्रणादाता, वह कदापि भाइयों के लिए त्याग स्वीकार न करेगा. तुम्हारी मनोवांछा पूरी होगी।" कृष्णा विश्वास की दृष्टि से प्रिय कृष्ण को देखती रही। कृष्ण बाहर आये, और सात्यकि को लेकर हस्तिनापुर चले।

कृष्ण का दौत्य

श्रीकृष्ण के आने की खबर से लोगों में बड़ा उत्साह फैला। हस्तिनापुर की प्रजा हृदय से पाण्डवों के पक्ष में थी। वह युद्ध नहीं चाहती थी। वह भी पाण्डवों के विरुद्ध, जो अपना सर्वस्व भी देकर उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। प्रजा को यह आभास हुआ कि कृष्ण के आने से उसका भला ही होगा। परन्तु जब उसने यह सुना कि कृष्ण पाण्डवों की तरफ से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हैं, तब उसकी खुशी की हद हो गयी, और वह अपनी-अपनी टोली से समवेत होकर श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए चली। धृतराष्ट्र और दुर्योधन को जब यह खबर हुई, तब पहले वे आगमन का कारण नहीं समझ सके; सोचा, दुर्योधन मिलने गये थे, इसलिए, प्रसन्न

होकर कृष्ण भी आये हुए हैं। खातिरदारी से उन्हें अपनी तरफ करने की लालसा लेकर महाराज धृतराष्ट्र भी दुर्योधन-दुःशासन आदि पुत्रों तथा परिषद्-वर्ग के साथ कृष्ण का स्वागत करने चले। इस तरह महासमारोहपूर्वक कृष्ण की अभ्यर्थना हुई। नगर-प्रवेश कर, अत्यन्त आग्रह किये जाने पर भी वह कौरवों के यहाँ नहीं ठहरे, विदुर के यहाँ गये, और वहाँ महारानी कुन्ती के दर्शन किये। युद्ध के सम्बन्ध में विदुर और कुन्ती से अनेक प्रकार की बातें कीं। कृष्ण को विश्वास था कि सन्धि का प्रस्ताव दुर्योधन की तरफ से नामंजूर किया जायगा, फिर भी लोगों में पाण्डवों की सच्ची मनोवृत्ति का परिचय कराने के लिए वह आये हुए हैं, जिससे प्रजा का हृदय पाण्डवों के साथ रहे, ऐसा उन्होंने विदुर और कुन्ती से कहा। फिर एकान्त में कुन्ती को समझाया कि वह कर्ण को उसका परिचय बता दें, और प्रयत्न करें, जिससे वह पाण्डवों के पक्ष में आ जाय। अगर कर्ण ने दुर्योधन का साथ न छोड़ा, तो पाण्डवों के लिए मुश्किल होगी। महावीर कर्ण को समस्त शक्ति के रहते परास्त नहीं किया जा सकता। इसलिए अभी उचित यह होगा कि दुर्योधन का पक्ष न छोड़ने पर, कुन्ती मातृऋण से वर लेकर कर्ण को मुक्त करे। पहला वर यह हो कि अर्जुन के सिवा अपने किसी दूसरे भाई पर वह मरणास्त्र का प्रयोग न करे।

दूसरे दिन कौरवों की सभा में कृष्ण पधारे। इस समय तक कौरवों को यह बात मालूम हो चुकी थी कि श्रीकृष्ण पाण्डवों की तरफ से सन्धि की शर्तें लेकर आये हैं। कौरव इतने गम्भीर हो गये थे कि भाइयों को विस्वाभर भूमि भी गुजारे के लिए नहीं देना चाहते थे। पर कृष्ण बड़े प्रभावशाली पुरुष थे। यद्यपि कृष्ण ने अस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी बुद्धि के प्रयोग से वह बड़े-बड़े अस्त्रधारियों को मात देंगे, यह सोचकर दुर्योधन-प्रमुख कौरवों के पक्षवाले बहुत घबराये, और यह निश्चय किया कि महाभारत-समर तक कृष्ण को बाँधकर कैद रखा जाय। इस विचार का निश्चय कर पूरी तैयारी से कौरवगण सभा में पधारे थे। इसी समय अविचल, मन्द गति से कृष्ण सभा में गये। उनके मुख पर अपूर्व प्रकाश था। देखकर मन्द-बुद्धि कौरव अपने ही स्वभाव के हल्केपन से उठकर खड़े हो गये, और उत्तम आसन पर कृष्ण को बैठाया। सभा में महावीर भीष्म, धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप, कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि धार्मिक-अधार्मिक कौरवों के पक्ष के सभी योद्धा, परिषद्-वर्ग और प्रजाजन एकत्र थे।

कृष्ण ने कहना शुरू किया, "कौरव और पाण्डव दोनों उच्च कुल में पैदा हुए क्षत्रिय और हमारे मित्र हैं। एक ज़रा-सी बात के लिए आपस में लडकर नष्ट हो जायँ, यह उनके किसी भी हितैषी को अभिप्रेत न होगा। इससे क्षत्रियों की समस्त शक्ति नष्ट हो जायगी, और देश में धर्म, शास्त्र, ऋषि और द्विजों की रक्षा का कार्य बन्द हो जायगा, जिससे अत्याचार और अनार्यत्व की वृद्धि होगी। हमारी सनातन संस्कृति विलुप्त हो जायगी। यह युद्ध किसी प्रकार भी समीचीन नहीं। फिर पाण्डव पूर्ण रूप से निर्दोष हैं। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया, और वनवास तथा अज्ञातवास का घोर कष्ट सहन कर लौटे। महाराज युधिष्ठिर को धोखे में डालकर उनसे जुआ खेलाया गया। उनकी प्रकृति जुआ खेलने की नहीं।

जुए में उनका हारना छलपूर्ण है। जुआ कपट से भरा हुआ था। पहली बात तो यह कि महाराज युधिष्ठिर का दुर्योधन के आश्रित शकुनि के साथ जुआ खेलना हो ही नहीं सकता, न राजा के साथ मुकुटविहीन दुर्योधन जुआ खेल सकते थे। अगर खेला भी गया, तो उनका राज्य जीतनेवाले शकुनि के अधिकार में रहना चाहिए था, ऐसा नहीं हुआ; उस अधिकार पर दुर्योधन मुकुट पहनकर राजा बनकर बैठे। दुर्योधन की तरफ से शकुनि का भी खेलना न्यायपूर्ण नहीं था, क्योंकि दुर्योधन राजा नहीं थे। इससे स्पष्ट है कि जुआ अन्यायपूर्ण हुआ, और कभी जुआ न खेलनेवाले महाराज युधिष्ठिर ने केवल भाई दुर्योधन को मर्यादित करने के लिए, न खेलने के कारण प्रदर्शन से होता हुआ अपमान बचाने के लिए ही जुआ खेला। उनकी महत्ता की इतनी ही हद नहीं। जो कुछ उनसे कहा गया, वह दाँव पर रखते गये। इसके बाद वनवास, अज्ञातवास की शर्तें रखी गयीं, वह दुर्योधन का मुँह देखकर यह सब भी मंजूर करते, रखते और हारते गये। अपने साथ, भाइयों और द्रौपदी तक को दाँव पर रखनेवाले धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने एक भाई को क्या समझाया, यह उस भाई की समझ में चाहे न आये, पर भारत-जन इसे समझते हैं, और भी समझेंगे। किन्तु उस भाई का पद-पद पर क्या रूप रहा ?—अपने ही घर की महिला, महारानी द्रौपदी को भरी सभा में केश-कर्षणपूर्वक पकड़वा मँगाकर विवस्त्रा करने तक की धृष्टता की। वन में वैसे भाइयों को वैभव दिखाकर चिढ़ाने लगा। अन्त में वह कुल-महिलाओं के साथ बाँधा गया, और उन्हीं पाण्डवों ने—उन्हीं अपमानित भाइयों ने उसकी रक्षा की। एक ओर पाण्डव-वधू द्रौपदी के प्रति हुआ दुर्योधन-दुःशासनादि कौरवों का व्यवहार देखिए, दूसरी ओर गन्धर्व चित्ररथ के द्वारा बँधी कौरव-कुलांगनाओं के प्रति युधिष्ठिर-भीमार्जुनादि पाण्डवों का व्यवहार देखिए। और भी अनेकानेक उत्पात पाण्डवों के प्रति दुर्योधन ने किये-कराये। विराट के गोधन चुराने का उद्देश्य स्पष्ट है कि पाण्डवों का अज्ञातवास मालूम हो जाय, और वे फिर वन का मार्ग ग्रहण करें। इधर महाराज युधिष्ठिर का ऐसा व्यवहार कि सुरासुरजयी महावीर अर्जुन-जैसे भाई के रहते हुए भी बार-बार युद्ध से विरत रहने का विवेचन कर रहे हैं, वह व्यर्थ के लिए प्रजा-नाश और धन-हानि नहीं चाहते, अपने पूरे अधिकार की जगह मात्र आधा लेकर ही शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं।"

कृष्ण के इतना कहने के साथ सभा में 'महाराज युधिष्ठिर की जय हो' की बार-बार प्रजाओं के कण्ठ से आवाजें उठने लगीं। दुर्योधन का कृष्ण की बातों से ही धैर्य छूट चुका था। अब वह एक बार जैसे पागल हो गया। "बाँधो इसे, यह पाण्डवों का स्तावक चाटुकार है!" कहकर चिल्ला उठा। एक साथ पाश लिये हुए दुःशासन-प्रमुख कुछ कौरव आगे बढ़े। सभा में खलबली मच गयी। वैसे ही दो-एक युवक कृष्ण की रक्षा के लिए तलवार खींचकर सामने आ गये। महावीर भीष्म क्रोध से काँपते हुए खड़े हो गये, और निर्बुद्धि पामर कौरवों को डाँटा। कृष्ण का मुख-मण्डल उस समय अपूर्व प्रभा विकीर्ण कर रहा था। सभा में जैसे दूसरे सूर्य का उदय हुआ हो, देखकर कौरव त्रस्त रह गये।

महाराज धृतराष्ट्र को यह जान पड़ा, जैसे दुर्योधन का नाश समुपस्थित हो

गया हो। पुत्र-स्नेह से घबराये, बोले, "केशव, हम तो यही चाहते हैं कि ये दोनों भाई आपस में समझौता कर लें। लड़ाई-झगड़े से हानि के सिवा लाभ की क्या सम्भावना है? पाण्डव कोई दूसरे तो हैं नहीं, पर दुर्योधन को न जाने क्या सूझा है!"

दुर्योधन गर्व से बोला, "आपके आँखें होतीं, तो देखते। यह सब चक्रान्त है, मुझे नीचा दिखाने के लिए। कृष्ण की अभी जितनी ये बातें हुईं, सब पाण्डवों की तारीफ में, मेरी निन्दा से प्रजा को प्रभावित करने के लिए, सब पाण्डवों के पक्ष में लाने के लिए हुईं। यह दूत का कार्य नहीं है। कृष्ण ने यह नहीं कहा कि राज्य का यथार्थ अधिकारी दुर्योधन है, क्योंकि ज्येष्ठ उसके पिता हैं, पाण्डु नहीं। पाण्डु इसलिए राजा हुए थे कि उनके बड़े भाई अन्धे थे। पर बड़े भाई के लड़के तो अन्धे नहीं; फिर राज्य उनका न होकर युधिष्ठिर का कैसे हो जायगा? पुनः युधिष्ठिर अपना राज्य हार चुके हैं; अब समझौते की कौन-सी बात रह जाती है? कृष्ण को दूसरे वैसा नहीं समझते, जैसा हम लोग। न्याय से जो राज्य नहीं मिल सकता, उसे अन्यायपूर्वक लेने का ठान पाण्डवों ने ही ठाना है। युद्ध की तैयारियाँ उन्हीं की तरफ से पहले होनी शुरू हुई हैं। हम लोग आत्मरक्षा करनेवाले हैं। यह सब कृत्य पाण्डवों से कौन करा रहा है?—कृष्ण। यहाँ कृष्ण की जबान से लोगों को मालूम हो चुका कि ऐंठ के साथ पाण्डवों के अधिकार के लिए कृष्ण लड़ने आये हैं। मैं राज्य भी दूँ, और सिर भी झुकाऊँ!—यह कदापि नहीं हो सकता।"

"साधु, साधु, महाराज दुर्योधन!" कर्ण ने दुर्योधन को प्रोत्साहित किया। शकुनि आँखों से मुस्कराकर सभा को देखते रहे, भानजे की विजय का गर्व लिये हुए। दुःशासन ने बड़ी तत्परता से दुर्योधन को पान दिया।

कृष्ण कुछ देर तक चुपचाप रहे, फिर मन्द स्वर में बोले, "महाराज युधिष्ठिर ने यह भी कहा है कि यदि हमारा आधा हिस्सा दुर्योधन नहीं देना चाहते, तो जीवनयापन के लिए हम पाँचों भाइयों को केवल पाँच ग्राम दें, तो भी हम युद्ध से विरत होंगे।"

"यह भी एक हेकड़ी है," दुर्योधन ने कहा, "युद्ध में जैसे खुद-बखुद उन्हीं की विजय हो रही हो! पुनः प्रार्थी युधिष्ठिर हैं, न कि कृष्ण। सारी द्यूत-क्रीड़ा की तो बड़ी-बड़ी आलोचना कृष्ण ने कर डाली, पर इस माँग के मामले में न बतलाया कि प्रार्थी युधिष्ठिर क्यों नहीं आये, कृष्ण को क्यों भेजा?"

"धन्यवाद, महाराज दुर्योधन! खूब कही।" कहकर कर्ण अट्टहास कर हँसने लगे।

कृष्ण से न रह गया, बोले, "दुर्योधन, तू इतना मददृप्त है कि तेरी समझ में सीधी तौर से बातें नहीं आतीं। बड़े भाई को प्रार्थी बनाकर सामने खड़ा करते तुझे लज्जा न आयी—महामूर्ख! क्षमास्वरूप, साक्षात् धर्म, महाराज युधिष्ठिर तेरे पैर भी पड़ सकते हैं, पर जब कोई निःस्वार्थ भाव होगा। जब उनके स्वार्थ की बात उठती है, तब अपने उसी गुण के कारण वह मेरे-जैसे की सेवा प्राप्त करते हैं।"

"धन्य कृष्ण, धन्य माधव!" कहकर महामति भीष्म भावमग्न हो गये।

कृष्ण कहते गये, "तेरा नाश समुपस्थित है। तू नहीं समझ सकता, तपस्या

और शिक्षा की शक्ति से पाण्डव क्या हैं, महावीर अर्जुन क्या हो गये हैं, कीचक-जरासन्ध-विजयी महामल्ल भीम कितने प्रबल और भयंकर हैं। तेरी सेना पाण्डवों की शराग्नि में भस्म हो जायगी। तू पराजित होकर पश्चात्ताप करता हुआ प्राण देगा।" कहकर कृष्ण विद्युद्वेग से सभा से बाहर निकल गये।

कर्ण और कुन्ती

कृष्ण के कहने के बाद से कर्ण के विषय में सोचकर कुन्ती बहुत व्याकुल हुईं। उनके कुमारीपन में पैदा होने पर भी कर्ण उनका वैसा ही पुत्र है, जैसे युधिष्ठिर और भीमार्जुन। उसी मन्त्र-शक्ति से कर्ण की उत्पत्ति है, जिससे इन लड़कों की; केवल देवता भिन्न हैं। भगवान् सूर्य के औरस से पैदा हुआ कर्ण यदि दुर्योधन के पक्ष में रहा, तो यह निस्सन्देह पाण्डवों के लिए चिन्ता की बात होगी। पुनः यह एक ही माँ के बेटों का परस्पर विरोधी पक्ष में रहकर युद्ध करना होगा। कुन्ती बहुत घबरायीं। फिर कर्ण को परिचय देकर अपने पुत्रों के पक्ष में करने का विचार लेकर मिलने चलीं। पहले एकान्त में मिलने का पता लगवाया, मालूम हुआ कि कर्ण रोज यमुना-स्नान और सूर्य-प्रणाम करते हैं। उनसे बातचीत करने का वह उत्तम समय है।

यथास्थान कुन्ती कर्ण से मिलीं। कर्ण ने सूर्य-नमस्कार कर देखा, एक दूसरी दिव्य छटा पाण्डवों की माता कुन्ती की आँखो से निकल रही है। ऐसा प्रकाश किसी देवी-स्वरूपा नारी की आँखों में उन्होंने न देखा था; ऐसे प्रकाश की उन्हें जीवन में पहचान नहीं हुई थी। कुछ देर तक कर्ण उन आँखों की ओर देखते रहे। उनकी आत्मा में एक अननुभूत आनन्द का प्रवाह बहता रहा। तृप्त होकर बोले, "पाण्डव-माता कुन्ती देवी को ऐसे समय देखकर मैं कृतार्थ हुआ। यहाँ आने का आपने क्यों कष्ट उठाया, आज्ञा करें?"

कुन्ती की आँखों में आँसू आ गये। बोलीं, "वत्स कर्ण! ऐसा समय आया है, इसलिए मैं तुम्हारे पास आयी हूँ।"

कर्ण हँसे। बोले, "भारत-समर की बात सुनी होगी। पुत्रों की प्राण-भिक्षा के लिए आयी हुई हैं आप, मैं समझा।"

"नहीं वत्स," कुन्ती बोलीं, "मैं पाण्डवों की प्राण-भिक्षा के लिए नहीं आयी। पाण्डवों के वीरत्व का परिचय तुम प्राप्त कर चुके हो। मैं भाई को भाइयों से युद्ध करने से रोकने के लिए आयी हूँ।"

बात कर्ण की समझ में नहीं आयी। बोले, "इसके लिए आपको महाराज दुर्योधन के यहाँ जाना चाहिए। यह मैं कैसे रोक सकता हूँ?"

"तुम नहीं समझे, वत्स!" कुन्ती बोलीं, "यह समर तुम्हीं रोक सकते हो। तुम नहीं जानते, तुम सूत-पुत्र नहीं, कुन्ती-पुत्र हो।"

कर्ण ताज्जुब की निगाह से कुन्ती को देखते हुए बोले, "मैं कुन्ती-पुत्र हूँ, तो परित्यक्त कैसे हुआ?"

"वत्स," कुन्ती बोलीं—उनके मुख पर वह पहला कुमारीत्व चमक उठा, "जब मैं कुमारी थी, पिता मित्रभोज महाराज के यहाँ ऋषि दुर्वासा आये हुए थे। मैंने

उनकी बड़ी सेवा की। ऋषि ने प्रसन्न होकर मुझे एक सिद्ध मन्त्र दिया। कहा, 'इसे पढ़कर तुम जिस देवता का स्मरण करोगी, वह तुम्हारे पास आयेगा, और तुम्हें वर-स्वरूप एक पुत्र देगा।' तब मैं कुमारी तरुणी थी, स्वभाव चपला का था। एक दिन आजमाने के लिए मैंने मन्त्र पढ़कर सूर्यदेव का स्मरण किया। सूर्य मेरे पास आकर खड़े हुए। मैं उस तरुण पुरुष-सूर्य को देखकर लज्जित हुई। सूर्यदेव ने मुझे आश्वासन दिया, कहा, 'ऋषि का मन्त्र झूठा नहीं, तुम्हारे एक पुत्र होगा, पर तुम्हारा कुमारीत्व इससे नष्ट न होगा।' कहकर सूर्यदेव चले गये। समय पर तुम भूमिष्ठ हुए। लज्जा तथा संकोच से तुम्हें पिटारी में लेकर मैं नदी में छोड़ आयी। इस सत्य की तुम अपने पिता से परीक्षा लो; मैं वर देती हूँ, वह तुम्हें दर्शन देकर सत्य प्रकट करेंगे।"

कर्ण ने आँखें बन्द कीं, और हाथ जोड़कर सूर्य को नमस्कार किया। कुछ देर बाद कुन्ती को देखते हुए बोले, "हाँ माता, आप सत्य कहती हैं। मुझे आज अपना यथार्थ परिचय मालूम हुआ।" कर्ण ने फिर भूमिष्ठ होकर माता को प्रणाम किया।

आशीर्वाद देकर कुन्ती बोलीं, "वत्स कर्ण ! तुम भाइयों से युद्ध न करो। तुम सबसे बड़े हो। मैं युद्ध के पश्चात् राज्य मिलने पर तुम्हारा परिचय दूँगी। तब धर्म-पुत्र युधिष्ठिर तुम्हें ही अपनी जगह पर स्थापित करेंगे।"

"माता !" कर्ण ने कहा, "कर्ण दूसरी प्रकृति का मनुष्य है। वह भविष्य की तरफ नहीं देखता। अपना कर्त्तव्य अतीत को देखकर वर्तमान से मिलाता है। दुर्योधन ने उसे उस समय राजा बनाया था, जब सूत-पुत्र कहकर भरी सभा में उसका अपमान किया गया था। बराबर उसे मित्र मानकर अपनी बगल में बैठने की जगह देता रहा। अब वैसे मित्र पर विपत्ति पड़ने पर क्या उस सूत-पुत्र का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह कुन्ती-पुत्र कहकर अपना परिचय देता हुआ उससे अलग हो जाय, और पाण्डवों का साथ दे ?"

कुन्ती चुपचाप सुनती रहीं। कर्ण ने कहा, "माता ! आपका, यहाँ भी पाण्डु-पुत्रों पर प्यार अधिक है। आपकी समस्त बातें स्वार्थ से भरी हुई हैं। आप जाइए, आपकी आज्ञा का पालन करने में मैं असमर्थ हूँ।"

"कर्ण", कुन्ती ने कहा, "मैंने तुम्हें जन्म दिया है। शास्त्रानुसार माता के प्रति तुम्हारा एक ऋण है। क्या तुम यह ऋण चुकाना चाहते हो ?"

"चाहता हूँ यदि दूसरा प्रबलतर धर्म बाधक न हुआ।"

"तो प्रतिज्ञा करो कि अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी पाण्डव के साथ पूर्ण शक्ति से न लड़ोगे, मृत्यु-अस्त्र का प्रयोग न करोगे; न बाँध सकते हो।"

कर्ण हँसे। कहा, "यहाँ किधर आपका स्नेह अधिक है ? मैं मातृ-ऋण चुकाने के लिए आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि अर्जुन के सिवा किसी दूसरे पाण्डव को प्रतिभट समझकर न लड़ूँगा।"

कुन्ती प्रसन्न तथा उदास होकर विदा हुईं। महावीर कर्ण ने माता को प्रणाम किया।

सन्धि न होने के बाद

कृष्ण सन्धि से निराश होकर पाण्डवों के शिविर में लौट आये। दुर्योधन का उत्तर सुनकर भीमसेन और अर्जुन आदि पाण्डव-पक्ष के योद्धा क्रोध में आ गये। समर का निश्चय हो गया। सेनापतियों से युद्ध-संवाद समस्त सेना में प्रचारित हो गया। वीरों की बाँहें फड़क उठीं। पाण्डवों के पक्ष की कुल सात अक्षौहिणी सेना थी, जिसके सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराट, श्वेत, शिखण्डी, चेकितान आदि सेनापति थे। सब लोग युद्ध के लिए पूरे उत्साह से तैयारी करने लगे।

दुर्योधन के दल में भी शिथिलता न थी। संख्या में ये लोग पाण्डवों से अधिक थे। इनकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। सरदार भी पाण्डवों के पक्ष से अधिक थे। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, बाह्लीक, शकुनि और भगदत्त आदि अनेक महारथी थे।

फिर भी अर्जुन की प्रशंसा और कृष्ण की बुद्धि की याद कर दुर्योधन बहुत व्याकुल हुआ। रात्रि के समय अपने मित्रों में युद्ध के सम्बन्ध में बातचीत करने लगा कि समस्त सेना का अधिनायक किसे बनाया जाय। महावीर भीष्म की तरफ अधिक लोकमत हुआ। कर्ण ने कहा, "मित्र, जब तक पितामह युद्ध-क्षेत्र में रहेंगे, मैं अस्त्र धारण न करूँगा, क्योंकि इनके अधीन रहना मैं अपना अपमान समझता हूँ।"

दुर्योधन ने कर्ण की प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। समझाया भी कि वृद्ध पितामह का अपमान अन्य समस्त वीरों को सह्य न होगा, पितामह भारत-सम्मान्य सर्व-श्रेष्ठ वीर हैं, यद्यपि दुर्योधन कर्ण को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। कर्ण सगर्वस्थिर हुए। दुर्योधन महावीर भीष्म के यहाँ प्रधान सेनापतित्व का मुकुट लिवाकर चला। भीष्म ने बड़े स्नेह से दुर्योधन तथा समागत अन्य कौरवों और सेनापतियों को बैठाया। दुर्योधन पितामह से विनयपूर्वक अपना अभिप्राय कह चले। कथन समाप्त होने पर पितामह ने कहा, "वत्स, मैं सेनापतित्व के लिए तैयार हूँ, परन्तु मेरी दृष्टि में तुम और पाण्डव दोनों हमारे वंशधर और प्रिय पौत्र हो, माता सत्यवती से मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि इस वंश को कोई क्षति मेरे द्वारा न पहुँचेगी; अतः पाण्डवों की जीवन-हानि मैं न कर सकूँगा। यों प्रतिदिन तुम्हारी प्रीति के लिए सहस्र योद्धाओं का वध करूँगा।"

इसी समय भगवान् व्यास धृतराष्ट्र से मिलने हस्तिनापुर आये। युद्ध की तैयारियाँ देखकर बहुत क्षुब्ध हुए। परन्तु प्रबल भावी को समझकर चुप हो रहे। धृतराष्ट्र ने व्यासजी की चरण-धूलि ले, आसन पर बैठाकर, कहा, "भगवन्, मैं अन्ध हूँ, यह जातीय महासंहार देखने से बच रहा; फिर भी वीरों की वीरता सुनने की बड़ी इच्छा है; मृत्यु के समय अपने वंश की वीरता की ही याद करके मरूँगा। आप कोई ऐसा वर कृपा करके दें, जिससे होते हुए युद्ध का वर्णन मैं यहीं बैठा हुआ सुनूँ।" भगवान् व्यास ने कहा, "वत्स, मैं तुम्हें ऐसा ही वर देता हूँ। संजय को मेरे योगबल से दिव्य दृष्टि होगी। वे यहाँ बैठे हुए समस्त युद्ध देखेंगे, और तुमसे वर्णन करेंगे।" यह कहकर परमात्मा का स्मरण करते हुए महाकवि, महर्षि व्यास

वहाँ से चले।

प्रातःकाल कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ सेनापतियों के रचित व्यूह के अनुसार खड़ी हो गयीं—जैसे समुद्र पर मालाकार उठी हुई अगणित तरंगे हों। कौरवों की तरफ सामने महावीर भीष्म प्रधान सेनापति, पाण्डवों की तरफ महावीर अर्जुन; दोनों ओर सेनाओं में अपार शान्ति विराजती हुई; सेनाएँ निश्चेष्ट-चित्त सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा करती हुईं। भगवान् कृष्ण चपल अश्वों की रश्मि पकड़े; महाभाव में निःस्पन्द महावीर पवन-पुत्र नन्दिघोष पर बैठे हुए; पताका फहराती हुई।

भीष्मपर्व

भीष्म का युद्ध

महावीर अर्जुन, व्यूह में खड़ी पाण्डव-सेना के अग्रभाग में, नन्दिघोष-रथ पर बैठे हुए विशाल कौरव-वाहिनी को देखते रहे। हृदय में किंचिन्मात्र भय न हुआ। फिर भी युद्धवाला उत्साह न रहा। देखा, महारथ भीष्म-पितामह, कौरव-वाहिनी के प्रधान नायक, अग्रभाग में स्थित हैं। उनके विशाल स्वर्ण-रथ के पार्श्व में रथी दुःशासन है। कुछ दूर पर मुक्ताओं की झालरदार मणि और लालों से जड़े सुन्दर रथ पर कौरव-राज दुर्योधन हैं—पास आचार्य द्रोण और अश्वत्थामा। एक-एक करके अर्जुन ने सभी कौरवों और आमन्त्रित सम्बन्धियों को देखा। साथ-साथ यह विचार पैदा हुआ कि ये सब अपने ही भाई और कुटुम्ब हैं। युद्ध इन्हीं के साथ है। युद्ध का परिणाम मृत्यु है। अपने जनों की मृत्यु! जिस राज्य के लिए यह युद्ध हो रहा है वह भाइयों की मृत्यु से प्राप्त होगा। ऐसे राज्य को लेकर क्या होगा? यह राज्य तो वास्तव में तब तक श्मशान हो जायगा। महावीर पार्थ इस परिणाम पर काँप उठे। स्वजनों की मृत्यु से स्त्रियाँ विधवा होंगी, व्यभिचार बढ़ेगा। वर्णसंकर पैदा होंगे। पितरों के तर्पण—श्राद्धादि लुप्त होंगे। दोनों लोक भ्रष्ट होंगे। अधर्म फैलेगा। फिर, युद्ध अधर्म का परिणाम होगा। ऐसा कदापि उचित नहीं। यह विचार करते ही महावीर पार्थ का उत्साह जाता रहा। स्नेह से दुर्बलता, दुर्बलता से हृत्कम्प, हृत्कम्प से भय, स्वेद, नैराश्य, निर्वीर्यता आदि जारी हो गये। गाण्डीव हाथ से छूटकर गिरने को हुआ। ऐसे समय कृष्ण ने उनकी ओर देखा। उन्हें मोह की स्थिति में देखकर कृष्ण को आश्चर्य हुआ। ऐन मौके पर ऐसे शिथिल क्यों पड़े, पूछने पर अर्जुन ने युद्ध से होनेवाले परिणाम की तस्वीर खींचते हुए कहा, "ऐसा युद्ध करना अधर्म है, इसी चिन्ता से मैं दुर्बल पड़ गया हूँ। भगवान् कृष्ण ने उन्हें उनका धर्म समझाया और गीतोपदेश किया। कर्म-

योग की महत्ता के साथ धर्म की सूक्ष्म बातों का ज्ञान हो जाने पर भी अर्जुन का मोह दूर न हुआ, तब श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन, तुम धाता नहीं हो, निमित्त हो, तुम्हारा किया कुछ न होगा। होनी पहले हो चुकी है, तुम्हें केवल अपने क्षात्र-धर्म के अनुसार चलना, और इस युद्ध से यशस्वी होना है। अधर्म के कारण कौरवों का नाश हो चुका है। युद्ध उसी का निमित्त है। तुम्हें विश्वास न हो, तो देखो।" भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को विश्व-रूप दिखाया। वह विराट् रूप देखकर अर्जुन काँपने लगे। देखा—जैसे जलती हुई एक विशाल लौ की ओर, चारों ओर से कीड़े आते और समाते हुए भस्म होते रहते हैं, उसी तरह समस्त कौरव हो रहे हैं, कृष्ण के मुख में उसी तरह समा रहे हैं, जैसे सैंकड़ों-हजारों-लाखों नद-नदियों का प्रवाह। अर्जुन को होश हुआ, और भगवान् कृष्ण की उन्होंने स्तुति की। श्रीकृष्ण का यह कहना है कि आत्मा अमर है, इसके लिए शोक करना उचित नहीं, अर्जुन ने अच्छी तरह समझा; और भगवान् में कर्म-फल का विसर्जन कर, आसन्न युद्ध को धर्म समझकर गाण्डीव धारण किया। मित्र की स्फूर्ति देखकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए।

युद्ध का प्रारम्भ देखकर धर्म-पुत्र युधिष्ठिर से न रहा गया। वह आवेश में आकर, रथ से उतर कौरव-वाहिनी की ओर पैदल चले, जिधर भीष्म पितामह का महारथ शोभित था। महाराज युधिष्ठिर की यह मनोगति देखकर पाण्डवगण चंचल हो उठे। अपने-अपने रथ से उतरकर धर्मराज का पश्चाद्वर्तन करने लगे। भीम को, शत्रुओं के सम्मुख इस प्रकार नत होते, बड़ी लज्जा लगी, और वह हृदय से बहुत आहत हुए। अर्जुन को भी धर्मराज का यह आचरण अच्छा न लगा। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को पुकारकर कहा भी, "महाराज, इस प्रकार, आसन्न युद्ध के समय, खाली हाथ और पैदल आप शत्रुओं के बीच जा रहे हैं!" भीमसेन ने कहा, "महाराज, आप हमें लज्जित कर रहे हैं।" नकुल और सहदेव ने कहा, "महाराज, आप हमें छोड़ते हुए कहाँ जा रहे हैं?" धीर धर्म-पुत्र ने किसी को कोई उत्तर न दिया। सीधे भीष्म के रथ की ओर चलते गये। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से कहा, "आप लोग कुछ देर प्रतीक्षा कीजिए धर्मराज युद्ध में भी धर्म की बड़ाई देने जा रहे हैं, गुरुजनों को प्रणाम करने के उद्देश्य से।"

युधिष्ठिर को आते हुए देखकर कौरवों में भी तरह-तरह की कपोल-कल्पनाएँ चलने लगीं। किसी ने कहा, "युधिष्ठिर पहले से डरपोक है। हमारी सेना देखकर घबराया है।" किसी ने कहा, "हाँ, इसीलिए भीष्म के सामने जा रहा है, जान बख्शवाने की मोहलत दीजिए तो हम लोग फिर वन चले जायें।" किसी ने कहा, "बड़ा चालाक है। पितामह को मिलाने जा रहा है। जानता है, पितामह की बराबरी का शूर कोई है नहीं, लोहे के चने होगी लड़ाई थोड़ी देर में—कहीं अर्जुन ही काम न आ जाये, इसीलिए कहने जा रहा है कि कृपादृष्टि रखें।"

महाराज युधिष्ठिर पितामह भीष्म के रथ के सामने आये। तैयार चतुरंगिनी सेना के बीच में पैठकर निरस्त्र धर्मराज ने पितामह भीष्म के पैर पकड़ लिये। नाती की मनोवृत्ति से प्रसन्न होकर महामति भीष्म ने आशीर्वाद दिया, "वत्स! तुम्हारी जय हो। माता योजनगन्धा के पास मैं पहले से प्रतिश्रुत हूँ कि राजा का पक्ष लूंगा। इसीलिए इधर से ही मुझे युद्ध करना होगा। परन्तु तुम निश्चिन्त रहो,

धर्म की शक्ति अजेय है, और अर्जुन शक्ति-संचय में मुझसे भी आगे बढ़ गया है। मेरी इच्छा-मृत्यु है, मैं समय पर ही प्राण त्याग करूँगा, तुम्हें इसके बाद आने का समय प्राप्त होगा, आना, तब मैं तुम्हें धर्मोपदेश करूँगा। चिन्ता न करो, तुम्हारे सहायक कृष्ण हैं, विजय तुम्हारी ही होगी।" धर्मराज वहाँ से आचार्य द्रोण के पास गये, और वहाँ से कृपाचार्य के पास। ब्राह्मणों ने भी युधिष्ठिर को विजय का आशीर्वाद दिया। गुरुजनों को प्रणाम कर युधिष्ठिर कौरव-वाहिनी के बाहर आये। इनकी धर्मनीति देखकर, धृतराष्ट्र के औरस और वेश्या के गर्भ से पैदा हुआ युयुत्सु कौरवों की सेना से निकलकर पाण्डवों में आ मिला। उसे हृदय से लगाते हुए युधिष्ठिर ने कहा, "भाई, तुम दादाजी के धार्मिक पुत्र हो। समय पर तुम्हीं उनके काम आओगे।"

युद्ध की भेरी बजी। दोनों ओर के सेनापतियों ने शंख बजाकर अपनी-अपनी सेना को सजग किया। हर मौके के सेनापति, रथी, गजारोही, सवार और पैदल शूर-सामन्त सामने देखने लगे। महावीर पार्थ पांचजन्य फूँककर अपनी सेना को कौरव-वाहिनी के आक्रमण से होशियार करके एक दृष्टि से महावीर भीष्म की गति-विधि देखने लगे। दुःशासन के साथ, भीष्म के सामने बढ़ते ही, महाबल भीम ने सिंहनाद किया, और दुःशासन को रोका। अर्जुन बाजू से भीष्म पर आक्रमण करने लगे। भीष्म किनारे से ही अर्जुन के तीर काटते हुए दुःशासन की सहायता करते रहे। भीम बहुत दिनों से क्रुद्ध, समय की प्रतीक्षा में थे। एकाएक सिंहविक्रम से शत्रु पर टूटे। उस प्रलय के तूफान का वेग दुःशासन के लिए सँभालना, दुष्कर होता, अगर महारथ भीष्म सहायता न करते होते। भीष्म की क्षिप्रता देखने लायक थी। एक ओर महावीर अर्जुन के अव्यर्थ प्रखर तीरों को काटते थे, दूसरी ओर मुहुर्मुहः दुःशासन पर होते हुए भीम के प्रहारों को रोककर उसे बचाते थे। यह जैसे दुर्धर्ष भीमार्जुन के साथ अकेले भीष्म का समर था। महासमुद्र की उठती तरंगों की तरह दुर्जय पाण्डव-सेना सुदृढ़ कौरव-सैन्य-तट को बार-बार तोड़ने का उद्यम कर रही थी, साथ भीम प्रभजन का काम करते हुए, सेना को सिंहनादों से प्रोत्साहित कर-कर, भीष्म की ओर बढ़ते हुए। देखते-देखते दोनों ओर की सेनाएँ एक-दूसरी से भिड़ गयीं। हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़ा, पैदल से पैदल। घमासान समर होने लगा। धनुषों का टंकार, हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ों की टाप और हिनहिनाहट, रथों का घण्टानाद, वीरों का सिंहनाद और रथियों की शंख-ध्वनि चारों ओर छा गयी; साथ ही ऐसी गर्द उठी कि सामने लड़ने के सिवा सेना को अपने-पराये का ज्ञान न रहा। दोनों ओर काफी सेना काम आ गयी। भीष्म से अर्जुन, दुर्योधन से भीम, मद्रराज से युधिष्ठिर, भगदत्त से विराट और कृतवर्मा से सात्यकि लड़ रहे थे। युद्ध का तीसरा पहर आने को हुआ। पाण्डव प्रबल ही पड़ते गये। देखकर भीष्म ने सारथि को रथ बढ़ाने के लिए कहा, दुःशासन और रथी सहायकों को अर्जुन को रोकने के लिए कहकर।

भीष्म का रथ चक्कर काटने लगा। अर्जुन मतलब समझ गये। भीष्म का पीछा करना चाहते थे, पर कई रथी उन्हें रोके हुए थे। भीष्म ने देखा, पाण्डवों के

व्यूह के एक भाग की सेना बढ़कर दूसरे भाग की सहायता कर रही है, इसलिए यह भाग कमजोर है। सिर्फ अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु इस भाग की रक्षा कर रहा है, थोड़ी-सी सेना लिये हुए। भीष्म ने उसी भाग पर आक्रमण किया। सुभद्रा-कुमार अभिमन्यु पिता के समान वीर था। उसने महारथ भीष्म की गति रोकी। दोनों में बाणवर्षा होने लगी। अभिमन्यु भीष्म से भी अधिक क्षिप्रहस्त था। उसने देखते-देखते भीष्म का धनुष काट दिया, और कई तीर मारे। दूसरा धनुष लेकर भीष्म ने अभिमन्यु के सारथि को घायल कर दिया। उत्तेजित अभिमन्यु ने तत्क्षण भीष्म के विशाल रथ के ध्वज-दण्ड काट दिये, जिनमें बहुमूल्य रत्नाभूषण लगे हुए थे। सेनापति की पताकाओं के गिरते रथ को दूर से न पहचाना जाने लगा, इससे कौरव-दल में हाहाकार मच गया। कई रथी बढ़कर भीष्म को खोजते हुए पहुँचे, और एक साथ अभिमन्यु पर प्रहार करने लगे। इस समय तक अभिमन्यु के प्रहारों से वृद्ध पितामह अत्यन्त उत्तेजित हो गये थे, बालक की क्षिप्रता असह्य हो रही थी। अभिमन्यु को कई रथियों से घिरा देखकर पाण्डव-सेना ने पुकार की; पास के रथी सहायता के लिए बढ़े। अभिमन्यु कौरवों के सभी रथियों से लड़ रहा था, यथावश्यक दोनों हाथों शर-सन्धान करता हुआ। भीष्म आश्चर्यचकित थे; इतनी तेजी उन्होंने अर्जुन में भी न देखी थी। पहले-पहल अभिमन्यु को लड़ते देखा था।

अब तक दस रथी अभिमन्यु की सहायता के लिए आ गये, भीम, उत्तरकुमार आदि। विराट-पुत्र उत्तर को उधर से बढ़कर शल्य ने रोका। दोनों में युद्ध होने लगा। उत्तर हाथी पर था। शल्य का तीर लगते ही हाथी बिगड़ गया, और शल्य के घोड़ों को मार डाला। शल्य को इस पर क्रोध आ गया, और बैठे-ही-बैठे उन्होंने एक ऐसी शक्ति मारी कि वह उत्तर के वर्म को पार करके हृदय में समा गयी, वहीं, उसी वक्त, उत्तरकुमार काम आ गये। फिर शल्य ने उत्तर के हाथी को भी मार डाला, और कृतवर्मा के रथ पर जाकर बैठे। इस घटना से पाण्डव-सेना स्तम्भित और शोकाकुल होकर अन्यमनस्क हुई कि भीष्म ने बहुत-सी सेना का संहार कर डाला। बड़े वेग से कौरवों की सेना ने विपक्ष पर आक्रमण किया। पाण्डव सेना व्यूह छोड़कर हटने और कटने लगी। सन्ध्या हो रही थी। समय जानकर अर्जुन ने युद्ध बन्द करने का शंख बजाया। उधर भीष्म ने भी शंख-ध्वनि से युद्ध-समाप्ति की सूचना दी। लड़ाई बन्द हो गयी। दोनों पक्ष की सेनाएँ शिविर को लौटीं। प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु से पाण्डव विषण्ण हो रहे थे।

कौरवों में बड़ी खुशी थी। दुर्योधन फूला न समा रहा था। युद्ध में विजय पाने की उसकी आशा बद्धमूल हो चली। वह अपने भाइयों के साथ सुरापान करके आनन्द मनाने लगा, और बार-बार पितामह भीष्म के युद्ध-कौशल की प्रशंसा करने लगा कि किस तरह वह शत्रु-सेना-विनाश का मौका देखते फिर रहे थे। किस तरह एक बाजू से उन्होंने अभिमन्यु पर आक्रमण किया। किस-किस तरह फिर क्या-क्या हुआ। कुछ लोग शल्य की प्रशंसा के पुल बाँधने लगे कि मामा पूरे मामा हैं— हाथी से मजाक किया, जब उसने इनके घोड़े मार दिये, तब इन्होंने उसके मालिक को मार गिराया, और फिर उसको भी उसी रास्ते भेज दिया; मजा यह कि यह सब

बिना घोड़ों के रथ पर बैठे-बैठे किया; काम समाप्त कर इतमीनान से उठकर दूसरे रथ पर गये। पाण्डव सन्तप्त थे। सेना में भय। युधिष्ठिर हताश। भीम और अर्जुन स्थिर। विराट अत्यन्त शोकाकुल। युधिष्ठिर ने कृष्ण से विनयपूर्वक कहा, "यादवपति ! आज के युद्ध को देखकर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है कि पितामह अजेय हैं। उनके सामने हमारे पक्ष का कोई महारथी नहीं टिक सकता। आज पिछले पहर उनका अपूर्व युद्ध-कौशल देखकर यह अनुमान सच मालूम देता है कि युद्ध में हमारी ही हार होगी। और, हमारे सगे-सम्बन्धी इस प्रकार युद्ध में हत होते रहे, तो राज-पाट लेकर हम क्या करेंगे ? ऐसे राज्य से अपने प्रियजनों के प्राण और सुख-स्वाच्छन्द्य अधिक मूल्य के हैं। ऐसे राज्य से वन श्रेयस्कर है। अब इस युद्ध की आवश्यकता नहीं।" धर्मराज के आँसू निकल आये। कृष्ण गम्भीर होकर बोले, "महाराज, क्षत्रिय के लिए युद्ध में निधन शोचनीय घटना नहीं हो सकती। ऐसा शोक कापुरुषता का द्योतक है। उत्तर को वीरगति से स्वर्ग प्राप्त हुआ है। इस युद्ध का अर्थ केवल युद्ध नहीं, धर्म-राज्य की स्थापना है। पाण्डवों और पाण्डव-पक्षवालों के लिए ऐसे युद्ध में प्राण खोना चिन्ताजनक बात नहीं हो सकती। रही जय की बात। यह निर्विवाद है कि पाण्डवों का धर्मपक्ष है, इसलिए हार की आशंका धर्म से नहीं। गणना से, भीमार्जुन के समकक्ष योद्धा कौरवों में नहीं, इसके अनेक प्रमाण अब तक प्राप्त हो चुके हैं। सेनापति धृष्टद्युम्न और सात्यकि कौरवों के किसी भी महारथ से सरकश हैं। पुनः, एक दिन में ऐसे युद्ध के भविष्य का निर्णय नहीं हो सकता। आप पीछे हटेंगे, तो यह आपका धर्म से डिगना होगा, यह कदापि आपका कर्तव्य नहीं कहा जा सकता। आप स्थैर्य से देखते चलिए। यदि यह भाव रखिएगा, तो आपकी सेना का दिल और बैठ जायगा, और इसका परिणाम अधिक सेना-नाश के सिवा और कुछ न होगा।" कृष्ण के कथन का धृष्टद्युम्न ने समर्थन किया। महाराज विराट को भी सान्त्वना मिली, और बदले के लिए वह बद्ध परिकर हुए।

रात्रि प्रभात हुई। दूसरे दिन के युद्ध के लिए व्यूह-रचना होने लगी। भीम और अर्जुन हतोत्साह सेना को आश्वासन देने और स्नेह-शौर्य से उभाड़ने लगे। सूर्य के उगने स पहले दोनों तरफ की सेनाएँ अपने-अपने व्यूह में, सेनापति की आज्ञा के अनुसार, सन्निविष्ट हो गयीं, और, युद्ध के लिए आदेश की बाट जोहने लगीं। आज अर्जुन की और ही छटा थी। भीम से उनका निश्चय हो गया था कि वह पितामह की गति रोकेंगे, और भीम शत्रु-पक्ष में पैठकर सेना-संहार करेंगे, सात्यकि भीम के सहायक होंगे। इसके अनुसार सामने अर्जुन का विशाल नन्दिघोष-रथ था, जिसकी ध्वजाएँ प्रभात की वायु से मन्द-मन्द लहराती हुई, अपनी सेना को बढ़ने के इंगित से उत्साहित कर रही थीं। दाहिने भीम, कुछ पीछे सात्यकि, बायें धृष्टद्युम्न, पीछे सुभद्रानन्दन अभिमन्यु। इन रथियों के पीछे श्वेतच्छत्र रथ पर महाराज युधिष्ठिर। दोनों ओर चतुरंगिनी सेना का व्यूह-निवेश रच गया। हाथी, घोड़े, रथी और पदातिकों की शृंखला से शृंखला मिल गयी। सूर्योदय हुआ। भीष्म और धृष्टद्युम्न ने शंख-ध्वनि से युद्ध की सूचना दी।

अर्जुन के रथ की ओर रथ बढ़ाने के लिए भीष्म ने सारथि से कहा। दोनों

पक्ष के अच्छे-अच्छे योद्धा भीष्म और अर्जुन के कौशल देखने के लिए, अपने-अपने दल की सहायता के विचार से, एकत्र हो गये। भीष्म और अर्जुन में घनघोर युद्ध छिड़ गया।

इसी समय भीम कौरवों की सेना में पैठे, और एक ओर संहार करने लगे। उनकी गदा के प्रहार से बड़े-बड़े हाथियों के मस्तक कुम्भ की तरह फूटने लगे। एक-एक वार में कितने ही पैदल काम आने लगे। पूरा एक पक्ष कमजोर पड़ गया। रथ, घोड़े, हाथी और पैदल अपने दूसरे पक्ष की ओर भागने लगे। इस समय भीष्म की उस तरह निगाह गयी। भीम को सेना-नाश करते हुए देखकर उन्होंने उधर रथ बढ़ाने की आज्ञा दी। कौरवों के दूसरे रथियों ने बढ़कर अर्जुन को रोका।

भीष्म ने पहुँचते ही भीम के पार्श्व-रक्षकों के घोड़ों को मार डाला। देखकर सात्यकि ने ऐसा तीर मारा कि भीष्म का सारथि गिर गया। सारथि के मरने से घोड़े भड़ककर रथ लेकर भग चले। भीम सात्यकि के रथ पर आकर बैठे। भीष्म के अदृश्य होने पर कौरवों में हाहाकार मच गया। सन्ध्या का समय था। अर्जुन और द्रोण ने शंख बजाकर युद्ध बन्द किया।

तीसरे दिन फिर युद्ध का प्रराम्भ हुआ, पर पाण्डवों के सामने कौरवों की न चली। इस दिन भी कौरवों की सेना को बड़ी क्षति पहुँची।

यद्यपि भीष्म कम सेना-संहार नहीं करते थे, फिर भी, अधैर्य के कारण दुर्योधन को मालूम देता था कि पाण्डव प्रबल पड़ रहे हैं, और ऐसा क्रम रहा, तो कौरवों की हार होगी। ग्लानि से भरकर सारिथ के साथ वह भीष्म के शिविर में गया, और उदास होकर कहने लगा, "पितामह, पाण्डव युद्ध में जैसा पराक्रम दिखा रहे हैं, उससे हमारी सेना को अधिक क्षति पहुँच रही है। आप पाण्डवों पर स्नेह करते हैं, इसलिए जी लगाकर नहीं लड़ते। आप दिल से पाण्डवों की विजय चाहते हैं।"

महावीर भीष्म क्षुब्ध हो उठे। बोले, "दुर्योधन, तुमसे पहले ही मैंने कह दिया था कि पाण्डव अजेय हैं। तुम एक दिन के कुछ सेना-नाश से इतना घबराये, पर पाण्डव विपत्ति-पर-विपत्ति का सामना करते आये, ज़रा भी विचलित न हुए; उन्होंने अपार धैर्य प्राप्त किया है। साथ ही शिक्षा भी ग्रहण की है। फिर भी तुम इतने चिन्तित न हो; मैं तुम्हारे लिए यथासाध्य प्रयत्न करूँगा।"

प्रातःकाल फिर सेना-निवेश होने लगा। महावीर भीष्म ने एक नये व्यूह की रचना की, और असम साहस से विपक्ष से लड़ने लगे। उनका सामना करना दुस्साध्य हो गया। प्रखर तीर प्रबल वेग से निक्षिप्त होकर सर्पों की तरह पाण्डवों को दंशन करने लगे। देखते-देखते पाण्डवों की वाहिनी भागने लगी। बड़े-बड़े रथी भीष्म के सामने न टिकने लगे। पाण्डव-दल में हाहाकर मच गया। महावीर अर्जुन भी इसका कुछ प्रतिकार न कर सके। देखकर श्रीकृष्ण से न रहा गया। बढ़ावा देते हुए बोले, "पार्थ, तुम क्या देखते हो ? तुम्हारे सामने तुम्हारी सेना की यह दशा हो रही है, और तुम तस्वीर की तरह बैठे हुए, भीष्म की यह दक्षता देख रहे हो ? अगर ऐसा ही इसका जवाब तुमने नहीं दिया, तो सेना का अनर्थ-कारी संहार होगा। जिस तरह हो, भीष्म को रोको।" श्रीकृष्ण की उत्तेजनापूर्ण

बातों से अर्जुन जैसे होश में आये। अब तक भीष्म का जैसे अपार सवर-कौशल देखते रहे थे, गाण्डीव में कठोर टंकार कर तीक्ष्ण शर योजित किये। पितामह की हस्तलाघवता के आगे पार्थ जैसे अपनी क्षिप्रता भूल गये थे। देखते-देखते विशाल गाण्डीव से लक्ष्यसिद्ध महारथ अर्जुन के तीक्ष्णतर तीर छूटकर भीष्म को चंचल करने लगे। पाण्डवों में नया जोश लहराने लगा। अन्यान्य रथी अर्जुन की पार्श्व-रक्षा के लिए बढ़ आये। कौरव हतबुद्धि होकर पार्थ का शरक्षेप देखने लगे। भीष्म के सहस्र प्रयत्न करने पर भी अर्जुन ने सन्ध्या होते-होते कौरवों की विशाल सेना का नाश कर डाला। अन्त में भगवान् भुवनभास्कर के अस्त होने पर दोनों तरफ के सेनापतियों ने शंखनाद करके उस दिन का समर समाप्त किया।

संजय को व्यासजी की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। वह घर बैठे महाभारत-युद्ध का महाराज धृतराष्ट्र से वर्णन करते थे। उत्तरोत्तर कौरवों की हार हो रही थी। सुनते-सुनते महाराज धृतराष्ट्र एक दिन क्षुब्ध हो उठे। कहा, 'संजय, तुम यह क्या कह रहे हो ? पाण्डव क्या लोहे के हैं और कौरव मोम के, जो युद्ध के ज़रा-से ताप से पिघल-पिघलकर बहे जा रहे हैं ? कौरवों की सेना में भीष्म-द्रोण-कृप-अश्वत्थामा जैसे विश्वविजयी वीर हैं, कौरवों की सैन्य-संख्या भी पाण्डवों से ज्यादा है, फिर भी कौरव प्रतिदिन हारते जा रहे हैं, कहते हो; जरूर तुम पाण्डवों का पक्षपात करते हो।" "नहीं महाराज," संयत स्वर से संजय ने उत्तर दिया, "पाण्डव तपस्वी होने के कारण बलवान् पड़ते हैं, उनकी तरफ धर्म की शक्ति है।"

अस्तु, महाभारत-युद्ध में क्रमशः सात दिन पूरे हो गये। आज आठवें दिन का युद्ध है। दोनों दलो के सेनापति अपनी-अपनी सेना को सन्निविष्ट करने लगे। दोनों तरफ से तुमुल-कोलाहल और सिंहनाद-पर-सिंहनाद उठने लगे। इसी समय अर्जुन की दूसरी पत्नी उलूपी से पैदा हुआ महारथ पुत्र इरावान पिता के पक्ष में सम्मिलित होने के लिए आ पहुँचा, और एक पार्श्व से कौरवों पर आक्रमण करने लगा। कौरवों के लिए इरावान का आक्रमण सँभालना मुश्किल हो गया। सेना व्यूह छोड़-छोड़कर भागने लगी। चारों ओर हाहाकार उठने लगा। सहायता के लिए पास के रथी दौड़े। शकुनि की सेना निकट थी। इरावन को रोकने के लिए बढ़ी। पर उलूपी-पुत्र की कठोर मारों से उसके भी पैर उखड़ गये। पीछे गान्धार थे। आगे बढ़े, और इरावान को घेरकर भीषण युद्ध करने लगे। इरावान का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। शत्रु-पक्ष को जोर मारते देखकर इरावान क्रुद्ध हुआ, और दूने उत्साह से सैन्य-संचालन करता हुआ युद्ध करने लगा। गान्धार भी इस बार का आक्रमण न सँभाल सके। कितने कट-कटकर खेत रहे: बाकी मैदान छोड़कर भग खड़े हुए। शकुनि कौरवों की सहायता से किसी तरह बचकर भगे। समस्त कौरव-दल में त्रास फैल गया। इसी समय दुर्योधन ने भीम से मारे गये बक के पुत्र राक्षस आर्ष्यश्रृंग को इरावान से लड़ने के लिए भेजा। राक्षस ने सोचा, सम्मुख-समर ठीक नहीं, क्योंकि इरावान बलवान् है, इससे माया-समर करना चाहिए। यह सोचकर वह आकाश-मार्ग से युद्ध करने लगा। यह माया इरावान को भी आती थी। वह भी आकाश-मार्ग पर पहुँचा, और उसी कौशल से राक्षस

से लड़ने लगा। यह संवाद अब तक पाण्डवों के पास पहुँचा, वे लोग इरावान को सहायता भेजने की बात सोचने लगे। इसी समय राक्षस ने सम्मोहन विद्या से इरावान को मोहित करके उसके प्राण ले लिये।

इसी समय भाई की सहायता के लिए भीमसेन का पुत्र घटोत्कच भेजा गया। इरावान का प्राणान्त हो गया, देखकर उसे अपार क्रोध आया, और कौरवों की सेना का संहार करने लगा। बड़े-बड़े वीर राक्षसों की सेना ने प्रलय की बाढ़ की तरह चारों ओर से कौरवों को घेर लिया। महाराज दुर्योधन बीच में पड़ गये। घटोत्कच की राक्षस-सेना का बड़ी वीरता से उन्होंने मुकाबला किया, लेकिन राक्षसों की मार के सामने उनके पैर न टिके! उधर क्रोध में आकर घटोत्कच ने उन पर शक्ति-प्रहार किया। वंगनरेश महाराज दुर्योधन के पास ही थे, उन्होंने उस शक्ति से दुर्योधन को बचा लिया, वार अपने ऊपर लिया; इससे उनके प्राण गये। राजा को राक्षसों से घिरा देखकर भीष्म और द्रोण ने सहायता की, तब दुर्योधन के प्राण बचे।

इरावान की मृत्यु से अर्जुन क्षुब्ध हो उठे, और बड़ी तत्परता से कौरवों का मुकाबला करने लगे। उनके प्रहत, प्रखर तीरों से हजारों की संख्या में कौरव-सेना धरासायी हुई। कौरवों के होश उड़ गये। दुर्योधन के अभी-अभी प्राण बचे थे, वह एक सुरक्षित स्थान से महावीर अर्जुन को भीषण बाण-वर्षा त्रस्त दृष्टि से देख रहा था। अर्जुन का वह भयंकर मुख और आरक्त नेत्र देखकर दुर्योधन विजय की आशा छोड़कर कौरवों के जीवन के लिए संशय करने लगा। इस समय भीष्म अर्जुन के सामने आये, लेकिन क्रुद्ध पार्थ के सामने आज उनकी भी न चली; देखते-देखते अर्जुन ने कौरवों की फिर भी काफी सेना मार दी। इस समय सूर्यास्त हो रहा था। सूर्य डूबने के साथ भीष्म ने शंख बजाकर युद्ध बन्द होने की सूचना दी। कौरवों के प्राण बचे। दोनों पक्ष शिविर की ओर लौटे।

दुर्योधन आज का दृश्य देखकर बेचैन हो रहा था। शिविर पहुँचते ही वह कर्ण के पास गया, और दुःखित होकर युद्ध के परिणाम पर कहने लगा, "पाण्डव प्रबल पड़ रहे हैं, कौरवों की अधिक सेना मारी जा रही है।" यह सुनकर कर्ण ने आश्वासन दिया कि भीष्म का निपात होते ही उनके दिव्य शरों के प्रहार से पाण्डवों का प्राणान्त अवश्य होगा। इस प्रकार मित्र को ढाढ़स दे, 'रात्रि अधिक हुई' कह-कर विदा किया।

लेकिन दुर्योधन को विश्राम न भाया। वहाँ से कुछ ही दूर पितामह भीष्म का शिविर था। खिन्न-चित्त दुर्योधन पितामह के पास पहुंचा, और स्वार्थवश विनम्रतापूर्वक प्रणाम कर बोला, "पितामह, आप संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं। आपका विक्रम देवताओं को भी आतंक-ग्रस्त कर देना है। परन्तु मैं देखता हूँ, आप जी लगाकर इस कुरुक्षेत्र के युद्ध में नहीं लड़ रहे। आपकी पाण्डवों पर प्रीति है। इससे उनका संहार नहीं होता; बल्कि फल प्रतिदिन उल्टा हो रहा है। अर्जुन हजारों और लाखों की संख्या में कौरव-सेना का नाश कर डालता है, परन्तु आप इसका प्रतिकार नहीं करते। अगर पाण्डवों का भीतर-ही-भीतर पक्ष-समर्थन ही आपका उद्देश्य है, तो आप आज्ञा दीजिए सेनापतित्व कर्ण को दिया जाये। अपनी

सेना का इस प्रकार संहार देखकर मैं बहुत ही विचलित हो गया हूँ।"

पितामह भीष्म स्वार्थी दुर्योधन की बातें सुनकर मन में समझ गये कि दुर्योधन में धैर्य नहीं है, इसलिए यह क्षुब्ध हो उठा है। संयत स्वर से बोले, "वत्स, तुम जैसे मित्रों में पड़े हो, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है। योद्धा तब तक धैर्य के साथ युद्ध करता है, जब तक युद्ध का फल सामने नहीं आता। इस युद्ध में पाण्डव-सेना का कम संहार नहीं हुआ। परन्तु तुम्हारी तरह पाण्डव अधीर नजर नहीं आते। वे प्रतिदिन जिस धैर्य से युद्ध करते हैं, तुम देखते ही हो। पाण्डवों ने जो सहन-शक्ति अर्जित की है, उसका संसार में जोड़ नहीं। वे उदार भी हैं। तुम्हें इसका भी परिचय वे वनवास के समय दे चुके हैं। रही बात कर्ण के सेनापतित्व की, सो उनकी वीरता विराट-नगर में तुम प्रत्यक्ष कर चुके हो। जाओ, विश्राम करो। कल के समर में हम पाण्डवों की भयंकर स्थिति कर देंगे।"

दूसरे दिन उष:काल दोनों की सेनाएँ वर्म, चर्म, असि, गदादि अस्त्र-शस्त्र धारण कर समर-क्षेत्र में खड़ी हुईं। भीष्म ने सर्वतोय-व्यूह और अर्जुन ने अर्द्धचन्द्र-व्यूह बनाकर अपनी-अपनी सेना को शृंखलित किया। पश्चात् सेनापतियों के इंगित से युद्ध का प्रारम्भ हुआ। महारथ अर्जुन का दुर्जय वेग शत्रु-पक्ष न सहन कर सका। उनके अव्यर्थ तीरों ने कौरवों की सेना के पैर उखाड़ दिये। देखते-देखते एक तीर दुर्योधन के भी लगा, और वह वहीं मूर्च्छित हो गया। आज के युद्ध का भी विपरीत फल देखकर महावीर भीष्म अस्थिर हो गये, उनके अधर फड़कने लगे, और शरासन सँभालकर तीक्ष्णतर तीरों से उन्होंने अर्जुन पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। वह प्रबल आक्रमण दक्ष धन्वी पार्थ सँभाल नहीं सके। भीष्म ने देखते-देखते रण-क्षेत्र का समस्त आकाश, अर्जुन के दोनों पार्श्व और नन्दिघोष रथ का सम्पूर्ण पूर्व भाग शरों से समाच्छन्न कर दिया। इसके पश्चात्, तीरों की प्रखर-से-प्रखर चोटें अर्जुन को आकर विद्ध करने लगीं। उन्हें संवरण करना अर्जुन के लिए दुष्कर हो गया। तीरों से नन्दिघोष इस तरह आच्छन्न हो गया कि पाण्डवों तथा पाण्डव-सेना की दृष्टि में ही न आया। पाण्डव-दल में हाहाकार मच गया। इधर भीष्म अपूर्व क्षिप्रता से शर-योजना और निक्षेप कर रहे थे। तीरों की चोटों से अर्जुन घायल हो गये। कृष्ण के अंग भी जर्जर हो गये। अश्वों की गति अवरुद्ध हो गयी। अर्जुन से प्रतिकार करते न बना। इसी समय भीष्म ने हजारों की संख्या में पाण्डव-सेना का संहार कर दिया। कौरवों में बड़ा उत्साह उमड़ा। पाण्डव किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये, उन्हें जैसे प्रलय दिखने लगा। कृष्ण मन में शंकित हुए। जब अर्जुन से कुछ करते न बना, और पुनः-पुनः भीष्म पाण्डव-वाहिनी का नाश करने लगे, कृष्ण भी तीरों की चोट से जर्जर हो गये, तब उनसे न रहा गया। अपनी अस्त्र-ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा भूलकर आवेश में आकर रथ से कूद पड़े, और भीष्म के संहार के लिए सामने बढ़े। एक टूटे रथ का पहिया देख उसे उठाकर भीष्म को मारने के लिए दौड़े। कृष्ण का भाव देखकर, लज्जित हो, रथ से उतरकर अर्जुन भी दौड़े, और "क्या करते हैं आप ?"...."आप मेरा अपमान करा रहे हैं" कहते हुए कृष्ण के पैरों से लिपट गये। भीष्म वह दिव्य मूर्ति देखकर भाव में गद्‌गद होकर स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त हुआ। वह पुनः अपने रथ पर वापिस आये।

सन्ध्या-समय फिर युद्ध स्थगित किया गया।

प्रातःकाल युद्ध का नवाँ दिन था। भीष्म ने सर्वतोभद्र और युधिष्ठिर ने महा-व्यूह की रचना की। सूर्य की किरण फूटने के साथ दोनों ओर के सेनापतियों ने शंख-ध्वनि द्वारा युद्ध करने की सूचना अपने-अपने पक्षवालों को दी। फिर क्या, वीरों के दर्प-पूर्ण सिंहनादों, घोड़ों की टापों और रथों की घरघराहट से पृथ्वी दहलने लगी; गजारोही, अश्वारोही, रथी और पदातिक अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी से मोर्चा लेकर डट गये। तुमुल-कोलाहल से युद्ध-क्षेत्र पूर्ण हो गया। बायें पक्ष में अभिमन्यु था। वीर बालक असीम साहस से शत्रु-पक्ष में पैठकर कौरव-सेना को धराशायी करने लगा। देखकर एक साथ द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और जयद्रथ वीर बालक के सामने आकर डटे, परन्तु अभिमन्यु के एक-ही-एक वार से कोई विरथ होकर भागा, कोई चोट खाकर, कोई मूर्च्छित होकर सारथि द्वारा ले जाया गया। अभिमन्यु की अद्‌भुत वीरता देखकर भीष्म क्रुद्ध हुए, और सारथि से रथ बढ़ाकर अभिमन्यु के सामने करने के लिए कहा। अर्जुन बड़ी तत्परता से बढ़ रहे थे, साथ-साथ पितामह की गतिविधि का भी निरीक्षण कर रहे थे। भीष्म को अभिमन्यु की ओर बढ़ते देखकर उन्होंने भी कृष्ण से भीष्म की गति रोकने के लिए रथ बढ़ाने को कहा। फलतः अभिमन्यु तक भीष्म की पहुँच न हो सकी, वह बीच में ही रोक लिये गये।

लेकिन महावीर भीष्म अवरुद्ध होने पर पूर्ण शक्ति से अपनी बाधा पार करने का उपक्रम करने लगे। आज अर्जुन भी पूर्ण रूप से चेतन थे। दोनों में महासमर होने लगा। अविराम वर्षा की तरह दोनों ओर से प्रखर शरधारा प्रवाहित हो चली। दोनों पक्ष के बड़े-बड़े रथी भीष्म और अर्जुन का आश्चर्यजनक समर-कौशल एकटक होकर देखने लगे। कुछ समय बाद महावीर भीष्म का वेग अर्जुन न रोक सके। उनके हाथ पिछले दिन की तरह शिथिल हो चले। पलक मारते भीष्म अर्जुन के बाणों का जवाब देकर पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे। यह क्षिप्रता देख-कर अर्जुन चिन्ता करते हुए सोचने लगे, महावीर भीष्म से विजय पाना असम्भव है। भीष्म ने उस दिन भी सहस्र-सहस्र पाण्डव-सेना का नाश किया। सन्ध्या-समय कौरवों के जयोल्लास से समर समाप्त हुआ। पाण्डव विषण्ण होकर लौटे।

रात के समय समस्त पाण्डव एकत्र होकर कृष्ण से मन्त्रणा करने लगे। युधिष्ठिर ने कहा, "कृष्ण, अब संग्राम में विजय न होगी। पितामह भीष्म जिस उग्रता से संग्राम कर रहे हैं, इससे पाण्डवों की सेना का बहुत जल्द नाश जान पड़ता है।" भीम ने कहा, "अर्जुन ने बड़े-बड़े देवताओं से जो दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं, उनका उपयोग न जाने क्यों नहीं करते, नहीं तो भीष्म की भीषणता अब तक ठण्डी हो गयी होती।" अर्जुन ने कहा, "केशव, अब आप ही उपाय बतलाइए कि महारथ भीष्म से किस प्रकार संग्राम करके विजय प्राप्त की जाय?" कृष्ण कुछ देर तक सोचते रहकर बोले, "महाराज भीष्म केवल महारथ ही नहीं, महामति भी हैं। मेरी राय में हम सब लोग उनके शिविर में चलें, और उन्हीं से उन पर होनेवाली विजय का उपाय पूछें।" श्रीकृष्ण की यह सलाह लोगों को बहुत-बहुत पसन्द आयी, और सब उसी वक्त उठकर चलने को तैयार हुए।

भीष्म आराम कर रहे थे। श्रीकृष्ण और पाण्डव-पहुँचे। श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्नतापूर्वक भीष्म उठकर खड़े हो गये। युधिष्ठिर आदि पाण्डव ने चरण-स्पर्श कर पितामह को प्रणाम किया। इसके बाद युधिष्ठिर ने नम्रतापूर्वक कहा, "पितामह, हम पर सदा दुर्दैव के बादल छाये रहे। इस समय भी वे कटते नजर नहीं आते। कुरुक्षेत्र-युद्ध का परिणाम हमारे लिए कदापि अच्छा न होगा, कारण, आपको परास्त करना पाण्डवों की ही क्या, विश्व की शक्ति के बाहर है। आपके सेनापतित्व में कौरव अजेय हैं। कौरवों की विजय हुई, तो देश से धर्म और सत्य की प्रतिष्ठा जाती रहेगी। कौरव अधार्मिक हैं। हम इसलिए आपके पास आये हैं कि आप हमारे लिए क्या आज्ञा देते हैं, मालूम करें; आपके सेनापतित्व में लड़कर नाश प्राप्त करने की जगह हमारे लिए पुनः वनवास को जाना उत्तम मार्ग है।" युधिष्ठिर नम्र शब्दों में यह निवेदन कर भीष्म की आज्ञा की अपेक्षा में एकटक उन्हें देखते रहे। धर्मराज युधिष्ठिर की ऐसी सरलोक्ति सुनकर भीष्म गद्गद हो गये। उनके आनन्द के आँसू निकल आये। प्रसन्न होकर बोले, "युधिष्ठिर, तुम सत्य कहते हो। मेरे जीवित रहते सत्य की प्रतिष्ठा न हो सकेगी। मैं इच्छा-मृत्यु का वर पा चुका हूँ। कौरव-पक्ष तब तक अजेय है, जब तक मैं हूँ। परन्तु, वत्स, संसार का रहस्य देखो कि मुझे वह पक्ष ग्रहण करना पड़ा है, जो असत्य है। मेरी आँखों के सामने सत्य अमर्यादित हो, यह मेरे लिए लज्जा की बात होगी। इसीलिए मेरा मन संसार से हट चला है। पुनः मैं जानता हूँ, इधर की दो रोज की लड़ाई में पाण्डव-पक्ष बहुत ही क्षतिग्रस्त हुआ है, परन्तु मुझे यह सोचकर और लज्जा होती है कि शस्त्र-विद्या में मुझसे अधिक समर्थ होने पर भी अर्जुन ने विपत्ति के समय देवताओं के दिये हुए दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं किया, बल्कि धैर्यपूर्वक मेरी दो चोटों को सहन किया है। ऐसे संसार से, संसार के ऐसे विधान से मुझे ग्लानि हो गयी है। मैं इस संसार से अब बिदा होना चाहता हूँ। मेरे स्थान पर अर्जुन मेरे वंश का मुख उज्ज्वल करेगा। सुनो, मैं अपनी मृत्यु का भेद तुम्हें बतलाता हूँ। तुम्हारी सेना में द्रुपद का बेटा शिखण्डी पहले का स्त्री है। मेरे वध के लिए उसने शिवजी की तपस्या की थी, उसे वर मिला है। द्रुपद के घर वह पैदा हुआ था, कन्या-रूप में, लेकिन एक दानव के वर से वह फिर पुरुष-रूप में बदल गया; परन्तु पूर्ण रूप से अभी तक उसका स्त्रीत्व दूर नहीं हुआ है, वह नपुंसक है। उसे देखकर मैं अस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। यदि उसे सामने करके अर्जुन मुझ पर शरक्षेप करेगा, तो अधीर होकर निःशस्त्र मैं प्राण छोड़ने को विवश हूँगा।" पाण्डवों ने पितामह के पैरों पड़कर प्रणाम किया, और चलने की आज्ञा माँगी। प्रसन्न होकर भीष्म ने अपने वीर पौत्रों को आशीर्वाद दिया।

दसवें दिन का महायुद्ध शुरू हुआ। दोनों ओर की सेनाएँ पहले की तरह मैदान में आकर खड़ी हुईं। सेनापति व्यूह की रचनाएँ करने लगे। आज कौरवों के अग्र-भाग में भीष्म और पाण्डवों के भीम थे। नकुल, सहदेव और सात्यकि उनके रक्षक। अभी तक महावीर अर्जुन का रथ अदृश्य था। भीम के आक्रमण से कौरवों में पहले कुछ हलचल हुई, लेकिन भीष्म के सामने आ जाने से जाती रही। दुःख आनन्द में बदल गया। भीष्म की खरधार बाण-वर्षा भीम नहीं रोक सके। देखते-देखते उन्होंने

हजारों हाथी-घोड़ों और पैदल जवानों को गिरा दिया। आज भीष्म की उग्र-मूर्ति के सामने कोई क्षण-भर नहीं ठहर सकता था। बड़े-बड़े रथी और महारथी का मैदान मारा गया। भीम कुछ देर अड़े, लेकिन बाद को उखड़ गये, उनके सहायक भी कट-छँट गये। पाण्डव-दल में त्रास पैदा हो गया। सहायता की चारों ओर से पुकार उठने लगी। बिना सहायक सेनापति के दल विचलित होकर भगने लगा। महाराज युधिष्ठिर घबराये। ऐसे समय शिखण्डी पितामह के सामने आकर डटा। शिखण्डी को देखकर उन्होंने अस्त्र परित्याग कर दिया। शिखण्डी उन पर तीर चलाने लगा। पर महावीर भीष्म को चोट लगने की तो बात क्या, शिखण्डी के उन तीरों से उनका वर्म भी न बिंधा। वे मुँह फेरे हँसते रहे। इसी रथ पर पीछे अर्जुन बैठे थे। कृष्ण ने कहा, "पार्थ, तुम तीर मारो। शिखण्डी के तीर भीष्म का वर्म-भेद नहीं कर पा रहे।"

"कृष्ण," अर्जुन ने कहा, "यह बहुत बड़ा अन्याय है। क्षत्रिय के लिए कायरता है। मैं शिखण्डी के पीछे रहकर निरस्त्र भीष्म पर कैसे बाण-वर्षा करूँ?"

"सशस्त्र भीष्म को कोई शक्ति पराजित नहीं कर सकती, पार्थ," कृष्ण ने कहा, "भीष्म स्वयं ऐसा करने के लिए कह चुके हैं। तुम उनकी आज्ञा का पालन करो। सब समय एक धर्म, एक ही प्रकार काम नहीं देता। यह समझौता भीष्म से नहीं, कौरवों से है। भीष्म ने जब कौरवों का पक्ष लिया, तब समझना चाहिए कि उन्होंने अन्याय को प्रश्रय दिया। क्योंकि द्रौपदी पर राजसभा में जो अन्याय हुआ है, वह भीष्म भलीभाँति जानते हैं। विराट के यहाँ भीष्म भी गये थे गऊ चुराने। लेकिन इस अधर्म को भीष्म ने अधर्म नहीं, धर्म माना है; क्योंकि वह राजा की आज्ञा समझकर मानते आये हैं; वह अपनी विमाता सत्यवती से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि राजसिंहासन की रक्षा करेंगे। उनके वंश में कोई राजा हो, उसकी रक्षा ही भीष्म का धर्म है। इसलिए तुम भी अपना धर्म पालन करो—भीष्म को मारो।"

सुनकर क्रुद्ध अर्जुन गाण्डीव में तीक्ष्ण शर की योजना करने लगे, मारने लगे। तीर वर्म भेदकर पितामह के जीर्ण शरीर में चुभ गया। वह समझ गये, यह शिखण्डी का नहीं, उन्हीं के महारथ नाती का तीर है। इस प्रकार तीर-पर-तीर विद्ध होते हुए भीष्म को जर्जर करने लगे। अभी तक दोनों ओर युद्ध हो रहा था। इसलिए भीष्म की दशा की तरफ किसी पक्ष का ध्यान न था। जब भीष्म का शरीर तिल-तिल विद्ध हो गया, तब वह बैठे न रह सके। रथ से लुढ़ककर पृथ्वी पर आ गये, और चुभे तीरों के कारण उन्हीं पर रह गये, मिट्टी में उनकी पीठ न लगी।

भीष्म के गिरते ही दोनों दलों में हाहाकार मच गया, लड़ाई बन्द हो गयी। दोनों पक्षों के बड़े-बड़े सेनापति भीष्म को देखने के लिए रथ, हाथी, घोड़ा छोड़कर पैदल दौड़ पड़े। चारों ओर से कौरव-पाण्डव और राजा-महाराजा घेरकर खड़े हो गये। दुर्योधन को जान पड़ा, अब कौरवों का अन्त आ गया। युधिष्ठिर भी शोक से उद्विग्न खड़े थे।

भीष्म ने कहा, "सिर लटक रहा है, इसके लिए उपाय होना चाहिए।"

महाराज दुर्योधन तकिया लेने के लिए दौड़े, और एक कीमती तकिया मँगा-

कर भीष्म के पास आये।

भीष्म ने अर्जुन की तरफ देखा, अर्जुन ने तीन तीर सन्धान कर सिर के नीचे मारे कि वे आधार बन गये।

फिर भीष्म ने कहा, "प्यास लगी है।"

दुर्योधन ने स्वर्ण-पात्र में शीतल जल मँगाकर हाजिर किया। भीष्म ने अर्जुन की तरफ देखा। अर्जुन ने तीर सन्धान कर पृथ्वी पर मारा। शीतल, निर्मल जल-धारा फूटकर भीष्म के मुँह में गिरने लगी।

पानी पीकर भीष्म ने दोनों पक्षवालों को जाने की आज्ञा दी, और कहा, सूर्य के उत्तरायण में आने पर वह प्राण छोड़ेंगे।

द्रोणपर्व

द्रोण का सेनापतित्व

पितामह भीष्म की शर-शय्या के बाद महावीर कर्ण प्राचीन वैर भूलकर भीष्म से मिलने गये। उस समय दूसरा कोई वहाँ न था। कर्ण ने हाथ जोड़कर पितामह को प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर भीष्म ने कर्ण को समझाया, "यह अवश्यम्भावी युद्ध तुमसे रुक भी सकता है, और आगे बढ़ भी सकता है। दुर्योधन को यह विश्वास है कि तुम्हारी सहायता से वह पाण्डवों पर विजय प्राप्त करेगा, लेकिन तुम जानते हो, अर्जुन को परास्त करना दोनों पक्ष में किसी के लिए सहज नहीं। यह ठीक है कि तुम बाण-विद्या में अर्जुन से कम नहीं; लेकिन अधिक हो, ऐसा प्रमाण तो तुम अभी तक नहीं दे सके; न चित्ररथ गन्धर्व से युद्ध होते समय, न विराट के यहाँ। फिर अकारण यह युद्ध क्यों मोल ले रहे हो? तुम अगर इनकार करो या समझाओ, तो दुर्योधन रास्ते पर आ सकता है, क्योंकि उसे सबसे अधिक तुम्हारे बल पर विश्वास है। फिर पाण्डव तुम्हारे भाई हैं। तुम अधिरथ के नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। कुन्ती कुमारी थी, तब तुम पैदा हुए थे। लज्जा के कारण उसने तुम्हारा त्याग किया था। तुम अपने भाइयों का संहार करो, यह अच्छा नहीं! भरसक, तुम्हें चाहिए कि युद्ध रोको, और दोनों दलों में शान्ति स्थापित करो।" कर्ण ने कहा, "पितामह, अब विवाद बहुत दूर बढ़ गया है। मैं केवल सूत अधिरथ का पुत्र हूँ, जिसने मुझे सेया-पाला है। समाज में मैं पतित समझा जाता था, सखा दुर्योधन ने मुझे राजा बनाकर ऊँचा उठाया है; मुझे सब प्रकार से मान दिया-दिलाया है। ऐसे मित्र के असमय में मैं युद्ध के विरुद्ध सन्धि की बातचीत करूँ, इससे बड़ी दूसरी कायरता मुझे नजर नहीं आती। आप चिरविश्राम ग्रहण कर चुके हैं। अब आपका उपदेश मेरे लिए हितकर नहीं हो सकता। पाण्डव आपके भी नाती थे। आपने

उनके विरुद्ध अस्त्र क्यों उठाया ? कौरवों को आप भी समझा सकते थे। क्षत्रिय परिणाम की चिन्ता नहीं करता।" कहकर कर्ण चले आये।

कौरवों के शिविर में बड़े-बड़े रथियों की सभा हुई। कर्ण भी सम्मिलित हुए। पितामह के पतन का यद्यपि दुर्योधन को शोक था, फिर भी उसका विचार था कि पितामह पाण्डवों का पक्ष लेते थे, और पूरी शक्ति से उनके विरुद्ध नहीं लड़ते थे; अब महावीर कर्ण मैदान में उतरेंगे, इससे अवश्यमेव पाण्डवों का नाश होगा। इस निश्चय से दुर्योधन को जितना दुःख था, उससे अधिक आनन्द था। कौरव-पक्ष के बड़े-बड़े रथी एक-एक करके एकत्र हो गये। तब विचार होने लगा कि पितामह भीष्म के बाद सम्पूर्ण कौरव-पक्ष का कौन सेनापति बनाया जाय। कृपाचार्य ने कहा, "महाराज, आचार्य द्रोण से योग्य दूसरा रथी हमारे पक्ष में नहीं। महामति भीष्म ने दस दिन तक घोर युद्ध किया है, और पाण्डवों की बहुत बड़ी सेना का संहार; आचार्य द्रोण और भी अद्भुत शक्ति का परिचय देंगे। उनकी बाण-विद्या की थाह नहीं। उनका कौशल अपराजेय है। उनके व्यूह सभी रथी नहीं भेद सकते। वह अद्वितीय हैं।" कर्ण आदि अन्य वीरों ने भी आचार्य द्रोण के सेनापतित्व पर सम्मति दी। अस्तु, द्रोण का सेनापतित्व स्वीकृत हो गया। महाराज दुर्योधन ने ब्राह्मण बुलाकर विधिवत् आचार्य का अभिषेक किया, और उनका सेनापतित्व समस्त सेना में घोषित करा दिया।

सेनापतित्व का गौरव सिर पर लेकर आचार्य द्रोण कुछ काल तक स्तब्ध भाव से खड़े रहे, फिर प्रतिज्ञा की, "मैं महामति भीष्म की तरह समस्त कौरव-सेना की रक्षा करूँगा, और पाण्डवों के संहार-कार्य में कोई कसर उठा न रखूँगा। मेरी समस्त बाण-विद्या और रण-कौशल कौरवों की हित-साधना में लगेगा। केवल धृष्टद्युम्न से मुझे चिन्ता है; क्योंकि उसकी उत्पत्ति मेरी मृत्यु के लिए हुई है।"

आचार्य की प्रतिज्ञा समाप्त होने पर दुर्योधन ने कहा, "आचार्य, आपका समर-कौशल विश्वविश्रुत है। हम और पाण्डव आपके शिष्य हैं। आपसे पार पानेवाला उभय पक्षों में कोई नहीं। आप एक सहज कार्य कर दें तो हमारा काम बिना परिश्रम के हो जाय, और यह युद्ध भी रुक जाय, जन-नाश भी न हो। आप युधिष्ठिर को पकड़ दें। हम जुआ खेलाकर उन्हें फिर वन भेज देंगे, यह युद्ध रुक जायगा। आप आचार्य हैं, आपको ऐसे अनेक व्यूह, अनेक उपाय मालूम हैं, जिसका भेद पाण्डवों को मालूम न होगा।"

दुर्योधन की स्तुति से द्रोण बहुत खुश हुए। कहा, "महाराज, मैं अपनी पूरी शक्ति युधिष्ठिर को गिरफ्तार करने में लगा दूंगा। महामति भीष्म की तरह मैं आपकी विजय के लिए हर सूरत अख्तियार करूँगा। आप मेरी तरफ से निश्चिन्त रहिए। लेकिन एक बात है। जब तक अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा करेगा, तब तक उनका पकड़ में आना दुश्वार है। अब भी अर्जुन मेरा शिष्य है, फिर भी युद्ध के सभी प्रकार उसे मालूम हैं, फिर वह महादेव को प्रसन्न कर पाशुपत महास्त्र भी प्राप्त कर चुका है। राजन्, अगर अर्जुन को युद्ध-क्षेत्र से हटाने का उपाय सफल हो, तो सम्भव है कि धर्मराज युधिष्ठिर पकड़ में आ जायँ।"

आचार्य द्रोण की बात सुनकर त्रिगर्त के राजा सुशर्मा और संसप्तकों ने कहा,

"अर्जुन को हटा ले जाने की चिन्ता आप छोड दीजिए। कल हम युद्ध के लिए अर्जुन को ललकारेंगे, और बढ़ाते हुए दूर ले जायँगे। उस समय धर्मराज को पकड़ने का उपाय आप कीजिए।"

युधिष्ठिर को पकड़ने के निश्चय से कौरवों में आनन्द की लहरें उठने लगीं। दुर्योधन और दुःशासन को मारे उद्वेग के रात को अच्छी नींद न आयी। उन्हें सबसे बड़ी प्रसन्नता यह थी कि कल से महावीर कर्ण भी मैदान में उतरेंगे, और भीष्म की कमी मालूम न होगी, कारण, भीष्म पाण्डवों का पक्ष लेते थे।

पाण्डव शिविर में भी मन्त्रणा-सभा बैठी। कृष्ण ने कहा, "धर्म-युद्ध महामति भीष्म के साथ हो गया। अब कौरव एक भी उपाय उठा न रखेंगे। कल से कर्ण भी उतरनेवाले हैं। उनमें नया जोश है। फलतः युद्ध के क्रिया-कलाप कल से अवश्यमेव बदले नजर आयेंगे। हमें पहले से सतर्क हो जाना चाहिए।"

धर्मराज सरल दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखने लगे। अर्जुन ने कहा, "मित्र, आपका कहना सत्य मालूम देता है। मेरा भी अनुमान है, अब युद्ध में छल प्रधान होगा। कर्ण और शकुनि सीधी चाल न चलेंगे।"

"हाँ," श्रीकृष्ण सोचते हुए बोले, "दुर्योधन अधीर व्यक्ति हैं। सेनापतित्व के समय द्रोण से उसने अवश्य ही कुछ बड़ी प्रतिज्ञा करायी होगी। द्रोण सीधे ब्राह्मण हैं। प्रशंसा से फूलकर उन्होंने पाण्डवों के अन्याय-विरोध के लिए कोई प्रतिज्ञा की होगी। हमारे विचार से धर्मराज की रक्षा का कल से उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए।"

भीम को अब जैसे होश हुआ। वह दर्प के साथ सभा के सदस्यों को देखने लगे। कृष्ण ने कहा, "भीम और अर्जुन दोनों धर्मराज की रक्षा के लिए उनके दोनों तरफ रहेंगे। यदि किसी कारण एक का अभाव हो, तो उस स्थान पर धृष्टद्युम्न और सात्यकि मोर्चा जमायें। किसी तरह भी धर्मराज पकड़े न जायँ।" पाण्डव-पक्ष ने अपनी रक्षा का इस प्रकार प्रबन्ध किया।

ग्यारहवें दिन दोनों ओर की सेनाएँ नये उल्लास से मैदान में एकत्र होने लगीं। द्रोण ने सेना का निवेश करके सामने पाण्डवों की ओर रथ बढ़ाने को कहा। सोने के विशाल रथ पर शोभित आचार्य द्रोण को सेनापति के रूप में देखकर एक बार पाण्डवों में आतंक छा गया। द्रोण के दोनों ओर दुर्योधन और दुःशासन, पीछे जयद्रथ, कलिंग-नरेश, कृपाचार्य और कृतवर्मा। दूर एक बगल अश्वत्थामा, दूसरी बगल महावीर कर्ण। कौरवसेना नये उच्छ्वास से उमड़ती हुई समुद्र की तरह बार-बार जयध्वनि से गर्जना करने लगी। कर्ण की सूर्य-चिह्नवाली फहराती हुई ध्वजा को देखकर पाण्डवों के बड़े-बड़े वीर भी सन्त्रस्त हो गये। केवल अर्जुन धैर्य के साथ कौरवों के व्यूह का निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय कपिध्वज नन्दिघोष रथ को देखकर सुशर्मा और संसप्तक एक ओर से बढ़े। अर्जुन के कुछ दूर पर सात्यकि का रथ था। अर्जुन ने इशारे से सात्यकि को बुलाया। उनके आने पर कहा, "आचार्य द्रोण की व्यूह-रचना देखकर मालूम दे रहा है कि राजा को पकड़ने की तैयारी की गयी है। तुम व्यूह-भेद में दक्ष हो। होशियार रहना। हमारी सेना का सेनापतित्व धृष्टद्युम्न कर रहे हैं, देखकर आचार्य द्रोण कुछ चौंके-से नजर आ रहे हैं। यह काम हमारी तरफ से अच्छा हुआ है। वह महाराज युधिष्ठिर के अग्र-

भाग में बड़े अच्छे रहे। भीम दाहिना पार्श्व रख रहे हैं। लेकिन रथ पर रहकर वह अच्छा युद्ध नहीं कर सकते। रथ छोड़ देने पर धर्मराज का दाहिना पार्श्व कमजोर हो जायेगा। फिर उधर कर्ण हैं। कर्ण बाण-युद्ध करेंगे, तो भीम रोक नहीं पायेंगे, रथ छोड़कर गदा-युद्ध के लिए विवश होंगे। फलतः धर्मराज का दाहिना पार्श्व टूट जायेगा। बायें में मैं हूँ। पर मैं शायद यहाँ रह न पाऊँगा। वह देखो, सुशर्मा का रथ इधर बढ़ता आ रहा है; साथ संसप्तक हैं, ये मुझे उलझायेंगे। अगर युद्ध करते-करते विवश होकर मुझे बढ़ना पड़ा, तो धर्मराज का वाम पार्श्व भी टूटा समझो। यह सब उन्हें पकड़ने के लिए किया गया मालूम दे रहा है। नहीं तो सुशर्मा के उतनी दूर से बढ़कर इधर आने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। केवल तुम हो, सावधानी से धर्मराज की रक्षा करना। परिस्थिति बिगड़ी देखना, तो धर्मराज को भागने के लिए विवश करना। निश्चय समझो, कर्ण और द्रोण के बीच में पड़ जायेंगे तो कोई भी उनकी रक्षा न कर सकेगा। वह देखो, सुशर्मा आ गया, तुम अपनी जगह जाओ।"

सुशर्मा संसप्तकों के साथ बड़ी तेजी से बढ़कर अर्जुन के सामने आया, और ललकारकर बोला, "अब तक कायरों से लड़ते रहे हो, अभी शूर का मुकाबला नहीं किया। अगर है कुछ हौसला, तो बढ़ आओ, खुले मैदान में हमारे-तुम्हारे दस-पाँच हाथ हों, लोग सच्चे नतीजे पर आयें।"

अर्जुन ने वहीं से दो तीर आचार्य द्रोण को नमस्कार करने के लिए चलाये, जो आचार्य के पैरों के पास जाकर गिरे। आचार्य ने प्रिय शिष्य को आशीर्वाद दिया। कृष्ण ने सुशर्मा के सामने रथ बढ़ाया।

दोनों ओर के सेनापतियों के शंख बजाते ही युद्ध छिड़ गया। रथ से रथ, हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़े और पैदल से पैदल भिड़ गये। युद्ध नये जोश में आरम्भ हुआ। दोनों ओर बड़ी स्फूर्ति थी। क्षण-क्षण रणक्षेत्र में हाथियों के बादल उमड़ रहे थे। बाणों की वर्षा से दिग्ज्ञान भूला था। घमासान युद्ध हो रहा था। द्रोण सामने से और कर्ण बगल से आक्रमण कर रहे थे। इन महारथियों की चोटें पाण्डव-पक्ष के रथी नहीं सँभाल पा रहे थे। फलतः पाण्डव-सेना धराशायी हो रही थी। सुशर्मा अर्जुन के साथ लड़ता हुआ हटता-हटता उन्हें दूर ले गया। कर्ण की सेना-नाश के लिए एक बाजू में छोड़कर शल्य आकर भीम से भिड़े। नतीजा जो होना था, हुआ। भीम ने रथ छोड़ दिया, और गदा लेकर मैदान में कूद पड़े। शल्य भी गदा-युद्ध-विशारद थे। दोनों में बल-परीक्षा होने लगी। इसी समय कर्ण रथ बढ़ाते हुए महाराज युधिष्ठिर की बगल में आ गये। सात्यकि सतर्क थे। उन्होंने कर्ण को रोका। सामने धृष्टद्युम्न द्रोण की मारों से न ठहर सके। उनका सारथि मारा गया, और रथ के घोड़े घायल हो गये। इसलिए दूसरा रथ बदलने के लिए वह अपने सहायक के रथ पर चढ़े, और युद्ध-क्षेत्र से प्रस्थान किया। महाराज युधिष्ठिर अपने भाई नकुल-सहदेव और सात्यकि के संरक्षण में रह गये। कर्ण बुरी तरह बाण बरसा रहे थे। सात्यकि को वार झेलते कठिनता हो रही थी। शकुनि ने रथ बढ़ाकर सहदेव को रोका। अकेले नकुल धर्मराज की सहायता में रह गये। द्रोण पूरे विक्रम से लड़ रहे थे। युधिष्ठिर को ऐसी दशा में देखकर रथ बढ़ाया।

युधिष्ठिर एक योद्धा की तरह लड़ने लगे। नकुल सहायता कर रहे थे। सात्यकि [illegible] सँभलकर कर्ण को पीछे हटाने लगे। सात्यकि की इस समय की वीरता देखने लायक थी। भीम की जगह दाहिना पक्ष लिये हुए सात्यकि कर्ण को जर्जर किये दे रहे थे। बाणों के मारे चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। सहदेव शकुनि से लड़ रहे थे। द्रोण के साथ दुर्योधन-दुःशासन दोनों थे। और भी रथी थे, अकेले नकुल धर्मराज को पूरी मदद न पहुँचा पा रहे थे। फिर चारों ओर अन्धकार छाया था। युधिष्ठिर तत्परता से आचार्य का मुकाबला कर रहे थे। इसी समय पाण्डव-दल में खबर फैली कि धर्मराज पकड़ लिये गये। अर्जुन काफी दूर निकल गये थे। उनके पास भी यह खबर पहुँची। उन्होंने कृष्ण से रथ लौटालने के लिए कहा। विद्युद्वेग से कृष्ण ने नन्दिघोष-रथ लौटाला। शत्रुओं का सामना करते, हटाते, सकड़ों लाशें और खून की नदियाँ पार करते हुए अर्जुन धर्मराज के युद्ध-क्षेत्र में पहुँचे। देखा, वे अक्षत हैं, केवल घिर रहे हैं। नकुल प्राणों की बाजी लगाकर कौरवों का मुकाबला कर रहे हैं, और सात्यकि कर्ण को एक कदम आगे नहीं बढ़ने दे रहे। भीम शल्य से उलझे हुए अपने मौके से बेखबर हैं, और सहदेव शकुनि से जैसे हमेशा का फैसला कर लेने के लिए तुले हुए लड़ रहे हों। अर्जुन की तेज चोटों से कौरव-दल विचलित हो गया। रथी घबरा गये, और बढ़ी हुई कौरव-सेना अधिक संख्या में मारी गयी। सन्ध्या हो आयी थी। आचार्य द्रोण ने अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर को बाँधने की आशा छोड़ युद्ध बन्द करने का शंख बजाया। दोनों ओर की लड़ाई स्थगित हो गयी।

दोनों पक्ष के शिविरों में अनेक प्रकार की मन्त्रणाएँ होनी रहीं—कौरव-पक्ष में युधिष्ठिर को पकड़ने की, पाण्डव-पक्ष में बचाने की। दुर्योधन को निराश देखकर त्रिगर्तराज आवेश में आ गये, और कहा, "कल मैं अर्जुन को युद्ध-क्षेत्र से बहुत दूर ले जाऊँगा, अर्जुन के लौटने का रास्ता भी सेना और रथियों से रोक दिया जाय, तो आचार्य द्रोण और महावीर कर्ण, निस्सन्देह युधिष्ठिर को पकड़ लेंगे।" आचार्य द्रोण ने सम्मति प्रकट की। अस्तु, दूसरे दिन फिर सेनाएँ एकत्र होने लगीं, और व्यूह में निविष्ट होकर अपने-अपने सेनापति की आज्ञा की बाट जोहने लगीं। अर्जुन अब जान गये थे कि कौरव युधिष्ठिर को पकड़ने के इरादे में हैं। इसलिए आज पांचाल-वीर सत्यजित् को उनकी रक्षा के लिए खासतौर से रखा था। सत्यजित् प्राणों की बाजी लगाकर युधिष्ठिर की रक्षा करेगा, वचन दे चुका था। और सहायक भी दिये गये थे, साथ ही यह उपदेश भी कि किसी प्रकार का खतरा देख पड़े, तो धर्मराज युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भग जायँ।

सेनाओं का सामना होते ही त्रिगर्तों ने अर्जुन को ललकारा, और उनका रथ बढ़ते ही दक्षिण की ओर भगे। काफी दूर निकलकर व्यूह बनाकर खड़े हो गये, और डटकर अर्जुन से लोहा लेने लगे। मृत्यु का हय उल्लास अर्जुन कुछ देर तक ज्ञान की दृष्टि से देखते रहे, फिर विशाल गाण्डीव में शर-योजना की। बड़ी वीरता से लड़ते हुए त्रिगर्त लोग वीरगति पाने लगे। वे बड़े वेग से अर्जुन पर आक्रमण करते थे। कई बार कठिन-से-कठिन प्रहार किया। उन्हें निश्चय था कि वे युद्ध में विजयी होंगे, पर फल उलटा होता रहा। एक-एक करके वे अर्जुन के हाथ मारे

जाने लगे। जो बचे, वे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

कृष्ण ने रथ लौटाया, तो रास्ता रोका हुआ देख पड़ा। अर्जुन और कृष्ण, दोनों समझ गये कि धर्मराज पर संकट है। अर्जुन को रोक रखने के लिए यह उपाय किया गया है। इससे उतावली हुई। अर्जुन बड़ी तेजी से तीर चलाते हुए रास्ता साफ करने लगे। पर वहाँ सेना-ही-सेना खड़ी थी, रथी भी थे। प्राग्ज्योतिष का राजा भगदत्त हाथी पर सवार रास्ता रोके हुए था। उसकी तमाम सेना साथ थी। यहाँ अकेले अर्जुन। भगदत्त दम्भी भी था। उसने हाथी बढ़ाकर कहा, "अर्जुन, त्रिगर्तों पर विजय पाकर तूने समझा होगा, मैंने संसार के वीरों को जीत लिया; आज तुझे वीरता का पता मालूम हो जायगा, ले सँभल।" कहकर चोटें करनी शुरू कर दीं। महावीर अर्जुन भगदत्त की सेना से चारों ओर से घिर गये। लेकिन वह विचलित नहीं हुए। धैर्य के साथ आत्मरक्षा करते हुए भगदत्त पर वार करने लगे। अर्जुन के युद्ध-कौशल से सारी सेना अवाक् थी। इस ढंग से अर्जुन तीर चला रहे थे कि समस्त सेना की गति रुद्ध हो रही थी। सबके पास बराबर तीर पहुँच रहे थे, सबका बराबर मुकाबला चल रहा था। इसी समय भगदत्त दोचित्ता हुआ कि अर्जुन ने उसके हाथी का हौदा काट दिया, उसने अंकुश फेंककर मारा, पर कृष्ण ने रोक लिया। अर्जुन ने क्षुब्ध होकर कृष्ण को अस्त्र-ग्रहण करने से मना किया, फिर अर्द्धचन्द्र बाण द्वारा भगदत्त को, साथ ही उसके हाथी को मार गिराया। फिर आगे बढ़े।

अर्जुन के जाने के बाद से कौरवों-पाण्डवों में बड़ी गहरी मुठभेड़ हुई। आचार्य द्रोण पूरी शक्ति से युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए लड़ रहे थे। बड़े-बड़े सभी महारथी उनके सहायक। लेकिन दाल नहीं गली। नकुल, सहदेव, भीम, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और सत्यजित् आदि वीरों ने कौरवों के हौसले पस्त कर दिये। तब आचार्य द्रोण एक-एक रथी को एक-एक के मुकाबले करके युधिष्ठिर को बाँध लेने का प्रयत्न करने लगे। पाण्डव-पक्ष के साथी रथी उलझ गये। ऐसे समय आचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने का उद्यम किया। सत्यजित् युधिष्ठिर का रक्षक था। उसने बड़ी फुरती से द्रोण के घोड़े मार दिये, और रथ की ध्वजा काट दी। द्रोण से न रहा गया। उन्होंने अर्द्धचन्द्र बाण से सत्यजित् का शिरश्छेद कर दिया। सत्यजित् के गिरते ही धर्मराज मैदान छोड़कर लौट गये। इसी समय महासमर करती हुई पाण्डव-वाहिनी ने अर्जुन के नन्दिघोष का कपिध्वज-चिह्न देखा। उसकी जान-में-जान आयी। युधिष्ठिर को न देखकर अर्जुन काल की मूर्ति बन गये, और क्षण-मात्र में कौरवों की विराट् सेना का नाश कर दिया। कौरवों में हाहाकार उठने लगा। सन्ध्या हो आयी थी। भग्नमनोरथ होकर द्रोण ने युद्ध बन्द करने का शंख बजाया।

अभिमन्यु की लड़ाई

महाराज दुर्योधन आज अत्यन्त हतोत्साह थे। कारण, द्रोणाचार्य प्रतिज्ञा करके भी युधिष्ठिर को पकड़ नहीं सके। कौरव-सेना भी बड़ी संख्या में हत हो चुकी थी। हर रोज की तरह रात को शिविर में मन्त्रणा-सभा बैठी। मृत वीरों के लिए शोक-

प्रस्ताव पास हुए। फिर अगले दिन की लड़ाई की चर्चा होने लगी। दुर्योधन खिन्न होकर बोला, "आचार्य, कौरवों की बहुत बड़ी सेना का संहार हो चुका है, लेकिन पाण्डवों का बाल भी बाँका न हुआ। अर्जुन के हाथ त्रिगर्तों का संहार हो रहा है। भीम उत्तरोत्तर पराक्रमशाली पड़ रहे हैं। सात्यकि रोज सहस्रों योद्धाओं का संहार करता है। आप यह सब देखते हुए भी कुछ कर नहीं पा रहे। आपने युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की थी, वह अधूरी रह गयी। आप पाण्डवों पर स्नेह करते हैं। नहीं तो युधिष्ठिर का पकड़ लेना आपके लिए कोई बड़ी बात नहीं।"

दुर्योधन की बात से द्रोणाचार्य क्षुब्ध हो उठे। कहा, "महाराज, मैं अपनी तरफ से कोई कसर रख नहीं छोड़ता। परन्तु क्या करूँ, अर्जुन अजेय है। वह हमारी चाल समझ जाता है, और अपने पक्ष की ऐसी पेशबन्दी करता है कि कोई बस नहीं चलता। अगर आज अर्जुन फिर दूर ले जाया जाय, तो हम युधिष्ठिर को पकड़ने का उपाय कर सकते हैं, और सम्भव है, युधिष्ठिर पकड़ में आ जायँ। हम आज चक्रव्यूह की रचना करेंगे। इसकी लड़ाई अर्जुन के सिवा पाण्डव-पक्ष में दूसरा नहीं जानता। अर्जुन अगर न होगा, तो युधिष्ठिर इस व्यूह का भेद न कर सकेंगे; दो-एक द्वार के भीतर आकर कैद हो जायँगे।"

दुर्योधन आचार्य की बात से बहुत प्रसन्न हुआ। बचे हुए त्रिगर्त और संसप्तकों से उसने प्रार्थना की कि वे अर्जुन को दूर ले जायँ। अर्जुन के चले जाने पर यहाँ चक्रव्यूह की रचना हो, और लड़ने के लिए युधिष्ठिर को पत्र लिखकर ललकारा जाय।

ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन त्रिगर्तों ने पहले की तरह अर्जुन को चुनौती दी। अर्जुन उनके पीछे लगे, और भागते हुए त्रिगर्तों के साथ अदृश्य हो गये, तब हरकारे ने धर्मराज युधिष्ठिर को चक्रव्यूह की लड़ाई लड़ने की चिट्ठी दी।

पत्र पढ़कर युधिष्ठिर चकित हो गये, उन्होंने इस व्यूह का नाम भी न सुना था। कृष्ण और अर्जुन नहीं थे। पाण्डव-पक्ष के वीरों को बुलाकर एक-एक से उन्होंने चक्रव्यूह की लड़ाई के सम्बन्ध में पूछा। सबने इनकार किया। भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव-पक्ष के बड़े-बड़े सभी महारथियों ने स्वीकार किया कि वे उस व्यूह की लड़ाई नहीं जानते। धर्मराज ने सुभद्राकुमार बालक अभिमन्यु से पूछा, "बेटा, तुम अर्जुन के पुत्र हो, क्या तुम चक्रव्यूह की लड़ाई जानते हो? क्या इस युद्ध-संकट के समय तुम हमारी रक्षा कर सकोगे?"

अभिमन्यु ने बड़े दादा को झुककर सादर प्रणाम किया, और कहा, "दादाजी, मैं माता के गर्भ में था। माताजी को प्रसव-पीड़ा हो रही थी। उस समय पिताजी माताजी को बहलाने के लिए चक्रव्यूह की लड़ाई समझा रहे थे। मैं गर्भ से सुन रहा था। छः द्वार तक की लड़ाई मैंने सुनी। सातवें द्वार की अच्छी तरह न सुन पाया, तब माताजी को फिर से पीड़ा शुरू हुई थी, और मैं भूमिष्ठ होने लगा था। आपकी आज्ञा हो, तो मैं तैयार हूँ। आप युद्ध का आमन्त्रण स्वीकार कर लीजिए।"

भीम ने कहा, "बेटा, तुम हमें रास्ता दिखाते चलोगे, तो पीछे हम तुम्हारी

मदद के लिए रहेंगे, पाण्डव-सेना भी साथ रहेगी।"

युधिष्ठिर ने चक्रव्यूह-भेद का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। पाण्डवों में आनन्द का सागर उमड़ने लगा। बड़े समारोह से बालक अभिमन्यु के सिर सेनापतित्व का मुकुट रखा गया। देवी सुभद्रा सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। इतनी कम उम्र में इतनी बड़ी वाहिनी का सेनापतित्व उनके पुत्र को छोड़कर आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ। आज पिता के न रहने पर पुत्र पिता के स्थान को पूरा कर रहा है। पुत्र को युद्ध-सज्जा से सजाने के लिए उन्होंने अपने शिविर में बुला भेजा, और पार्थ पुत्र—श्रीकृष्ण के भांजे—को विविध अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कर, मुख चूमकर, आशीर्वाद देकर बिदा किया। अभिमन्यु माता के यहाँ से चलकर पत्नी उत्तरा के शिविर में मिलने गये। उत्तरा ने भी पति की युद्ध-यात्रा का समाचार सुना था। अभिमन्यु को देखकर बड़े प्रेम से उसने गले लगाया, और फिर पैरों पड़कर आवेगपूर्ण स्वर में कहा, "नाथ, आज रात को मैंने बड़ा भयानक स्वप्न देखा है, तुम आज युद्ध के लिए न जाओ। तुम्हारे पिता जब तक न लौटें, तब तक तुम मेरा कक्ष न छोड़ो। मुझ पर दया करो।"

"स्त्री स्वभाव से ही दुर्बल होती है," अभिमन्यु ने कहा, "प्रिये, तुम मेरे पिता को जानती हो, पिताजी मेरी यह कायरता कभी बरदाश्त न कर सकेंगे। जब वह सुनेंगे कि बीड़ा उठाकर मैं स्त्री के कक्ष में छिपा रहा, तब वह वीरों को मुँह नहीं दिखा सकेंगे। दादाजी को कितनी ग्लानि होगी? उन्होंने कौरवों का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया है। मैं भी पाण्डव-वीरों को कैसे मुँह दिखाऊँगा, अगर यहाँ तुम्हारे पास छिपा रहा? मामाजी भी क्या कहेंगे? प्रिये, तुम विश्वास करो, मैं विजयी हुआ, तो फिर गले लगूँगा, अगर सातों द्वार न भेद सका, तो मेरी कहानी सुनकर तुम गर्विता होगी। महावीर पार्थ-पुत्र और कृष्ण-भागिनेय नाम की मैं रक्षा करूँगा। आज कौरव-वीरों का बल मुझे देख लेने दो।"

उत्तरा निरुत्तर थी; अभिमन्यु ने उसका मुख चूमकर शिविर से प्रस्थान किया। बाहर रथ तैयार था। उस पर बैठे। पाण्डव-वाहिनी तैयार थी। बालक-सेनापति को देखकर हर्ष-ध्वनि करने लगी। वेग से बालक का रथ कौरव-सेना की ओर बढ़ा। आज युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि महारथी बालक के पार्श्व-रक्षक हो रहे थे। वीर बालक चक्रव्यूह के द्वार पर जाकर खड़ा हुआ।

बड़े-बड़े पाण्डव वीर उस व्यूह को देखकर स्तब्ध हो गये। कहाँ द्वार है, कैसे भीतर जाना, किस प्रकार लड़ना होगा, किसी की अक्ल में न आ रहा था। बालक ने भीम से कहा, "ताऊजी, तैयार रहिएगा। यह व्यूह का पहला द्वार है। द्वार पर महारथ जयद्रथ है। मैं भेद करता हूँ। साथ आइए।"

कहते-कहते बालक ने जयद्रथ को लक्ष्य कर तीर मारे, और उनके सँभलते-सँभलते सारथि व्यूह भेदकर भीतर चला गया। भीम का रथ अभिमन्यु के रथ के पीछे ही था, पर यह रथ न जा सका। इसके आने तक सँभलकर जयद्रथ ने इसे रोक लिया। एक साथ पाण्डव वीरों ने युद्ध करना शुरू कर दिया। पर जयद्रथ से किसी की न चली। कोई व्यूह के भीतर प्रवेश न कर सका।

दूसरे द्वार पर द्रोणाचार्य थे। अभिमन्यु को व्यूह भेदकर आ गया देखकर चकित हो गये। धनुष उठाकर उसमें तीर चढ़ा ही रहे थे कि अभिमन्यु ने आचार्य का धनुष काट दिया, और बाणों से उन्हें घायल भी कर दिया। जब तक वह सँभलें-सँभलें, तब तक अभिमन्यु का सारथि व्यूह भेदकर रथ लेकर निकल गया।

तीसरे द्वार पर महावीर कर्ण थे। अभिमन्यु को देखकर कर्ण के छक्के छूट गये। अकेला अभिमन्यु चक्रव्यूह की लड़ाई लड़ रहा है। वह जयद्रथ और द्रोण-जैसे महारथियों को परास्त कर, द्वार भेदकर आया है। कर्ण को देखते ही अभिमन्यु की त्योरियाँ चढ़ गयीं। कर्ण अर्जुन से लड़ने को तत्पर रहते थे, यह बालक अभिमन्यु जानता था। पिता के प्रतिद्वन्द्वी को ललकारकर कहा, "सूत-पुत्र, सँभलो ! तुम महाधनुर्धर अर्जुन का मुकाबला करने के लिए उतावले रहते हो, पर बाज और बटेर की लड़ाई नहीं होती। आज मैं अकेला हूँ, तुम पूरी शक्ति से द्वार-रक्षा करो—देखा जाय, तुम पार्थ को क्या, पार्थ-पुत्र को कितनी देर रोकते हो !" अभिमन्यु के प्रचार से कर्ण को क्रोध आ गया। एक साथ कई तीक्ष्ण तीर उन्होंने अभिमन्यु पर छोड़े। पर बीच में ही बालक ने उन्हें काट दिया, और इतनी क्षिप्रता से कर्ण पर बाण मारे कि वह रोक न सके। वे तेज तीर उनके वर्म को पार कर बदन में समा गये, जिससे कुछ देर के लिए उनको मूर्च्छा-सी आ गयी, सामने कुछ देख न पड़ा। इस बीच अभिमन्यु का सारथि रथ निकाल ले गया।

चौथे द्वार पर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा रक्षक थे। बात-की-बात में अभिमन्यु को जयद्रथ, द्रोण, कर्ण-जैसे वीरों से लड़कर, अकेला द्वार पार कर आया देख शंकित हो गये। फुर्ती से धनुष में तीर चढ़ाकर अभिमन्यु की गति को रोका। अभिमन्यु और अश्वत्थामा में देर तक युद्ध होता रहा। महारथ अश्वत्थामा अभिमन्यु की ही तरह क्षिप्र-हस्त थे। कौरव-सेना चकित होकर दोनों के युद्ध-कौशल देखती रही। इतने में क्रुद्ध अभिमन्यु ने वायव्य अस्त्र से अश्वत्थामा के बाणों को उड़ाकर उन पर एक शक्ति का प्रहार किया, जिससे अश्वत्थामा की मूठ में चोट आ गयी, और धनुष कट गया; वह विकल हो गये। दूसरे धनुष में बाण चढ़ाने लगे, तो अभिमन्यु ने वह धनुष भी काट दिया। इस प्रकार सारथि रथ बढ़ाता हुआ द्वार के पास तक आ गया था। अश्वत्थामा ने खड्ग फेंककर मारा, और तब तक तीसरा धनुष चढ़ाने लगे। अभिमन्यु ने बाणों से रास्ते में ही खड्ग काट डाला। सारथि वायु-वेग से रथ को द्वार के भीतर से निकाल ले गया।

चौथा द्वार पार करते ही कौरवों में हाहाकार मच गया। अकेले बालक ने विशाल कौरव-वाहिनी को परास्त कर दिया। द्रोण-कर्ण-अश्वत्थामा-जैसे वीर पराजित हो गये। हजारों की संख्या में सेना कट गयी। यदि यह बालक जीता लौट गया, तो कौरव-वीरों की नाक कट जायगी, और जिस वेग से यह अकेला द्वार पार करता जा रहा है, इसे सातों द्वार भेदकर लौट जाते देर न होगी। इसे जीता न जाने देना चाहिए। दुर्योधन और दुःशासन अभिमन्यु की वीरता देखकर बहुत ही विकल हुए। वे कर्ण के पास गये, और सलाह कर कहा कि जिस तरह भी हो, इसे मारना चाहिए। यह अगर बेदाग इसी तरह जीतकर लौट गया, तो पाण्डवों की दूनी छाती हो जायगी, और कौरव-सेना हिम्मत हार जायगी। अगर इसका

निधन हो गया, तो अर्जुन और कृष्ण का आधा बल रह जायगा। कर्ण ने सलाह दी कि इस वीरबालक को एक रथी न मार सकेगा। इसलिए सप्तरथी इसे घेरकर मारें। चक्रव्यूह के भीतर अन्याय और न्याय की जाँच करनेवाला कोई नहीं। फिर दुश्मन को जिस तरह हो, नीचा दिखाना चाहिए।

दुर्योधन के दिल में कर्ण की सलाह जम गयी। उसने आज्ञा दी कि सेनापति द्रोण पहले को छोड़कर, बाकी सभी द्वारों के रथियों को लेकर अभिमन्यु को घेरें और उसे जीता न जाने दें—अब तक अभिमन्यु छठा द्वार भी पार कर चुका होगा। विवश और क्षुब्ध होकर द्रोण ने आज्ञा दे दी। तदनुसार सभी द्वारों के रथी और लक्ष्मण चक्रव्यूह के सातवें द्वार पर आकर एकत्र हुए। चारों ओर से उन लोगों ने अभिमन्यु को घेरा। सातवें द्वार का प्रवेश भी बालक न जानता था। परिस्थिति विषम देखकर सारथि ने कहा, "कुमार, यह अन्याय-युद्ध हो रहा है। द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा जैसे संसार-प्रसिद्ध धनुर्धर भी तुम्हारे मुकाबले आज अन्याय करने पर तुले हुए हैं। एक से लड़ने को सात-सात रथी एकत्र हैं। यह युद्ध तुम्हें नहीं लड़ना चाहिए। कल तुम अपने पिता के साथ आओ, तब ये पामर उचित शिक्षा पायेंगे; आज मुझे आज्ञा हो, मैं जिस मार्ग से आया हूँ, वह मार्ग पहचानता हूँ, वायु वेग से मैं रथ उड़ा ले चलूँगा; सातवाँ द्वार रहने दो।"

"मैं इन नीचों को पीठ न दिखाऊँगा।" अभिमन्यु ने कहा, "मैं लौटकर माताजी से क्या कहूँगा? सारथि, मेरा रथ कदापि पीछे न हटाना। मैं सम्मुख समर में प्राण दूँगा, इससे बड़े भाग्य की बात मेरे लिए दूसरी नहीं। यह निश्चय है कि युद्ध की वर्णना के लिए कोई नहीं। यह निश्चय है कि हम और तुम न रहेंगे। पर सूर्यदेव हैं, आकाश है, वायु है, काल है, और यही पामर कौरव हैं। सारथि, सत्य शत मुखों से ध्वनित होगा, उसे कोई रोक नहीं सकता। महावीर अर्जुन के आचार्य तो हैं। तुम क्षुब्ध न हो, पहले ही की तरह लगाम सँभाले रहो। रथ को चक्र की तरह घुमाओ। ये सप्तरथी भी पार्थ-पुत्र का समर देख लें।"

"क्या देखते हो? मारो इसे।" कर्ण ने आवाज लगायी। द्रोण हतप्रभ जैसे रथ पर बैठे हुए थे। रथियों ने एकसाथ शर-सन्धान कर अभिमन्यु पर वार करना शुरू कर दिया। अभिमन्यु का सारथि आज्ञानुसार रथ को चक्र की तरह घुमाने लगा, और अकेले अभिमन्यु सातों रथियों के वार झेलने और प्रहार करने लगे। कर्ण के सामने रथ जाते ही अभिमन्यु ने ऐसी तेजी से तीर मारे कि कर्ण रोक न सके, उनका शरीर जर्जर हो गया। द्रोण ने कहा, "बालक का कवच अभेद्य है। इसलिए मस्तक पर प्रहार करना होगा, और उसका अस्त्र छीन लेना होगा। रथ से भी उतरकर युद्ध करना होगा।" इसी समय अश्वत्थामा ने ऐसा तीर मारा कि अभिमन्यु का सारथि गिर गया। फिर घोड़े मार दिये। वीर बालक रथ से कूद पड़ा। कर्ण और द्रोण ने एक साथ मिलकर उसके धनुष को काट दिया। अभिमन्यु ने खड्ग लिया। दोनों ने खड्ग को भी काट दिया। तब रथ का पहिया लेकर अभिमन्यु लड़ने लगा, और उसी से कई वीरों को घायल किया। पीछे से अश्वत्थामा ने तीर मारकर उस पहिये को भी काट दिया। अब अभिमन्यु के पास कोई अस्त्र न था। इसी समय दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मणकुमार ने अभिमन्यु के सिर पर गदा

फेंककर मारी। चोट गहरी लगी, पर मूर्च्छित होने से पहले वही गदा अभिमन्यु ने भी लौटालकर लक्ष्मण के सिर पर प्रहार किया। अचूक वार था। अभिमन्यु और लक्ष्मण एक साथ मूर्च्छित हुए, और एक ही साथ प्राण निकले। युद्ध समाप्त हो गया। कौरव हर्ष और शोक लिये हुए शिविर को लौटे।

युद्ध-समाप्ति की शंख-ध्वनि होते ही पाण्डवों में खबर फैल गयी कि अभिमन्यु मारे गये लेकिन साथ-साथ अभिमन्यु के युद्ध की तारीफ, अन्यायपूर्वक सप्तरथियों द्वारा घिरकर मारा जाना भी लोक-मुख से पहुँचा। कौरवों की सेना भी वीर बालक के लिए हाय-हाय कर रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर और भीम आदि पाण्डवों के चेहरे उतर गये। समस्त सेना पर शोक के बादल घिर गये। बड़े-बड़े रथी अभिमन्यु की वीरता का संवाद पाकर शोक-सागर में निमग्न हो गये। धर्मराज विलाप करते हुए कहने लगे, "भाई अर्जुन के लौटने पर हम उन्हें क्या कहकर समझायेंगे? देवी सुभद्रा और बहू उत्तरा को क्या जवाब देंगे?" भीम रो रहे थे कि जयद्रथ पर उनका कोई बस नहीं चला, वह द्वार भेदकर भीतर नहीं जा सके, उनकी वीरता को धिक्कार है, लड़ैता लाल इतनी फौज के रहते कोई मदद न पा सका, दुश्मनों से घेरकर असहाय की तरह मार लिया गया। सन्तप्त सेना और सेनापति अपने-अपने शिविर को लौटे। देवी सुभद्रा और उत्तरा को यह दुःसमाचार मिला। दोनों विलाप करती हुई पागल की तरह युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ीं, वहाँ लाशों-पर-लाशें पड़ी हुई थीं। कहीं-कहीं खून की नदी बह रही थी। स्यार घूम रहे थे। युद्ध-क्षेत्र बड़ा भयानक दिखायी दे रहा था। देवी सुभद्रा मशाल लिये हुए अपने प्यारे पुत्र की लाश खोज रही थीं। अभिमन्यु के मारे सैकड़ों-हजारों कौरव-वीर रास्ते में मिले। बड़ी मुश्किल से चक्रव्यूह के सातवें द्वार का ठिकाना मिला। वहाँ का दृश्य बड़ा ही भयंकर था। अभिमन्यु का रथ, घोड़े और सारथि जीर्ण और मृत दशा में दिखायी पड़े। चारों ओर कौरव-सेना की लाशें। सात रथियों के मण्डल के बीच वीर बालक की लाश दिखायी दी। पास ही एक राजपुत्र और मरा पड़ा था। देवी सुभद्रा सुन चुकी थीं कि अभिमन्यु को लक्ष्मणकुमार ने मारा है, और उसी गदा से अभिमन्यु ने लक्ष्मण को। मुँह देखकर पहचान गयी, यह लक्ष्मणकुमार है। उत्तरा पति की लाश देखते ही पैरों के पास गिरकर मूर्च्छित हो गयी। देवी सुभद्रा वीर पुत्र का सिर गोद में लेकर विलाप करने लगीं। उत्तरा ने सती होने की इच्छा प्रकट की। पर देवी सुभद्रा ने यह कहकर रोक दिया कि तुम्हारे गर्भ है, सती होना उचित नहीं, अब हमारा-तुम्हारा उतना वही सहारा होगा।

त्रिगर्तों और संसप्तकों को मारकर, कुछ रात बीतने पर अर्जुन भी शिविर को लौटे। रास्ते में तरह-तरह के अपशकुन हो रहे थे। उन्हें चिन्ता थी कि कहीं धर्मराज पकड़ न लिये गये हों। आने पर मालूम हुआ कि चक्रव्यूह की लड़ाई में अभिमन्यु ने वीर-गति प्राप्त की। पुत्र की वीर-गाथा से महावीर पार्थ क्षुब्ध हो उठे। श्रीकृष्ण ने समझाया कि ऐसे सुयोग्य पुत्र की वीर-गति पर पिता को शोक नहीं करना चाहिए, बल्कि इसका प्रतिकार करना चाहिए। अभिमन्यु को सात रथियों ने घेरकर अन्यायपूर्वक मारा है, इसका उन्हें उत्तर देना चाहिए। उन्होंने

कहा, "दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ वास्तव में अभिमन्यु की ऐसी मृत्यु का कारण है। क्योंकि वन में पाण्डवों से लांछित होकर उसने रुद्र की आराधना की थी, और वर माँगा था कि वह पाण्डव-विजयी हो। भगवान् रुद्र ने कहा था कि अर्जुन को छोड़कर बाकी चार पाण्डव तुमसे न जीतेंगे। इसी विचार से चक्रव्यूह के द्वार पर वह रखा गया था। भीम इसीलिए उसे परास्त कर भीतर नहीं पैठ सके। अभिमन्यु को कुछ भी सहायता मिली होती, तो उसकी जान न जाती।" जयद्रथ के कारण अभिमन्यु की जान गयी, यह मालूम कर सबके सामने वीर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की, "कल सूर्यास्त से पहले अगर मैं जयद्रथ को न मार सका, तो अग्नि को अपना शरीर समर्पित कर दूँगा।"

जयद्रथ-वध

अर्जुन की प्रतिज्ञा की खबर आग की तरह दोनों दलों में फैली। दोनों दलों में स्तब्धता छा गयी। जयद्रथ दुर्योधन का बहनोई था। खबर शिविरों के सिपाहियों तक ही नहीं, रनिवास तक पहुँची। बड़ी घबराहट हुई। जयद्रथ बहुत डरा। अर्जुन की वीरता वह जानता था। फिर उसे शिवजी से वर पाने के समय मालूम हो चुका था कि अर्जुन अपराजित है। उसने सिन्ध-देश भग जाना चाहा। मारे भय से उसका शरीर काँप रहा था। दुर्योधन ने उसे धैर्य दिया। कहा, उनकी रक्षा के लिए वे पूरी शक्ति लड़ायेंगे। फिर यह भी सम्भव है कि अर्जुन का ही इस प्रतिज्ञा से खात्मा हो जाय। सूर्यास्त तक उनकी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर वे आग में जलकर भस्म हो जायँगे। जयद्रथ को चाहिए कि दुश्मन को अपनी आँखों जलकर भस्म होता हुआ देख लें। यह कहकर दुर्योधन जयद्रथ को द्रोण के शिविर में ले चले। अर्जुन की प्रतिज्ञा द्रोण सुन चुके थे। कौरवराज के साथ उनके बहनोई जयद्रथ को देखकर आने का कारण समझ गये। आदर से दोनों को बैठाला। दुर्योधन ने पार्थ की प्रतिज्ञा की बात कही। द्रोण ने धैर्य देते हुए कहा कि वह भरसक पाण्डवों से लोहा लेंगे, और जयद्रथ के प्राणों की रक्षा करेंगे। कल ऐसा व्यूह बनायेंगे कि जयद्रथ को उसमें खोज निकालना अर्जुन के लिए दुष्कर होगा, और जैसी कि अर्जुन ने एक और प्रतिज्ञा की है कि दुश्मन को अन्याय से जीतकर या छोड़कर वे दूसरे युद्ध के लिए नहीं मुड़ेंगे, वह प्रतिज्ञा अगर अर्जुन ने नहीं तोड़ी, तो तमाम दिन अकेले द्रोण अर्जुन से लड़ेंगे, वही व्यूह के द्वार पर रहेंगे। सुनकर दुर्योधन और जयद्रथ को आश्वासन हुआ। वे आचार्य को प्रणाम कर वहाँ से उठकर कर्ण के पास गये। कर्ण ने भी मित्र को धैर्य दिया।

पाण्डवों के शिविरों में भी कोलाहल और शंका थी। महाराज युधिष्ठिर बहुत घबराये थे। भीम भी चिन्तित थे। सेना और सरदार सब दहले हुए थे। श्रीकृष्ण ने सुभद्रा और उत्तरा को समझाकर पाण्डवों और सेनानायकों को आश्वासन दिया। दूसरे दिन की लड़ाई का नक्शा तैयार हुआ। उस दिन रात को पाण्डवों में किसी की आँख नहीं लगी।

चौदहवें दिन की लड़ाई शुरू हुई। आचार्य द्रोण ने शकट व्यूह नाम के व्यूह में सेना का निवेश किया, और जयद्रथ को बीच में रखा। व्यूह के एक-एक द्वार

पर कौरव-पक्ष के एक-एक महारथी थे। प्रवेश-द्वार पर स्वयं द्रोण। दुर्योधन के भाई दुर्मर्षण और दुःशासन द्रोण के पार्श्व-रक्षक थे।

सुविन्यस्त पाण्डव-वाहिनी आगे बढ़ी। सामने नन्दिघोष-रथ। अर्जुन बैठे हुए। सारथि कृष्ण। पाण्डव-सेनापतियों के हृदय में अपूर्व आवेग। दोनों ओर से शंख बजने लगे। युद्ध का स्वागत हुआ।

अर्जुन कुछ देर तक कौरवों के व्यूह को देखते रहे। समझकर दायाँ बाजू आक्रमण करने के इरादे से कृष्ण से रथ बढ़ाने के लिए कहा। दुर्मर्षण सामने आया। लेकिन क्रुद्ध अर्जुन के प्रहार सह न सका। देखते-देखते भग गया। तब दुःशासन आये। धनुष उठाते ही अर्जुन ने काट डाला, और एक साथ ही कई तीर मारे। दुःशासन का वर्म छेदकर दो-तीन तीर छाती में लगे। सारथि खेत छोड़-कर उन्हें ले भागा।

अब अर्जुन का रथ व्यूह के द्वार पर आया। आचार्य द्रोण द्वार-रक्षक थे। अर्जुन को आया देख धनुष उठाकर वे द्वार की रक्षा में लगे। ललकारकर अर्जुन पर तीर छोड़े, और कहा, "अर्जुन, तुम्हारी यही बहादुरी मैं आज देखना चाहता हूँ कि तुम व्यूह का द्वार भेदकर जाओगे। तुम प्रतिज्ञा कर चुके हो कि लड़ते हुए कटकर भागोगे नहीं।" आचार्य ने अमित पौरुष से अर्जुन को रोका। दोनों में घनघोर युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरे के तीर काटते हुए वार कर रहे थे। अर्जुन आज बड़े ही उद्धत थे, लेकिन द्रोण अर्जुन की हर सूरत व्यर्थ कर देते थे। लड़ते-लड़ते काफी देर हो गयी, तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "पार्थ, दिन का दूसरा पहर पूरा हुआ चाहता है, अभी तक तुम व्यूह-भेद नहीं कर सके। आचार्य से कटकर जाने में हार या हेठी नहीं होती। प्रतिज्ञा भी नहीं टूटती। मैं अब रथ काटता हूँ। तुम बगल की मारें सँभालना।"

कृष्ण ने रथ कटाया। द्रोण ने ललकारकर कहा, "अर्जुन, क्या हो रहा है? भग रहे हो?"

अर्जुन ने कहा, "आपसे भगने में मुझे लज्जा नहीं लगती। फिर आज का मेरा उद्देश्य दूसरा है।"

श्रीकृष्ण नन्दिघोष रथ बगल से निकालकर व्यूह के भीतर ले गये। देखते-देखते रथ अदृश्य हो गया। राह के एक के बाद दूसरे द्वार तोड़ते, प्रवेश करते हुए अर्जुन बहुत दूर निकल गये। वहाँ से शंख की आवाज भी न सुनायी देने लगी। तीसरा पहर ढलने को हुआ, एकाएक युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। मलिन होकर उन्होंने सात्यकि से कहा, "सात्यकि, तुम वीरों में बढ़कर हो। फिर अर्जुन तुम्हारे उस्ताद हैं। नन्दिघोष को भीतर गये एक पहर हो गया। अब न रथ की ध्वजाएँ देख पड़ती हैं, न शंख की आवाज सुन पड़ती है। बड़ी चिन्ता हो रही है। आज पार्थ की भीषण प्रतिज्ञा का दिन है। लेकिन हम लोग इतनी सेना के साथ उनकी मदद नहीं कर सकते। संकट पड़ने पर सहारे को कोई नहीं। तुम बढ़कर देखो न!"

सात्यकि ने कहा, "महाराज, मुझ पर आपकी रक्षा का भार है। नहीं तो मेरा जी भीतर पैठने को ही हो रहा है।"

युधिष्ठिर ने कहा, "मेरी चिन्ता न करो। भीम, नकुल, सहदेव आदि मेरी

रक्षा के लिए बहुत हैं।"

प्रणाम कर सात्यकि बिदा हुए, और उसी मार्ग से चले, जिससे अर्जुन गये थे। द्रोण ने रास्ता रोका, परन्तु सात्यकि कटकर चले गये।

कुछ देर में सात्यकि भी अदृश्य हो गये। अर्जुन की मदद के लिए युधिष्ठिर की चिन्ता बढ़ती गयी। भीम को देखकर उन्होंने कहा, "भीम! आज बड़े संकट का समय है। भाई, अर्जुन की सहायता के लिए जाओ। मैं संकट-समय देखूँगा, तो भग जाऊँगा। द्रोण मुझे पकड़ न पायेंगे, मदद के लिए भी बहुत हैं।"

धर्मराज को प्रणाम कर भीम भी बढ़े। भीम को देखकर आचार्य द्रोण ने ललकारकर कहा, "भीम, बाहर-ही-बाहर जाओ, क्षत्रियत्व की नाक इधर रखकर उधर ही से अर्जुन और सात्यकि गये हैं।"

भीम को अपमान मालूम दिया। उन्होंने गदा फेंककर आचार्य पर प्रहार किया। आचार्य कूद गये, पर गदा के प्रहार से सारथि काम आ गया, और रथ के टुकडे-टुकड़े हो गये। भीम फाटक दबाये हुए, सीधे रास्ते से निकले। दुर्योधन के भाइयों ने घेरा, पर भीम की बेड़ी मार न सह सके। लड़ते-लड़ते कई भाई खेत रहे। दुर्योधन को गहरा दुःख हुआ। वे आचार्य द्रोण से आक्षेपपूर्ण बातें करने लगे। भीम का रथ कर्ण के सामने, दूसरे द्वार पर पहुँचा।

भीम को देखकर कर्ण ने ऐसी बाण-वर्षा की कि भीम को रथ छोड देना पड़ा। तीरों की लड़ाई में वे मुकाबले के न थे। ढाल और तलवार लेकर बढ़े कि कर्ण ने एक तीर से उनकी तलवार काट दी, और पकड़ने के लिए रथ से उतर पड़े। भीम ने संकट देखा। अर्जुन ने जाते समय इस स्थल पर कई हाथी मारे थे। भीम उनकी लाश में जाकर छिपे। कर्ण देखते हुए आ रहे थे। चाहते तो भीम को मार सकते थे, परन्तु उन्होंने कुन्ती से प्रतिज्ञा की थी कि अर्जुन के सिवा और उनके किसी पुत्र की वह जान न लेंगे। इसलिए मारने का विचार छोड़कर छिपे हुए भीम को धनुष से कोंचा। भीम ने धनुष पकड़ लिया, और तोड़ डाला। फिर बाहर निकल आये, और ताल ठोंककर ललकारा, "आओ, हमारी-तुम्हारी एक पकड़ हो जाय।" कर्ण बाहु-युद्ध में कमजोर थे। वे अपने रथ की ओर बढ़े।

सात्यकि भोज और काम्बोजों से लड़ते हुए अर्जुन की तरफ बढ़ रहे थे। पीछे से भीमसेन की हाँक सुन पड़ी। अर्जुन ने आँख फेरकर देखा, सात्यकि पास है, भीम दूर; दोनों नन्दिघोष की ध्वजा देख रहे हैं। फिर कृष्ण ने कहा, "यादवश्रेष्ठ, देखिए, धर्मराज की रक्षा का भार छोड़कर, लड़ते हुए तूण खाली कर सात्यकि मेरी मदद के लिए आ रहे हैं और भीम भी।"

इसी समय भूरिश्रवा ने सात्यकि पर धावा किया। सारथि को मार डाला, और रथ को चूर-चूर कर दिया। कूदकर सात्यकि ने जान बचायी। पर खड्ग लिये हुए भूरिश्रवा भी कूद पड़ा, और दौडकर सात्यकि की चोटी पकड़ ली। खड्ग चलाना ही चाहता था कि कृष्ण की निगाह पड़ गयी। उन्होंने उसी वक्त अर्जुन से कहा, "जल्द वार करो; अर्जुन, भूरिश्रवा सात्यकि की जान ले रहा है।"

जैसे बिजली कौंध जाय। तुरन्त घूमकर अर्जुन ने तीर मारे, खड्ग-समेत भूरिश्रवा के दोनों हाथ कट गये।

खिन्न होकर अर्जुन को धिक्कारते हुए भूरिश्रवा ने कहा, "पार्थ, तुम क्षत्रियों के आदर्श वीर हो, पर यह कौन-सा न्याय है कि जब मैं सात्यकि से जूझ रहा हूँ, तुम मेरे हाथ काट दो ? धिक्कार है !"

"भूरिश्रवा," अर्जुन ने कहा, "सात्यकि भी अकेला तुम लोगों से जूझ रहा था, जूझता हुआ यहाँ तक आया था। वह पाण्डवों का शुभचिन्तक है ! मैंने उसकी रक्षा की। रही बात अन्याय की, यह शिक्षा अभिमन्यु से लड़ते हुए तुम्हीं लोगों ने दी है, मित्र !"

भूरिश्रवा अन्याय के विरुद्ध देह छोड़ने के लिए ध्यानासीन हो गये। उनके बैठकर आँख मूँदते ही सात्यकि ने तलवार निकालकर उनका सिर काट लिया। कौरव सात्यकि को धिक्कार देने लगे। अर्जुन भी सात्यकि के इस कृत्य से खिन्न हुए।

दिन थोड़ा रह गया। अभी तक जयद्रथ का सन्धान नहीं मिला। सामने अपार कौरव-सेना कोलाहल कर रही थी। अर्जुन ने कृष्ण से रथ बढ़ाने के लिए कहा। धर्मराज युधिष्ठिर को सात्यकि और भीम के जाने पर भी सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने युधामन्यु और उत्तमौजा को भेजा। जब अर्जुन वहाँ से बढ़ने को हुए, तब पीछे से ये दोनों वीर भी कौरवों की सेना को चीरते हुए वहाँ आ पहुँचे। सात्यकि और भीम विरथ थे। वे आये हुए दोनों वीरों के रथ पर बैठे। दोनों रथ नन्दिघोष के बाजू बचाते हुए साथ-साथ बढ़े।

अर्जुन की गति रोकने के लिए कौरवों के कई महारथी एकत्र हो गये थे। दुर्योधन, कर्ण आदि वीरों ने अर्जुन को घेरा। दुर्योधन ने कहा, "कर्ण, आज ही तुम्हारी वीरता की पहचान है।" लेकिन क्रुद्ध अर्जुन ने ऐसा तीर मारा कि वह कर्ण के मर्मस्थल में लगा। वे विकल हो गये। सारथि उन्हें लेकर लौट गया। ज्यों-ज्यों सन्ध्या होती आती थी, अर्जुन का वेग बढ़ता जाता था। वे ज्वार की तरह कौरवों के सेना-समुद्र को मथ रहे थे। लेकिन जयद्रथ का कहीं पता न चल रहा था।

सूर्य डूबने को हुए। देखते-देखते डूब भी गये। सूर्य के छिपते ही कौरवों में कोलाहल उठा कि सूर्य डूब गये। अर्जुन ने गाण्डीव रख दिया। कौरव-पक्ष के बड़े-बड़े महारथी एकत्र हुए। मारे आनन्द के दुर्योधन का हृदय उछलने लगा। अर्जुन के भस्म होने के लिए उसने चिता रचा दी। सब रथी एकत्र हो रहे थे। भीम के आँसू आ गये। अब अर्जुन के चिता पर चढ़ने की बारी है। चिता में आग लगा दी गयी। उधर जयद्रथ को दुर्योधन ने कहला भेजा कि 'दुश्मन को मरते हुए अपनी आँखों देख लो।' वह वहाँ आकर सबके साथ खड़ा हुआ। अर्जुन बिना अस्त्र के चिता पर चढ़ रहे हैं, देखकर कृष्ण ने कहा, "पार्थ, क्षत्रिय का धर्म है कि अस्त्र लेकर चिता पर चढ़े।" अर्जुन ने तरकस बाँधकर धनुष ले लिया। चिता पर चढ़ने को हुए कि कृष्ण ने कहा, "पार्थ, मारो दुश्मन को, सामने खड़ा है, सूर्य अस्त नहीं हुआ, बादल में छिपा है।"

कृष्ण के कहने के साथ अर्जुन का तीर छूटा, और जयद्रथ का सिर उड़ाकर आकाश में कहीं चला गया। पलक मारते यह काम हुआ। जयद्रथ के मरते ही

सबने देखा, सूर्य बादल से निकला, और डूबने लगा। कौरवों में हाहाकार मच गया।

भीम मारे उत्साह के बार-बार सिंहनाद करने लगे। उनका सिंहनाद बाहर के पाण्डवों ने और उनकी सेना ने सुना। धर्मराज युधिष्ठिर समझ गये कि जयद्रथ मारा गया। पाण्डवों में आनन्द का सागर लहराने लगा।

घटोत्कच-वध

रात को पाण्डवों की मन्त्रणा-सभा बैठी। अगली लड़ाई पर विचार होने लगा। कृष्ण ने कहा, "दुर्योधन आज की लड़ाई से बहुत खिन्न हुआ है। वह आचार्य द्रोण और कर्ण को उभाड़ेगा। कल की लड़ाई में कर्ण अर्जुन पर इन्द्र से पायी शक्ति का प्रहार कर सकता है। अगर किया, तो अर्जुन की जान न बचेगी। वह अमोघ शक्ति है।"

महाराज युधिष्ठिर कृष्ण की बात अच्छी तरह नहीं समझे, ऐसी दृष्टि से देखने लगे। कृष्ण ने कहा, "अर्जुन के कल्याण के लिए इन्द्र कर्ण से उनका अभेद कवच और उनके कुण्डल माँग ले गये हैं। महादानी कर्ण ने प्राणों की रक्षा भी दान के महत्त्व को रखते हुए नहीं की, कुण्डल और कवच दे दिये। तब देवराज इन्द्र ने भी एक अमोघ शक्ति दी है। वह शक्ति जब तक कर्ण के हाथ में है, तब तक कर्ण से अर्जुन को नहीं लड़ना चाहिए।"

"फिर माधव ?" डरते हुए युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा, "अब क्या उपाय होगा ?"

कृष्ण ने कहा, "घटोत्कच का स्वभाव राक्षस का स्वभाव है। वह वैसी ही परिस्थिति में अच्छा लड़ सकता है। रात है। अँधेरे मे उसे लड़ते उत्साह होगा। उसे बुलाकर कहना है कि वह कौरवों के शिविर में लड़ाई और अत्याचार करे। परेशानी बढ़ने पर दुर्योधन रक्षा के लिए अधीर होगा, और कर्ण से रक्षा के लिए कहेगा। कर्ण बिना उस शक्ति के प्रयोग के घटोत्कच का अत्याचार रोक नहीं सकेंगे। इसके सिंवा दूसरा उपाय नहीं।"

सभा निस्तब्ध रही। घटोत्कच भीम का पुत्र है। उसकी माँ हिडिम्बा है। भीम सिर झुकाकर रह गये। एक ओर भाई अर्जुन हैं, दूसरी ओर पुत्र घटोत्कच।

युधिष्ठिर ने कहा, "केशव, पाण्डव आपकी आज्ञा के अनुवर्ती हैं। आपने जो उपाय निकाला है, वही काम में लाया जायगा।" यह कहकर उन्होंने घटोत्कच को बुलाया। उसके आने पर सस्नेह उससे कहा, "वत्स, तुम दिन से रात में ज्यादा अच्छा लड़ते हो। जाओ, वीर, अपनी सेना लेकर कौरव-शिविरों पर आक्रमण करो। तुम्हारे लिए मनुष्य के नियम लागू नहीं। आज अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाकर पाण्डवों की रक्षा करो।"

महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर घटोत्कच विदा हुआ। अपनी सेना साथ ली, और सोते समय कौरवों पर आक्रमण शुरू कर दिया। एकाएक धूल उड़ी, फिर बादल छा गये, पानी बरसने लगा, साथ आसमान से कंकड़ और पत्थर गिरने लगे, तरह-तरह का शोर-गुल उठने लगा। मारे डर के कोई बाहर न निकला।

लेकिन भीतर भी निस्तार नहीं रहा। अँधेरे में बाहर कुछ देख न पड़ता था। केवल 'मार-मार' शब्द गूंज रहा था। पत्थरों की मारों से कौरव बहुत व्याकुल हुए। दुर्योधन इस उपद्रव का कारण कुछ न समझ सके। उनका शिविर कर्ण के शिविर के पास था। कर्ण के पास गये, और इस आपत्ति से सेना को बचाने के लिए कहा। कर्ण ने कहा, "आज धैर्य रखकर पड़े रहिए। कल मैं अर्जुन के प्राण लूंगा।" दुर्योधन ने कहा, "आज ही सबके प्राण निकल जायँगे। कल का मुँह कौन देखेगा ? आज की इस आपत्ति से बचाओ। कल की कल देखी जायगी।"

दुर्योधन को बहुत अधीर देखकर कर्ण इन्द्र की दी शक्ति लेकर बाहर निकले, और उसका प्रयोग किया। शक्ति अमोघ थी। घटोत्कच के लगी। वीर धराशायी हो गया। उसके प्राण निकल गये।

दुर्योधन प्रसन्न हो गये। कर्ण को साधुवाद दिया। कर्ण की शक्ति पर भरोसा हुआ। शिविर में निश्चिन्त होकर आराम करने लगे।

घटोत्कच की मृत्यु का संवाद पाण्डवों को मालूम हुआ। धर्मराज आँसू भर-कर रह गये। भीम उस रात नहीं सोये।

द्रुपद, विराट और द्रोण का निधन

सुबह दोनों दल लड़ने के लिए सजकर तैयार हो गये। रात के आक्रमण से कौरव विचलित थे। खूंखार बाघ की तरह पाण्डवों पर टूटे। द्रोणाचार्य ने अपनी सेना के दो भाग किये थे, आधे में वे थे, आधे में कर्ण। आज द्रोण को भी क्रोध था। रात-वाले आक्रमण पर वे पाण्डवों को क्षमा नहीं करना चाहते थे। बदला भी पांचालों से चुकाना था। वे अबाध गति से पाण्डवों की सेना से रास्ता निकालकर बढ़ने लगे। उनके क्षिप्र प्रहारों से सैकड़ों वीर और हजारों सिपाही काम में आये। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। कोई भागा भी नहीं बचता था। व्यूह टूट गया। सिपाही रक्षा के लिए सेनापतियों की ओर करुण दृष्टि से देखने लगे। द्रोण का आक्रमण देखकर युधिष्ठिर ने कहा, "कृष्ण, आचार्य आज साक्षात् यम बन रहे हैं। जयद्रथ के वध के बदले यदि द्रोण और कर्ण का वध हुआ होता, तो पाण्डव-सेना अधिक निश्चिन्त हुई होती। इनके मरने पर दुर्योधन ने जरूर सन्धि की सोची होती, या मैदान छोड़कर वन का रास्ता नापा होता।"

कर्ण को बढ़ता हुआ देखकर कृष्ण नन्दिघोष-रथ दूसरी ओर बढ़ा ले गये। युधिष्ठिर द्रोण का सामना करने के लिए बढ़े। द्रुपद और विराट युधिष्ठिर के पार्श्व-रक्षक हुए। इन्हें देखकर द्रोण का क्रोध दूना बढ़ गया। द्रुपद और विराट के मारे हुए तोमर और प्रास अस्त्रों को काटकर दिव्यास्त्रों से द्रोण ने दोनों की जान ले ली। सेना में हाहाकार मच गया। अर्जुन ने कर्ण के पास पहुँचने से पहले युधिष्ठिर के पास पहुँचना आवश्यक समझा। रथ घूमा। द्रुपद के मरने पर पांचाल सेना द्रोण पर टूट पड़ी, साथ ही धृष्टद्युम्न। लेकिन द्रोणाचार्य का समर बड़ा भयं-कर था। उनके चेहरे से रह-रहकर जैसे आग निकल रही थी, जैसे प्रलय का सूर्य तप रहा हो। हाथ से अविराम तीरों की वर्षा हो रही थी। अव्यर्थ शर-सन्धान सेना और सेनापतियों के प्राण ले रहा था। द्रोण अप्रतिहत गति से पांचालों का

निधन करने लगे।

आचार्य के द्वारा लाखों की संख्या में सेना काम आ रही थी, युधिष्ठिर देखते हुए चिन्तित हो गये। द्रोण को मारे, ऐसी शक्ति अर्जुन के सिवा दूसरे में न थी। युधिष्ठिर सोच रहे थे, आचार्य समझकर अर्जुन द्रोण के प्राण नहीं लेगा; पर द्रोण के रहते कल्याण नहीं। क्रमशः पांचालों और पाण्डवों की सेना का नाश बढ़ रहा है, देखकर कृष्ण ने सोचा, अब द्रोण का निधन आवश्यक है, नहीं तो युद्ध का परिणाम उलटा होना चाहता है। सोचकर उन्होंने अर्जुन से कहा, "आचार्य के कान में यह बात डाल देनी है कि अश्वत्थामा का प्राणान्त हो गया।"

अर्जुन ने कहा, "झूठ ?"

कृष्ण ने कहा, "नहीं, सच। अवन्तिराज के हाथी का नाम अश्वत्थामा है, भीम उसे मारकर आ रहे हैं।"

कृष्ण ने युधिष्ठिर के पास रथ ले जाकर कहा, "अगर द्रोणाचार्य आपसे पूछें कि क्या अश्वत्थामा हत हो गया, तो आप कह दीजिए, हाँ। अभी अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारकर भीम आ रहे हैं।"

बात-की-बात में हल्ला मचा, 'अश्वत्थामा मारा गया'—'अश्वत्थामा मारा गया।' द्रोण सुनकर विचलिए हुए। लेकिन एकाएक विश्वास नहीं हुआ। युधिष्ठिर पास थे। रथ बढ़ाकर उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा। युधिष्ठिर ने कहा, "हाँ, अश्वत्थामा मारा गया, नर नहीं कुंजर।" पहला वाक्य खत्म होते ही 'नर' के उच्चारण के साथ-साथ कृष्ण ने शंख बजा दिया। द्रोणचार्य आगे का वाक्य नहीं सुन पाये। वह उदास हो गये। फिर गले से धनुष टेककर रोने लगे। आँसुओं की धारा बँध गयी। आँसू धनुष के गुण पर बहने लगे। इसी समय कृष्ण ने कहा, "पार्थ, देखो, सर्प चढ़ रहा है, द्रोणाचार्य को काटेगा, मार दो इसे।" गुण से लिपटे, झलमलाते, काँपते आँसू अर्जुन को सर्प-से दिखायी दिये। उन्होंने उसी समय, बिना अच्छी तरह देखे, तीर छोड़ दिया। तीर साँप को क्या लगा, उससे धनुष का गुण कट गया, और डण्डा सीधा होने के लिए उछला और आचार्य के गले में छिद गया। इसी समय द्रुपद का बेटा धृष्टद्युम्न तलवार लेकर वहाँ पहुँचा, और द्रोणाचार्य का सिर काट लिया।

द्रोण के हत होते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। खबर अश्वत्थामा के पास भी पहुँची। सुनकर उन्हें बड़ा सोच हुआ। उनके विश्वविख्यात आचार्य पिता धोखे से धृष्टद्युम्न के हाथ मारे गये! वह महावीर थे—महारथ। उनके मुकाबले का वीर अर्जुन के सिवा दूसरा न था दोनों पक्षों में। जैसे अर्जुन कुछ खास बातों में अश्वत्थामा से बढ़कर थे, वैसे ही अश्वत्थामा कुछ खास बातों में अर्जुन से। दिव्यास्त्र अश्वत्थामा के पास भी कई थे।

पाण्डवों की सेना का बेशुमार संहार होने लगा। अश्वत्थामा की वह कराल मूर्ति देखकर सेना भगती हुई भी न बची। इसी समय अश्वत्थामा ने नारायण-अस्त्र पाण्डवों पर चलाया। उस चोट की बचत किसी को न मालूम थी। अस्त्र के सामने देवता भी न ठहर सकते थे। उसके छूटते ही चारों ओर से जल-वृष्टि होने लगी। बिजली-सी कड़की। चारों ओर अँधेरा छा गया। त्रास फैल गया। इसका

प्रतिकार सिर्फ कृष्ण को मालूम था। उन्होंने हाथ उठाकर कहा, "सेना में जितने आदमी हों, अस्त्र छोड़कर सिर झुका लें।" अर्जुन आदि वीरों ने ऐसा ही किया, लेकिन भीम ने ऐसा नहीं किया; वे गदा लिये सामने डटे रहे। तब कृष्ण रथ से कूद पड़े, और जबरन भीम की गदा छीन ली, और अपने हाथों से दबाकर सिर झुका दिया।

अस्त्र को व्यर्थ हुआ देखकर भी अश्वत्थामा विरत नहीं हुए, और दूने दर्प और क्षिप्रता से पाण्डवों की सेना मारने लगे। आज अश्वत्थामा के मुकाबले आते बड़े-बड़े दहल गये, मार खा गये, भग गये। देखकर अर्जुन ने मोरचा लिया। कहा, "अब, तुम कुछ देर मेरा भी सामना करो।"

अश्वत्थामा जले हुए थे, और जल गये। उसी वक्त आग्नेयास्त्र का सन्धान किया, और कृष्ण और अर्जुन को लक्ष्य कर छोड़ दिया। अस्त्र के निकलते ही आकाश को व्याप्त कर चारों ओर आग पैदा हो गयी, एक-एक के भीतर से निकलते हुए तीरों का बादल छा गया। इस अस्त्र की आग में पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना भस्म हो गयी। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर इसकी शान्ति की। अब तक सन्ध्या हो गयी थी, लड़ाई बन्द हो गयी।

कर्णपर्व

सेनापति कर्ण

महान् तेजस्वी महारथी आचार्य द्रोण कौरवों के लिए पाँच दिन तक घोर युद्ध करके धराशायी हुए। कौरव-दल में शोक के बादल उमड़ आये। सेना और सेनापतियों के आँसुओं की झड़ी लग गयी। पाण्डव भी आचार्य के निधन से रोये।

कौरव-शिविर में नियमानुसार सभा बैठी। सब लोग शोकाकुल थे ही, विलाप करने लगे। विश्वविख्यात आचार्य पिता के प्रयाण से अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ। वह फूट-फूटकर रोने लगे। दूसरे-दूसरे महारथी उन्हें धैर्य देने लगे।

दुर्योधन को यह विश्वास था ही कि कर्ण के सेनापतित्व में उसकी विजय होगी। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण पाण्डवों से स्नेह करते थे। समय समझकर, आचार्य के लिए शोक करने के पश्चात्, सभा के समागत वीरों को सम्बोधन करते हुए दुर्योधन ने कहा, "वीरो, अब हमें आगे के मोरचे की तरफ ध्यान देना चाहिए, आचार्य के निधन से पाण्डवों में बड़ा हर्ष छाया हुआ है। हमें इसका जवाब देना चाहिए। इसका जवाब अर्जुन का निधन है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य को हमारे मित्र अंगराज महारथ कर्ण पूरा कर सकते हैं। उनके समकक्ष योद्धा इस पृथ्वी-मण्डल में दूसरा नहीं। मेरा विचार है, अब कल से महाबल कर्ण कौरवों की

सेना का सेनापतित्व करें।"

शल्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि वीरों ने एक वाक्य से कर्ण का सेनापतित्व स्वीकार किया। तदनन्तर कर्ण को महाराज दुर्योधन ने सेनापति के पद पर बड़े समारोह से रोचना-तिलक लगाकर, माला पहनाकर, वरण किया।

कर्ण ने नियमानुसार प्रतिज्ञा की कि वे अपने मित्र परमोदर महाराज दुर्योधन के लिए पूरी शक्ति से पाण्डवों पर आक्रमण करेंगे। दुर्योधन प्रसन्न चित्त से अपने शिविर को आराम करने के लिए चला। दूसरे-दूसरे सभ्य महारथी भी उठे।

सुबह कर्ण के सिर सेनापतित्व का मुकुट बँधा। सारी सेना आनन्द से उत्फुल्ल हो उठी। सूर्य की किरणें कर्ण के मुकुट पर पड़ीं। मुकुट चमक उठा।

शंख बजाकर कर्ण ने सेना-निवेश शुरू किया। अपनी सेना का उन्होंने मकर-व्यूह बनाया। व्यूह के मुँह के पास कर्ण खुद रहे। आँखों की जगह शकुनि और उलूक। सिर पर महारथ अश्वत्थामा। कमर की रक्षा का भार दुर्योधन और उनके भाइयों पर। नारायणी सेना लेकर एक तरफ कृतवर्मा, दूसरी तरफ मद्रराज शल्य और त्रिगर्तराज। कृपाचार्य बीच में। इस तरह व्यूह की रक्षा करते हुए वे बढ़े।

कर्ण का अपूर्व व्यूह देखकर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, "भाई, कर्ण बड़ा पराक्रमी योद्धा है। कर्ण से बड़े-बड़े नहीं विजय पा सकते। बहुत सँभलकर युद्ध करना। हमारे कष्टों का मूल भी कर्ण है। कर्ण का निपात बहुत आवश्यक है।"

इसी समय संसप्तकों ने अर्जुन को आकर ललकारा। अर्जुन भीम और नकुल पर धर्मराज की रक्षा का भार सौंपकर, सावधान कर संसप्तकों के पीछे लगे। कर्ण पूरी शक्ति से बढ़ते हुए पाण्डवों के सामने आ गये।

नकुल कर्ण के सामने आये, और अस्त्रों के प्रहार से उनकी गति रोकी। कर्ण के तीर भादों की झड़ी की तरह चलने लगे, और बात-की-बात में नकुल बाणों से घिर गये। इसी समय एक तीर ऐसा आया कि नकुल का सारथि घायल हो गया, फिर धनुष के भी दो टूक हो गये। इस बीच कर्ण रथ बढ़ाकर नकुल के पास आ गये, और रथ पर बढ़कर खड़े होकर धनुष का डण्डा नकुल के गले में डाल दिया। चाहते, तो नकुल का वध कर सकते थे, परन्तु माता कुन्ती की प्रार्थना याद कर फिर बोले नहीं। कोई कौरव देख न ले, इस विचार से चुपचाप रथ पर बैठकर दूसरी ओर बढ़े।

महावीर कर्ण की मारों से पाण्डव-सेना के पैर उखड़ गये। सेना इधर-उधर भागने लगी। भीमसेन पराक्रम से लोहा ले रहे थे, पर कर्ण की चोटों के सामने किसी की न चलती थी।

अर्जुन को संसप्तकों से लड़ते देर हुई देखकर कृष्ण ने कहा, "पार्थ, अभी तक तुम इन्हें परास्त नहीं कर सके। कर्ण का सामना कब करोगे? तुम्हारे सिवा पाण्डवों में कर्ण का मुकाबला करे, ऐसा कोई नहीं। भीमसेन का सिंहनाद नहीं सुन पड़ रहा। जरूर पाण्डव विपत्ति में हैं। धर्मराज का न जाने क्या हाल है!"

कृष्ण की बात से अर्जुन जोश में आये, और संसप्तकों पर अव्यर्थ सन्धान करने लगे। क्रुद्ध अर्जुन की चोटों से आँधी के आमों की तरह संसप्तकों की सेना धराशायी

होने लगी। देखते-देखते पृथ्वी रुण्ड-मुण्डों से पट गयी। महावीर अर्जुन साक्षात् इन्द्र की तरह संसप्तकों से लड़ रहे थे। कुछ ही देर में बचे हुए संसप्तक जान लेकर भाग गये। कृष्ण ने पाण्डव-सेना की ओर रथ बढ़ाया।

रास्ते में दुर्योधन ने रथ की गति रोकी। उनके कई सहायक थे। सबने घेर-कर एकसाथ अर्जुन पर बाण-वर्षा शुरू कर दी। पर अर्जुन उस समय प्रलय के सूर्य के समान तप रहे थे। उन्होंने एकसाथ दुर्योधन और उनके सहायकों का सामना किया, और क्षण-भर में दुर्योधन को विरथ और बाणों से विद्ध करके युद्ध में पराङ्-मुख कर दिया। सहायक दुर्योधन को लेकर भग गये।

अब सन्ध्या हो गयी थी। इसलिए आज का युद्ध स्थगित हुआ। दोनों ओर के सेनापति अपनी-अपनी सेना शिविर के लिए फेरने लगे।

शल्य का सारथ्य

पिछले दिनों की तरह कौरवों के शिविर में सभा बैठी। कर्ण के युद्ध से दुर्योधन को बहुत प्रसन्नता थी। उन्होंने अपनी आँखों देखा था, कर्ण पाण्डवों की सेना का अबाध गति से संहार कर रहे हैं। उन्हें विश्वास था, कर्ण द्वारा पाण्डवों पर उनकी विजय होगी। उन्होंने गर्व के साथ अपने मित्र की प्रशंसा की। कर्ण ने कहा, "महाराज, मैं यथाशक्ति आपके लिए युद्ध कर रहा हूँ। परन्तु कई असुविधाएँ हैं। अर्जुन के पास युद्ध के सभी अच्छे उपकरण हैं। उनका रथ पहाड़-सा बड़ा है, उसमें अस्त्र-शस्त्र बहुत अँटते हैं। अर्जुन के घोड़े बहुत तेज हैं, सारथि भी कृष्ण। उनका गाण्डीव धनुष संसार में अद्वितीय है। उनका तूणीर अक्षय है। उनके अस्त्र दिव्य हैं हीं। ऐसी अनेक सुविधाएँ अर्जुन को प्राप्त हैं। हमारे पास इनका एक अंग भी पूरा नहीं। फिर भी हमें एक अच्छे सारथि की आवश्यकता है। सुना है, महाराज शल्य इस विद्या में भी सिद्धहस्त हैं। यदि आप उन्हें मेरा रथ चलाने की आज्ञा करें, तो युद्ध में आशानुरूप फल हो सकता है।"

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए, और मद्रराज से कहा, "मामा, हमारे संकट के समय आय सहायता दीजिए। आप कर्ण का सारथ्य स्वीकार कीजिए।"

शल्य ने कहा, "वत्स दुर्योधन, हमें तुम गधे पर चढ़ाओगे, तो तुम्हारे लिये हम गधे पर चढ़ने को भी तैयार हैं। लेकिन एक बात है, उसे मेरा दोष ही समझो। मेरी जबान मेरे वश में नहीं रहती। महारथ कर्ण मेरी बात से नाराज होकर कहीं आत्महत्या न कर बैठें, यही मुझे भय है।"

सभा हँसने लगी। दुर्योधन और कर्ण झेंपे। शल्य एकटक कर्ण को देखते रहे। सँभलकर दुर्योधन ने कहा, "कहने के लिए आप जो चाहें, कह सकते हैं, आप मामा हैं, अंगराज कर्ण यह जानते हैं।"

शल्य ने कर्ण का सारथ्य स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल महारथी कर्ण के रथ पर सारथि शल्य को देखकर कौरव हर्ष से 'जय-जयकार' करने लगे। कर्ण ने कहा, "शल्य, आज तुम मेरा समर देखोगे।" शल्य ने कहा, "अभी ही देख रहा हूँ, जबकि रथ दक्षिण ओर जा रहा है।" कर्ण ने कहा, "जब आ पड़ती है, तब

शुभ और अशुभ रखा रह जाता है। शल्य, आज निश्चित रूप से हमारी विजय होगी।" शल्य ने उत्तर दिया, "हंस और कौएवाली होगी।" यह कथा कर्ण की सुनी न थी। उन्होंने पूछा, "हंस और कौएवाली क्या?" शल्य ने कहा, "हंस समुद्र के पार उड़कर मोती चुगने जाते थे। चुगकर, फिर उड़कर इस पार लौट आते थे। इस पार हंसों के घोंसले के पास एक डाल पर एक कौआ रहता था। उसने हंसों से पूछा, 'भाई, तुम लोग कहाँ जाते हो?' हंसों ने कहा, 'हम सागर के उस पार जाते हैं, वहाँ मोती चुगते हैं, फिर लौटे आते हैं।' कौए ने कहा, 'आज हमें भी ले चलो।' हंसों ने कहा, 'तुम उड़ न पाओगे, बहुत दूर जाना है।' कौए ने कहा, 'हः, मैं सबको उड़ा ले चलूँगा।' एक हंस ने कहा, 'चलो, अपना क्या बिगड़ता है!' अस्तु, कौआ साथ उड़ा। एक पहर उड़ने के बाद वह थका। पंख ढीले पड़े, तो पुकारकर कहा, 'भाइयो, बचाओ, नहीं तो गिरकर डूबता हूँ।' हंसों ने कहा, 'पहले तुम्हें मना किया था, तब नहीं माने; यहाँ बैठकर आराम करने को वृक्ष-लता थोड़े ही हैं!' एक हंस ने कहा, 'डूबने दो।' दूसरे ने कहा, 'नहीं, बचाओ इसे; आज की चुगाई न सही।' सब हंस इकट्ठे हुए, और एक-एक करके कुल हंस कौए को पीठ पर चढ़ाये उड़ते हुए इस पार आने लगे। बहुत मुश्किल से पार आये, लेकिन कौए की जान बचा ली। उस दिन फिर समुद्र-पार जाना नहीं हुआ। कौए को डाल पर बैठाकर उस दिन सब वैसे ही रह गये।"

कथा सुनकर कर्ण को क्रोध आया, पर शल्य पहले ही कह चुके थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। सामने पाण्डवों की सेना खड़ी ललकार रही थी।

कर्ण ने कहा, "शल्य, आज तुम सही-सही युद्ध देखोगे। पाण्डवों की इतनी विशाल सेना मैं बात-की-बात में बिडार दूंगा। आज अर्जुन के बड़े भाग्य होंगे, तभी वह बचेंगे। तुम देखोगे, मैं जो कुछ कहता हूँ, करता हूँ।"

शल्य ने कहा, "आज तक देखता रहा, पहले सुन चुका हूँ, तुम जितना कहते हो, मुश्किल से उसका दसवाँ हिस्सा कर पाते हो। कर्ण, इन प्यादों को तुम भले ही मार लो, पर अर्जुन का मुकाबला होने पर तुम जरूर मुझसे रथ भगा ले चलने के लिए कहोगे। अपने सिर पर तो कलंक का टीका लगाओगे ही, मुझे भी बदनाम करोगे।"

इसी समय पाण्डव-पक्ष के अर्जुन सामने आये। युधिष्ठिर ने उन्हें देखकर सरल स्नेह-स्वर से कहा, "भाई, कर्ण ने आज बड़े विकट व्यूह की योजना की है। कर्ण को देखकर मुझे न जाने क्यों भय होता है, बहुत जल्द तुम कर्ण का विनाश करो।"

धर्मराज को प्रणाम कर अर्जुन आगे बढ़े। नन्दिघोष-रथ को बढ़ता हुआ देखकर शल्य ने कर्ण से कहा, "देखो, कर्ण, महारथ अर्जुन तुम्हारे सामने आ रहे हैं।"

कर्ण ने कहा, "शल्य, मैं तैयार हूँ। लेकिन वह देखो, हमारी सेना का व्यूह भेदकर अर्जुन का रथ निकल नहीं पा रहा है।" कहकर कर्ण हँसे, बोले, "अब पहर-भर की छुट्टी है। अर्जुन को मालूम हो गया होगा कि व्यूह इस तरह बनाया जाता है। मैंने अर्जुन की गतिविधि देखकर ऐसी जगह संसप्तकों को रखा है कि

अर्जुन समझेंगे।"

कहते-कहते कर्ण की दृष्टि दूसरी तरफ गयी। महावीर भीमसेन आज अग्रणी थे। उनकी चोटों से कौरवों की सेना विकल थी। कितने ही शूर और सामन्त प्राण दे चुके थे। कर्ण ने शल्य से भीम का सामना करने के लिए कहा। शल्य वायु-वेग से रथ भीम के पास ले गये। कर्ण ने ललकारकर कहा, "क्या छिप-छिपकर सेना का संहार कर रहे हो! आज तुम्हें युद्ध-कौशल सिखाता हूँ।" कहकर भीम पर कई तेज तीर मारे। भीम ने शीघ्रता से कर्ण के तीर काट दिये, और एक बाण धनुष पर चढ़ाकर, कानों तक धनुष खींचकर कर्ण पर छोड़ा। भीम का आज का लक्ष्य अव्यर्थ था, और पौरुष अपराजेय। तीर पहाड़ को फोड़नेवाला था। कर्ण ने काटने की भरसक कोशिश की, लेकिन कुछ फल न हुआ। तीर कवच भेदकर पूरी तरह चुभ गया, जिससे कर्ण को मूर्च्छा आ गयी। कर्ण को वेहोश देखकर शल्य रथ भगा ले गये।

दुःशासन-वध

भीम अबाध गति से कौरवों की सेना का संहार करने लगे। आज भीम की गति का रोध करे, ऐसा कौरवों में कोई न था। जैसे लहलहाते हुए पुष्प और पत्रों के हरे वन को एक छोर से दूसरे छोर तक दावाग्नि जलाती हुई चली जाती है, वैसे ही भीमसेन कौरवों का संहार कर रहे थे। भीषण वर्षा का जल जिस तरह रोका नहीं जाता, तमाम भूमि को डुबाता हुआ बेरोक-टोक बहता जाता है, उसी तरह भीम की शक्ति का मुकाबला कोई कर नहीं सका। दुर्योधन को सेना की रक्षा के लिए बड़ी चिन्ता हुई। पास ही दुःशासन को खड़ा देखकर उन्होंने कहा, "भाई, भीम आज अमित विक्रम से सेना का संहार कर रहा है। तुम भीम की गति रोको, और उसका प्राणान्त कर मुझे सन्तोष दो।"

दुर्योधन की आज्ञा शिरोधार्य कर दुःशासन भीम के सामने आये, और ललकारकर बोले, "भीम, कायर की तरह क्या सेना का नाश कर रहे हो? आज, आओ, हमारा-तुम्हारा फैसला हो जाय।" यह कहकर दुःशासन गदा लेकर, मैदान में कूदकर आ गये।

उन्हें देखकर भीम ने भी गदा सँभाली और हँसकर कहा, "अन्ध पिता के अन्ध पुत्र, तुम्हारी खोज में मैं बहुत दिनों से था। बराबर तुम अपने रक्षकों से बचते रहे। आज तुम्हारा अन्तिम समय आ गया है। तैयार हो जाओ।"

दोनों मतवाले हाथी की तरह भिड़ गये। दुःशासन और भीम का गदा-युद्ध देखने लायक हुआ। तमाम सेना दोनों वीरों के दाँव-पेंच देखने लगी। दुःशासन फुर्त थे। कई वार भीम पर किये, परन्तु महाबली भीम ने उनके कुल वार रोके। मण्डलाकार घूमते, वार करते, बचाते, झेलते काफी देर हो गयी। दोनों एक-दूसरे के प्राण लेने पर तुले थे। दोनों कुछ-कुछ थक आये। इसी समय भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। वह पूरी शक्ति से दुःशासन पर प्रहार करने लगे। दुःशासन थक गये थे। प्रहार झेलते-झेलते बेदम हो गये। इसी समय भीम ने उनके सिर पर गदा मारी। दुःशासन ने वार बचाया, पर हाथ ढीले पड़ गये, वार नहीं झिला,

सिर पर चोट आयी, वह वहीं बेहोश होकर गिर गये। उनके गिरते ही कौरवों में हाहाकार मच गया। भीम गिरे हुए दुःशासन के पास पहुँचे, और उनकी छाती फाड़कर उनका खून पीने लगे। भीम का यह कृत्य और भयंकर मूर्ति देखकर, कौरवों की सेना डरकर भागने लगी। भीम का रूप उस समय राक्षस-जैसा डरावना हो रहा था। दुःशासन का रुधिर पान कर, भीम मत्त होकर विचरण करने लगे। उनके सामने से सेना भय खाकर भागने लगी।

युधिष्ठिर का भागना

इसी समय कर्ण की मूर्च्छा टूटी। उन्हें मालूम हुआ कि भीम ने दुःशासन का वध किया। सुनकर बड़ा क्रोध हुआ। अभी तक सन्ध्या नहीं हुई थी। वह रथ पर बैठकर फिर मैदान में आये। उन्हें देखकर कौरवों की जान में जान आयी। अपने सेनापति के साथ वे पाण्डवों पर टूटे। अर्जुन अभी तक संसप्तकों से निपट नहीं सके थे। उनका पूरा-पूरा विनाश करने पर तुले थे कि कर्ण ने रथ बढ़वाकर युधिष्ठिर को आ घेरा। नकुल कुछ देर लड़े, पर कर्ण ने उन्हें बात-की-बात में घायल कर दिया; फिर युधिष्ठिर से लड़ने लगे। कर्ण के मुकाबले के लिए पाण्डवों में अर्जुन के सिवा दूसरा वीर न था। युधिष्ठिर कुछ देर तो लड़े, पर बाद को विवश हो गये। कर्ण की तेज चोटों से उनका शरीर जर्जर हो गया। सारथि पकड़े जाने के भय से उनका रथ भगा ले गया। कर्ण अप्रतिभ वेग से पाण्डवों की सेना का संहार कर रहे थे।

अर्जुन अब तक संसप्तकों से लड़ रहे थे। उनका संहार कर वह अपनी सेना को देखने के लिए बढ़े। उन्हें यह भी याद आया कि कहीं धर्मराज पकड़ न लिये गये हों। सेना में आने पर उन्हें मालूम हुआ, कर्ण ने युद्ध में युधिष्ठिर का बडा अपमान किया है, उन्हें तीरों से जर्जर कर दिया है, अब तक वह पकड़ भी लिये गये होते, लेकिन सारथि रथ भगाकर उन्हें शिविर में ले गया है। यह खबर मिलने पर अर्जुन को धैर्य हुआ। उन्होंने कृष्ण से कहा, "सखा, पहले मैं धर्मराज को देखना चाहता हूँ। उनकी हालत समझकर कर्ण से समर करूँगा।" कृष्ण शिविर की ओर रथ ले गये।

नन्दिघोष-रथ पाण्डव-शिविर की ओर बढ़ा। महाराज युधिष्ठिर बिस्तर पर पड़े कराह रहे थे। कर्ण के प्रहारों से अंग-अंग जर्जर हो गया था। कृष्ण और अर्जुन सशंकित-से शिविर के भीतर गये। देखा, राजवैद्य बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिर की मरहम-पट्टी कर रहे हैं, युधिष्ठिर पीड़ा से छटपटा रहे हैं।

कृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। इन्हें देखकर दर्द से भरे, रुँधे कण्ठ से युधिष्ठिर ने पूछा, "कृष्ण, अर्जुन, तुम लोग सकुशल तो लौटे? हमें बड़ा हर्ष है कि बिना एक तीर चुभे, तुमने कर्ण का संहार किया। सेना विपत्ति से बच गयी। कर्ण बड़ा निर्दय और क्रूर था। वह सदा कौरवों के आगे रहता था, और पाण्डवों की सेना का विनाश करता था। हमारी जो दुर्दशा भीष्म, द्रोण, कृप और अश्वत्थामा से नहीं हुई, वह आज कर्ण ने की। हम केवल मृत्यु के घर से लौटे हैं। यहाँ भागकर, प्राण बचाकर आये हैं।"

युधिष्ठिर की बातें अर्जुन को बहुत ही अपमानजनक मालूम दीं। उन्होंने म्यान से तलवार खींच ली। देखकर, घबराकर कृष्ण ने अर्जुन का हाथ पकड़ लिया, कहा, "पार्थ, यह बहुत बड़ा अनर्थ है, तुम्हारी विचारशक्ति जाती रही, यह बड़े दुःख की बात है। तुम धर्मराज पर हाथ उठा रहे हो, इस तरह तुम्हारी पुण्य-शक्ति क्षीण हो जायगी, फिर शत्रु पर तुम विजय न प्राप्त कर सकोगे।"

"माधव," अर्जुन ने कहा, "हम क्षत्रिय हैं, हमारे अस्त्र को धिक्कार देने पर हम नहीं बरदाश्त कर सकते। हमारा कसूर कुछ होता, तो कोई बात न थी। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है, यहाँ आने का मतलब केवल धर्मराज को देखना था। इस हित में धर्मराज का यह अहित-वचन किस तरह सह्य हो?"

"भाई," कृष्ण ने कहा, "धर्मराज की भर्त्सना में भी स्नेह था। तुमने ख्याल नहीं किया। उन्हें कर्ण से युद्ध करते सख्त चोट पहुँची है। इसीलिए ऐसी बातें तुम्हें कहीं। तुम्हारे-जैसे वीर भाई के रहते उनकी यह दशा हो, उन्हें दुःख पहुँचे, यह उन्हें वांछनीय नहीं, और यह किसी प्रकार की भर्त्सना नहीं, बल्कि अकृत्रिम स्नेह है।"

अर्जुन को बिगड़ा हुआ देखकर युधिष्ठिर ने कहा, "मैं कायर हूँ, जो समर-क्षेत्र से भाग आया। मैं हतभाग्य हूँ, जो मेरे कारण मेरे परिवार को दुःख पहुँचा। मैं अधार्मिक हूँ, क्योंकि मेरे ही कारण मेरे कुल-कुटुम्बियों का नाश हुआ। अर्जुन, तुम वीर हो, पुरुषार्थी हो, तुम्हारा सभी साथ देते हैं। मैंने बड़ा बुरा कर्म किया, जो तुम्हें मन्द वचन कहा। तुम मुझे क्षमा करो।"

बड़े भाई की यह दीनता देखकर, उनके विनीत शब्द सुनकर अर्जुन वहीं गड़ गये। दुःखी होकर बोले, "महाराज, मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। मुझे क्षमा करें। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, आपको दुःसह कष्ट पहुँचानेवाले कर्ण का आज संहार किये बिना आपको मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

यह कहकर क्षमाशील युधिष्ठिर की पद-धूलि सिर पर धारण कर अर्जुन वहाँ से बिदा हुए।

कर्ण-वध

घनघोर लड़ाई हो रही थी, फिर भी समय था। दुःशासन के वध की अर्जुन को खबर मिली। वह उग्ररूप से लड़ते हुए भीम से मिले। उनके चरण छुए। अब आज सीधे कर्ण का सामना था। दोनों सेनाएँ पूरे उत्साह से, अपनी-अपनी विजय की आशा से, अपने-अपने मुकाबले के योद्धा से, भिड़ी थीं। कर्ण और अर्जुन भी निश्चिन्त होकर एक-दूसरे के सामने आये। युद्ध का श्रीगणेश होते ही, कुछ क्षण बाद, कर्ण ने अर्जुन के गाण्डीव का गुण काट दिया। गुण के कटते ही तीर-निक्षेप असम्भव हो गया। साथ ही, कर्ण में जो एक गुण और था—वह अविराम शर-वर्षा कर सकते थे—उसकी सार्थकता हो गयी। जब तक अर्जुन दूसरा गुण चढ़ाते रहे, कर्ण ने शरों से उन्हें जर्जर कर दिया। पाण्डव-दल के दूसरे योद्धाओं ने कर्ण के चलाये तीर काटने की कोशिशें कीं, पर वे व्यर्थ गयीं। कृष्ण और अर्जुन दोनों बुरी तरह घायल हुए। उनके बदन से खून के फौवारे छूटने लगे। देखकर कौरवों

को बड़ा हर्ष हुआ। सेना कर्ण का बार-बार जयनाद करने लगी।

धैर्य से अर्जुन ने गुण चढ़ा लिया, और उलटे कर्ण की दशा शोचनीय कर दी। तीरों से पृथ्वी-अन्तरिक्ष और कर्ण के रथ के सभी पार्श्व छा दिये। कर्ण का धनुष टूटा, और कई चोटें लगीं। शल्य भी जर्जर हो गये। अर्जुन और कर्ण का अद्भुत युद्ध दोनों सेनाएँ खड़ी एक निगाह से देख रही थीं। पाण्डव-सेना पूरे उत्साह से अर्जुन की जय-ध्वनि करने लगी।

कर्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने तत्काल दूसरा धनुष लेकर आग्नेय अस्त्र छोड़ा। अस्त्र की आग से अर्जुन के तमाम शर जलकर बेकार हो गये। आग पाण्डव सेना की ओर बढ़ने लगी। देखकर अर्जुन ने वरुण-अस्त्र छोड़ा, शर के छुटने के साथ आकाश में बादल घुमड़ने लगे, और वर्षा होने लगी। कर्ण ने वायव्य अस्त्र छोड़ा, जिससे तमाम बादल हवा से कट-छँट गये, और आसमान बिलकुल साफ हो गया। अर्जुन ने आँधी उठी हुई देखकर नागास्त्र छोड़ा। देखते-देखते आकाश में लाखों नाग लहराने लगे और साँसों में कुल हवा भर ली। नागास्त्र से कौरव-दल को विचलित हुआ देखकर कर्ण ने गरुड़ास्त्र छोड़ा। अस्त्र आकाश में छुटते ही, उससे हजारों-लाखों गरुड़ पैदा हो गये, और कुछ क्षण में साँपों को पकड़-पकड़कर खा गये। कर्ण के इस अस्त्र की काट नारायणास्त्र अर्जुन के पास था, लेकिन यह अस्त्र मनुष्य-युद्ध में वर्जित था, इसलिए अर्जुन सिर झुकाकर, गरुड़ास्त्र का प्रभाव रहने तक चुप रहे। इससे पाण्डवों की कुछ सेना का नाश हुआ। कौरव कर्ण की जय बोलने लगे।

अर्जुन धैर्य के साथ साधारण अस्त्रों से लड़ते रहे। वह चाहते, तो दिव्य अस्त्र छोड़कर उसी समय कर्ण के साथ कौरव-सेना को भस्म कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वह मानवीय युद्ध से ही कर्ण को जीतना चाहते थे। पल-पल में अर्जुन के तीर निशाने पर अव्यर्थ बैठने लगे। देखते-देखते अर्जुन का हाथ तेज से और तेज हो गया। फिर दायें-बायें दोनों हाथों से, एक-एक के थकने पर, अर्जुन तीर चलाने लगे, और कर्ण को घायल कर दिया। कौरवों की सेना का भी नाश किया। देखनेवाले अनिमेष दृष्टि से अर्जुन की वह क्षिप्रता देखते रहे। कर्ण को मदद करनेवाली सेना का प्रायः नाश हो गया। देखकर कर्ण विचलित हो गये। अधीर होकर उन्होंने अर्जुन पर छोड़ने के लिए दिव्य शक्ति निकाली।

शर को देखते ही शल्य डरे, कहा, "कर्ण, इससे अर्जुन का नाश न होगा, कोई और अच्छा तीर निकालो।"

कर्ण ने कहा, "पहला तीर हाथ में रहते कर्ण दूसरा तीर नहीं चलाता।" कहकर तीर छोड़ दिया।

बाण के छुटते ही कृष्ण समझ गये। उन्होंने घोड़ों को घुटनों के बल बैठा दिया। इस तरह अर्जुन का सिर झुक गया। तीर अर्जुन के गले में न लगकर इन्द्र के दिये किरीट पर लगा, जिससे किरीट कट गया। अर्जुन बच गये।

उत्तरोत्तर कर्ण और अर्जुन युद्ध में प्रबल पड़ते गये। अब तक सैकड़ों उपाय दोनों ने एक-दूसरे को मारने के किये, पर कोई सफल नहीं हुआ। कर्ण और अर्जुन का यह युद्ध देखकर देवता भी दंग रह गये। तीरों की ऐसी लड़ाई अब तक किसी

ने नहीं देखी थी। अर्जुन अब तक पहले की तरह धीर, अविचल थे। यद्यपि वह शर-चालन में बड़ी ही फुर्ती से काम ले रहे थे, फिर भी उनमें थकान या चंचलता न आयी थी। कर्ण अधीर हो गये थे। उनकी अधीरता बढ़ रही थी, ज्यों-ज्यों अर्जुन के हाथ तेज हो रहे थे। इस समय कर्ण परशुराम की सिखलायी शस्त्र-विद्या एक तरह भूल से रहे थे। ज्यों-ज्यों दाँव-पेंच याद नहीं आ रहे थे, चिढ़ बढ़ रही थी।

इसी समय एक दुर्घटना हुई। कीच में कर्ण के रथ का पहिया धँस गया। रथ की गति अचल हुई देख कर्ण बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने पुकारकर कहा, "हे अर्जुन, धर्म-युद्ध के अनुसार तुम्हें इस समय कुछ देर के लिए रुक जाना चाहिए, मेरे रथ का पहिया कीच में धँस गया है, उसे निकाल लूँ। कुछ देर दया करो।"

अर्जुन ने कहा, "कर्ण, धर्म-युद्ध का ज्ञान तुम्हें तब नहीं हुआ, जब अभिमन्यु अकेला सात रथियों से लड़ रहा था। सूतपुत्र, अब जब अपने सिर आ पड़ी, तब धर्म का ज्ञान हुआ है? विराट के यहाँ जब गोधन चुराकर चले थे, तब, जिन गौवों के खुरों में रोग था, वे गौएँ बैठ-बैठ जाती थीं, उन्हें कितने धर्म-ज्ञान से तुम पीट-पीटकर उठाते और भगाते थे? तुम्हें सम्मुख समर में शत्रु से दया की भीख माँगते, धर्म का ज्ञान देते लज्जा नहीं लगती?"

कर्ण समझ गये कि प्रार्थना व्यर्थ है। वह रथ से कूद पड़े, और एक तीर ऐसा मारा कि वह अर्जुन का वर्म भेदकर छाती में चुभ गया। अर्जुन कुछ देर के लिए संज्ञाहीन-से हो गये। इसी अवसर पर कर्ण पहिया निकालने लगे। पहिया निकालते हुए वे पैर से धनुष पकड़कर तीर चलाते जाते थे, और एक हाथ से पहिया निकाल रहे थे। पहिया इतना धँस गया था कि एक हाथ से निकल नहीं रहा था। अर्जुन को निष्क्रिय देखकर, समय समझकर, कर्ण दोनों हाथों से पहिया निकालने लगे। इसी समय अर्जुन प्रकृतिस्थ हुए। कर्ण को निश्शस्त्र देखकर उन्होंने उन पर तीर नहीं छोड़ा। देखकर कृष्ण ने कहा, "पार्थ, यही समय है, कर्ण का वध करो। यदि पहिया निकालकर वह रथ पर बैठ गये, तो महारथ कर्ण का तुम कदापि वध नहीं कर सकोगे।"

कृष्ण के कहने के साथ अर्जुन ने एक तीर कर्ण को मारा। तीर कर्ण के ऐसा लगा कि उनका सिर धड़ से विलग हो गया। कर्ण काम आ गये देखकर कौरव-सेना हाहाकार करने लगी। पाण्डवों के हर्ष का वारापार न रहा। भीमसेन यह अद्‌भुत युद्ध देख रहे थे। वह दौड़कर अर्जुन के रथ पर चढ़ गये, और बड़े स्नेह से उन्हें गले लगा लिया।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा, "महाराज, आज वीरवर कर्ण रथ का पहिया निकालते हुए, अर्जुन के तीर से काम आ गये। उनका तेज निकलकर सूर्य में समा गया।" धृतराष्ट्र महारथ कर्ण का वध हुआ सुनकर वहीं मूर्च्छित हो गये। दुर्योधन के शोक का अन्त न था। कर्ण ही उनके अन्तरंग मित्र थे।

सूर्य अस्त हो चुका था। लड़ाई बन्द हो गयी। दुर्योधन आज सब दिनों से अधिक चिन्तित हुए, धीरे-धीरे शिविर को लौटे।

सेनापति शल्य

महाभारत का सत्रह दिन का समर समाप्त हो गया। युद्ध-भूमि लाशों से पट गयी। कहीं हाथी कटे पड़े हैं, कहीं घोड़े; कहीं टूटे रथ, कहीं मरे हुए आदमी। कहीं सिर, कहीं धड़। तमाम युद्ध-भूमि एक महाश्मशान बन गयी है। राजे-महाराजे और साधारण सिपाही, सबकी एक दशा है। लाशें सड़ रही हैं, मारे दुर्गन्ध के रहा नहीं जाता। गीधों और स्यारों का जमघट लगा रहता है। युद्ध-भूमि इतनी भयंकर मालूम देती है कि उसकी तरफ देखने का साहस नहीं होता। कहीं से घायलों की चीत्कार आ रही है, कहीं से स्यारों की आवाज।

दुर्योधन कर्ण के वध के बाद हिम्मत हार गया। परन्तु लोभ नहीं छूटा, न राजमद गया। ग्यारह अक्षौहिणी सेना में बहुत थोड़ी बच रही थी। पाण्डवों की सेना कुछ अधिक थी। दुर्योधन के सभी भाई भीम द्वारा निहत हो चुके थे। रात्रि के समय मन्त्रणागार में दुर्योधन चिन्तित भाव से बैठा हुआ था।

कृपाचार्य ने कहा, "हमारे दल के सभी वीर एक-एक करके हत हो गये; महामति भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथ कर्ण और सैकड़ों रथी-महारथी राजकुमार वीर युद्धायुद्ध में प्राण छोड़कर स्वर्ग सिधार गये हैं। जान पड़ता है, विजय-लक्ष्मी पाण्डवों से प्रसन्न हैं। उनके वीर अर्जुन, भीम, सात्यकि अभी तक बचे हुए हैं। मेरी राय से अब युद्ध न करके सन्धि कर लेना श्रेयस्कर होगा।"

कृपाचार्य की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा, "आचार्य कृप, आप उचित कहते हैं। परन्तु पाण्डव अब जीते हुए हैं। वे सन्धि क्यों करेंगे? यदि उनका पक्ष हारा हुआ होता, तो यह बात सम्भव थी। दूसरे, मैं राजा होकर इस समय सिर झुकाऊँगा, तो लोग हँसेंगे, जिन्दगी-भर मेरे सिर यह अवज्ञा चढ़ी रहेगी। प्रजाजनों के आगे दृष्टि नीची हो, इससे मृत्यु अच्छी है। मैं अब सिर नहीं झुका सकता। फिर अभी हमारे पक्ष में बिलकुल अँधेरा नहीं हुआ। आशा की किरण अभी है। अभी मामा शल्य हैं, आप हैं, दोनों पक्षों को एक क्षण में जीत लेने की शक्ति रखनेवाले महारथ अश्वत्थामा भी हैं। युद्ध जारी रखना चाहिए। मैं समझता हूँ, अब हमारे पक्ष का सेनापतित्व शल्य मामा को दिया जाय। वह निश्चय पाण्डवों को परास्त कर कौरवों का मुख उज्ज्वल करेंगे।"

राजा की बात से सभासद् वाह-वाह करने लगे। उत्साह के समय कोई भी निरुत्साह नहीं हुआ। देखकर दुर्योधन को बड़ा हर्ष हुआ। शल्य सिर झुकाये बैठे रहे। अश्वत्थामा ने कहा, "हमारे महाराज ने सेनापतित्व के लिए योग्य आदमी चुना है। मद्रराज शल्य सब तरह समर्थ हैं। वह जैसे दक्ष रथी हैं, वैसे ही सारथि। धनुर्वेद में उनकी जैसी गति है, गदा-युद्ध, असि-युद्ध और मल्ल-युद्ध में भी वह वैसे ही निपुण हैं। उनके सेनापतित्व में हम लोग युद्ध करने के लिए तैयार हैं। हमें विजय की पूरी-पूरी आशा है।"

अश्वत्थामा की बात से प्रसन्न होकर दुर्योधन ने शल्य से कहा, "हे मद्रराज, अब हमारे आशा-भरोसा आप ही हैं। आपने युद्ध में जैसे विक्रम का परिचय दिया है, वह अलौकिक है। आप हमारे परम मित्र हैं। नकुल-सहदेव के सगे मामा होकर भी आप निमन्त्रण पाकर, हमारे पक्ष से लड़े, और युद्ध में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। आप-सा हमारा निकटतम मित्र दूसरा नहीं। आपका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपने जैसे अब तक हम पर कृपा की है, वैसे ही, अब सेनापति-पद ग्रहण कर युद्ध में हमारा और हमारी सेना का त्राण कीजिए, विजय-लक्ष्मी आपका वरण करें।"

शल्य ने कहा, "हे कुरुराज, आपकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करता हूँ। शुरू से अब तक आप हमारा एकरस सत्कार करते आये हैं। मैं भी आपको दूसरी सृष्टि से नहीं देखता। क्षत्रिय की दृष्टि में क्षत्रित्व का ही आदर-सम्मान है; मैं इसलिए आपके पक्ष में सम्मिलित हुआ। और अन्त तक आपके पक्ष में रहूँगा। आपकी विजय के लिए अपनी पूरी शक्ति से पाण्डवों के विपक्ष में युद्ध करूँगा।"

शल्य की बातों से सभा में उत्साह छा गया। समवेत वीर उनकी जय बोलने लगे। दुर्योधन ने अपने आदमियों को आज्ञा दी, उन्होंने यथाविधि शल्य का अभि-षेक किया। वीरों ने उन्हें अभिषिक्त देखकर हर्षसूचक ध्वनि की। दुर्योधन के आनन्द का ठिकाना न रहा। फिर एक बार पाण्डवों पर होती हुई विजय की आशा बँध गयी।

शल्य-वध

प्रातःकाल पहले के अनुसार दोनों दलों की सेनाएँ मैदान में आयीं। शल्य सेनापति के रूप से सजे हुए सेना के सामने दिखायी पड़े। उन्होंने कौरवों की सेना का सर्वतोभद्र व्यूह तैयार किया, और व्यूह के द्वार पर मद्रराज्य की अपनी सेना लेकर रहे। महाराज दुर्योधन व्यूह के मध्य भाग में, कौरव-सेना लेकर रहे। बायीं ओर संसप्तकों को लेकर कृतवर्मा रहे, दायीं ओर यवनसेना के साथ कृपाचार्य। अश्वत्थामा कम्बोज-सेना के साथ पृष्ठरक्षा करने लगे। शकुनि और उलूक सामने आक्रमण करने के लिए अश्वारोही सेना लेकर रहे।

शल्य की स्फूर्ति और धनुष-टंकार सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, "भाई, आज मामा शल्य सेनापति हैं। आज इनसे हम युद्ध करेंगे। तुम चिन्ता न करना। अब द्रोण और कर्ण का भय नहीं रहा। तुम इन बचे हुए संसप्तकों से लड़ो। भीम कृपाचार्य की सेना का मोर्चा लें। नकुल और सहदेव शकुनि और उलूक से लड़ें।"

धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार संग्राम छिड़ गया। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि युधिष्ठिर के सहायक हुए। शल्य पूरी शक्ति से पाण्डव की सेना का संहार कर रहे थे। देखकर युधिष्ठिर ने रथ बढ़ाया, और शल्य की गति का रोध किया। शल्य ने युधिष्ठिर को सामने आया देखकर रथ रोकवा दिया। दोनों योद्धा एक-दूसरे पर बाण-वर्षा करने लगे। युधिष्ठिर का युद्ध आज आश्चर्य में डालनेवाला था। पल-पल पर कितने ही तीर वह शल्य पर मारते थे। पर शल्य को एक भी चोट न लगी, बल्कि उन्होंने युधिष्ठिर के तीर काटकर उन्हें ही बाणों

से पाट दिया। कुछ तीर युधिष्ठिर के लगे भी। देह से खून के फौवारे छूटने लगे। पर युधिष्ठिर अविराम गति से युद्ध करते गये। इसी समय शल्य ने युधिष्ठिर का धनुष काट दिया। इससे युधिष्ठिर बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने दूसरा धनुष लिया, और एक साथ कई तीर इस प्रकार मारे कि शल्य का सारथि और घोड़े मर गये। शल्य को फँसा देखकर अश्वत्थामा आगे बढ़े, और तुरन्त शल्य को अपने रथ पर बैठा लिया। पाण्डवों को युधिष्ठिर की विजय पर बड़ा हर्ष हुआ। सेना जय बोलने लगी। शल्य से यह अपमान सहा न गया। वह दूसरे रथ पर चढ़कर उसी समय मैदान में आ गये, और बड़ी क्षिप्रता से युधिष्ठिर से लड़ने लगे। युधिष्ठिर की मदद के लिए इस समय पाण्डव, पांचाल और सोमक आ गये, और तीन तरफ से शल्य को घेर लिया। देखकर अन्य कौरवों को लेकर तुरन्त दुर्योधन वहाँ पहुँचे। घमासान युद्ध होने लगा। इसी समय शल्य ने एक तीर ऐसा मारा कि वह युधिष्ठिर के लगा, पर चोट गहरी न पहुँची। युधिष्ठिर क्रुद्ध हो गये। उन्होंने शल्य को एक बाण कान तक धनुष खींचकर मारा, जिसके लगते ही शल्य को मूर्च्छा आ गयी। इसी समय कृप ने एक तीर मारा, जिससे युधिष्ठिर का सारथि मर गया। शल्य की क्षणिक मूर्च्छा हटी, वह धनुष पर तीर चढ़ाने लगे। युधिष्ठिर को बिना सारथि का देखकर भीम ने ऐसा बाण मारा कि शल्य के धनुष के दो टूक हो गये। शल्य जब तक दूसरा धनुष लें, भीम ने उनके घोड़ों को मार डाला।

चारों ओर से शल्य पर आक्रमण हो रहे थे। देखकर शल्य घबरा गये। उन्हें कोई उपाय न सूझा। तब वह ढाल और तलवार लेकर युधिष्ठिर को मारने के लिए रथ से कूद पड़े। भीमसेन ने देखा कि क्षण-भर में शल्य धर्मराज के प्राण ले लेंगे। उन्होंने उसी क्षण एक ऐसा बाण मारा कि मूठ के पास से शल्य की तलवार के दो टूक हो गये। तलवार को व्यर्थ हुई देखकर भी शल्य हिम्मत नहीं हारे। वह बढ़ते हुए युधिष्ठिर के पास पहुँचे। पर युधिष्ठिर ने शल्य पर एक सुरक्षित शक्ति का वार किया। कोई बचाव न था। शक्ति शल्य के लगी। उनका सिर धड़ से जुदा हो गया।

पाण्डव-सेना जयनाद करने लगी। कौरवों में हाहाकार मच गया। सेनापति के काम आने पर कौरव-सेना भागने लगी। पाण्डव-सेना ने पीछा किया। सैनिकों के भागने और पीछा करने से मैदान में इतनी धूल उड़ी कि कुछ नजर न आता था। दुर्योधन अपनी सेना का पलायन देख नहीं सके। उन्होंने कहा, '"सारथि, हमारी सेना भाग रही है, इसलिए हमारा रथ मोर्चे पर ले चलो, हमें लड़ता हुआ देखकर हमारी सेना लौट आयेगी।" दुर्योधन को सामने गया देखकर बचे हुए ग्यारह भाई मदद के लिए गये। अर्जुन और भीम से लोहा लेना था। भीम दुर्योधन के भाइयों को देखकर क्रुद्ध काल की तरह युद्ध करने लगे। सेना को जब मालूम हुआ कि महाराज दुर्योधन अकेले युद्ध कर रहे हैं, वह लौट पड़ी, और अपने राजा की, प्राणों की बाजी लगाकर, सहायता करने लगी। भीमसेन के प्रहार बड़े विकट हो रहे थे। दुर्योधन के भाई उनसे आत्मरक्षा नहीं कर सके। एक-एक कर सब काम आ गये। अकेले दुर्योधन बच रहे। अब तक कौरवों की बहुत थोड़ी सेना रह गयी थी। प्रायः पाँच सौ घोड़े, दो सौ रथ, सौ हाथी और तीन हजार पैदल।

इसी समय सहदेव को अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। वह बाज की तरह शकुनि पर झपटे, लेकिन शकुनि के पुत्र उलूक ने सहदेव को रोका। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। सहदेव क्रुद्ध थे ही। उन्होंने एक ऐसा तीक्ष्ण तीर मारा कि उलूक का वर्म भेदकर हृदय में पूरे फलक के साथ चुभ गया। उलूक के प्राण निकल गये। शकुनि ने अपनी आँखों अपने प्यारे पुत्र के प्राण निकलते देखा, जिससे उसे बड़ा क्षोभ हुआ। स्वभाव के पतित-जन शोक के समय हृदय का बल बिलकुल खो देते हैं। शकुनि निस्तेज हो गया। उसे क्रोध भी हुआ, जो कमजोरी का दूसरा कारण है। वह काँपता हुआ सहदेव का सामना करने के लिए आगे आया। सहदेव ने कहा, "शकुनि, अब तक तुम बहुत बचे। तुम समझ लो कि अब तक बड़े-बड़े वीरों के सामने तुम्हें किसी ने पूछा नहीं। आज तुम्हारा काल सिर पर मँडरा रहा है। यह समर-क्षेत्र है, द्यूत-क्रीड़ा-स्थल नहीं। आज तुम्हारे सब दिनों के पाप निकलेंगे, नारकी!" कहकर सहदेव ने शकुनि पर वार करना शुरू किया। शकुनि को सहायता देनेवाली सेना बहुत थोड़ी थी। उसने देखा कि धनुर्वेद में सहदेव अधिक शिक्षित हैं, उनके सम्मुख कुछ देर ठहरना भी मुश्किल है। यह सोचकर वह तलवार लेकर मैदान में उतर पड़ा। सहदेव ने तीर मारकर उसकी तलवार काट दी। तब प्रास नामक अस्त्र उसने सहदेव पर चलाना चाहा। परन्तु सहदेव ने उसी वक्त अस्त्र-समेत उसके दोनों हाथ काट डाले। शकुनि बिलकुल निरुपाय हो गया। इधर-उधर देखा, कोई भी सहायता करनेवाला न था। उसने जिनके लिए अधर्म किया था, वे आज अन्तिम समय में कोई न थे। उसे विदुर का उपदेश याद आया, साथ ही भय से विभीषिका देखने लगा; इसी समय सहदेव का एक पैना तीर चमकता हुआ आया, और शकुनि के गले में लगा। शकुनि वहीं असहाय अवस्था में जूझ गया।

दुर्योधन-वध

शकुनि के मरने के बाद कौरवों में हाहाकार मच गया। जितनी सेना थी, प्रायः सब भीम और अर्जुन के हाथों मर चुकी थी। अश्वत्थामा और कृपाचार्य-जैसे गिने-गिनाये कुछ ही योद्धा बच रहे थे। दुर्योधन ने देखा, ग्यारह अक्षौहिणी सेना महायुद्ध में काम आ गयी। दुर्योधन को महामृत्यु से वैराग्य हुआ। वह अकेला गदा लेकर, मैदान छोड़कर पैदल एक तरफ निकल गये। कुछ दूर पर उनके बनवाये सरोवर में एक स्तम्भ था। उसके भीतर छिपने की जगह थी। वहीं जाकर वह छिप रहे। जिस समय वह सरोवर के किनारे जा रहे थे, कुछ इतर जन पाण्डवों के लिए गाँवों से मछली-मांस लेकर आ रहे थे। उन्होंने दुर्योधन को सरोवर में धँसते देखा।

दुर्योधन के चले जाने पर मैदान खाली हो गया। पाण्डवों ने देखा, दुर्योधन मरा नहीं। सोचा, कहीं गायब हो गया है। कृष्ण ने कहा, "बिना दुर्योधन का वध किये पूरी विजय नहीं कही जा सकेगी, फिर दुर्योधन बड़ा ही नीच है, उसके जीते राज्य निष्कण्टक न होगा। कोई-न-कोई उपद्रव फिर खड़ा करेगा, इसलिए हमें यह चाहिए कि उसकी खोज करके अभी उससे युद्ध और उसका वध किया

जाय।"

कृष्ण की बात सबको पसन्द आयी। पाँचों पाण्डव और बचे हुए सेनापति दुर्योधन की खोज करने लगे। इसी समय वे ग्रामीण-जन आते हुए देख पड़े। पूछने पर उन्होंने कहा, "आगे उस सरोवर में एक मुकुटधारी वीर को धँसते हुए हमने देखा है, वह गदा लिये हुए था।" सब लोग समझ गये कि वही दुर्योधन है। कृष्ण के साथ सब उस सरोवर की तरफ बढ़े। कुछ देर बाद वह सरोवर मिला। उसके बीच में एक स्तम्भ था। कृष्ण ने अनुमान किया कि इसके भीतर छिपने की जगह अवश्य होगी। किनारे पर देखा, तो एक आदमी के पैर के निशान बने थे। लेकिन उलटे निशान थे, जैसे कोई सरोवर में गया हो, निकला न हो!

पैर के चिह्न सबने देखे। युधिष्ठिर ने कहा, "यह दुर्योधन का ही पैर है, क्योंकि इस निशान में पद्म का चिह्न है, दुर्योधन के पैर में भी पद्म का चिह्न है।"

कृष्ण ने धीरे-से भीम से कहा, "भीम, तुम दुर्योधन को ललकारो, और व्यंग्य वचन कहो। दुर्योधन तीखे स्वभाव का व्यक्ति है, वह कटूक्ति सुनकर पानी के भीतर नहीं रह सकेगा, बाहर निकल आयगा। तब युद्ध में उसे परास्त करके उसका वध करना।"

भीम सरोवर के किनारे से दुर्योधन को ललकारने लगे, "रे अन्ध-पुत्र, तू अक्ल का भी दुश्मन था। पहले तुझे नहीं सूझा कि तू पाण्डवों से युद्ध नहीं कर सकता। पहले तूने सन्धि भी नहीं की। देश के वीरों को कटाकर भाइयों की जान लेकर, अब खम्भे के भीतर जाकर छिपा है! धिक्कार, नराधम! ज़रा भी तुझे क्षत्रियत्व का गर्व हो, तो निकल आ बाहर। लेकिन तू क्या निकलेगा? जान लेकर भागनेवाले कायर! तूने सिद्ध कर दिया कि अस्ल में तू कैसा था!"

भीम कटूक्ति कह ही रहे थे कि दुर्योधन पानी से बाहर निकल आया। इसी समय उसके गुरु बलराम तीर्थ-यात्रा करते हुए उधर से जा रहे थे। कृष्ण से मिलने के उद्देश्य से वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर दुर्योधन ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। बलराम दुर्योधन के गदा-युद्ध के गुरु थे; महाभारत-युद्ध का फल उन्हें मालूम हो चुका था। शान्त चित्त से उन्होंने दुर्योधन को आशीर्वाद दिया। दुर्योधन ने कहा, "गुरुदेव, आप बड़े अच्छे समय में उपस्थित हुए हैं; इस समय आपके अलावा मेरा हितचिन्तक कोई नहीं।" बलराम ने आश्वासन दिया कि उनके रहते किसी प्रकार का अन्याय न हो पायेगा।

कृष्ण ने कहा, "कुरुराज, अब आप युद्ध के लिए तैयार हो जाइए।"

दुर्योधन ने कहा, "मैं तैयार हूँ। लेकिन धर्म-युद्ध होगा, और निरीक्षक आपके बड़े भाई, मेरे गुरुदेव होंगे। गुरुदेव धर्म के सिवा किसी का पक्ष न लेंगे।"

कृष्ण ने कहा, "अच्छी बात है। महाराज युधिष्ठिर को यह मंजूर है।"

दुर्योधन ने कहा, "मेरे पास केवल गदा है। मैं गदा-युद्ध करूँगा।"

कृष्ण ने कहा, "पाण्डवों को यह भी मंजूर है।"

दुर्योधन ने कहा, "मैं अकेला हूँ, एक ही आदमी से युद्ध कर सकता हूँ।"

कृष्ण ने कहा, "यह भी सही।"

दुर्योधन ने कहा, "आखिरी बात यह है कि मैं राजा हूँ, राजा से ही युद्ध

करूँगा। युधिष्ठिर लड़ने के लिए तैयार हों।" बलराम को दुर्योधन का यह तर्क पसन्द आया।

कृष्ण ने कहा, "राजा वही होता है, जो राजाओं का मुकाबला करके, उनका वध करके राजसिंहासन को अपने अधिकार में रखता है। इस विचार से पाण्डवों में भीम राजा हैं। भीम से लड़िए।"

बलराम को कृष्ण की यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने निगाह बदलकर कृष्ण से पूछा, "यह कैसी बात ?"

कृष्ण ने कहा, "भीमसेन बराबर युद्ध में राजाओं का ही मुकाबला करते आये हैं। उन्होंने जरासन्ध से लेकर महाभारत तक में राजाओं का ही सामना किया है, और अपने बाहुबल से उन्हें पराजित करके वध किया है। दुर्योधन के कुल भाइयों को उन्हीं ने मारा है। दुर्योधन से लड़ने की उनकी बहुत दिनों की प्रतिज्ञा भी है। वह भरी सभा में अपनी प्रतिज्ञा सबको सुना चुके हैं।"

प्रतिज्ञा की बात सुनकर बलराम खामोश रह गये। दुर्योधन को भीम की प्रतिज्ञा याद आयी। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा, फिर लड़ने के लिए तैयार हो गया।

भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध के लिए मैदान में उतरे। दोनों गदा लिये हुए मण्डलाकार घूमते रहे। फिर एक-दूसरे पर वार करने लगे। गदाओं की टक्करों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बलराम अतृप्त आँखों से दुर्योधन की फुर्ती देखते रहे। उन्हें निश्चय हो गया कि इस युद्ध में दुर्योधन विजयी होगा। अब तक भीम पर कई प्रहार वह कर चुका था। भीम काँप-काँपकर रह गये थे। युधिष्ठिर डरे हुए थे कि भीम का दुर्योधन वध न कर डाले, क्योंकि आज युद्ध में वह प्रबल पड़ रहा है। कृष्ण स्थिर दृष्टि से भीम को देख रहे थे। वे जानते थे, भीम बल और दम में दुर्योधन से जीतेंगे। अभी दुर्योधन फुर्ती दिखा रहा है, पर कुछ देर बाद उसके हाथ ढीले पड़ जायँगे। अर्जुन बड़ी चिन्ता से भीम को देख रहे थे। वे सोच रहे थे, आज भीम को क्या हो गया है, जो इतनी देर हो गयी, और अभी तक दुर्योधन का वध नहीं कर सके।

दोनों वीर पसीने-पसीने हो गये। दुर्योधन वार-पर-वार करता जा रहा था, भीम झेल रहे थे। किसी तरह भी दुर्योधन दब नहीं रहा था, वह थका भी नहीं, काफी देर हो गयी। कृष्ण समझ गये कि दुर्योधन जान की बाजी लगाकर लड़ रहा है, इसीलिए वह इतना प्रबल है; भीम सधा हुआ युद्ध कर रहे हैं। इसी समय दोनों मण्डलाकार घूम रहे थे वार करने की ताक में कि भीम की दृष्टि कृष्ण पर पड़ी। कृष्ण ने बलराम की आँख बचाकर अपनी जाँघ पर थपकी मारी। भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गयी, द्रौपदी को बैठने के लिए जाँघ दिखाने पर उन्होंने जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी।

गदा-युद्ध में पेट के नीचे प्रहार करना मना है। दुर्योधन खुलकर लड़ रहा था, बलराम के निरीक्षक होने के कारण उसे विश्वास था कि अन्याय-युद्ध न होगा, उसे भीम की प्रतिज्ञा भी याद न थी। भीम के सिर पर प्रहार करने के अभिप्राय से वह उछला। उछलकर सिर पर प्रहार करना ही चाहता था कि भीम की गदा

दुर्योधन की जाँघ पर बैठी। गदा के लगते ही एक जाँघ की हड्डी टूट गयी, दूसरी में भी काफी चोट आयी। दुर्योधन वहीं गिर गया। बलराम 'अन्याय-युद्ध हुआ' कहकर कुपित हो गये, और भीम को मारने के लिए बढ़े। कृष्ण ने हाथ पकड़कर भीम की प्रतिज्ञा की बात कही। द्रौपदी के अपमान की बात से बलराम का क्रोध शान्त हुआ। दुर्योधन अनाथ की तरह पड़ा रहा। विजयी पाण्डव अपने शिविर को लौट आये। कौरवों के यहाँ शोक की घटा छा गयी। धृतराष्ट्र और गान्धारी विलाप करने लगे।

अश्वत्थामा का सेनापतित्व

कौरवों में सिर्फ तीन वीर बचे थे–अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। गोधूलि-बेला में इन्हें मालूम हुआ कि महाराज दुर्योधन भीम से गदा-युद्ध करते हुए अन्याय से घायल होकर मरणासन्न हैं। तीनों वीर उस स्थल को चले, जहाँ दुर्योधन घायल पड़े थे। चारों ओर युद्ध के भयंकर दृश्य थे। नाश मूर्तिमान् हो रहा था।

अपने पक्ष के वीरों को देखकर दुर्योधन विलाप करने लगे। कहा, "मेरा भाग्य ही मन्द था, नहीं तो मेरे पक्ष में इतने बड़े-बड़े वीर थे, और मुझे युद्ध में विजय न मिली, सब-के-सब पाण्डवों के छल से मारे गये। मुझे यही दुःख है कि संसार में सत्य और न्याय कहकर कुछ न मिला। फिर भी मुझे सन्तोष है कि मेरे साथी जिस राह से गुजर रहे हैं, मैं भी उसी राह से जा रहा हूँ। अगर यह सत्य है कि सम्मुख समर में प्राण देने पर मनुष्य को स्वर्ग मिलता है, तो मुझे स्वर्ग मिलेगा। लेकिन वीरो, भीम ने अन्याय-युद्ध के अलावा, मेरे गिर जाने पर, मेरे सिर पर पदाघात किया है।" कहकर दुर्योधन अभिमान से क्षुब्ध होकर रोने लगे।

अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ। यह वही दुर्योधन हैं, जो समस्त ज्ञात पृथ्वी के अधीश्वर थे। जिनके बड़े-बड़े राजे-महाराजे आज्ञाकारी थे, जिनकी इच्छा-मात्र से बड़े-बड़े राज्य बन-बिगड़ सकते थे। कुछ देर इस आवेश में रह अश्वत्थामा ने कहा, "महाराज, पाण्डवों ने आपके साथ बहुत बड़ी नीचता की है। लोग उन्हें धार्मिक समझते हैं, लेकिन वे ढोंगी हैं। उन्होंने बराबर अन्याय-युद्ध किया है। पितामह भीष्म को उन्होंने अन्याय से मारा, कौरवों और पाण्डवों के आचार्य द्रोण का उन्होंने अन्याय से वध किया, वीरवर कर्ण को छल से मारा, आपको भी अधर्म-युद्ध से परास्त किया। मैं बहुत सह चुका हूँ। लेकिन पाण्डवों को जैसे-का तैसा फल देना ही है। मैं अवश्य-अवश्य पाण्डवों का वध करूँगा। आपके सन्तोष के लिए जिस उपाय का भी सहारा लेना पड़े, मैं लूंगा। प्राण रहते तक, मैं आपको प्रसन्न करने की चेष्टा करूँगा।"

अश्वत्थामा की बात सुनकर दुर्योधन को आश्वासन मिला। बैठे हुए उन्होंने कृपाचार्य को जल-पूर्ण घट ले आने की आज्ञा दी। कृपाचार्य घट ले आये। दुर्योधन ने अश्वत्थामा का अभिषेक किया। फिर बड़ी आशा की दृष्टि से देखते हुए कहा, "हे गुरुपुत्र ! तुम ब्राह्मण हो, स्वभाव से त्यागी हो, मैं तुम्हारा क्या उपकार इस समय कर सकता हूँ ? अब मेरे कुछ भी नहीं रहा, तुम देखते हो; केवल मेरा

उत्साह और मेरी प्रसन्नता साथ लेकर जाओ।"

तीनों वीर राजा का सम्मान करके उठे। उनके रथ दूर खड़े थे। चलकर उन पर बैठे। दुर्योधन अकेले उस एकान्त में रहे। तीनों वीर पाण्डव-शिविर की ओर चल पड़े। रात हो रही थी। इधर-उधर स्यार दौड़ रहे थे। लाशों की बदबू आ रही थी। कहीं-कहीं घायलों की चीख सुन पड़ती थी। तीनों वीर रथ बढ़ाते हुए युद्ध का मैदान पार कर गये।

सौप्तिकपर्व

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पुत्रों का वध

इस रोज पाण्डवों को लेकर कृष्ण दूसरी जगह चले गये। दुर्योधन के परास्त होने की खबर से पाण्डव और पांचालों के शिविर में आनन्द मनाया जा रहा था। सेना और सेनानायक नृत्य-गीत में लीन थे। सब नशे की हालत में थे। कभी-कभी कौरवों को दुर्वाक्य भी कहते थे। एक पहर के करीब रात हो चुकी थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। इसी समय बगल से तीनों वीर— अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा निकले। पाण्डवों के शिविर के पास जाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। रथ बढ़ाकर कुछ दूर एक पेड़ के नीचे इन लोगों ने डेरा डाला। सब लोग सुबह लड़ने की सोच रहे थे। कृपाचार्य और कृतवर्मा सोचते हुए, थके, घायल, विश्राम करने लगे, और विश्राम करते-करते सो गये। अश्वत्थामा की आँखों में नींद न थी। वह सोच रहे थे, अकेले युद्ध में पाण्डवों को कैसे परास्त किया जायगा। पाण्डवों के पास सेना है, रथ हैं, हाथी हैं, घोड़े हैं। पाण्डव समर्थ भी हैं। सोचते हुए अश्वत्थामा डरे। इसी समय एक दृश्य उन्होंने देखा। उस पेड़ पर कुछ कौए बैठे थे। रात को विश्राम कर रहे थे। अँधेरे में उन्हें देख न पड़ता था। इसी समय उल्लू की तरह का कोई पक्षी उडकर आया, और कौओं को मारने लगा। थोड़ी देर में उसने सब कौओं को मार डाला। मर-मरकर कौए पेड़ के नीचे गिरने लगे। अश्वत्थामा को जैसे एक नसीहत मिली। अकेले इसी तरह शत्रु का संहार करना उचित है। उन्होंने निश्चय किया कि रात को शत्रु के शिविर में पैठकर सोते हुए शत्रुओं का संहार करेंगे। यह भाव मन में आते ही उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होने सोचा, ईश्वर ने उन्हें यह उपाय बतलाया है। मन में ईश्वर को धन्यवाद दिया, और चलने के लिए तैयार हो गये।

गहरी रात थी। कृपाचार्य और कृतवर्मा सो रहे थे। घायल, थके हुए, गहरी नींद में थे। अश्वत्थामा ने जगाया। कृपाचार्य और कृतवर्मा उठे। अश्वत्थामा ने धीरे-धीरे कृपाचार्य से कहा, "मामा, हम लोग बहुत थोड़े हैं। कल सुबह पाण्डवों

से सम्मुख समर करने पर हम न जीतेंगे। हमें चाहिए कि हम रात को ही पाण्डवों के शिविर में घुसें, और सोते समय वध करें।"

कृपाचार्य ने कहा, "अश्वत्थामा, तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हें धर्म का भय भी नहीं रहा। तुम ब्राह्मण हो, वीर हो, देश-देशान्तर में तुम्हारा नाम है, ऐसा कुकृत्य करके तुम मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाओगे। लोगों में तुम्हारी निन्दा होगी। तुम्हारा परलोक भी विगड़ेगा।"

अश्वत्थामा ने जवाब दिया, "मामा, पाण्डव बड़े नीच हैं। नीचों से नीचता करते अधर्म नहीं होता। महाराज दुर्योधन की दशा देखकर पत्थर पिघल जाता है। यह दशा पाण्डवों की नीचता के कारण हुई। पितामह भीष्म को उन्होंने किस नीचता से मारा, यह तुम जानते हो। मेरे पिता का कैसी नीचता से हत्यारे धृष्टद्युम्न ने वध किया, तुमने देखा है। कर्ण को रथ निकालने का समय नहीं दिया। तुम जो कुछ कहो, मैं निश्चय कर चुका हूँ, रात को नीच पांचालों और पाण्डवों के शिविर में पैठकर एक ही खड्ग से सबका वध करूँगा। तुम्हें साथ देना हो, तो चलो। मैं अब देर नहीं कर सकता।"

यह कहकर अश्वत्थामा उठे, घोड़ों को रथ में जोता और चल दिये। देखकर कृपाचार्य और कृतवर्मा पीछे-पीछे दौड़े। वे तरह-तरह की सीख दे रहे थे। लेकिन अश्वत्थामा उनकी एक नहीं सुन रहे, यह देखकर उन्होंने कहा, "तुम सेनापति हो, तुम्हारा साथ देना हमारा धर्म है। हमें भी रथ पर बैठा लो। जैसा कहोगे, हम करेंगे।"

यह सुनकर अश्वत्थामा ने रथ रोका, और कृपाचार्य और कृतवर्मा को रथ पर बैठा लिया। जब पांचालों और पाण्डवों के शिविर कुछ दूर रह गये, तब रथ से उतरकर तीनों पैदल चले। सब लोग नींद में बेहोश थे। पहरे का सिपाही भी बेखबर सो रहा था। अश्वत्थामा ने कहा, "मामा, पहले पांचालों के शिविर में जाता हूँ। तुम लोग द्वार पर रहो। जो बाहर निकले, उसे जीता न छोड़ना।"

कृपाचार्य और कृतवर्मा द्वार पर रहे। द्वारपाल का उसी वक्त वध कर खड्ग लिये हुए अश्वत्थामा शिविर के भीतर गये। पांचालों की बची हुई सेना गहरी नींद में सो रही थी। एक तो शराब का नशा, दूसरे युद्ध और नाच-रंग की क्लान्ति, लोग बेखबर सो रहे थे। एक बड़े अच्छे, फूलों से सजे पलँग पर धृष्टद्युम्न सो रहा था। चारों ओर खुशबू उड़ रही थी। अश्वत्थामा कुछ देर तक अपने पिता का अन्याय से सिर काटनेवाले शत्रु को देखते रहे। देखते-देखते क्रोध से भर गये। धृष्टद्युम्न को बाल पकड़कर खींचा और कसकर एक लात मारी। धृष्टद्युम्न हड़बड़ाकर जगे, परन्तु वहाँ कोई अस्त्र न था, फिर अश्वत्थामा पकड़े हुए थे। वे चिल्लाये, पर अश्वत्थामा दुर्वाक्य कहते हुए, उन्हें लातों और घूँसों से मारने लगे। कुछ लोग जगे, लेकिन उन्हें मालूम हुआ, जिन्न है। वे भय से शिविर के बाहर भगे। बाहर निकलते ही कृपाचार्य और कृतवर्मा ने उनका वध कर डाला। अश्वत्थामा ने लातों और घूंसों से ही धृष्टद्युम्न का वध कर डाला। फिर खड्ग लेकर बचे हुए लोगों का संहार करने लगे। मारे भय के अँधेरे में, लोग आपस में लड़ने लगे। देखते-देखते सब-के-सब पांचाल काम आ गये।

कुछ दूर पर पाण्डवों का शिविर था। अश्वत्थामा इसी तरह वहाँ भी गये। द्वार पर कृपाचार्य और कृतवर्मा थे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र सो रहे थे। अश्वत्थामा ने एक-एक कर सबके सिर काट लिये। फिर शिविर में आग लगा दी। जो सेना थी, वह घबरायी, अपने बचाव के लिए आपस में लड़ने लगी, और इस तरह लड़-लड़कर कट गयी। पाण्डवों में भी कोई वीर न बचा।

दुर्योधन का प्राणान्त

अभी रात समाप्त नहीं हुई थी। तीनों वीर रथ पर बैठे और दुर्योधन को यह सुखद समाचार देने के लिए चले। पाण्डवों के सिर समझकर द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के सिर अश्वत्थामा लिये हुए थे। दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए वे उस जगह पहुँचे, जहाँ दुर्योधन पड़े थे। दुर्योधन की हालत बहुत ही खराब थी। पीड़ा बहुत बढ़ी हुई थी। रह-रहकर मूर्च्छित हो जाते थे। चारों ओर से स्यार घेरे हुए थे। जब ये लोग पहुँचे, तब दुर्योधन मूर्च्छित थे। उनके कान के पास मुँह ले जाकर अश्वत्थामा ने कहा, "महाराज, क्या आप जीवित हैं? यदि जीवित हैं तो अपने शत्रुओं के संहार का समाचार सुन लीजिए। मैंने अधम धृष्टद्युम्न-शिखण्डी आदि समस्त पांचलों और पाण्डवों का वध कर डाला है। जैसी नीचता से उन्होंने आपको मारा, मैंने उसी छल से उन सबका वध किया है। अब पाण्डवों और पांचालों में कोई भी जीवित नहीं। रात को शिविर में घुसकर एक खड्ग से मैंने संहार किया।"

दुर्योधन सुन रहे थे। शत्रुओं का नाश हो गया, सुनकर पीड़ा को दबाकर, उठकर बैठने के लिए अश्वत्थामा का सहारा माँगा। अश्वत्थामा ने हाथ लगाकर, उठाकर बैठा दिया। दुर्योधन ने क्षीण कण्ठ से अश्वत्थामा की प्रशंसा की। अश्वत्थामा ने कहा, "महाराज, प्रमाण के लिए मैं पाण्डवों के सिर लेता आया हूँ।"

दुर्योधन ने क्षीण हर्ष से भीम का सिर माँगा। अश्वत्थामा ने तारों के मन्द प्रकाश मे देखते हुए, भीम के पुत्र का सिर निकालकर दुर्योधन को दिया। बदला लेने के अभिप्राय से दुर्योधन ने उस सिर पर घूँसा मारा। घूँसे के लगते ही सिर कच्चे घड़े की तरह फूट गया। दुर्योधन को इससे आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, "अश्वत्थामा, अभी अच्छी तरह प्रकाश नहीं हुआ। प्रकाश होने पर देखा जायगा कि यह भीम का सिर है या नहीं। मुझे विश्वास नहीं होता कि यह भीम का सिर है। यह एक घूँस से फूट गया। भीम का सिर ऐसा नही। भीम के सिर पर मैंने गदा के कितने ही प्रहार किये हैं, पर सिर नहीं फूटा। यद्यपि उस समय टोप पहने हुए थे, फिर भी प्रहार गदा का था। यह तो घूँसा लगते ही पिचक गया।"

कुछ देर में ऊषा की लालिमा फूटी। मुँह कुछ-कुछ पहचाने जाने लगे। दुर्योधन ने देखा, और पहचाना, वे पाण्डवों के सिर नहीं, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के सिर हैं। दुर्योधन को इससे और क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा, "अब वंश में तर्पण करने के लिए भी कोई न बचा।" इस प्रकार विलाप करते हुए अपार ऐश्वर्य के अधीश्वर महाराज दुर्योधन स्वर्ग प्रयाण कर गये। तीनों वीर वहीं बैठे हुए आँसू बहाते रहे।

अश्वत्थामा का मणिहरण

प्रात:काल श्रीकृष्ण पाण्डवों को लेकर लौटे। पाण्डवों ने आते ही रात को हुआ सत्यानाश देखा। तब तक बात फैल चुकी थी। दुर्योधन का प्राणान्त हो चुका था। द्रौपदी रोककर कृष्ण के पैरों पर गिरीं। भीम और अर्जुन को देखकर कहने लगीं, "मेरे पुत्रों की जिसने यह हालत की है, उससे बदला लो।" भीम गुस्से में आ गये, और नकुल को सारथि बनाकर अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़े।

भीम के जाने पर कृष्ण को चिन्ता हुई। उन्होंने युधिष्ठिर और अर्जुन से कहा, "भीम को यह नहीं मालूम कि अश्वत्थामा के पास ब्रह्मशिरा नाम का महास्त्र है। यदि वह इन पर उसका प्रयोग कर देगा, तो यह किसी तरह भी नहीं बच सकते। इसी अस्त्र के प्रभाव से उसने मेरा चक्र छीन लिया था।"

सुनकर युधिष्ठिर और अर्जुन बहुत चिन्तित हुए। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा, "माधव, हमारे सबसे बड़े अस्त्र तो तुम्हीं हो। तुम्हीं बताओ कि अब क्या किया जाना चाहिए। इस महायुद्ध के फलस्वरूप अब तो एक भी वीर नहीं बचा।"

कृष्ण ने कहा, "भीम का पीछा करना चाहिए। द्रौपदी को क्षोभ है, उन्हें सान्त्वना भी मिलनी चाहिए। ब्रह्मशिरा अस्त्र का अगर अश्वत्थामा ने प्रयोग कर दिया, तो इसका बड़ा ही भयंकर परिणाम होगा। फिर भी अर्जुन इस अस्त्र को सँभाल सकते हैं।"

युधिष्ठिर ने कहा, "कृष्ण, फिर तो जल्दी की जानी चाहिए।" कृष्ण ने रथ तैयार किया। उस पर युधिष्ठिर और अर्जुन बैठे। चलते-चलते बहुत दूर निकल गये। काफी दूर जाने पर भीम के रथ की ध्वजाएँ देख पड़ीं। कृष्ण ने रथ बढ़ाया। भीम के रथ के पास नन्दिघोष-रथ पहुँचा। युधिष्ठिर और अर्जुन समझाने लगे कि स्त्री के कहने से ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिए। जो कुछ होना था, वह हो चुका है। पर भीम ने किसी की न मानी। वे बढ़े, तब कृष्ण भी उनके साथ अर्जुन और युधिष्ठिर को लेकर चले। कुछ दूर और चलने पर पता लगा कि गंगा के किनारे व्यासजी के पास अश्वत्थामा बैठा है।

भीम ने रथ बढ़ाया। कृष्ण ने भी अपना रथ साथ लगाया। व्यास के आश्रम के पास पहुँचकर भीम ने देखा, अश्वत्थामा बैठा हुआ है। देखकर भीम ने ललकारा। अश्वत्थामा ने आँख उठाकर देखा, तो युधिष्ठिर और अर्जुन को भी देखा। देखकर, भय खाकर, 'समस्त पाण्डवों के लिए' कहकर अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिरा-अस्त्र छोड़ दिया। उस अस्त्र के छूटते ही महाभयानक शब्द हुआ। भीम चकित हो गये। अर्जुन सुन चुके थे। उन्होंने तुरन्त पाशुपात महास्त्र का त्याग किया। अश्वत्थामा के अस्त्र के साथ पाशुपत अस्त्र टक्करें लेने लगा, इससे भयानक संघर्ष की सृष्टि हुई। आग निकलने लगी, बिजली कड़कने लगी, आकाश से तारे टूटते नजर आने लगे।

सृष्टि का नाश होता हुआ देखकर व्यास और नारद अस्त्रों के बीच में आकर खड़े हो गये, और कहा कि "आप लोग अपने-अपने अस्त्रों को रोकिये, ऐसे अस्त्रों का प्रयोग मनुष्यों पर नहीं किया जाता।" अर्जुन ने कहा, "मैंने अस्त्र का प्रयोग

मारने के लिए नहीं, किन्तु बचने के लिए किया है। मेरा कोई दोष नहीं। लेकिन आप लोग कहते हैं, तो मैं अपना अस्त्र वापस लेता हूँ।" अर्जुन अस्त्र को रोकना जानते थे। उन्होंने अपना अस्त्र वारित कर लिया। अश्वत्थामा से ऋषियों ने कहा, तो अश्वत्थामा ने कहा, "मुझे रोकना नहीं आता।" तब ऋषियों ने कहा, "तुम्हारे अस्त्र के प्रभाव से उत्तरा का गर्भ नष्ट होगा, और अर्जुन के अस्त्र के बदले तुम अपनी कोई बहुमूल्य वस्तु दो, जो पाण्डवों को अभीप्सित हो।" अर्जुन से पूछने पर अर्जुन ने कहा, "अश्वत्थामा अपने मस्तक की मणि दें।"

अश्वत्थामा को बड़ा कष्ट हुआ। पर उन्हें मणि देनी पड़ी। मणि देकर वे बिलकुल निस्तेज हो गये। फिर वहीं व्यासजी के आश्रम में रहकर शेष जीवन ब्राह्मण की तरह बिताने लगे।

द्रौपदी के दुख का आर-पार न था। अर्जुन मणि लेकर आये, और द्रौपदी को देते हुए कहा, "भद्रे, अश्वत्थामा की मृत्यु से बढ़कर यह है। यह मणि लो। वह अब निस्तेज हो गये हैं। अब आजीवन व्यासजी के आश्रम में हतवीर्य होकर रहेंगे। अपने पुत्रों का शोक उपशमित करो।"

स्त्रीपर्व

कौरव स्त्रियों का विलाप, लौहभीम चूर्ण, गान्धारी का शाप और मृतक तर्पण

संजय से यह संवाद पाकर कि महाराज दुर्योधन भीम के साथ गदायुद्ध में मारे गये, युद्ध अन्याय रूप से हुआ, दुर्योधन की जाँघ पर भीम ने गदा मारी, हस्तिनापुर के राजपरिवार में हाहाकार मच गया। महारानी भानुमती पछाड़ खाकर गिरीं, और बेहोश हो गयीं; महारानी गान्धारी उच्च स्वर से विलाप करने लगीं; महाराज धृतराष्ट्र सिंहासन पर मूर्च्छित हो गये। राजमहल में शोक का समुद्र उमड़ने लगा। सबके साथ धर्मात्मा विदुर भी रोने लगे। विदुर ने समय की भीषणता और मृत्यु के सर्वव्यापी प्रभाव पर बहुत-कुछ कहा, परन्तु उस उच्च हाहाकार में विदुर के उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा।

रानियाँ पागल की तरह युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ने लगीं। जिनका मुँह कभी सूर्य ने नहीं देखा था, वे अपने पति और पुत्रों की लाशों को गले लगाने के लिए रास्तों पर निकल गयीं। उनके साथ गान्धारी भी चलीं। महाराज धृतराष्ट्र भी नहीं रह सके। संजय का हाथ पकड़कर सबके पीछे-पीछे चले।

सबकी युद्ध-क्षेत्र में जाने की इच्छा है, जानकर विदुर ने रथों का प्रबन्ध किया, और अन्यान्य वस्तुएँ साथ लेते हुए सबसे अनुरोध किया कि वे लोग रथ पर

वैठ लें। विदुर के अनुरोध के अनुसार कौरव-कुल की बहुएँ, महारानी गान्धारी और महाराज धृतराष्ट्र रथ पर बैठकर कुरुक्षेत्र को चले।

प्रभात का समय था। नगर से बाहर निकलने पर कौरव-परिवार को अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले। महाराज दुर्योधन की मृत्यु हो चुकी थी। अश्वत्थामा ने रात्रि से प्रभात तक का कुल हाल महाराज धृतराष्ट्र से कहा। दुर्योधन इस संसार को छोड़कर स्वर्ग प्रयाण कर गये हैं, सुनते ही धृतराष्ट्र मूच्छित हो गये, महारानी भानुमती विलाप करती हुई मूच्छित हो गयीं। रथ कुछ क्षण के लिए वहीं रोक दिये गये।

ये तीन वीर यहीं से, एक-दूसरे से बिदा होकर, अपने-अपने मार्ग को चल दिये। अश्वत्थामा का हाल लिखा जा चुका है।

वहुत देर तक रथ रुके रहे। महाराज धृतराष्ट्र और उनकी पुत्र-वधुएँ, अनेक उपचार करने पर, होश में आये। फिर रथ वढ़ाने की आज्ञा हुई।

अब तक पाण्डव अश्वत्थामा की मणि लेकर लौट चुके थे। लौटने पर उन्हें मालूम हुआ कि कौरव-कामिनियों के साथ महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र आ रहे हैं। कृष्ण पाण्डवों को साथ लेकर उनसे मिलने चले।

शोक से अधीर पांचाल रमणियाँ भी अवरोध से बाहर निकल पड़ीं। उनके साथ द्रौपदी हुईं। ये सब भी रण-क्षेत्र की ओर चल पड़ीं।

श्रीकृष्ण महाराज धृतराष्ट्र से पाण्डवों को लेकर मिले, और विनयपूर्वक कहा, "महाराज, पाण्डव पहले भी सन्धि करना चाहते थे, पर शकुनि और कर्ण के प्रस्ताव को मानकर महामानी दुर्योधन ने सन्धि नहीं की; पाण्डवों के रहने के लिए पाँच गाँव भी नहीं दिये, इसका यह दुष्परिणाम हुआ। महामति भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथ कर्ण, शल्य और आपके पुत्र-जैसे कौरव-कुल के रत्न इस संसार से उठ गये। इसमें पाण्डवों का क्या दोष है?"

धृतराष्ट्र धैर्य के साथ बोले, "कृष्ण, तुम ठीक कह रहे हो। धर्म की ही जय होनी है। खेद यही है कि इतनी बड़ी सेना देखते-देखते काल-कवलित हो गयी। फिर भी मैं भीम को धन्यवाद देता हूँ, भीम वीर है। उसने अकेले मेरे पुत्रों का संहार किया। मेरी इच्छा होती है कि दुःशासन और दुर्योधन को मारनेवाले भीम को मैं गले लगाऊँ। वह भी मेरा लड़का है।"

धृतराष्ट्र का हृदय अच्छा नहीं, कृष्ण पाण्डवों को लेकर चलने से पहले समझ चुके थे। धृतराष्ट्र से मिलते समय अनर्थ हो सकता है, यह सोचकर उन्होंने भीम की एक लोहे की मूर्ति साथ ले ली थी। इस समय धृतराष्ट्र के स्वर में उन्हें छल मालूम दिया। भीम धृतराष्ट्र को भेंटने के लिए बढ़े, तो कृष्ण ने रोक दिया, और वही लोहेवाली मूर्ति भेंटने के लिए मँगाकर सामने खड़ी कर दी। धृतराष्ट्र अन्धे थे ही। उन्हें यह न मालूम हुआ कि यह वास्तव में भीम हैं या लोहे की मूर्ति। उन्होंने उस मूर्ति को छाती से लगाते हुए इस जोर से मसका कि वह चूर-चूर हो गयी।

कृष्ण ने एकान्त में पाण्डवों को ले जाकर कहा, "वृद्ध के मन में इतना द्वेष था, पुत्रों का बदला खुद चुकाना चाहते थे।" युधिष्ठिर ने कहा, "कृष्ण, आपने सदा पाण्डवों की रक्षा की है। वृद्ध के शरीर में कितना बल है कि लोहे की मूर्ति

चूर-चूर हो गयी !"

इसी समय 'हा भीम, हा भीम' कहकर धृतराष्ट्र रोने लगे। कृष्ण ने मुस्करा-कर कहा, "महाराज, आप व्यर्थ ही विलाप कर रहे हैं, आपने जिसे तोड़ा है, वह भीम नहीं, भीम की लोहे की मूर्ति थी।" कृष्ण की बात से धृतराष्ट्र बहुत लज्जित हुए।

गान्धारी शोक से पागल हो रही थीं, कृष्ण के साथ पाण्डवों को आया सुनकर पाण्डवों को शाप देने लगीं कि आकाश-मण्डल में महर्षि व्यास पैदा हुए, और समझाकर बोले, 'हे सती-शिरोमणि ! तुम पाण्डवों को शाप न दो। इस तरह अपना तप क्षीण न करो। पाण्डव भी तुम्हारे पुत्र हैं। उनका कोई दोष नहीं। उन्होंने तुम्हारे पुत्रों से पहले सन्धि ही चाही थी। बहुत सँभलकर इस संसार से चली जाओ। यह माया का बन्धन बड़ा दुःखदायी होता है।' आकाशवाणी सुनकर गान्धारी सँभल गयीं।

इसी समय पाण्डवों को लेकर कृष्ण वहाँ पहुँचे। पाण्डवों ने पैरों की धूलि ग्रहण की, और बड़े विनीत कण्ठ से कहा, "माता, आपके पुत्रों के घातक हम ही हैं। इस महायुद्ध में समस्त वंश और कुटुम्ब का नाश हो गया है। साम्राज्य श्मशान हो गया है। लेकिन माता, हमारी युद्ध करने की बिलकुल इच्छा न थी। हम तो सन्धि चाहते थे। भाई दुर्योधन ने हमें पाँच गाँव भी रहने के लिए नहीं दिये। यही इस महासंहार का कारण हुआ।"

पाण्डवों की दीन वाणी सुनकर गान्धारी का हृदय करुणार्द्र हो गया। उन्होंने युधिष्ठिर को हृदय से लगाकर कहा, "वत्स, तुम्हीं मेरे सच्चे पुत्र हो। तुम्हारा कल्याण हो।"

इस समय द्रौपदी ने गान्धारी के पैर छुए, और उच्च स्वर से रोने लगीं। कहा, "माता, अभिमन्यु और मेरे पाँचों पुत्र इस युद्ध की आग में जल गये हैं।" द्रौपदी को शोक से व्याकुल देखकर गान्धारी उन्हें धैर्य देने लगीं। कहा, "बेटी, संसार की गति कुछ समझ में नहीं आती। यही वंश, जो इतना फूला-फला था, जिसे देखकर दूसरे ईर्ष्या करते थ, जिसके सौभाग्य का संसार में दूसरा उदाहरण न था, जिसका ऐश्वर्य इन्द्र को भी नत-मस्तक करता था, देखते-देखते पानी के बुलबुलों की तरह विलीन हो गया।" कहकर गान्धारी ने गर्म साँस छोड़ी।

यहाँ से दोनों परिवार की स्त्रियों को लेकर धृतराष्ट्र और पाण्डवों के साथ कृष्ण कुरुक्षेत्र गये, जहाँ युद्ध का भयंकर परिणाम प्रत्यक्ष हो रहा था। यद्यपि गान्धारी आँखों में पट्टी बाँधे हुए थीं, फिर भी भगवान् व्यास के वर से उन्हें दिव्य दृष्टि मिली थी, जिससे सबकुछ वह देख सकती थीं। युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर कौरव और पाण्डव-रमणियाँ रथों से उतर पड़ीं, और चारों ओर घूमकर अपने पतियों और पुत्रों को खोजने लगीं। जिनके पति मिल जाते थे, वे उस शव से लिपटकर ऊँचे-ऊँचे स्वर से रोने लगती थीं। चारों ओर कुहराम मच रहा था। जिन्हें कभी सूर्य ने भी नहीं देखा था, उनके बाल बिखरे हुए थे, आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी, देह धूल से भर रही थी, वे जमीन पर लोट रही थीं। बड़े-बड़े छत्र-धारी राजा अनाथ की तरह पड़े थे। गीध और स्यार उसका मांस खा रहे थे। एक

जगह कौरव-स्त्रियों ने देखा, बालक अभिमन्यु पड़ा हुआ है ! जिसके मामा कृष्ण, पिता अर्जुन, उसकी यह दशा है ! कुछ ही दूर पर दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण पड़ा था । कौरव-पाण्डवों के दीपक बुझ पड़े हैं । स्त्रियाँ सिर पीट-पीटकर, बाल नोच-नोचकर विलाप करने लगीं । आकाश फटने लगा, दिशाएँ करुण ध्वनि से प्रतिध्वनित होने लगीं ।

इसी समय महाराज दुर्योधन का शव दिखायी दिया, गान्धारी लिपटकर रोने लगीं । महारानी भानुमती छाती से पैर लगाकर, ढाहें मार-मारकर विलाप करने लगीं । धृतराष्ट्र रोते हुए मूर्च्छित हो गये ।

पाण्डवों के साथ कृष्ण खड़े थे । उन्हें देखकर गान्धारी का धैर्य जाता रहा । कृष्ण को देखकर उनके मुख से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी, उन्होंने कृष्ण को शाप दिया, "कृष्ण, हमारे वंश का तुम्हीं ने नाश कराया है । तुम प्रसिद्ध छली हो, इसलिए यह शाप लो; जिस तरह हमारे वंश का नाश हुआ है, उसी तरह एक दिन में तुम्हारा बृहत् परिवार नष्ट हो जायेगा ।" कृष्ण कुछ बोले नहीं । खड़े मुस्कराते रहे ।

होश होने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, "चिताएँ बनाकर अपने वंश और समस्त राजाओं का दाह-संस्कार करो । फिर सबका तर्पण गंगाजी में चलकर किया जाय ।"

आज्ञा पाकर युधिष्ठिर ने भाइयों को आज्ञा दी । वे बात-की-बात में गाँवों से और हस्तिनापुर से चन्दन तथा लकड़ियाँ ले आये, और हजारों चिताएँ लगायीं । फिर आत्मीयों और बन्धु-बान्धवों का दाह-कर्म किया । स्त्रियाँ खड़ी हुई चिताओं की उठती लपटें और धूम्रराशि देखती रहीं । उनके पति और पुत्र, बन्धु और हितैषी जलकर भस्म हो गये । फिर सब लोग गंगा-तट पर गये, और स्नान कर स्त्री-पुरुष सबने मृतकों को तिलांजलि दी ।

इसी समय कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा, "वत्स ! महावीर कर्ण को भी तिलांजलि दो । कर्ण तुम्हारे भाई थे । कवच-कुण्डल धारण कर पैदा होनेवाले कर्ण भगवान् सूर्य के पुत्र थे । मैं तब कुमारी थी, इसलिए लोक-लज्जा के डर से कर्ण का त्याग किया था । वह अधिरथ के पुत्र नहीं थे ।"

सुनकर युधिष्ठिर तथा पाँचों पाण्डव आश्चर्यचकित हो गये । अर्जुन को माता पर क्रोध आ गया । पर कृष्ण ने समझाया । फिर सबने जल तथा आँसुओं से कर्ण का तर्पण किया ।

शान्तिपर्व

सिंहासनारोहण

महावीर कर्ण अधिरथ सूत के पुत्र नहीं, पाण्डवों के भाई थे—जब से युधिष्ठिर ने सुना, उनके शोक और चिन्ता की थाह न रही। उनका भोजन-पान छूट गया। वह बार-बार सोचते थे कि किसी तरह उन्हें यह मालूम होता, तो वह लड़ाई न लड़ते, कौरवों को राज्य छोड़कर वन चले जाते। इस तरह के सोच से उन्हें वैराग्य हुआ, और राजपाट से मन हट गया। सदा वन की सोचने लगे। एक दिन उन्होंने अर्जुन से कर्ण की चर्चा की, और दुःख करने लगे।

अर्जुन ने कहा, "महावीर कर्ण का परिचय हमें मालूम होता, तो यह महाभारत-युद्ध हम लड़े ही नहीं होते। जब सब निर्णय हो चुका है, परिचय हमारे ही हितैषियों ने—सगे-सम्बन्धियों ने—हमें नहीं बताया, तब अब अधिक शोक व्यर्थ, और वन-गमन तो बिलकुल अपरिणामदर्शिता है।"

भीम ने कहा, "अर्जुन की बात सही है। धर्मराज स्वभाव से तपस्वी हैं, इसलिए झुकाव वन की तरफ होता है। हमारे कर्ण ही एक अपने नहीं थे, हमारे सभी सम्बन्धी और वंशज मारे गये हैं। जब महारण-ताण्डव समाप्त हो चुका है, तब प्रजा की रक्षा कर क्षत्रिय-धर्म का पालन ही उचित होगा।"

इसी समय भगवान् व्यास वहाँ आये। महाराज युधिष्ठिर ने पैर धोकर उन्हें बैठने का आसन दिया। व्यासजी आसन ग्रहण कर, युधिष्ठिर को उदास देखकर, पूछकर कारण मालूम कर, बोले, "क्षत्रिय को कभी अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहिए। अपनी समझ से तुम एक अन्याय के विरुद्ध लड़कर विजयी हुए हो। अब तुम अपने अर्जित फल का भोग करो, और इसमें भी अपना आदर्श रखो।" इसके बाद व्यासजी और-और प्रसंग उठाते हुए लोक तथा धर्म की बातें समझाते रहे।

व्यासजी के उपदेश से युधिष्ठिर की राज्य करने की इच्छा हुई। उनकी मर्जी होने पर पाण्डवों ने विजय के हर्ष में नगर को सजाने की आज्ञा दी। राहों में तोरण लगाये गये। पताकाएँ उड़ने लगीं। मंगल-कलश रखे गये। लोग गीत, वाद्य, नृत्य आदि करने लगे। भाट स्तुतियाँ रचकर राजा को प्रसन्न करने की सोचने लगे। तरह-तरह के खेलों के दिन नियत हुए। देवियाँ शंख बजाकर अभिनन्दन करने लगीं। कुमारियाँ टोली में बँधकर गीत गाने लगीं। ब्राह्मण दान पाने की आशा से प्रसन्न हुए।

निर्धारित समय पर महाराज युधिष्ठिर राजभवन में पधारे। बाहर नगर के सामान्य और साधारण जन एकत्र थे। उनकी सभा में पहुँचकर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दान देना शुरू किया। मुक्तहस्त से हुआ उनका दान पाकर ब्राह्मण लोग बहुत प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर का जय-जयकार करने लगे।

इसके बाद युधिष्ठिर पूरब को मुँह करके राजसिंहासन पर बैठे। महाराज युधिष्ठिर के सामने सुनहली चौकियों पर श्रीकृष्ण और सात्यकि बैठे। दोनों ओर

भीम और अर्जुन रत्नजटित आसनों पर, नकुल और सहदेव के साथ बैठे। महात्मा विदुर और धौम्य योग्य, ऊँचे आसन पर बैठे। अभिषेक के नियमानुसार युधिष्ठिर ने सफेद फूल, पृथ्वी, सोना, चाँदी और रत्न छुए। इसके बाद कृष्ण की आज्ञा से पुरोहित धौम्य ने महाराज युधिष्ठिर के राजतिलक का आयोजन किया। तीर्थ-जल, घट, सुगन्ध, पुष्प, खील, घी, शहद, दूध आदि मँगवाकर वेदी के सामने व्याघ्र-चर्म पर महाराज युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी को भद्र आसन में बैठाला। फिर हवन कराने लगे। इस समय कृष्ण पांचजन्य शंख बजाने लगे। उनके साथ अन्य लोग भी अपना-अपना शंख बजाने लगे। ब्राह्मण उच्च स्वर से वेदमन्त्रोच्चार करने लगे। इसी समय महाराज युधिष्ठिर को राजतिलक किया गया। उपस्थित समस्त जन जय-जयकार करने लगे।

महाराज युधिष्ठिर ने भीम को युवराज, अर्जुन को राज्य-निरीक्षक, नकुल को सेनापति और सहदेव को अपना शरीर-रक्षक, तथा महामति विदुर को मन्त्री और धौम्य को पुरोहित बनाया।

फिर सभा विसर्जित कर युधिष्ठिर राजमहल में गये, और महाराज धृतराष्ट्र के चरण छुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया। "राजमहल, नगर और राज्य के कार्य महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर किये जायें," महाराज युधिष्ठिर ने कहा। फिर वह गान्धारी के चरण छूने गये। गान्धारी ने भी उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। महाराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन के भवन में भीम को रहने की आज्ञा दी, दुःशासन के भवन में अर्जुन को; धृतराष्ट्र के दूसरे लड़कों के भवन नकुल और सहदेव को रहने के लिए दिये।

इस प्रकार राज्य की व्यवस्था कर धर्मराज युधिष्ठिर कृष्ण को लेकर महामति भीष्म के दर्शन करने गये। उस समय पितामह भीष्म देश के बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों से घिरे थे। उनके चारों ओर त्याग की ज्योति जल रही थी। देखकर युधिष्ठिर बहुत लज्जित हुए। कृष्ण से कहा, "माधव, मैं पितामह भीष्म से मिलने की हिम्मत नहीं कर रहा। मुझे लज्जा आ रही है।" तब कृष्ण आगे बढ़े। भीष्म को अभिवादन कर कहा, "महाराज, युधिष्ठिर आपके दर्शनों के लिए आये हुए हैं। वह बहुत लज्जित हैं कि उनके कारण उनके परिवार का नाश हुआ।" भीष्म मुस्कराये। कहा, "माधव, इसमें युधिष्ठिर क्या दोष है? उन्होंने छिपकर उन्हें नहीं मारा। सम्मुख समर में विजयी होकर उन्होंने अपना धर्म रखा है। अब धर्मानुसार वह राजा हैं ही। उन्हें यह धर्म भी रखना है। वह लज्जित क्यों होते हैं?" भीष्म की बात से युधिष्ठिर को साहस हुआ। वह भीष्म के सामने आये, और झुककर प्रणाम करके उनके पदस्पर्श किये। भीष्म ने स्नेह की दृष्टि से उन्हें देखते हुए कुछ उपदेश दिये।

अनुशासनपर्व

भीष्म की सीख

धर्मराज युधिष्ठिर के मन में आया, राज्य तो फिर से स्थापित हुआ, परन्तु अनुशासन की शिक्षा देनेवाला योग्य अभिज्ञ जन दूसरा भीष्म के सिवा कोई नहीं। इसलिए भीष्म से इसकी शिक्षा लेनी चाहिए। भीष्म बहुदर्शी, बहुश्रुत और बहु-पठित हैं; यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "पितामह, हमें अनुशासन की उचित सीख दीजिए। आपके सिवा कोई इस योग्य मुझे नहीं नजर आता।"

भीष्म ने, युधिष्ठिर के आग्रह पर, अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मोक्ष-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, राजधर्म, राज्यानुशासन आदि की दीं, इनसे महाभारत का अनुशासनपर्व ओत-प्रोत है। युधिष्ठिर एकनिष्ठ होकर भीष्म की गम्भीर, उदार, प्रभावशालिनी शिक्षाएँ सुनते रहे।

भाग्य और कर्म के प्रश्न पर भीष्म ने कहा, "भाग्य और कर्म में भेद नहीं। मान लो, भाग्य से कोई राजपुत्र हुआ, पर उसका राज्य किसी दूसरे वीर ने युद्ध करके छीन लिया, अब, जिसने छीना, उसके साथ कर्म भी है और भाग्य भी; जिसका राज्य गया, उसका कर्म न रहने के कारण भाग्य भी गया। यहाँ निश्चित है कि कर्म ही भाग्य है। पुरुषार्थ कर्म को प्रधानता देता और भाग्य में परिणत होता है। राजा का कर्म है—वह अपनी पूरी शक्ति से तन, मन और धन से प्रजा का पालन करे। प्रजा की सुविधा के लिए जान हथेली पर लिये रहे। प्रजा को शिक्षित करे, व्यवसाय, शिल्प और कला को प्रश्रय दे, इनके लिए राजमार्ग, बाजार, शिक्षणालय आदि निर्मित करे। समस्त वस्तु और विषयों पर समदर्शिता रखे, राज्य के लिए सबकी आवश्यकता समझे। प्रजा का जाति-धर्म के विचार से परे पहुँचकर समभाव से पालन और शासन करे। राज्य के उत्पातों से, चोरी-डाके आदि से, प्रजा की रक्षा करे। इस तरह, पुरुषार्थ का परिचय देने पर, राजा प्रजा-जनों का प्रिय होता है। प्रजा की प्रशंसा से मृत्यु के बाद वह स्वर्ग-सुख प्राप्त करता है। प्रजाजनों के मनोलोक से गिर न पाने के कारण राजा स्वर्गलोक से च्युत नहीं होता। समस्त विद्याओं का आधारभूत होने के कारण राजा पर अविद्या का प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार पुरुषार्थ स्वयं भाग्य में परिणत होता है—कर्म ही अदृष्ट का उत्पादक है।" यह कहकर भीष्म कुछ देर के लिए मौन हो गये। महाराज युधिष्ठिर भीष्म के दिये उपदेश के बोध में डूबे हुए महानन्द का अनुभव कर रहे थे। फिर प्रकृतिस्थ होने पर भीष्म को प्रणाम कर चले।

भीष्म का प्राण-त्याग

बहुत दिनों तक धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म के पास आते-जाते रहे। क्रमशः उत्तरायण का समय आया। भीष्म की इच्छा-मृत्यु थी। वह सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण छोड़ेंगे, प्रतिज्ञा कर चुके थे। अब वह समय आया। धर्मराज युधिष्ठिर पुरोहित के

हाथ संस्कार-अग्नि और वाहकों से घी, रत्न, रेशमी वस्त्र, चन्दन, पुष्प, माल्य, यव-तिल, कुश, अगरु और चन्दन की लकड़ी लिवाकर महाराज धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और नगर के गणमान्य जनों को आगे कर भाइयों के साथ चले। वहाँ जाकर देखा—भीष्म ऋषियों और मुनियों से पहले की तरह घिरे हुए हैं। यथासमय इन सबको आकर प्रणाम करते देखकर भीष्म ने कहा, "ईश्वर तुम लोगों का कल्याण करे; अब मेरा समय आ गया है। 58 दिन तक शरशय्या में रहते बड़ा कष्ट हुआ है। यह समय मुझे एक शताब्दि से लम्बा जान पड़ा है।"

धृतराष्ट्र और पाण्डव विषण्ण खड़े थे। भीष्म यह देखकर बोले, "हे धृतराष्ट्र, तुम क्षात्रधर्म की कुल बातें जानते हो। पुत्रों के निधन से तुम्हें असह्य कष्ट हुआ है। पर धर्म का मुँह देखकर यह कष्ट सहन करते हुए संसार का बन्धन मुक्त करो। इससे अधिक मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता। पाण्डवों के प्रति किसी प्रकार की अनिष्ट-चिन्तना न करना। वे धार्मिक हैं, और बराबर गुरुजनों के लिए श्रद्धा-सम्पन्न रहे हैं। राज्य के वे ही योग्य हैं।" फिर एक बार समवेत ऋषि-मुनियों की ओर उन्होंने दृष्टि डाली। ऋषि लोग सजग हो गये। फिर महावीर, महारथ, अप-राजित योद्धा, चिर-ब्रह्मचारी भीष्म प्राणायाम द्वारा प्रयाण करने को उद्यत हुए। उन्होंने मूलाधार में दृष्टि की, और क्षण-मात्र में उन्हें ज्योति-मण्डल देख पड़ा। अपार रहस्य-सृष्टि को देखते हुए भीष्म जहाँ से आये थे, वहाँ पहुँच गये। स्वर्ग में उनके स्वागत की बड़ी तैयारियाँ थीं। देव-कन्याएँ मंगल-गीत गाती हुई भीष्म को ले गयीं।

पाण्डवों ने देखा, पितामह का शरीर निष्प्राण हो गया है। पाण्डव इस महात्मा, नर-श्रेष्ठ के प्रयाण से दुखी होकर रोने लगे। फिर चन्दन की चिता लगायी गयी, और शर-विद्ध शव को कीमती वस्त्रों से ढककर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने उठा-कर चिता पर रखा। फूल-मालाओं से सुसज्जित शव पर नगर के सहस्रों नारी-नर अपने-अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे। फिर युधिष्ठिर ने चिता में अग्नि-संयोग किया। आग जल उठी। भीम, अर्जुन आदि वीर पितामह की दिव्य शिक्षा और अथाह ज्ञान की याद कर आँसू बहाते रहे। कुछ देर बाद चिता जल गयी। शव भस्मीभूत हो गया। नगर के लोग बड़ी श्रद्धा से चिता की राख लेने लगे। इस तरह प्रायः समस्त भस्म समाप्त हो गया।

व्यासजी का उपदेश

भीष्म के प्रयाण से युधिष्ठिर का चित्त सदा उदास रहने लगा। राज्य की देख-भाल ढीली पड़ रही थी, इससे भीम-अर्जुन भी चिन्तित रहते थे। इसी समय हस्तिनापुर में व्यासजी का आगमन हुआ। धर्मराज को वीतराग देखकर व्यासजी ने कहा, "महाराज, आप धार्मिक हैं, और धर्म की अन्यान्य धाराएँ आपको मालूम हैं। आपकी उदासी वास्तव में वैराग्यजन्य नहीं कही जा सकती। यह एक प्रकार की अकर्मण्यता है, जो सत्त्वगुण न होकर तमोगुण है। इस उदासी के अँधेरे को कर्म के प्रकाश से दूर कीजिए। आपको अभी राज्य का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व पूरा करना है। इसी तपस्या के बाद विश्राम प्राप्त कीजिए, इस समय युद्ध के कारण राजकोष

खाली होगा। विना अर्थ के राज्य का मंगल नहीं किया जा सकता। मेरे आने का एक कारण यह भी है कि अर्थ का सन्धान दूँ। मुझे एक बहुत बड़े अर्थ का पता है। वहाँ से आपको इतना धन मिलेगा कि आपके समस्त कार्य उससे पूरे हो जायेंगे, फिर भी वह धन समाप्त न होगा। एक समय महाराज मरुत ने हिमालय-प्रदेश में बहुत बड़ा यज्ञ किया। उन्होंने इतना धन ब्राह्मणों को दिया कि वे लोग सब ले नहीं जा सके। वह पड़ा हुआ धन इस समय मिट्टी के नीचे है। अभी इतना ही पता बता सकता हूँ। यदि आपमें से कोई वहाँ जाकर भगवान् शंकर को प्रसन्न कर सके, तो उसे वे उस गड़े धन का पता बता देंगे।" यह कहकर व्यासजी चले गये।

श्रीकृष्ण बहुत दिनों से द्वारका नहीं गये थे; अपने पिता, पुत्र और पत्नियों को देखना चाहते थे। द्वारका से बुलावा भी आया था। इसलिए बड़े नम्र शब्दों में उन्होंने महाराज युधिष्ठिर से बिदा माँगी, और शीघ्र लौटने का वचन देकर द्वारका-पुरी के लिए प्रस्थान किया।

अश्वमेधपर्व

परीक्षित का जन्म

व्यासजी की अर्थवाली बात पर एक दिन पाण्डवों की सभा हुई। विचार होने लगा कि हिमालय जाकर महाराज मरुत के धन के लिए महादेव की तपस्या कर कौन उन्हें प्रसन्न करेगा; बिना इस धन के न तो राज्य का सुचारु रूप से संचालन किया जा सकता है, न व्यासदेव और पितामह भीष्म के बताये अश्वमेध-यज्ञ का विधान ही पूरा किया जा सकता है। बातचीत के प्रसंग पर भीम ने उठकर कहा, "महाराज, मरुत के धन के लिए देवाधिदेव महादेव की उपासना मैं करूँगा।" भीम की प्रतिज्ञा सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, और भीम को उत्तराखण्ड जाने की आज्ञा दी। सहदेव ने कहा, "इस कार्य के लिए हम सबको साथ चलकर रहना चाहिए। भीम का अकेला जाना उचित नहीं मालूम देता।" सहदेव की यह सम्मति सबको पसन्द आयी। इसके अनुसार राज्य का भार धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को सौंपकर समस्त पाण्डव उत्तराखण्ड की ओर चले। हिमालय पहुँचकर भीम ने शंकर की अभ्यर्थना कर कुछ ही दिनों में गड़े हुए धन का पता लगा लिया। पता मालूम होने पर वेदज्ञ धौम्य ने वहाँ पूजा करायी, और खोदने की आज्ञा दी गयी। कुछ ही परि-श्रम के बाद वह अपार धन-राशि मिल गयी। बड़े-बड़े पात्र स्वर्ण से भरे हुए मिले। कितने ही हाथी और घोड़ों पर वह धन लादा गया।

अश्वमेध का समय निकट जानकर, धर्मराज के अनुरोध के अनुसार श्रीकृष्ण-बलराम, सुभद्रा, प्रद्युम्न और कृतवर्मा आदि हस्तिनापुर आये। हस्तिनापुर में

उत्सव की शहनाई बजने लगी। इसी समय उत्तरा के पुत्र पैदा हुआ। पुत्र होते ही कुल आनन्द शोक में बदल गया। सब लोगों ने सुना कि उत्तरा के मृत बालक हुआ है। पाण्डवों के कुल में श्रद्धा-तर्पण करनेवाला भी कोई नहीं बचा था, इसी बालक की बाट सब लोग जोह रहे थे। मरा बालक होने पर सुभद्रा पछाड़ खाकर कृष्ण के पैरों पर गिर पड़ीं, द्रौपदी भी चीख मारकर रोने लगीं। महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पाण्डव वहाँ नहीं थे। कृष्ण समझ गये कि अश्वत्थामा के ब्रह्मशिरा बाण के प्रभाव से मृत बालक हुआ है। कृष्ण आचमन करके उस बालक को गोद में लेकर बैठे, और कहा, "हे भद्रे! मैंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखायी, कभी झूठ नहीं बोला, सत्य से मेरा सम्बन्ध नहीं छूटा, यह अगर सच है, तो अभिमन्यु का मृत पुत्र जी जाय; यदि शत्रु को जीतकर भी मैंने हिंसा नहीं की, तो यह शिशु जी जाय।" श्रीकृष्ण के मुख से ये शब्द निकले ही थे कि शिशु जी उठा। सब लोग प्रसन्न हो गये। इस प्रकार जीने के कारण बच्चे का नाम परीक्षित रखा गया।

परीक्षित के पैदा होने के एक महीने बाद पाण्डव हिमालय से वापस आये। राजधानी और घर के सब समाचार पाकर, यह मालूम कर कि परीक्षित का जन्म हुआ है, और जन्म का यह विवरण है, पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती की चरण-वन्दना की, कृष्ण को गले लगाया, और भीम की तपस्या और धन की प्राप्ति का हाल कहा।

अश्वमेध-यज्ञ

इसी तरह कुछ समय और पार हुआ। एक दिन भगवान् व्यास फिर पधारे। धर्मराज ने बड़े आदर से उन्हें आसन पर बैठाला। उनके बैठने पर बड़े विनम्र स्वर में पूछा, "भगवन्, अश्वमेध की तिथि भी निश्चित कर दीजिए, ताकि शुभ कार्य का अनुष्ठान कर दिया जाय।" व्यासजी ने चैत्र की पूर्णिमा निश्चित करते हुए कहा, "अश्वमेध के घोड़े की परीक्षा किसी अश्व-विद्या-विशारद ब्राह्मण से कराइयेगा।"

व्यासजी उपदेश देकर चले गये। अश्वमेध की तैयारियाँ होने लगीं। ब्राह्मणों ने एक अत्युत्तम श्यामकर्ण घोड़ा निश्चित किया। घोड़े के मस्तक पर बाँधने के लिए स्वर्ण-पत्र खुदवाया गया कि महाराजाधिराज हस्तिनापुराधीश युधिष्ठिर अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं, जिन्हें उनका एकच्छत्राधिकार स्वीकृत न हो, वे घोड़े को पकड़कर युद्ध से अपना फैसला कर लें। यज्ञ की और सब सामग्रियाँ एकत्र की गयीं। महारथ अर्जुन घोड़े के रक्षक के रूप से साथ किये गये। एक फौज साथ लेकर वह घोड़े का अनुसरण करते रहेंगे। इच्छानुसार भगता हुआ घोड़ा राजमार्ग से न भगकर बीहड़ रास्तों से भगता है, तब पीछा करनेवाले रक्षक रथ पर बैठकर नहीं चल सकते, इसलिए अर्जुन घोड़े पर सवार हुए। स्वर्ण-पत्र बाँधकर पूजोपरान्त घोड़ा छोड़ दिया गया। अर्जुन तथा अन्य रक्षक साथ-साथ चले। नगर के लोग नगर की सीमा तक उत्साहवर्धन के लिए गये, और वहाँ से अर्जुन को हर्ष-ध्वनि से अभिनन्दित कर घर लौटे। भीम तथा नकुल को राज्य की देख-रेख का काम दिया गया। सहदेव आगत अतिथि महाराजों के आदर-सत्कार के लिए रहे।

नदी-नाले, अरण्य-प्रान्तर, पहाड़-उपत्यका, देश-प्रदेश विचरता हुआ घोड़ा त्रिगर्त-देश में हाजिर हुआ। वहाँ के राजकुमार पाण्डवों के लिए दुर्विनीत थे। अश्मेध का घोड़ा जानकर उन लोगों ने पकड़ लिया। घोड़े के पकड़े जाने पर पहले अर्जुन ने बहुत समझाया, पर राजकुमारों ने बात न मानी। सबसे बड़े केतुवर्मा थे। उन्होंने अर्जुन पर शर-वर्षा शुरू कर दी। अर्जुन पहले ढीले-ढीले लड़ रहे थे। उसी समय एक तीर अर्जुन की मुट्ठी में लगा, जिससे उन्हें चोट आ गयी, इससे कुछ असावधान हो गये। देखकर केतुवर्मा हँसा। उसके हँसते ही अर्जुन की देह में बिजली दौड़ गयी। उन्होंने गाण्डीव उठाकर तीक्ष्णतर तीरों से शत्रु-पक्ष को पाट दिया। अर्जुन की चोटें सँभालना मुश्किल हो गया। कितने ही वीर खेत रहे। देखकर केतुवर्मा दबा, गिड़गिड़ाया, वश्यता स्वीकृत की। तब अर्जुन ने उसे प्रबोध दिया, और घोड़ा छोड़ देने के लिए कहा। घोड़ा छोड़ दिया। अर्जुन उसे अश्वमेध-यज्ञ में आने के लिए सभ्यतापूर्वक आमन्त्रित कर घोड़े के साथ आगे बढ़े।

यहाँ से बढ़ता हुआ घोड़ा कई प्रदेश पार करके प्राग्ज्योतिषदेश में पहुँचा। यहाँ भगदत्त के पुत्र महाराज वज्रदत्त राज्य कर रहे थे। भगदत्त अर्जुन के हाथ कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये थे, इसलिए वज्रदत्त पाण्डवों से दुश्मनी मानता था। उसने घोड़ा पकड़ा। अपनी सेना के साथ, हाथी पर सवार वज्रदत्त अर्जुन पर टूटा। अर्जुन भी डटकर युद्ध करने लगे। जब वज्रदत्त ने हाथी को अर्जुन के बिलकुल पास पहुँचा दिया, तब उन्होंने एक ऐसा बाण मारा कि हाथी वहीं बैठ गया, उसका मस्तक भेदकर तीर भीतर घुस गया था। थोड़ी देर में वह मर गया। अर्जुन को युधिष्ठिर की आज्ञा थी कि घोड़े को पकड़ने पर युद्ध में वह किसी राजा का वध न करें। अर्जुन चाहते, तो वज्रदत्त का वध कर सकते थे, पर उन्होंने हाथी के मर जाने पर उस पर तीर नहीं चलाया। वज्रदत्त समझ गया। उसने अर्जुन की वश्यता स्वीकार की। उसे हस्तिनापुर, अश्वमेध-यज्ञ में, आने का निमन्त्रण देकर अर्जुन घोड़े के साथ दूसरी तरफ मुड़े।

वहाँ से बढ़ता हुआ घोड़ा सिन्धदेश में पहुँचा। जयद्रथ के वध की भावना से सिन्धदेशवालों ने भी घोड़े को पकड़ा। अर्जुन वहाँ बहुत उद्दण्ड होकर लड़े। बहुत बड़ी सेना अर्जुन के युद्ध में निहत हुई। दुर्योधन की बहन दुःशला सिन्धदेशाधिपति जयद्रथ को ब्याही थी। वह गोद में अपने पौत्र को लेकर आयी, और कहा, "भाई, तुम्हारे आने की खबर से मेरा पुत्र सुरथ जमीन पर गिरकर मर गया है, यह उसका लड़का मेरा पोता है, इस पर दया करो।" अर्जुन दुःशला को देखकर बहुत लज्जित हुए, वहीं गाण्डीव रख दिया, और बहन को प्रबोध देने लगे।

घोड़ा यहाँ से देश-देशान्तर भ्रमण करता हुआ मणिपुर पहुँचा। वहाँ की राजकुमारी चित्रांगदा अर्जुन की पत्नी थी। उनका लड़का बभ्रुवाहन वहाँ का राजा था। अपने पिता अर्जुन को आया हुआ जानकर ब्राह्मणों को आगे कर वह मिलने के लिए आया। अर्जुन को बभ्रुवाहन का यह तरीका पसन्द नहीं आया। उन्होंने कहा, "हम महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध के घोड़े के साथ यहाँ आये हैं। तुम्हारा यह बर्ताव मुझे पसन्द नहीं आया।" बभ्रुवाहन पिता से कैसे लड़े, कुछ समझ नहीं सका। खड़ा सोच रहा था कि अकस्मात् नाग-कन्या उलूपी वहाँ

उपस्थित हुई, और बभ्रुवाहन से कहा, "बेटा, मैं तुम्हारी सौतेली माँ हूँ। तृतीय पाण्डव इस भूमि को निर्वीर्य न समझें, इसलिए मैं आज्ञा देती हूँ, तुम अश्वमेध का घोड़ा पकड़ो, और युद्ध करो।"

उलूपी की बात से बभ्रुवाहन ने घोड़ा पकड़ लिया। फलतः अर्जुन के साथ उसके युद्ध की नौबत आयी। बभ्रुवाहन बड़ा निपुण योद्धा था। लड़ते-लड़ते उसने अर्जुन के छक्के छुटा दिये। पहले तो अर्जुन ढीले हाथों लड़ रहे थे; पर बभ्रुवाहन को तेज पड़ता देखकर तेज होने लगे। पर इससे भी बभ्रुवाहन परास्त नहीं हुआ। उसने अर्जुन के सारे तीर व्यर्थ कर दिये। उलूपी खड़ी हुई देख रही थी। इसी समय एक तीर उसने ऐसा मारा कि तीर वर्म छेदकर अर्जुन की छाती में चुभ गया। देखते-देखते अर्जुन निष्प्राण हो गये। बभ्रुवाहन भी थका हुआ था, प्रहार करने के बाद वह भी मूर्च्छित हो गया। खबर चित्रांगदा के पास पहुँची। वह दौड़ी हुई आयी, और अर्जुन को निष्प्राण देखकर पैरों पड़कर रोने लगी। अब तक बभ्रुवाहन की मूर्च्छा छूट चुकी थी। उसने माँ को देखकर सारा हाल कहा। वहीं उलूपी खड़ी थी। चित्रांगदा उलूपी को पकड़कर रोने लगी। उलूपी के पास मृतसंजीवनी मणि थी। उसने बभ्रुवाहन को देते हुए कहा, "वत्स, यह मणि अपने पिता के क्षत स्थान पर रख दो, तो वह जी जायँगे।" बभ्रुवाहन ने अर्जुन के हृदय पर वह मणि रख दी। कुछ देर बाद पूर्ण स्वस्थ होकर अर्जुन ने आँखें खोल दीं। उन्हें मालूम हुआ, वह गहरी नींद के बाद जगे हैं। बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा और नागकन्या उलूपी वहीं खड़ी थीं। चित्रांगदा ने बड़े आदर से अर्जुन को राजधानी चलने के लिए कहा, परन्तु अर्जुन ने कहा, "इस समय मैं अश्वमेध के अश्व को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकूँगा, इसके लिए मैं तुम लोगों से क्षमा चाहता हूँ।" उलूपी वहीं अदृश्य हो गयी। अर्जुन ने बभ्रुवाहन को साथ ले लिया।

मगधराज, चेदिराज्य होता हुआ अश्व हस्तिनापुर की तरफ लौटा। अर्जुन अश्व के साथ-साथ चले। मार्ग में अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। कई जगह अर्जुन को बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। परन्तु सब जगह वह बचते गये, और परिणाम उनके लिए अच्छा रहा। पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर, भारत तथा भारत से दूर तक के देशों में घोड़े की टाप पड़ी। अन्त में सकुशल घोड़ा हस्तिनापुर लौटा। हस्तिनापुर में घोड़े के पहुँचने की खबर होते ही लोग मारे आनन्द के पागल हो गये। अर्जुन का बड़ा भारी स्वागत किया।

देश-देशान्तर के राजा धन-रत्न लेकर एकच्छत्र सम्राट् युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ में उपस्थित होने लगे। सब राजाओं के लिए युधिष्ठिर ने आदर-स्वागत का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। पाण्डवों की मेहमानदारी से राजा लोग बहुत प्रसन्न हुए।

यज्ञ-मण्डप की शोभा देखते ही बनती थी। तमाम राजे ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठे हुए थे, बीच में महाराज युधिष्ठिर वैदिक ब्राह्मणों से घिरे हुए यज्ञ कर रहे थे। यथाविधि दान-सम्मान और कर्मकाण्ड से यज्ञ पूरा किया गया। राजाओं तथा सज्जन नागरिकों के मनोरंजनार्थ अनेक प्रकार के खेल-तमाशे किये गये थे, अनेक प्रकार के प्रदर्शन थे। सब लोग पाण्डवों की सज्जनता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। लाखों कण्ठों के जय-जयकार से यज्ञ समाप्त हुआ।

आश्रमवासिकपर्व

महाराज धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और विदुर का वानप्रस्थ-ग्रहण

कुरुक्षेत्र की लड़ाई समाप्त होने पर पुत्रों के शोक से धृतराष्ट्र ने एक ही वक्त भोजन करना शुरू किया, उन्हें देखकर पतिव्रता गान्धारी भी वैसा ही करने लगीं। वह पलँग छोड़कर जमीन पर लेटने लगीं, दूध के फ़ेन-जैसी सफेद और कोमल सेज छोडकर हिरन का चमड़ा बिछाकर सोने लगीं। बातचीत के लिए केवल संजय और कृपाचार्य थे। धृतराष्ट्र की सेवा यों सभी पाण्डव करते थे। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि पाण्डव-महिलाएँ भी उनकी आज्ञा की बाट जोहती थीं। फिर भी धृतराष्ट्र के मन में एक काँटा खटकता रहा। भीम को धृतराष्ट्र के मनोभाव अच्छे नहीं लगते थे।

इसी तरह पन्द्रह साल बीत गये। एक दिन धृतराष्ट्र संजय तथा कृपाचार्य से दुर्योधन की बातचीत करते-करते आवेश में आ गये। दुर्योधन और दुःशासन के रूप, बल, बुद्धि, विवेक, शिष्टता, सभ्यता आदि की तारीफ करने लगे। भीम उधर से जा रहे थे। उन्होंने सुना। उन्हें अच्छा न लगा। उन्होंने कहा, "मैंने इन्हीं हाथों से अधम दुर्योधन और दुःशासन जैसों का वध किया है।"

भीम का प्रचार धृतराष्ट्र को अच्छा न लगा। बहुत बड़ा अपमान मालूम दिया। गान्धारी को भी चोट लगी। वह चुपचाप आँसू पोंछकर रह गयीं।

इसी के कुछ बाद भगवान् व्यासजी का आगमन हुआ। उन्होंने राजाओं के वानप्रस्थ धर्म का धृतराष्ट्र आदि को स्मरण दिलाया। धृतराष्ट्र ऊबे थे ही। एकान्त में गान्धारी से सलाह करके हस्तिनापुर की राजधानी छोड़कर वनवास करने की इच्छा प्रकट की। महाराज युधिष्ठिर सुनकर धृतराष्ट्र के पास आये, और बड़े विनीत कण्ठ से एकाएक महाराज धृतराष्ट्र से वन जाने का कारण पूछा। साथ ही यह इच्छा भी जाहिर की कि महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा हो, तो राज्य उनके पुत्र युयुत्सु को देकर वह भी उनकी सेवा के लिए साथ चलें। युधिष्ठिर की इस नम्रता पर धृतराष्ट्र मुग्ध हो गये। उन्होंने अपना दुःख दबाकर कहा, "वत्स युधिष्ठिर, अभी तुम राज्य करो, हमारा समय हो गया है,हमने पन्द्रह साल से एक वक्त भोजन करके साधना करते हुए वन के अनुकूल अपने को तैयार कर लिया है, हमें जाने दो। हम हृदय से तुम्हें आशीर्वाद देते हैं।"

धृतराष्ट्र के वन जाने की बात सुनकर नगर के निवासी राजमहल में आये, और महाराज धृतराष्ट्र को घेर लिया। धृतराष्ट्र को मालूम होने पर उन्होंने विनीत स्वर से कहा, "भाइयो, महाराज शान्तनु से लेकर आज तक हमारे वंशजों ने आप लोगों की जो सेवाएँ की हैं, जिस योग्यता से राज्य की संचालना की है, शत्रुओं का मुकाबला किया है, आप लोग जानते हैं। मुझसे जहाँ तक हो सका, मैंने आप लोगों की सेवा की है। अब महाराज युधिष्ठिर आप लोगों के सुयोग्य शासक हैं। उनसे आप लोग प्रसन्न रहेंगे। मैं बुड्ढा हुआ हूँ। अब मेरा धर्म यह है

कि मैं परलोक का रास्ता साफ करूँ। आप लोग सच्चे हृदय से मुझे आज्ञा दीजिए कि मेरा अन्त सत्य में हो।"

महाराज धृतराष्ट्र की बात सुनकर नगरवासी रोने लगे। बोले, "महाराज, हमें एकाएक छोड़े चले जा रहे हैं। हम महाराज के किसी काम न आ सके। हमारी सेवाएँ ग्रहण करके महाराज तपस्या के लिए जायँ, तो हमें बोध हो। ऐसे हमारा जी नहीं मानता।"

नगरवासियों का आग्रह देखकर धृतराष्ट्र ने कहा, "मैं भरसक इसका प्रयत्न करूँगा। मैं यथारीति घर छोड़ने से पहले श्राद्ध करूँगा, तब मुझे आप लोगों के सहयोग की आवश्यकता होगी। आप लोग कृपा कर पधारें।" नगरवासी सम्मान-प्रदर्शन करते हुए अपने-अपने घर गये।

यहाँ महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर के पास कहला भेजा, "वानप्रस्थ ग्रहण करने से पहले हमें अपने माता-पिता और पुत्रों का श्राद्ध करना होगा, इसके लिए अर्थ चाहिए।" महाराज धृतराष्ट्र की इच्छा समझकर युधिष्ठिर ने अर्थ देने की आज्ञा निकाल दी। लेकिन भीम ने अर्थ न दिया। उलटे कहा, "श्राद्ध भीष्म-द्रोण आदि का हो, तो ठीक है। वे इस योग्य हैं। दुर्योधन और दुःशासन का श्राद्ध करने से क्या फल होगा ? इन्हें तो नरक में ही सड़ने देना चाहिए।" भीम की बात धृतराष्ट्र तक पहुँची। उन्हें और भी क्षोभ हुआ। महाराज युधिष्ठिर को भीम का मजाक मालूम हुआ, तो उन्होंने भीम को बुलाकर बहुत धिक्कारा। अस्तु, श्राद्ध के लिए यथेष्ट धन बाद को दिया गया, और धृतराष्ट्र ने श्राद्ध का दिन स्थिर कराया।

दिन निश्चित होने पर महाराज धृतराष्ट्र ने श्राद्ध-कर्म पूरा किया, और ग्यारह दिन तक अवारित हस्त से ब्राह्मणों को दान देते रहे। इस प्रकार कार्तिक की पौर्णमासी तक वह दानादि कार्य में लगे रहे।

इसके बाद मृगचर्म पहनकर, शास्त्र-रीति से अग्निहोत्र करके गान्धारी के साथ वन को चलने के लिए महाराज धृतराष्ट्र राजभवन से बाहर निकले। नगर के समस्त लोग उस समय राजद्वार पर एकत्र थे। कुल पाण्डव, विदुर, संजय, कृपाचार्य, धौम्य, महाराज धृतराष्ट्र को छोड़ने के लिए आँखों में आँसू भरे हुए खड़े थे। आँखों में पट्टी बाँधे हुए गान्धारी का हाथ पकड़कर पाण्डव-माता कुन्ती धृतराष्ट्र के पीछे-पीछे जा रही थीं। इनके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदि रानियाँ थीं। नगर के मार्ग के दोनों ओर भीड़ लगी हुई थी। स्त्रियाँ और बच्चे अटारियों पर चढ़े देख रहे थे।

महाराज धृतराष्ट्र वन के लिए चले, तब युधिष्ठिर ने कुन्ती से कहा, "माता, अब आप लौट जाइए, नहीं तो आपको कष्ट होगा।"

कुन्ती ने कहा, "बेटा, अब कुरु-वंश में तुम्हीं लोग हो। अच्छी तरह राज्य का भोग करो। द्रौपदी को आदर से रखना, मेरा कल्याण अब इसी में है कि मैं देवी गान्धारी की सेवा करूँ। अब मैं भी इनके साथ वन जाऊँगी।"

कुन्ती की बात सुनकर पाण्डव रोने लगे। द्रौपदी और सुभद्रा भी उनके साथ चलने को तैयार हुईं। तब कुन्ती ने कहा, "देखो, तुम लोगों ने अभी तक वनवास

ही किया है। राजसुख नहीं भोगा। मैं तुम्हारे पिता के समय बहुत सुख भोग चुकी हूँ। अब मेरी इच्छा नगर में रहने की बिलकुल नहीं। मुझे जाने दो, तुम लोग लौट जाओ।" महात्मा विदुर भी नगर त्यागकर चले। धृतराष्ट्र को किसी प्रकार का दुःख न पहुँचे, इसके लिए वह भी साथ-साथ चले।

महाराज धृतराष्ट्र उस दिन गंगा-किनारे रहे। यथाविधि यज्ञ आदि कर्म करके कुशासन पर लेटे। इस प्रकार कुछ दिन बिताकर कुरुक्षेत्र की ओर चले। वहाँ महर्षि शतयूप से आध्यात्मिक शिक्षा ली, और कठिन-से-कठिन तपस्या करने लगे।

तपस्या करते-करते कुछ समय बीता। महात्मा विदुर उग्र-से-उग्रतर तप करने लगे। वह ऐसी जगह रहने लगे, जहाँ मनुष्य मुश्किल से जा सकता था। खाना-पीना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया। उनका उग्र तप देखने के लिए कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण वहाँ जाते थे और उन्हें प्रणाम कर लौट आते थे। अन्न-जल विदुर ने छोड़ ही दिया था, बैठे बैठे ईश्वर-स्मरण करते हुए एक दिन समाधिस्थ हो गये। उनका भौतिक शरीर यहीं रह गया, आत्मा ईश्वर में लीन हो गयी। उनकी तपस्या की चारों ओर प्रशंसा हो चली।

कुछ दिनों बाद देवर्षि नारद हस्तिनापुर आये, और युधिष्ठिर से कहा, "महाराज, मैं इस उद्देश्य से आपके पास आया हूँ कि तपश्चारी महाराज धृतराष्ट्र, सती गान्धारी और कुन्ती का संवाद आपको दूँ।" सुनकर युधिष्ठिर बहुत उतावले हुए। देवर्षि नारद ने कहा, "महाराज धृतराष्ट्र, हिमालय में भ्रमण कर रहे थे। साथ गान्धारी, कुन्ती और संजय थे। कई दिन के भूखे थे। इसी समय वन में दावाग्नि लग गयी। संजय ने उनसे कहा कि, 'महाराज, दावाग्नि लग गयी है,' परन्तु धृतराष्ट्र को इसकी चिन्ता न हुई। उन्होंने कहा, 'मैं एक तो अन्धा, इस पर कई दिनों का भूखा और अत्यन्त वृद्ध हूँ, मैं भाग नहीं सकूँगा। तुम भगकर अपने प्राण बचाओ। मेरी चिन्ता तुम न करो।' यह कहकर वह वहीं आसन मारकर बैठ गये। सती गान्धारी भी नहीं भागीं, पति के वाम पार्श्व में आसन लगाकर वह भी बैठ गयीं, सती कुन्ती भी उनकी बगल में उसी तरह बैठ गयीं। तीनों ने चित्त को आत्मनिष्ठ किया। संजय वहाँ से बचकर चले गये। पर आग ने इन तीनों महाप्राण व्यक्तियों को दग्ध कर दिया।"

मौषलपर्व

यादव आदिकों का नाश

पाण्डवों की सत्ता देश में स्थापित हो गयी। छत्तीस साल हो गये। देश फला-फूला, लहलहा रहा था। कोई उपद्रव नहीं हुआ। लोग शान्ति से रहे। व्यापार बढ़े।

राहें दुरुस्त की गयीं। राज्यों में मैत्री का भाव दृढ़ रहा। पाण्डवों की तरफ से सबकुछ कृष्ण का किया हुआ है, लोगों की धारणा थी; इसलिए कृष्ण की पूजा उत्तरोत्तर बढ़ी। उन्हें लोग अवतार मानने लगे। देश-देश के लोग उनके पास जाते थे। उनकी बातें सुनते थे। उनके अनुसार काम करते थे। सबको विश्वास था, कृष्ण के उपदेश हित करेंगे।

कृष्ण की इस बढ़ती प्रतिष्ठा का यादव-राजकुमारों पर बुरा प्रभाव पड़ा। उनमें गर्व की मात्रा बढ़ने लगी। धीरे-धीरे उनका स्वभाव बिगड़ गया। शराब पीने लगे। मांस भी बेहिसाब खाने लगे। क्रमशः ऐसे उद्दण्ड हो गये कि सभ्य जनों से भी असभ्य बातचीत और अनादर से पेश आने लगे। ऋषियों और ब्राह्मणों का अपमान हो चला। ऐसे अधम कार्य में सारण आदि यादव और श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब थे।

एक दफा नारद, विश्वामित्र और कण्व आदि ऋषि द्वारका गये। यादव-राजकुमार, राजकुमार साम्ब को औरत की तरह साड़ी पहनाकर ऋषियों के पास ले गये, और कहा, "भगवन्, आप लोग तो त्रिकालदर्शी हैं, यह वभ्र की स्त्री है। गर्भवती है। बताइए, इसके लड़का होगा या लड़की ?" ऋषि रुष्ट हो गये। उन्होंने कहा, "इस 'अधम' साम्ब के गर्भ से कल एक मूसल पैदा होगा, और उससे तुम्हारे वंश का नाश होगा।"

शाप सुनकर यादव-राजकुमार घबराये। महाराज वसुदेव से उन्होंने कुल हाल कहा। वसुदेव ने राजकुमारों को बहुत धिक्कारा, और साम्ब के मूसल होने पर उसे चूर-चूर करके समुद्र में फेंकवा दिया। लेकिन वह मूसल जिस जगह फेंका गया था, वहाँ 'सरपत' का वन उग आया। एक दिन एक व्याध ने उसकी डण्डी तोड़ी, और उसे धनुष का तीर बनाया।

कुछ दिनों में यादव-राजकुमारों की जल-विहार करने की इच्छा हुई। निश्चय हुआ कि सरस्वती जहाँ समुद्र से मिलती है, वहाँ चलकर नहायें, और जल-विहार करें। निश्चय के अनुसार तैयारी हो गयी, और महिलाओं को साथ लेकर समस्त राजकुमार चले। कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सात्यकि आदि भी थे। राजकुमारों ने दरिद्र ब्राह्मणों को दान करने के लिए जो अन्न लिया था, उसे सड़ाकर वहाँ शराब बनवायी, और पीकर मस्त रहने लगे। ब्राह्मणों को दान करने की जगह वे बन्दरों को शराब पिलाकर तमाशा देखते थे। एक दिन शराब पीने का उत्सव मनाया गया। बलदेव, सात्यकि, कृतवर्मा, गद, वभ्र आदि सबने शराब पी और कृष्ण के सामने! शराब पीकर एक-दूसरे की आलोचना करने लगे। हास्य परिहास में बदला। सात्यकि ने कहा, "कृतवर्मा नीच है, रात को पाण्डवों के पुत्रों को मार डाला।" कृतवर्मा ने कहा, "तू महानीच है। जब भूरिश्रवा के हाथ कट गये थे, वह बैठा सत्याग्रह कर रहा था, तब तूने उसका सिर काट लिया।" सात्यकि ने तलवार निकाल ली, और एक हाथ ऐसा मारा कि कृतवर्मा का सिर कटकर अलग गिरा, धड़ नाचने लगा। भोज और अन्धक कृतवर्मा के साथी थे। उन्होंने सात्यकि पर आक्रमण किया। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध सात्यकि की ओर से लड़ने लगे, पर भोजो और अन्धकों ने इन्हें मार गिराया। इससे कृष्ण

को क्रोध आ गया। उन्होंने सरपत उखाड़कर मारना शुरू किया। कृष्ण के पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण और अनिरुद्ध तथा गद भी मारे गये। देखकर कृष्ण कालस्वरूप होकर भीषण युद्ध करने लगे। सब लोग सरपत उखाड़-उखाड़कर उससे संग्राम करने लगे। इस युद्ध में यादवों, अन्धकों और भोजों का समस्त वंश निहत हो गया। केवल स्त्रियाँ बचीं। वे द्वारका पहुँचायी गयीं।

बलराम और कृष्ण का परलोक-गमन

बलराम को इस युद्ध के बाद वैराग्य हुआ, वह प्रभास-तीर्थ गये, और वहाँ तपस्या करते हुए समाधि लगाने की सोची। कृष्ण ने सारथि से कहा, "स्त्रियों को द्वारका में छोड़कर हस्तिनापुर जाना, और अर्जुन से कहना, समस्त यादव-कुल का नाश हो गया है, वह आकर स्त्रियों और बच्चों को हस्तिनापुर ले जायँ। कुरुक्षेत्र में कौरवों का नाश देखा था, प्रभास-तीर्थ में यादवों का नाश देखा। अब भैया बलराम के पास जाकर तपस्या से शरीर छोड़ना उचित समझता हूँ।" सारथि दारुक ने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार काम करने की बात कही। कृष्ण ने पिता वसुदेव को प्रणाम किया, और बलराम से मिलने के लिए चल दिये। बलराम के पास पहुँचे, तो देखा—वह सिद्धासन पर बैठे थे, देह हिल-डुल नहीं रही थी, साँस नहीं चल रही थी, एक साँप की आकृति की ज्योति उनकी देह से निकलकर ब्रह्म-मण्डल में लीन हो रही थी। कृष्ण समझ गये कि बलराम यह लोक छोड़कर चले गये।

शोक से व्याकुल होकर कृष्ण एक पेड़ के सहारे लेट गये। दायाँ पैर बायें घुटने पर रख लिया। कृष्ण योगनिद्रा में पड़े थे कि 'जरा' नाम के व्याध ने दूर से कृष्ण का पैर चमकता देखा। उसे मालूम दिया, हिरन का मुँह है। उसी ने सरपत तोड़कर तीर बनाया था। उसने तीर धनुष पर चढ़ाकर पैर के तलवे में मारा। तीर अचूक बैठा। कृष्ण के तलवे में तीर चुभ गया। व्याध दौड़ा हुआ आया, और कृष्ण को देखकर दंग हो गया। फिर रोने लगा। कृष्ण ने कहा, "तुम्हारा इसमें दोष नहीं। तुम इसकी चिन्ता न करो।" कहकर कृष्ण परमधाम को चले गये। संसार में अपनी अद्‌भुत कीर्ति रखकर एक सौ बीस साल की उम्र में कृष्ण अपने लोक को चले गये। उनके जाने से संसार में हाहाकार मच गया। उनके शरीर-त्याग के संवाद से वसुदेव बहुत ही खिन्न हुए, और दूसरे दिन शरीर छोड़ दिया। उनका श्राद्ध द्वारका जाकर अर्जुन ने किया, और जब द्वारका से स्त्रियों को लेकर चले, तब समुद्र ने द्वारकापुरी को अपने गर्भ में डाल लिया। रास्ते में भी विपत्ति आयी। डाकुओं का एक दल अर्जुन को अकेला जानकर आया। द्वारका का माल और बहुत-सी स्त्रियों को लूट ले गया। अर्जुन कुछ न कर सके। अर्जुन ने भोजकुल की स्त्रियों को मार्तिकावत में रखा, और सरस्वती-नगर का राज्य सात्यकि-पुत्रों को दिया। वज्र को पाण्डवों की पुरानी राजधानी इन्द्रप्रस्थ का राजा बनाया।

कृष्ण की पत्नियों में रुक्मिणी, गान्धारी, हेमवती, शैव्या और जाम्बवती सती हो गयीं, सत्यभामा तथा और-और वन में तप करने चली गयीं।

पाण्डवों की हिमालय-यात्रा

श्रीकृष्ण के चले जाने से पाण्डव निस्तेज हो गये। उन्हें बार-बार याद आने लगा कि यादवों का महान् वंश बात-की-बात में, सरपत की मार से, नष्ट हो गया। द्वारकापुरी समुद्र-गर्भ में समा गयी। कृष्ण की पुरनारियों को डाकुओं ने लूट लिया। विश्व-विजयी अर्जुन कुछ न कर सके। गाण्डीव उनसे उठा ही नहीं। पाण्डवों के वैराग्य की सीमा न रही। उन्होंने निश्चय किया, राज्य छोड़कर हिमालय-यात्रा करेंगे।

इस अभिप्राय से उन्होंने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी दी। युयुत्सु और कृपाचार्य को राज्य की रक्षा का प्रबन्ध सौंपा। फिर सुभद्रादेवी को बुलाकर युधिष्ठिर ने कहा, "भद्रे, अब हम वनवास को जाते हैं। हमारा जी राज्य के प्रबन्ध में नहीं लगता। हमारे परम हितैषी मित्र कृष्ण जब इस संसार में नहीं रहे, तब हमारी भी यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर कृष्ण का पौत्र वज्र है, और हस्तिनापुर के सिंहासन पर तुम्हारा पौत्र परीक्षित। तुम याद रखना कि तुम कृष्ण की बहन और महावीर अर्जुन की पत्नी हो। अपने कुल की मर्यादा रखना। दोनों वंशों का राज्य-शासन अच्छी तरह हो, ऐसी व्यवस्था रखना।"

इस प्रकार उपदेश देकर धर्मराज अपने चारों भाई और द्रौपदी-सहित वन के लिए राजधानी छोड़कर बाहर निकले। हस्तिनापुर के नागरिक पाण्डवों को चाहते थे। वे साथ हो लिये। बहुत दूर तक पीछा करते हुए गये। लेकिन युधिष्ठिर ने सबको समझा-बुझाकर वापस किया, फिर भाइयों और द्रौपदी के साथ पूर्व की ओर चले। पूर्व का समुद्र देखकर पश्चिम मुड़े। बहुत दिनों के बाद द्वारका पहुँचे। देखा, महानगरी द्वारका समुद्र में डूबी हुई है। उस पर समुद्र की लहरें दौड़ रही हैं। समस्त भारत की परिक्रमा कर पाण्डव हिमालय की ओर चले। कुछ आगे बढ़ने पर अग्निदेव आकर मिले, और अर्जुन से कहा, "हमारा गाण्डीव और अक्षय तूणीर दे दो।" अर्जुन ने अग्निदेव को उनका धनुष और तीरों से भरा तरकस दे दिया।

धर्मराज युधिष्ठिर जब वन-गमन के लिए निकले थे, तब एक कुत्ता उनके साथ-साथ पीछे-पीछे चला था। जहाँ-जहाँ गये, पीछे लगा वह भी चलता रहा। हिमालय की यात्रा शुरू की, तो वह भी साथ चला। कुछ दूर जाने पर हिम पड़ने लगा, जिससे पाण्डवों की गति रुद्ध होने लगी; फिर भी वे अप्रतिहत गति से चलते गये। कुछ और चलने पर द्रौपदी की देह शून्य हो गयी, वह वहीं गिर गयीं। उनके गिरने पर भीम ने युधिष्ठिर से पूछा, "महाराज, द्रौपदी तो सती थीं, कभी पतियों का साथ नहीं छोड़ा, सदा उनका चित्त सत्कर्मों में लगा रहा, वह गिर क्यों गयीं?" युधिष्ठिर ने कहा, "भीम, द्रौपदी दिल से अर्जुन को ज्यादा चाहती थीं।

सब पतियों पर समदृष्टि वह नहीं रख सकीं।"

कुछ देर बाद सहदेव उसी तरह गिरे। तब भीम ने फिर पूछा। युधिष्ठिर ने कहा, "सहदेव को अपने पाण्डित्य का अभिमान था।"

कुछ दूर और चलने पर नकुल गिरे। पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा, "नकुल को अपने रूप का गर्व था। वह अपने सामने संसार में किसी को रूपवान नहीं समझते थे।"

कुछ दूर पर अर्जुन गिरे। भीम ने पूछा, "धर्मराज, अर्जुन-जैसे विश्व-विजयी योद्धा की यह गति किस पाप से हुई?"

युधिष्ठिर ने कहा, "भाई, अर्जुन को भी अपनी अस्त्र-शिक्षा का गर्व था।"

थोड़ी देर बाद भीम भी गिरने को हुए, तब पुकारकर कहा, "महाराज अब मैं भी गिरता हूँ, बताइए, मुझमें कौन-सा पाप था, जिसके कारण, मैं अब आपका साथ न दे पा रहा हूँ?" युधिष्ठिर ने कहा, "तुम्हें भी बल का गर्व था। तुम समझते थे, तुम्हारे-जैसा बली संसार में कोई नहीं।"

महाराज युधिष्ठिर चलते गये। वह कुत्ता उनके पीछे लगा रहा। कुछ देर बाद एक ज्योतिर्मय रथ आया, और इन्द्र उससे उतरे। उतरकर कहा, "धर्मराज युधिष्ठिर, आप धन्य हैं। सशरीर स्वर्ग जा सकते हैं। लेकिन इस कुत्ते को छोड़ देना होगा।" युधिष्ठिर ने कहा, "यह बराबर मेरे साथ रहा है। मैं इसे छोड़कर स्वर्ग नहीं जाना चाहता।" वह कुत्ता साक्षात् धर्म था। प्रकट होकर युधिष्ठिर को धन्यवाद देने लगा।

स्वर्गारोहणपर्व

युधिष्ठिर का नरक-दर्शन और स्वर्ग-लाभ

देवराज इन्द्र युधिष्ठिर को स्वर्ग ले गये। स्वर्ग पहुँचकर युधिष्ठिर ने देखा, दुर्योधन-दुःशासन आदि प्रसन्नता से बैठे हुए हैं, युधिष्ठिर को देखकर हँस रहे हैं। इससे इन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। इन्होंने कहा, "मेरे भाई भीम, अर्जुन, कर्ण आदि यहाँ नहीं दिख रहे, इसका क्या कारण है?" इन्द्र ने कहा, "युधिष्ठिर, स्वर्ग आकर किसी से ईर्ष्या नहीं की जाती। दुर्योधन, दुःशासन आदि सम्मुख-समर में मरे हैं, इसीलिए अबाध गति से स्वर्ग प्राप्त किया है।" युधिष्ठिर ने कहा, "महावीर कर्ण ने भी सम्मुख-समर में प्राण दिया है, हमारे और भी सम्बन्धी हैं, वे यहाँ क्यों नहीं हैं?" इन्द्र ने कहा, "क्या तुम उन्हें देखना चाहते हो?" युधिष्ठिर ने इच्छा प्रकट की।

तब इन्द्र ने एक देवदूत को साथ कर दिया, और कहा कि युधिष्ठिर को भीमार्जुन आदि के पास ले जाय। देवदूत उन्हें एक जगह तक ले गया, फिर वहाँ

से कहा, "आप सीधे बढ़ते जाइए, दक्षिण की तरफ,फिर सीधे उत्तर की तरफ चले जाइएगा; वहाँ आपकी, भाई-बन्दों से मुलाकात होगी।"

युधिष्ठिर आगे बढ़े, तो घोर दुर्गन्ध आ रही थी, फिर खून-पस के नदी-नाले बहते दिखायी दिये, फिर सड़ा मांस और मल-मूत्र दिखा, युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए। इसी समय भीम और अर्जुन आदि की करुण ध्वनि सुन पड़ी। "महाराज, हम घोर नरक भोग रहे हैं, आप कुछ देर और ठहरिए, आपके शरीर की हवा से हमें आराम मिलता है, हम पर दया कीजिए।"

भीम, अर्जुन और द्रौपदी आदि की ऐसी करुण पुकार सुनकर युधिष्ठिर बहुत विचलित हुए। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इसी समय इन्द्र वहाँ प्रकट हुए और कहा, "युधिष्ठिर, अश्वत्थामा के वध के समय तुमने झूठ कही थी, इसलिए तुम्हें कुछ काल नरक भोगना पड़ा, चलो, अब स्वर्ग चलो, तुम्हारे सब भाई, पत्नी और परिवार के लोग वहीं मिलेंगे। इन सबके भी अपराध कट गये। जिन्हें थोड़ा भोगना पड़ता है, उन्हें पहले नरक होता है। फिर स्वर्ग। जिन्हें थोड़े दिन स्वर्ग भोगना पड़ता है, वे पहले स्वर्ग आते हैं।"

धर्मपुत्र युधिष्ठिर इन्द्र के साथ स्वर्ग गये। वहाँ सब भाइयों, द्रौपदी, कर्ण आदि को हँसते देखा।

○○○

पत्र

दुलारेलाल भार्गव के नाम

[1]

गढ़ाकोला, मगरायर, उन्नाव
1.3.30

प्रिय भार्गव जी,

पुस्तक-परीक्षा जाती है। नोट कुछ बच रहे होंगे। कुछ भेजता हूँ, परसों तक। अप्सरा लेकर होली के बाद आऊँगा। राजनीतिक नोट जैसा मैंने आपसे कहा था, सुधीन्द्र जी से लिखवा लीजियेगा। वे तो होंगे ही।

आपका
निराला

[2]

Garhakola
Magrair, Unao.
[मार्च, 1930]

प्रिय भार्गव जी,

मैंने मैटर भेजने के लिए लिखा था। पर बुखार आ गया, इससे सम्मेलन भी न जा सका। इस फाल्गुन में साहित्यिक-सामाजिक नोट नहीं दे सका। चैत्र के लिये कहानी नोट आदि भेजता हूँ, कुछ बाद। तीन पद्य भेज रहा हूँ। चैत्र में तीनों निकाल दीजिये, एक आर्ट पेपर पर। निशान लगा दिया है। अब कुछ स्वस्थ हूँ। घर की स्थिति चिन्ताजनक है गृह-कलह से। अकेला हूँ।

आपका
निराला
तारीख मालूम नहीं

बुखार से पहले के लिखे हुए दो नोट भी भेजता हूँ। समय और जगह हो तो दे दीजियेगा। मनोरंजक हैं।

नि०

अप्सरा का विज्ञापन मैंने लिख दिया था, अच्छी जगह देखकर फाल्गुन में अवश्य दीजिये।

नि०

[3]

गढ़ाकोला, मगरायर,
उन्नाव
1.4.30

प्रिय भार्गव जी,

आपके दोनों पत्र मिले। सात नोट भेजता हूँ। साहित्य सम्मेलन की स्पीच मुझे नहीं मिली। इसलिए नोट नहीं भेजा जा सका। यहाँ सिर्फ एक बँगला पत्र आता है, इससे बहुत ज्यादा आशा आपको नहीं रखनी चाहिये। तीन-चार अच्छे नोट परसों तक सोच विचारकर भेजूंगा। अप्सरा शीघ्र दूंगा। फिर, इस केन्द्र से कुछ राजनीतिक काम करने का विचार है।

भवदीय
सूर्यकान्त

दूसरे अच्छे अंग्रेजी
पत्रों के लिये आपको
दो एक बार लिखा है।
आपको जैसा जान
पड़े, कीजियेगा।

—निराला

[पत्र के हाशिए पर और नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव की टिप्पणी : 'आप और पत्र मँगावें। पैसे मुझसे ले लें।···ये दोनों चीजें (नोट और **अप्सरा** अब मिल जानी चाहिए। 1.5.30]

[4]

[लखनऊ]

प्रिय भार्गव जी,

कृपा कर 100) रुपए का चेक आज दीजिए। कल घर जाऊँगा। 11 बजे की गाड़ी पकड़ना चाहता हूँ। 3/4 दिन में, मरम्मत किसी के सिपुर्द कर चला आऊँगा। अन्यथा जो नुकसान होगा, उसे पूरा करना दुस्साध्य हो जायगा।

आपका
निराला
14.7.30

[पत्र के नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव का आदेश—'इनका सुधा का हिसाब कर दीजिए।—14.7.30। फिर इसी तिथि को उसके नीचे किसी कर्मचारी ने लिखा है—'Paid Rs. 100/- by cheque']

[5]

[लखनऊ,
1932-33 ई०]

भार्गव जी,

कुल मिलाकर (पांडेय जी का + मेरा)···से शायद ज्यादा हो। अभी इतना ही है। आशा है जब तक छपकर तैयार होगा, तब एक खंड और लिख जायगा।

महीने की 10 तारीख है। होटल खर्च 136) पेशगी का आज ही चेक दीजियेगा। नहीं तो ये लोग तक़ाज़ा करेंगे।

गत मास के नोटों के लिये···लें तो अच्छा हो। हो सके तो कुछ···दीजिये। ठोस नोटों के लिए मेरे पास थोड़ा मसाला रह गया है।

आपका
सूर्यकान्त

पांडेय जी के 136 सफ़े
शायद हैं। ऐसा कीजिये
जिससे मेरे मन को किसी
तरह धक्का न पहुँचे, नहीं
तो काम में अड़चन ही रहेगी।

—नि०

[पत्र खंडित रूप में प्राप्त है।]

[6]

[स्थान
और तिथि अज्ञात]

अत्यंत जरूरी—द्विवेदी जी या जो काम करते हों, इस पर ध्यान दें :—

प्रिय भार्गव जी,

पुस्तकों की समालोचना तथा कुछ नोट्स भेज चुका हूँ। दूसरी समालोचना (तत्त्व चिन्तामणि की) अभी न निकालें। पहले भी आपको लिख चुका हूँ। आप वह अंश निकालकर रख लीजिए, पता लगाकर लिखूँगा, तब छापें। बाकी कविता कहानी आदि शीघ्र भेजता हूँ।

आपका
निराला

[7]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

इन प्रश्नों के उत्तर भेजिये—

(1) आपके दोहों की संख्या कितनी है ?

(2) कितनी पुस्तकों का आपने संपादन किया है ? -- कुछ के नाम : लेखकों के भी।

(3) साहित्यिक कार्य + संपादन क्या-क्या + किस-किस पत्र का है ?

(4) कितने दिनों से लिख रहे हैं ?

(किताब में न आये दस दोहे भेजिये) — बाकी जरूरत पर मालूम करूँगा।

—निराला

3.3.36

[यह पत्र गंगा फाइन आर्ट प्रेस के पैड पर लिखा गया है।]

[8]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

महाभारत प्रेस में दे दिया, अच्छा किया। पाँच-छ: आने बाक़ी है। लिखकर देता हूँ।

रामायण का एक अंक भी जल्द कर दूंगा। इतना तो मैंने कर देने के लिए कहा ही था, फिर देखा जायगा।

—निराला

4. 5. 36

हृदय० भार के फार्म नहीं मिले।

—नि०

[9]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

'हृदय का भार' की भूमिका लिखने की तबियत नहीं होती। रचना मुझे कम पसन्द है। पहले जबानी मैं आपसे कह चुका हूँ।

रामायण के लिए भी कह चुका हूँ कि कम्पोज कराइये। इस बार रामायण में जो अंश आया है छपने को, वह स्वयं कथा-प्रधान है। रामायण के चित्रों के लिए आज कमलाशंकर जी से बातें की हैं।

निराला
13.6. [1936]

[**10**]

116 Nawabganj, Benares City
16.9.36

प्रिय भार्गव जी,

आपका स्नेहपत्र मिला। आइडियल फ़िल्म कम्पनी में आपका हाथ हो गया है और इन्दौर से एक दैनिक निकालने के लिए आपने लिमिटेड कंपनी तैयार कर ली है, पढ़कर बड़ी खुशी हुई। आपसे मुझे सफलता का ही विश्वास है।

यहाँ मुझे तीन महीने हो गये। 'गीतिका' भारती भण्डार से और 'निरुपमा' उपन्यास लीडर प्रेस से छप गये : दस-पाँच दिन में निकल जायँगे। इधर मैंने नया काम कुछ भी नहीं किया। 'सुधा' शायद वहाँ भी दो-ढाई महीने नहीं मिली थी। कब से नहीं मिली, मालूम नहीं : आपके वहाँ से पता लग सकता है। अगर न भेजी हो तो उन महीनों की एक-एक प्रति स्वामी रामकृष्ण मिशन, गूँगे नवाब का बाग़, अमीनाबाद भेजवा दें। मैं वहीं के पुस्तकालय को अपनी पत्रिकाएँ देता हूँ। जब से देने लगा, 'सुधा' की फाइलें वहीं हैं। शीघ्र कलकत्ता जाने का विचार कर रहा हूँ। इति।

भवदीय—'निराला'

[पता]

Pdt.
Dularey Lal Bhargava
Editor, The Sudha
36 Latouche Road
Lucknow

[11]

Dalmau, Rai-Bareli
8.6.37

प्रिय भार्गव जी,

पत्र आपका हस्तगत हुआ। अजमेरी जी का परलोक गमन वास्तव में बड़ा दुःखकर है, और जैसा आपने लिखा है, उनके जाने से हिन्दी की एक विभूति उठ गई। उनपर कुछ निबंध अच्छे-अच्छे 'सुधा' में निकलवाइये।

मैं शीघ्र लखनऊ आनेवाला हूँ। अभी निश्चय नहीं किया, कब चलूँगा। प्रसन्न हूँ। पैर यों सुधरने का नहीं, ऐसा मालूम हो रहा है जब तक आधे फुट की सुई वाला इंजेक्शन न लिया जायगा, कई बार।

आपका—निराला

[12]

C/o Ramdhani Dwivedi
Sherandazpur,
Dalmau (Rai Bareli)
10.6.37

प्रिय भार्गव जी,

मेरा लखनऊ जाना कुछ दिनों के लिये रुक गया। चलते समय होटेल को 50) पेशगी मई के लिये देकर आया था, मई 11 को। वहाँ का हिसाब थोड़ा ही होगा। आप 300) रुपये ऊपर के पते पर शीघ्र भेज सकें तो अच्छा हो। अप्सरा (?) तैयार है। जल्दी हो तो लिखिये। कहानी भी लिख गई है। महाभारत वहाँ पहुँच कर पूरी करूंगा। नये समाचार जो हों, सूचित करें। इति।

गर्मी के कारण अभी अच्छी तरह काम शुरू नहीं किया। इति।

आपका
—निराला

[13]

प्रेमा होटल [लखनऊ]
25.6.37

प्रिय भार्गव जी,

अबके इलाहाबाद से आकर खर्चा एक तो मैंने आपके कहने से बहुत कम लिया, दूसरे मिला और देर करके; इसलिये, दो कमवाली किश्तें भी डूब गईं।

नतीजा यह हुआ कि मैं दोस्तों का कर्ज़दार हो गया।

गत 11 को 300) मिले थे। डेढ़ मास फिर हो गया। यद्यपि मैं यहाँ नहीं था, फिर भी खर्चा मेरे साथ ही था। कृपया 160) अबके दीजिये—शीघ्र। होटल का और खर्च चुका दूं और लिखने के लिए निश्चिन्त हो जाऊँ।

आपका
निराला

[14]

[लखनऊ]
25.6.37

भार्गव जी,

(1) महाभारत लिखना शुरू किया है। अभी तक गर्मी के कारण बन्द था। कोई बाधा न हुई तो 15/20 दिन में लिख डालने का विचार है।

(2) अपराजिता का प्लाट भी अभी तैयार किया है। महाभारत के बाद लिखने का विचार है। इसे पूरा करने में सेप्टेम्बर तक समय लगेगा।

(3) अजमेरी जी के संबंध में लिखूंगा, जब निकालें, कृपया सूचित करें, चार दिन पहले से।

(4) दोनों खण्ड निकली रामायण के और एक प्रति तु० कृत रामायण की भिजवा दें। पढ़कर अन्तर्कथाएँ कौन कौन होंगी चिन्हित कर लिखूंगा, किस तरह, कहाँ-2 मिलेंगी।

आपका
—निराला

[**अपराजिता**—निराला का अलिखित उपन्यास]

[15]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

कल 125) का प्रबंध अवश्य कर दीजियेगा। यहाँ होटल आदि की बाधाएँ पड़ती हैं।

—निराला

13.7.37

[16]

प्रेमा होटल, लखनऊ,
20.7.37

प्रिय भार्गव जी,

स्नेहपत्र आपका मिला। कल उसका reminder भी। आपने जो कुछ लिखा है, उसमें आपके अकृत्रिम सौहार्द्य की स्पष्ट छाप है।

मैंने काम शुरू कर दिया है। कुछ-कुछ प्रतिदिन करता हूँ। अबतक जान-बूझकर नहीं कर रहा था। कारण, बिगड़ जाता। 3/4 साल लगातार लिखते रहने+विश्राम न लेने से बहुत बड़ी प्रतिक्रिया हुई।

सायटिका, इस पर, है ही। रतन बाबू से बातचीत करने पर मालूम हुआ, इस रोग के विशेषज्ञ मेडीकल अस्पताल में, अगस्त में, आयेंगे।

तबतक रामायण महाभारत का काम प्रायः हो आयेगा। रामायण के कथा-संग्रह में मुमकिन है, कुछ देर हो। फिर भी दोनों काम डेढ़ महीने में हो जायँगे।

अभी रामायण की प्रतियाँ मुझे नहीं मिलीं। 2 गंगा पु० मालावाली+एक नागरी प्र० सभावाली, कृपया भेज दें।

मेरी इच्छा है, एक अच्छा काम—अपराजिता तक, करके, जाऊँ, अगर देहात या दूसरी जगह रहने की इच्छा होगी। पुनः खर्च 130) से 150) तक में वहाँ भी मजे में चलेगा।

बँगला की जो पुस्तकें अनुवादित कराना चाहें, कृपया भेज दें।

250) अवश्य जल्द भेजवायें।

इति शम्

आपका

निराला

कर्ज के बारे में फिर
अभिसूचित करूँगा—नि०

[17]

प्रेमा होटल, अमीनाबाद
22.7.37

भार्गव जी,

अब रुपये आ गये होंगे। 150) अवश्य भेजें।

मैं जानता हूँ, आप कष्ट में हैं। इसलिये अगले महीने से मैं होटल छोड़ देने का इरादा कर रहा हूँ, और, महाभारत की कापी भी भरसक पूरी हो जायगी—दे दूँगा। इस तरह खर्च के अलावा 200) पिछले हिसाब में, कम-से-कम मुजर जायँगे।

दूसरी जगह से रामायण का काम भी कर दूँगा। पर रामायण में मिहनत बहुत पड़ती है। पिछली दो शृंखलाएँ जो मैंने तैयार की हैं, हरएक के लिये क्या मिला, सूचित करने की कृपा करें, तो मुझे मालूम हो जायगा कि पारिश्रमिक से किसी तरह पूरा पड़ेगा या नहीं। आपके यहाँ की प्रकाशित प्रतियाँ मेरे पास आई हैं पर मूल तुलसीकृत नहीं आई जिससे 'अंतर्कथाएँ' चुननी हैं।

अबतक मैंने महाभारत की कापी आपके पास इसलिए नहीं भेजी कि देखने की ज़रूरत पड़ती है। बल्कि पिछली कापी कहीं कहीं देखनी थी। पर, 25/26 को जहाँ तक लिख जायगी, भेज दूँगा। इति।

—निराला

[18]

प्रेमा होटल, अमीनाबाद
लखनऊ
24.7.37

प्रिय भार्गव जी,

आपका पत्र और रामायण की प्रति मिली।

मैं तो आपसे यह जानना चाहता था कि गत दो अंकों की अंतर्कथाओं के लिये आपने क्या-क्या दिया है लिखें। आप इस पर या तो पर्दा डालते हैं, या हिसाब ही नहीं किया। कृपया हिसाब लिखें।

मैं होटल छोड़कर कहाँ जाऊँगा, यह अभी ठीक नहीं किया। कहीं भी रहूँ, मुझे बाज़ार और मासिक-पाक्षिक पत्रों के लिये पहले काम करना होगा।

मुझे विश्वास है कि महाभारत के काम से कम से कम 2000) 2500) खर्च के अलावा मोज़रे होंगे, क्योंकि किताब प्रायः 400 सफ़ों की होगी, पहली तारीख को ही कापी दे सकूँगा।

अपना हिसाब भी रहते-रहते ठीक करा लें। मुझे मालूम हो कि रुपया इतना फर्म का देना है, तो मैं दूसरे काम के लिए दत्तचित्त होऊँ जिससे रुपया पूरा हो जाय और मुझे भविष्य की चिन्ता न रहे। आप आज 150) का इन्तज़ाम कीजिये। होटल में बेइज्जत होने के लिए मैं नहीं टिका। आप 350) महीना खर्च देने के लिये कहते थे, पर पाँच महीने में 300) महीने का हिसाब भी नहीं आया। इन्दौर जाने की तिथि कृपया सूचित करें। इस महीने के हुए खर्च के लिए और 150) दे जायँ।

—नि०

[19]

[लखनऊ]

उत्तर,
1 पत्र
भार्गव जी,

रामायण कई बार यह अंश पढ़ चुका हूँ। फिर पढ़ना होगा। कथाएँ मिलानी होंगी कि लिखी कथाएँ फिर न लिखी गई हों।

मुझे रुपये की भी जरूरत है। रामायण का काम मिहनत ज्यादा लेता है, मजदूरी कम देता है। अगर करायें तो इस हिसाब में 500) शीघ्र भेजें। इति।

आपका
निराला

उत्तर,
2 पत्र

100 पुस्तकों का प्रकाशन हर्षप्रद है। महाभारत छप जाने पर अबकी 'अपराजिता' लिखूँगा।

निराला
[जुलाई, 1937]

[यह पत्र गंगा फाइन आर्ट प्रेस
के पैड पर लिखा गया है।]

[20]

[लखनऊ]

संचालक जी,

'कामायनी' की आलोचना बढ़ती बढ़ती बहुत बढ़ गयी है—7/8 पेज से अधिक हो जाय संदेह नहीं। मननशीलता भी बहुत ली। पर कल अवश्य आदमी 3/4 बजे भेजकर मँगा लें, अगर दस बजे मैं न पहुँचा सकूँ। देर के लिए क्षमा करें।

महाभारत + रामायण धीरे-धीरे दूँगा। परिमल भेज दें—ठीक कर दूँ।

तीन दस्ता काग़ज़, स्याही की कुछ गोलियाँ और दो इंगलिश रेड इंक निब भिजवाने की कृपा करें।

निराला
6.9. [37]

[पत्र के हाशिए पर श्री दुलारेलाल भार्गव का आदेश—'भिजवा दें।']

[21]

[लखनऊ]
30.9.37

भार्गव जी,

मैंने सुना है, आपने कहा है कि 'निराला' की कहानी वापस कर दी गई है। अगर वापस कर दी गई है तो वह मुझे नहीं मिली। अगर नहीं की गई और आप इच्छानुसार अगले किसी अंक में छापना चाहते हैं, तो मेरे पास उसका एक प्रूफ भेजवाने की आज्ञा करें — छापें चाहें जब : क्योंकि मैं कहानियों के संग्रह का मैटर भेज रहा हूँ।

मैं कौंसिल आऊँगा; वहाँ मिल लें; स्पीकर्स गैलरी में रहूँगा, पहली सिटिङ्ग। इति।

आपका
—निराला

[22]

[लखनऊ]
30.9.37

भार्गव जी,

मुझे भी असम्बली जाने की जल्दी है। वहीं मिलेंगे। रुपयों की आप चिन्ता न करें। मैंने लीडर प्रेस से रुपये मँगा लिये हैं।

हाँ, काम मेरे पास बहुत आ गया है, और मुझे प्रयाग जाना है। पर आपका काम (रामा०, महा०) करके ही जाना चाहता हूँ, यद्यपि आशानुसार अभी तक प्रोग्रेस नहीं कर सका। पर अब रुपया आ जाने से निश्चिन्त हो गया हूँ। 15/20 दिनों में या अगले महीने रहकर, पूरा करके जाऊँगा।

—निराला

[23]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

पत्र आपका मिला। किसी के कहने की ओर मेरा ध्यान नहीं। मैंने तो इस-लिये लिखा था कि आपने जल्द रुपये मिलने के विचार से अगर कहानी भेज ही दी

हो तो अभी वह नहीं मिली, बीच में कहीं खो न जाय, कि 'गये दोनों जहाँ से खुदा की क़सम' हो।

मेरा आपके प्रति वही विश्वास, आशा और सद्भावना है। हाँ, यह ज़रूर है कि मैं स्वयं आपसे न मिल सकूँगा; और वह केवल आपके मकान में, या कार्यालय में। इसके लिये विनम्रतापूर्वक क्षमाप्रार्थी हूँ।

कविता के लिये कल मेरे डेरे आदमी भेज दें। पत्र, माधुरी आफ़िस से लिख रहा हूँ।

आपका
—निराला
1.10.37

[24]

[लखनऊ,
11.10.37]

भार्गव जी,

रुपये 125) मिले। मेरा जहाँ तक खयाल है—'सुधा' खाते में मेरे नाम कुछ ऐडवन्स होगा। कविताओं का मैं 'सुधा' से लेता नहीं। इसलिये, ये रुपये आपने मुझपर कृपाकर, शायद अग्रिम वसूल बिना किये, भेज दिये हैं। धन्यवाद।

'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' दूसरी जगह देने की कोई बात नहीं थी। मैंने आपको छापने के लिए कह दिया था। यदि छापने की आपत्ति न हो, लिखें। अब मैं 'माधुरी' 'सरस्वती' आदि को कविता-लेख दे चुका हूँ। प्रतिलिपि कविताओं की रहती है, गद्य की सब समय रखना संभव नहीं। मैंने इसका प्रूफ़ कहानी-संग्रह में देने के लिए माँगा था। आप छापना चाहें, लिखें। 'सखी' के लिए भी मैंने पूछा था।

—निराला

[25]

[स्थान अज्ञात]

भार्गव जी,

में, 3/11 को लखनऊ आऊँगा। 2 को काम भेजूंगा। दिक़्क़त की क्या बात?

निराला
21.10.37

[26]

लीडर प्रेस,
इलाहाबाद
13.4.1938

प्रिय भार्गव जी,

यहाँ मुझे बहुत दिन लग गये। काम कुछ भी नहीं किया। खर्चा ही खर्चा रहा। कुछ बेच भी नहीं सका, निबंध-संग्रह जैसे। आपके लिये चिन्ता है। देखूं, कबतक बरी हो सकता हूं। अभी महीने भर भारी उलझन रहेगी। चिरञ्जीव का विवाह इसी वैशाख में करना चाहता हूँ। आप कृपया सूचित करें कि दो सौ तक (200)) की मदद एकमुश्त कर सकते हैं या नहीं। इति।

आपका
निराला

[यह पत्र वाचस्पति पाठक, व्यवस्थापक, भारती-भंडार के पैड पर लिखा गया है।]

[27]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

आपके इधर के पत्र मिले। आपके लिखने के अनुसार रामायण का काम शुरू कर दिया है। आपका ही काम कर रहा हूँ। फिर आपको मालूम होगा।

रामायण देकर महाभारत में हाथ लगाऊँगा।

सुधा के लिए कविता ही दे सकूंगा। कल या परसों दे आऊँगा। इति।

आपका
—निराला
31.5.38

[28]

चर्स मंडी, लखनऊ
25.6.38.

प्रिय भार्गव जी,

आपका पत्र मिला।

(1) रामायण के संबंध में लिख और कह चुका हूँ।

(2) तस्वीरों के लिये कमलाशंकर जी से अपने यहाँ जबानी कहा कि आयें

और चित्रों के भाव ले जायँ: एकबार उनके घर जाकर उनकी पत्नी बच्चीजी से उन्हें भेज देने के लिए कह आया, वह नहीं आये, या नहीं आ सके। फिर आपसे सुना, इस बार काम चल जायगा (रामायण का), अगले दफे बनाएँगे।

(3) तु० ग्रंथावली में रामायण दे रहा हूँ।

(4) 30 ता: को महाभारत जितना मैं लेकर आपके पास आऊँ उसका आधा रुपया उसी दिन दिला दें। 1ली को विवाह है।

(5) रुपया निस्सन्देह आपका है। (क) आप पिछले हिसाब में पूरा महाभारत ले लें जो छपने पर कम से कम 1400 सफ़ों का होगा,—(ख) मेरा मास्टर पीस 'कुल्ली भाट' आप छाप लें जो एक छोटी पुस्तिका 125 सफ़े की होगी। इसकी कापी महीने भर में आपको दूँगा। 'माधुरी' में छप जाने पर निकालें। यह पिछला हिसाब चुकाएगा। उसके रुपयों का भी अन्दाज़ा लगा लें। (ग) इधर मैंने रुपये आपसे 100) जो लिये वे 'अपराजिता' के हिसाब में। आगे भी इसी हिसाब में लेना चाहता हूँ। आपको व्यावसायिक नुकसान हो, यह मैं नहीं चाहता। पारिश्रमिक मुझे हिन्दी क्या देगी। आपको मित्र समझकर जरूरत पर रुपये ले लेता हूँ। आपको कष्ट में डालकर रुपये लूं, मेरी इच्छा नहीं। मकान किराये का न लें अब।

निराला

[29]

Leader Press
Allahabad
...8.38

प्रिय भार्गव जी,

आपका कृपापत्र मिला। मेरी किताबें यहाँ छप रही हैं, इसीलिये आया था। कुछ नोट्स पूरे करने थे।

3/4 दिन में लखनऊ जा रहा हूँ। आपसे मिलूँगा।

रामायण के बारे में तो कई बार लिख चुका हूँ : फिर वहाँ देख लूंगा क्या माजरा है।

महाभारत अवश्य अभी बिल्कुल पूरी नहीं हुई। पर पूरा इधर में कुछ भी नहीं कर पा रहा। वह जो उपन्यास लिख रहा था, उतना ही लिखा रह गया है।

आपकी किताबें अबके पहुँचकर एक-एक पूरी कर दूंगा।

सायटिका के कारण काम बहुत कम कर पाता हूं।

इति।

आपका
निराला

महाभारत की सिर्फ पूरी कापी से आपका मतलब हो तो वह भी ठीक है : पर मैं तो बहुत पहले से कह रहा था कि किताब प्रेस में दीजिए। ज़ाने पर विवशता भी कुछ करा लेती है।

—नि०

[30]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

रामायण के संबंध में आपने लिखा है कि काम बाक़ी है। रामायण में अन्तर्कथा मुझे नहीं मिली एक भी, दो बार पढ़ने पर भी। मैंने कहा था, इसके लिए कोई उपाय सोचा जा सकता है अगर आप बढ़ाना ही चाहें अन्तर्कथा के तौर पर कुछ। इसके लिये किसी दिन बैठकर निश्चय कर लें। मैंने यह भी कहा था कि किन्हीं दूसरे को दिखा लें, अगर उन्हें कुछ मिले अन्तर्कथा।

आपका
श्री सूर्यकान्त
7. 12. 38

[31]

[लखनऊ,
1938]

संचालक, गंगा-पुस्तक-माला।

प्रिय भार्गव जी,

रुपयों की सख़्त जरूरत है। 140) रु० कृपया भेज दें आज। बाज़ार को देना है। आपका काम करके जाने के लिए मैं रुका हुआ हूँ। काम कर भी रहा हूँ।

1ली तक महाभारत दे दूँगा। फिर रामायण 10/15 दिन में।

अगर किसी कारण से रुपया न दे सकें, तो लिखें, मैं इलाहाबाद चला जाऊँ। इंडियन प्रेस से काम मिला है—अधिक। अग्रिम भी देंगे, पं श्री नारायणजी की सिफ़ारिश से। मैं पहली के बाद ही आपसे रुपये लेता। लेकिन बाज़ारवाले तंग करते हैं।

आपका
निराला

[32]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

आपसे तो बहुत मर्तबे कह चुका और लिख भी चुका कि दो बार पढ़ने पर भी रामायण में मुझे कथा नहीं मिली, आपने कहा, फिर ऐसी ही निकलेगी। इस पर अब क्या बाक़ी रहा जो रामायण का काम पूरा किया जाय, समझ में नहीं आता। आपने कहा था, गौरीशंकर कहते हैं, एक कथा है। मैंने लिखा था, मुमकिन, मुझसे छूट गई होगी।

आपका
—निराला
9.1.39

[33]

लीडर प्रेस, इलाहाबाद
16.2.39

प्रिय भार्गव जी,

आपसे मिलने के बाद से मैं यहाँ हूँ। फरवरी भर रहूँगा। मेरे वहाँ लखनऊ में मुसलमानों की दो-एक चढ़ाइयाँ हुईं, मैं यहाँ चला आया। लड़ना बुरा, हेकड़ी देखना बुरा। मैं आपको कहानी पूरी कर नहीं दे आ सका। पर जानता हूँ, आप ऐसी त्रुटि की तरफ खयाल नहीं करेंगे। आपका और भी बहुत काम है। मैं मार्च के प्रारंभ में लखनऊ पहुँचूँगा। चारों तरफ से काम का आक्रमण है और मैं कुछ शिथिल। आप प्रसन्न होंगे। योग्य सेवा लिखें।

आपका
निराला

[34]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

कागज़ तो जो आप आसानी से अच्छा प्राप्त कर सकें, लगायें। उन्हें मैं कुछ लिखने नहीं जा रहा। आपसे नाराज़ होने का कोई कारण मेरे पास नहीं। आप तो मेरे एक कृपालु मित्र हैं। मैं एक साधारण साहित्यिक, किसी की भी श्रेष्ठता को माननेवाला, किसी वड़प्पन की मुख़ालिफ़त क्यों करूँगा, करूँगा भी किस तरह ?

आपका

निराला

23.3.39

[35]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

कवरपेज, कुल्ली भाट के डिज़ाइन के लिये बाबू कमलाशंकर के यहाँ बैठा हूँ। 'कुल्ली भाट' को आपके आदेशानुसार अब तक कम्पोज़्ड हो जाना था। ख़ैर, जो कुछ हुआ हो। अब मैंने महाभारत में हाथ लगाया है। ठीक करके, लिखकर के, बातें करूँगा। अगर इसे हिन्दोस्तानी रूप देना चाहें तो लिखें।

आपका

—निराला

13.4.[1939]

[36]

[लखनऊ]

प्रेस,

'कुल्ली भाट' में एक जगह 'डलमऊ' का 'लखनऊ' छपा है। मुमकिन, कोई और खटकनेवाली गलती हो; एक शुद्धिपत्र लगेगा। इति।

आपका

निराला

19.5.39

[यह पत्र गंगा फाइन आर्ट प्रेस के पैड पर लिखा गया है। नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव की टिप्पणी—'श्रीदत्त जी। बैजनाथ जी। 19.5'। फिर श्रीदत्त का आदेश—'बैजनाथ जी, कुल्ली भाट में शुद्धिपत्र भी जायगा। नोट करें। 19.5']

[37]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

महाभारत की आज पूरी पांडुलिपि दी।

कृपया 'कुल्ली भाट' की लेखक वाली प्रतियाँ (सजिल्द+अजिल्द) भेजवाइये, आज ही। यदि जिल्दवाली तैयार न हों तो ये फिर भेजवाइयेगा।

इति।

आपका

निराला

9.6.39

[पत्र के नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव का आदेश और जिज्ञासा—'श्रीदत्तजी, भेज दें। न भेजने का क्या कारण हुआ ?']

[38]

[लखनऊ]

जी हाँ, दूसरी जगह छपकर, कर्मवीर में उद्धृत हो चुकी है। अगर आप चाहें तो मैं दूसरी कविता भेज दूँ।

—निराला

[श्री दुलारेलाल भार्गव के इस संक्षिप्त पत्र का उत्तर: "निराला जी, क्या यह कविता आपने और कहीं छपने को भेजी है ? या कहीं छप गई है ?—दुलारेलाल भार्गव, 30.9.[वर्ष अज्ञात]]

[39]

भूसामंडी

हाथीखाना,

लखनऊ

25.10.39

प्रिय भार्गव जी,

यह लिखने की कृपा कीजिये कि 500) महीना देकर चार-पाँच महीने बाद 'अपराजिता' प्राय: 1000 सफ़ों की लेना चाहते हैं। इति शम्।

आपका

—निराला

[40]

[लखनऊ]

भार्गव जी,

ये क़िताबें मैं ले आया था, दूकान से—

1 परिमल

1 अप्सरा

1 अलका

1 लिली (फटी, पुरानी)

1 प्रबंधपद्म

1 कुल्ली भाट

1 महाभारत

1 ला मजहब

———————

8 क़िताबें

कृपया मेरी महाभारत की बाक़ी 23 प्रतियों में इन्हें मोजर लें; बाक़ी प्रतियाँ चार कुल्ली भाट और नौ महाभारत (चार सादी/5 बँधी) भेजवा दें।

आपका

निराला

4.11.39

[पत्र के नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव का आदेश—'श्री दत्ता, कार्रवाई कर लें। 7.11.39']

[41]

[लखनऊ, 10.] 11.39

पं दुलारेलाल जी भार्गव

प्रिय भार्गव जी,

मुमकिन, पत्रिका आई हो, किसी दूसरे ने या मैंने ही ले ली हो। अब लिखने पर ही भेजने की कृपा करें। इति।

आपका

निराला

[पत्र के नीचे टिप्पणी—'अगस्त और सितंबर की सुधा भेजी। (प्रेषक का हस्ताक्षर अस्पष्ट) 17.11.39]

[42]

भूसामंडी, हाथीखाना,
लखनऊ [1939 ई०]

प्रिय भार्गव जी,

आपका पत्र आश्चर्यकर है। मैंने किसी कर्मचारी, प्रेस यूनियन, से नहीं कहा कि दुलारेलाल जी ने मुझे किताबों की लिखाई के पैसे नहीं दिये। यह बात झूठ ही नहीं, मेरे आत्मसम्मान के खिलाफ़ की है। क्या आप बतायेंगे, वे प्रेस यूनियन के कर्मचारी महोदय कौन हैं ?

मैं नहीं जानता, पं० लक्ष्मीशङ्कर बाजपेयी जी एम०एल०ए० प्रेस-यूनियन के कर्मचारी हैं या नहीं। शनिवार को सवेरे मैं चतुर्वेदी श्रीनारायण जी के यहाँ बैठा था। रसिकेन्द्र जी की किताब की चर्चा करते हुए मैंने कहा था, दुलारेलाल जी ने रसिकेन्द्र जी से कहा था, 150) आप निराला जी को दे दीजिएगा। रसिकेन्द्र जी मुझसे कहते थे। चतुर्वेदी जी ने पूछा—"फिर ?" मैंने कहा—वे रुपये शायद मोती बाबू को दे गये थे। मुझे 40) दुलारेलाल जी ने दिये। आप जल्द रुपये दीजिये तो मुझे अभी सवा सौ के क़रीब और चाहिये।

लक्ष्मीशङ्कर जी ने कहा—हम रुपये आपको दे सकते हैं, हमें उन्हें देने हैं।

मैंने पूछा—क्या आप उनकी चिट्ठी पर रुपये दे सकते हैं ?

वे बदलकर बोले—मुझे विश्वास नहीं, वे आपको रुपये देंगे।

तब ऊपरवाली (40) की) बात मैंने कही और क्या कहा, यह लिखना बेकार है, क्योंकि खुशामद मैं करता नहीं। यह उनसे कहा कि इधर 10/12 वर्षों में दुलारेलाल जी ने 18/20 हजार रुपये दिये होंगे।

और भी बातें हुईं जिनका आशय मंद मेरी समझ से नहीं। आप नाम बताइये, वे कौन महाशय हैं, जिनसे मैंने वैसा कहा। मुमकिन, मैं उन्हें जानता भी न होऊँ। वे शेखी बखारने गये हों, मुमकिन। आप एक काम कीजिए, आप कामता महाराज और रामचरण हलवाई, गुईन रोड, जिन्हें मुझे रुपये देने हैं, के पास आदमी भेजकर पूछिये, वे क्या कहते हैं।

—श्री सूर्यकान्त

आशा है, आप इस तरह की बातों के संबंध में मेरे व्यक्तित्व का खयाल रक्खेंगे।

—सूर्यकान्त

[43]

श्रीमान् दुलारेलाल जी भार्गव,

संपादक, सुधा।

प्रिय भार्गव जी,

अभी-अभी एक कविता सुधा के लिये आपकी दूकान में दे आया हूँ।

नेशनल आर्ट प्रेस को कृपया मेरा, छड़ी लिये खड़ी तस्वीर वाला ब्लाक, जो निर्मल जी की लिखी किताब में छपा है, दे दीजिये। वे छापकर वापस कर देंगे। इति।

आपका
निराला

लखनऊ
12. 11. 40

[यह पत्र नेशनल आर्ट प्रेस के पैड पर लिखा गया है। इसके हाशिए पर श्री दुलारेलाल भार्गव का यह आदेश (कविता के संबंध में)—'दूकान से लेकर प्रेस दें। 12.11']

[44]

भूसामंडी, हाथीखाना
21.11.40

प्रिय भार्गव जी,

आपका कल अवश्य अवश्य मिल जायगा। मैं 'आकाशवाणी' के प्रकाशक को लिख रहा हूँ।

मेरी कविता 'सुधा' में छप रही है, मैंने प्रूफ़ देखा है।

मेरे पास समय नहीं, इसलिए चाय में न आ सकूँगा। क्षमा करें। इति।

आपका
निराला

[45]

[लखनऊ]

सं. सुधा महोदय,

अगर मिल सके तो दूकान तशरीफ़ ले आयें।

निराला
23.4.41

जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम

[1]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow,
13.7.35

प्रिय बाल पिक,

तुम्हारी काकली नकल नहीं। तुम्हारे जातीय सत्य से पूर्ण, आकाश और पृथ्वी को मिला रही है। इसमें मैं अपने तारुण्य की नई पहचान पा कर चकित हो गया, देर तक मुग्ध होकर सुनता रहा।

मैं अन्यत्र, किसी पत्रिका में, इसकी चर्चा करूँगा।

तुम्हारा
"निराला"

[**काकली** —1935 ई० में प्रकाशित जानकीवल्लभ शास्त्री के संस्कृत गीतों और कविताओं का संग्रह।]

[2]

58 Nariyalwlai Gali,
Lucknow'
30.7.35

प्रिय बाल कवि,

दोनों पत्र यथासमय प्राप्त हुए। पहले के उत्तर में देर इसलिए हुई कि मैं बहुत ज्यादा उत्तर देने का आदी नहीं। लिखनेवाला था कि दूसरा पत्र मिला।

आपकी रचनाएँ स्वाभाविक उच्छ्वास तथा प्रेरणा के अनुसार हुई हैं, इसका साक्ष्य उन्हीं से मिलता है। भावना जैसी पुष्ट है, गति भी वैसी ही सुघर। मुझे आशा है, आपकी प्रतिभा अच्छे-अच्छे चमत्कार प्रदर्शित करेगी।

मैं कई कारणों से खिन्न रहता हूँ। कुछ-कुछ काम करता जाता हूँ, पर जैसे थक गया हूँ। क्या इधर दो साल तक बाकायदा आपने "सुधा" देखी है? शायद अब इस नये वर्ष से मुझे विशेष रूप से लिखने का मौका न मिले। कारण दुलारेलाल जी की बहुत-सी बातें मुझे पसन्द नहीं। विशेषांक के लेखकों में उन्होंने मेरा नाम नहीं दिया, यह मुझे आपसे मालूम हुआ; कल उसके सम्पादक चतुरसेन जी टहलते हुए मिले, वह भी पूछ रहे थे कि आपका नाम क्यों नहीं है, आप विशेषांक के लिये

क्यों नहीं लिख रहे। पर सत्य यह है कि दुलारेलाल जी के माँगने पर बहुत पहले ही "मित्र के प्रति" शीर्षक में अपनी एक कविता १२० पंक्तियों की (पच्चीस रोज पहले) दे चुका हूँ : फिर भी उन्होंने ऐसा किया। इसके कारण हैं। पर देखा जायगा। मैंने कल उन्हें सूचना दे दी है कि मेरी कविता वे न छापें।

मैंने "प्रभावती" एक नया अविज्ञापति उपन्यास लिखा है, ऐतिहासिक रोमांच के रूप में। यहाँ के "सरस्वती-पुस्तक-मंडार" से प्रकाशित होगा। और जिनके लिये आपने लिखा है, पूरा करने की कोशिश करूँगा। कारणों से नहीं पूरा कर पाया।

इस महीने एक लेख मेरा "माधुरी" के विशेषांक में छप रहा है—"स्वकीया"। "सरस्वती" को "श्री सुमित्रानन्दन पन्त" लिखकर भेजा है। "सुधा" को जो कुछ दिया था, वह वापस ले लिया।

"चित्रपट" को अभी-अभी मैंने एक कविता उनके माँगने पर भेजी है। पहले भी एक भेजी थी, पर वह उसमें छपी है, मुझे मालम न था। विशेषांक के लिये माँगी थी, विशेषांक में तो नहीं छपी। उस कविता का शीर्षक मैंने "होली" दिया था; आप सुलोचना लिखते हैं : बदल दिया होगा। वह यह है—

मार दी तुझे पिचकारी,
कौन री, रँगी छवि वारी ?

फूल-सी देह, द्युति सारी,
हल्की तूल-सी सँवारी,
रेणुओं-मली सुकुमारी,
कौन री, रँगी छवि वारी ?

इसमें दूसरी पंक्ति जरा पेंचदार है, और तो साफ़ है। मतलब है उसका— "री, वह कौन है जिसने तुझे रँगी छवि वार दी ?"

अभी जो भेजी है वह यह है :—

वे गये असह दुख भर,
वारिद झरझर झर कर !

आशा है, आप प्रसन्न हैं। उपदेश के रूप में तो मैं कुछ कह ही नहीं सकता। उपदेश आपको अपने भी भीतर से मिलेंगे। मैं आपको केवल प्रसन्न-वदन देखने की इच्छा रखता हूँ। इति।

सस्नेह—
"निराला"

[रचनाएँ—1939 ई० में प्रकाशित जानकीवल्लभ शास्त्री के प्रथम हिंदी कविता-संग्रह **रूप-अरूप** के दो गीत : 'विश्व तुम्हारी माया' और 'मेरा नाम पुकार रहे तुम', "श्री सुमित्रानंदन पंत"—निराला का यह लेख "सरस्वती" में प्रकाशित नहीं हुआ और संभवतः नष्ट हो गया।]

[3]

नारियलवाली गली, लखनऊ,
१४-८-३५

प्रिय कवि,

मैं बहुत दिनों तक नहीं लिख सका। मेरी कन्या का १७ साल की उम्र में उसी समय देहान्त हुआ था। आपने ठीक लिखा है---"किन्तु करोषि सदेप्सितमेव"।

आपका विद्यार्थी जीवन जैसा चमकीला रहा है, मुझे विश्वास है, आपका कवि-जीवन भी वैसा ही होगा।

प्रसिद्धि से मनुष्य नहीं, मनुष्य से प्रसिद्धि है।

संस्कृत में आपने जैसा दखल पाया है हिन्दी में पाने के लिए भी प्रयत्नपर रहिये; श्रम निश्चय सार्थक होगा। मैं कुछ स्वस्थ होकर आपकी आलोचना लिखूँगा। इस समय अनेक प्रकार की उलझनों में हूँ। यहाँ पं० रूपनारायण जी पाण्डेय, सं० माधुरी, संस्कृत जानते हैं। उनसे मैंने आपकी चर्चा दो-तीन बार की हैं। शीघ्र उन्हें "काकली" पढ़ने के लिए दूँगा। आप यदाकदा अपने विचार हिन्दी में प्रकट किया कीजिये : मैं उनसे कह दूँगा---"माधुरी" आपको जगह दे। दूसरे पत्र भी देंगे। मैं ढंग-समेत आपका परिचय आलोचना में कर दूँगा।

आप विषय की तह तक पहुँचने की कोशिश करते हैं, वही आपको ऊँचाई तक उठायेगी।

कालिदास और श्रीहर्ष के सम्बन्ध में आपने ठीक लिखा है। कभी मैंने भी इन्हें कुछ-कुछ पढ़ा था। समय नहीं कि दोनों की सौन्दर्य-दृष्टि पर लिखूँ : दोनों महान हैं : पर श्रीहर्ष का प्रभाव अधिक स्थायी होता है। फिर भी कला की जानकारी कालिदास को अधिक है,---अगर कुछ गहन होते !

हाँ, "प्रभावती" कुछ बाकी है। नहीं कह सकता, पूरी खूबसूरत उतार दूँगा। "अप्सरा" से "अलका" जैसे भिन्न है, वैसे ही यह दोनों से। आपको शायद "अप्सरा" अधिक पसंद है, श्रम "अलका" ने अधिक लिया।

आप शायद वहाँ अँगरेजी के कला-विभाग में पढ़ते हैं, किस दर्जे में हैं, लिखियेगा, शीघ्र। फिर बस। मैं अधिक क्षुब्ध करना नहीं चाहता।

---"निराला"

(वहाँ---काशी हिंदू विश्वविद्यालय।)

[4]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow,
5.9.35

प्रिय बाल कवि,

आपको देर से लिख रहा हूँ। पर एक काम उसी वक्त कर दिया था। आप की कविता इस बार "माधुरी" में निकलेगी, मुझे श्री पाण्डेय जी ने ऐसा ही कहा था। उसे प्रथम पृष्ठ पर देते, पर कुछ बड़ी है, इसलिए अन्यत्र देंगे। आपकी कविता मुझे बहुत पसन्द आई।

लेख भी अच्छा है। दो या तीन जगह (बिहारी) भाषा की (यू० पी० की दृष्टि से) गल्तियाँ हैं। मैं उनके कानून व्याकरण के अनुसार अगले पत्र में लिख दूंगा। यों आप बहुत अच्छी हिन्दी लिखते हैं। आपको हिन्दी में भी नाम करना होगा। क्योंकि यहाँ गुंजायश ज्यादा है। आपको सिद्धि भी हो सकती है, मुझे ऐसा ही विश्वास हुआ।

मैं ६/७ रोज के अन्दर एक बार काशी जानेवाला हूँ। गया तो आपसे मिलूंगा। मैंने रायकृष्णदास जी के भारती-भण्डार को "गीतिका" दे दी है। उसी के सम्बन्ध में प्रयाग तथा काशी जानेवाला हूँ। पाण्डेय जी का पत्र आपको मिला होगा, अगर उन्होंने फिर लिखा है। याद नहीं, मैंने भी आपको इससे पहले, इसी सम्बन्ध में लिखा है या नहीं।

इसी १२ ता० के बाद मैं यह मकान छोड़ दूंगा।

आपका
—"निराला"

[लेख-"काव्य-प्रतिभा" शीर्षक जानकीवल्लभ शास्त्री का लेख, जो खो गया।]

[5]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow,
29.10.35

प्रिय जानकीवल्लभ,

बहुत दिनों से आपको नहीं लिखा। यहाँ आने पर आपका पत्र मिला था, पर उलझनें थीं, जिनसे आज-कल करते-करते पूजा की छुट्टी आ गई, मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। पाण्डेय जी के पत्र से मालूम हुआ, आप घर गये हैं, २०/२२ तक बनारस लौटेंगे। मैं इस समय मौरावाँ, उन्नाव गया था, एक साहित्यिक समारोह में। एक

पत्र मैंने पहले लिखा था, पर आलस्यवश भेजा नहीं।

यहाँ पत्र के साथ जो कविता भेजी थी, उसे मैंने अपनी एक रचना के साथ श्री नागर को दे दिया था, उनके आग्रह पर। वह कविता यहाँ के एक सिनेमा-पत्र में प्रकाशित हुई हे, विजयांक में, बनारस वह भेजा गया होगा; पर आपकी अदम मौजूदगी में पहुँचने के कारण अगर न मिला हो तो लिखियेगा, दूसरा अंक भेजवा दूंगा। कविता अच्छी है; शायद कुछ अशुद्ध छप गई है,—स्मरण नहीं।

''माधुरी'' में जो कविता आपकी इधर निकली, उसकी एक पंक्ति गलत है, व्याकरण-संगत मालूम देने पर भी, ''लाना'' और ''पाना'' क्रियाएँ एक auxillary Verb के साथ ''ने''—वर्जित चलती हैं। Present perfect tense में सकर्मक क्रिया के साथ हमेशा ''नहीं'' रहेगा; Past-future tense में ''न'', ''नहीं'' दोनों रह सकते हैं; असमापिका क्रिया के पहले ''नहीं'' कभी नहीं होगा, ''न'' रहेगा। (यों ''नहीं'' स्त्रीलिंग है—''नहीं'' की ''नहीं'' सही।)

ग़लतियाँ हम लोगों से भी होती हैं, निरुत्साह न हूजियेगा।

आपकी दो कविताएँ ''माधुरी'' में और आई थीं। एक पाण्डेय जी ने रक्खी हैं, एक उन्हें कम अच्छी लगी, मुझे काफी अच्छी लगी, पर वीर और रौद्र का यह रूप कुछ दिनों बाद आप स्वयं बदल देंगे। इस विचार से मैं अपनी पसन्द के अनुसार आपको हिन्दी में रखना चाहता हूँ, अगर आप भी पसन्द करेंगे।

पाण्डेय जी ''ज्वलित ज्वाल'' नहीं पसन्द करते। पर आप धैर्य से सब देखते-सीखते आगे बढ़िये; इन लोगों की इसलाह से आपको हिन्दी में ढंग के साथ उतरते हुए सहूलियत होगी। सविशेष फिर लिखूंगा।

मैं यहीं रह गया, मकान नहीं बदल सका। ओरछा मैंने कोई किताब नहीं भेजी। गीतिका साल भर पहले से तैयार थी : चाहता तो छपवा कर भेजवा देता।

मेरा प्रकाशन अच्छा नहीं, यह अच्छा है। समझदार आयेंगे, तस्वीरें देखने-वाले नहीं।

''सखी'' छप गई। ''प्रभावती'' प्रेस जा रही है। दोनों मैं ही आपको एक साथ भेज दूंगा।

अँगरेज़ी खूब पढ़ते जाइये। ''काकली'' मैंने पाण्डेय जी को पढ़ने के लिए दी थी, शायद उन्होंने खो दी, तब आपसे मँगवाई मुझे देने के लिये, दी भी। पर देखता हूँ, मेरे पास से कोई दोस्त उठा ले गये। अगर होगी तो मैं तीन-चार दिन बाद आलोचना लिखूंगा, ले लूंगा; नहीं तो आपको लिखूंगा।

आपका

—''निराला''

[''माधुरी'' में प्रकाशित कविता—''लो बोल उठे वन-वन विहंग''; ''माधुरी'' में पहले प्रकाशित दो कविताएँ—''नित मनाते ही रहे प्रिय'' और ''जीवन-रण में हों दीप्त-भाल''।]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow,
23.11.35

प्रिय कवि,

फिर बहुत दिन लग गये, आपको उत्तर देने में। यह भी उत्तर नहीं, केवल सान्त्वना है। उत्तर फिर लिखूँगा, क्योंकि बहुत लिखना है।

आपकी "निराला" पर लिखी कविता, "ध्वनि" पर लिखा लेख और "सुधा" के नोट की आलोचना मिली। उसी वक्त सब पढ़ डाला था।

आपकी काव्य-प्रतिभा "निराला" की तारीफ़ में, उसके "तुलसीदास" के मुकाबले न्यून नहीं। पर मैं इसे कहीं भेज नहीं सकता, न भेजवा सकता हूँ। इसे तारीख डाल कर, रक्खे रहिये। मेरी राय में, प्रसिद्ध होकर, यदि इच्छा हुई, तो कहीं भेजियेगा।

आपकी आलोचना के सम्बन्ध में ही मुझे अधिक लिखना है, इसलिये दूसरे पत्र की आशा दिलाता हूँ।

"ध्वनि" वाला लेख काफी अच्छा है। पर अच्छी ध्वनि के प्रदर्शन में वैसा अश्लील उदाहरण न देना था, और संस्कृत साहित्य में इधर के कवियों ने अश्लीलता में ही कमाल दिखाया है, मैं समझता हूँ। कुछ हो, यह भी मुझसे सम्बन्ध रखता है। मैं कह नहीं सकता, क्योंकि लेखक स्वतन्त्र है, पर मुझे अपने मित्रों से स्नेह की ही इच्छा रहती है।

आपका लेख माधुरी में इस बार नहीं प्रकाशित हुआ। अब के प्रकाशित होने वाले अंक में उसे गौरव वाला (प्रथम) स्थान मिला है, पाण्डेय जी कहते थे।

मैंने आपके पास "सिनेमा-समाचार" का अंक भेज देने के लिये फिर कहा था, अगर न गया हो तो जल्द लिखिये, मेरे पास एक अंक है, भेज दूंगा। आपकी कविता शुद्ध, सुन्दर छपी है सिनेमा-समाचार में।

—"निराला"

["निराला" पर लिखी कविता—निराला की कविता "तुलसीदास" के छंद में निराला पर लिखी गई जानकीवल्लभ शास्त्री की कविता;
"ध्वनि" पर लिखा लेख—जानकीवल्लभ शास्त्री का यह लेख भी निराला से खो गया; "माधुरी" में प्रकाशित लेख—हिंदी में लिखा गया जानकीवल्लभ शास्त्री का पहला लेख।]

[7]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow,
11.2.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

बहुत दिनों बाद आपको लिख रहा हूँ। आपके दो पत्रों का भी निरुत्तर रहा। मैं मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर खोता जा रहा हूँ। केवल विश्वास रह गया है। नहीं कह सकता, देवी वीणावादिनी की क्या इच्छा है।

इस पत्र के साथ इधर की लिखी "सरोज-स्मृति" रचना आपके पास भेज रहा हूँ—मेरी पुत्री सरोजकुमारी की स्मृति पर लिखी गई है।

आपकी काकली की आलोचना के लिए कुछ और समय ले लिया है, कारण आपका हिन्दी-कवि-रूप भी साथ रखना चाहता हूँ : पुनः कुछ आवश्यक कामों से फुर्सत पा लेना चाहता हूँ, तब तक "तुलसी-कालिदास" की प्रत्यालोचना में लिखा निबन्ध आपका मैंने देख दिया है: पिछले महीने स्थानाभाव के कारण नहीं जा सका, अब के सुना, जा रहा है : इस बार मेरा भी एक बृहत् विवेचन "मेरे गीत और कला" शीर्षक से जा रहा है, चार-पाँच अंकों में निकलेगा "माधुरी" में।

मैंने देखा, हिन्दी के आलोचक परले दर्जे के उजबक हैं। जब तक मैं कला का आधुनिक रूप खोल कर न रखूंगा, वे "कला-कला" करके ही कला की इति करते रहेंगे। लेख देखियेगा।

जब तक मैं स्वयं आप पर इच्छानुसार न लिख लूं, तब तक मुझ पर लिखा आपका कुछ प्रकाशित होना ठीक नहीं। यद्यपि यह सहृदयता के प्रतिकूल नहीं, फिर भी लोकाचार इसके विरुद्ध है। आप मेरे विचार से, बिहार और समस्त हिन्दी-संसार में शीघ्र अपना सुन्दर कवि-रूप रक्खेंगे; पर हिन्दी की तरक्की कीजिये। जिन बिहारियों का डंका पीटा जा रहा है, मैं बहुत जल्द उनके समक्ष आपको भिड़ाता हूँ—खास तौर से दिनकर जी के मुकाबले देखा जाय। एक आन्दोलन बिहारियों के काव्य-ज्ञान का खड़ा करके देखना चाहता हूँ, डंका पीटनेवाले बाजदार ही हैं या समझदार भी। इस पत्र का मर्म भी खोलियेगा मत।

आपके पत्र के और सब विषय भूल गये हैं : लेख और पत्र हैं तो, पर उठकर उन्हें खोज कर पढ़ना मेरे लिये बड़ी मिहनत का काम है: ऐसा कष्ट मैंने कभी नहीं उठाया। मैं समझता हूँ, एक ही विषय उत्तर देने के योग्य है, अन्य सब सहृदय होकर हृदय में ही लीन हो चुके हैं। यह कालिदास के इस श्लोक का अर्थ है, जिसका मतलब मेरे विचार से मल्लिनाथ को भी नही सूझा, न संस्कृत के पण्डित मेरे मित्र श्री वासुदेव शरणजी अग्रवाल, शास्त्री, एम०ए०एल्-एल् बी० को, जिन्होंने कई साल पहले "माधुरी" के विशेषांक में इसी श्लोक के आधार पर (कालिदास पर लिखते हुए) अलका में सब समय सब ऋतुओं की छाया कर दी है। आपने मुझे सहृदय

होकर समझाने के लिये लिखा है!

यह ठीक है कि भाषा की ओजस्विता कभी-कभी क्रोध की परिचायिका होती है, पर यह भ्रम है, सत्य नहीं। मैं तो आपको छोटे कवि-मित्र की ही तरह देखता हूँ। दूसरों पर भी वैर नहीं रखता। पर न जाने क्यों, मुझे वैर ही दूसरों से मिला।

अप्रिय सत्य में सत्य को छोड़कर यदि वे अप्रियता को ही देखें तो मैं हृदय से अपने को निर्दोष ही पाता हूँ।—और अप्रिय सत्य के प्रयोग मुझे इसलिए करने पड़ते हैं कि लोग सत्यप्रियता के नाम से असत्य या अर्द्धसत्य का पल्ला पकड़ते हैं।

आपने "सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीयं वधूनाम्" में "वधूनां" के द्वारा, सभी फूलों को, भिन्नरुचि के अनुसार, लगाने की युक्ति दी है। युक्ति अच्छी है। पर, दूसरा विरोध इससे भी जोरदार और साथ ही पायेदार रहता है। वह यह कि एक ही समय घोर जाड़ा और घोर गर्मी नहीं पड़ सकती : इसलिये, ऋतु प्रभाव से, धीरे-धीरे खिलनेवाले जाड़े के "लोध्र" और गर्मी के "शिरीष" एक साथ बगीचे में खिले नहीं मिल सकते। स्वर्ग में छहों ऋतुओं का एक साथ होना माना गया है; पर वह काल्पनिक है; यहाँ इसी का आश्रय टीकाकारों ने तथा संस्कृत के विद्वानों ने लिया है; पर यह कालिदास की कला को न समझना है—जैसा कि उन्होंने "मेघ" में ही लिखा है, आप जानते हैं--"दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्" (दूसरा अर्थ:—रास्ते में दिङ्नाग-जैसे पण्डितों के हाथ की भद्दी लीपापोती (स्थूल काव्य-कला) छोड़ते हुए)। और आपकी ही युक्ति के उत्तर में कहूँगा कि ऋतु-ऋतु का एक ही शृंगार सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं। अस्तु, दूसरे का अर्थ :—

> यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
> हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।
> केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
> नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः॥

इसके अर्थ से पहले इतना जान लेना आवश्यक है कि केवल यक्ष विरही है और सब वहाँ अपनी-अपनी प्रिया से मिले हुए। इस श्लोक में शुरू से अखीर तक लुप्तोपमा है।

यक्ष कहता है :—जहाँ पागल (भ्रमर यानी प्रणयी, प्रणयी की तरह मुखर = भ्रमरमुखर) भौरों से (भ्रमर-संयुक्त हो कर) मुखर पादप (पुरुषाः) नित्यपुष्प (युवतिजनाः) हो रहे हैं, हंसश्रेणी (तारीफ करनेवालों की मण्डली या हंसों की कतार से) निर्मित रशना (वृत्त या करधनी, वह करधनी जिसमें हंसों की कतार बैठा दी गई है; या हंसों की श्रेणी में आने वाले, क्षीर-नीर-विवेक रखने वाले सत्य-प्रशंसकों की मण्डली से घिरी); नलिनी (-स्वरूपा कामिनियाँ) नित्यपद्माः (नित्य-पद्म-पुरुषाः) हैं,—(उनके हृदय पर उनके प्रिय हैं।)

इन दोनों पंक्तियों में जैसा स्त्री-पुरुष-संयोग दिखाया गया है, वैसा एक-एक पंक्ति में भी आ सकता है और शब्द-रचना साबित करती है कि कालिदास का यही भाव है--जहाँ मत्त भ्रमर-योग से मुखर पादप (पुरुष) नित्य पुष्पधारण

किये रहते हैं (खुश हैं--ध्वनि) और नलिनी (शय्याएँ) हंसों की कतार वाली करधनी पहने हुए पद्मस्वरूपा स्त्रियों से नित्य युक्त खिली हुई हैं—"हंस-श्रेणी-रचित-रशना नित्यपद्मा" हो रही हैं (खुश हैं—ध्वनि)!

देखिये, कैसा घटता है!—यही कालिदास की एकमात्र कला है जो अन्यत्र नहीं मिलती। (मैंने अनेक उदाहरण इनके ऐसे निकाले हैं, जहाँ अलंकार के धर्म-विशेष के लोप से दूसरा सहज अर्थ प्रतिभात है।)

आगे देखिये :—केका स्त्रीलिंग है और शिखी पुंलिग, फिर ज्योत्स्ना स्त्रीलिंग है और प्रदोष पुंलिग। पहले कालिदास, रूप में स्त्री-पुरुष-संयोग दिखा चुके हैं—उनकी प्रसन्नता जाहिर कर चुके हैं, अब स्वर में दिखा रहे हैं— वही संयोग, फिर भाव में, जो और सूक्ष्म हो गया है।

यहाँ "भवन-शिखी" द्रष्टव्य है। यक्ष भवन-शिखी नहीं। कहता है—मकान के मयूर हमेशा कलाप से चमकते हुए (क्योंकि खुश हैं) केका से उत्कण्ठित रहते हैं (केका का योग है, यह भीतरी स्त्री-रूप मोर से संयुक्त किया गया है : और बाहरी स्त्री-रूप से मिलने का भाव "उत्कण्ठा" शब्द से द्योतित है। पुनः यह उत्कण्ठा शब्द अनिश्चयात्मक नहीं, मिलने की निश्चयात्मकता लिये हुए है।)

प्रदोष (शब्दार्थ के भीतर, धातु-भाव से, पैठिये, कैसा रक्खा है)—सान्ध्य काल, तमोवृत्ति से प्रतिहत होकर रम्य है ("तमोवृत्ति" शब्द भी देखिये; इसके ये मानी नहीं कि वहाँ शाम का अँधेरा नहीं होता, नहीं, तमवाली वृत्ति जो दुःखदा है, वहाँ नहीं;) कारण, नित्य ज्योत्स्नारूपिणी स्त्रियाँ (घर-घर) विराज रही हैं। प्रदोष-पुरुष नित्यज्योत्स्ना ज्योति-युवतियों से युक्त होकर प्रतिहत-तमोवृत्ति-रम्य हैं। नित्य-ज्योत्स्ना ज्योति होने के कारण तमवृत्ति प्रतिहत है, इसलिए प्रदोष रम्य है।

अधिक और क्या लिखूँ : आप अच्छी तरह मनन कर लीजिये। और बहुत कुछ कहता, पर सोचने और मिला लेने के लिये छोड़ दिया है। लिखियेगा, कैसा लगा। मुझे समय नहीं, आधी संस्कृत भूल भी गया हूँ, फिर भी और बड़ी-बड़ी बातों का आविष्कार किया है मैंने, जहाँ गीता की टीका में शंकर भी बम बोलते हैं। मैं इस-लिये ज़बान नहीं खोलता कि हिन्दी में ही कूड़ा नहीं साफ कर पाया, कौन फिर उधर जल्द उलझे! मुझे आशा है, आप इसे सहृदय भाव से देखेंगे, और अपनी राय १५ दिन के बाद भेजेंगे। मैं इलाहाबाद जा रहा हूँ। वहाँ १०/१२ दिन रहूँगा।

मैं फिर लिखता हूँ, आप अपनी साफ़ राय दीजियेगा। क्योंकि, मैं आपको जिस संस्कृत रूप में देखना चाहता हूँ, वह अशास्त्रीय नहीं। अशास्त्रीयता से ही मुझे घृणा रही है। मेरे इस अर्थ को मिलाइयेगा तो फूलों के सब समय खिलने की आयँ-बायँ शायँ, देखियेगा, मिटती है या नहीं : पुनः पूर्व पद से यह सम्बद्ध भी किस तरह रहता है। जो कालिदास "हस्ते लीलाकमलम्" में ऋतुओं का वैसा सुघर क्रम रखते हुए भी समझने का धोका दे जाते हैं, वे बाद को घोट ही देंगे, यह गैरमुमकिन है।

मैंने काशी में आपसे कहा था कि बाद को बिगाड़ दिया है, पर मुझे मनन करके देखना है : अब देखिये।

आप जब तक उर्दू न पढ़ें, उर्दू के किसी शब्द के नीचे बिन्दी न लगायें। न वैसा उच्चारण करें। जल्द प्रगति कीजिये, बहुत पढ़ना और बहुत आगे आना है। फिर और बातें लिखूंगा।

आपका
निराला

[8]

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

एक लम्बा पत्र जिसमें कालिदास के "यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा:" वाले श्लोक का अपना अर्थ लिखा है, यहाँ आने के एक दिन पहले आपके पास भेजा था, लखनऊ से : साथ "सरोज-स्मृति" मेरी लम्बी कविता थी। पत्र आपको मिला होगा।

यद्यपि मैंने उत्तर दस-पन्द्रह दिन ठहर कर लिखने के लिए लिखा है जब तक मैं लखनऊ लौटूं, फिर भी आपकी राय जानने की इच्छा हो रही है कि उस श्लोक का वह अर्थ आपको जँचा या नहीं। लिखियेगा।

मैं यहाँ दस दिन के करीब रहूँगा। प्रसन्न हूँ। एक फार्म "प्रभावती" का छपना बाकी था, लौटकर दोनों किताबें --- "सखी + प्रभावती"—भेजूंगा। यहाँ निरुपमा दे रहा हूँ। ३/४ महीने में यहाँ से भी दो पुस्तकें निकल जायँगी।

आपका
"निराला"

१७-२-३६

[9]

58 Nariyalwali Gali
Lucknow
31.3.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

मैं २७ मार्च को प्रयाग से लौटा। इसलिए आपको प्रतीक्षा का कष्ट अधिक उठाना पड़ा होगा। पर अब जल्द-जल्द आपको लिखने की कोशिश करूँगा।

अभी मैं यहाँ के कामों से फुर्सत नहीं पा सका। पत्र तीनों देखे और सरसरी दृष्टि से श्रीहर्ष-कालिदासवाला लेख।

कटु आलोचना मेरा उद्देश्य नहीं। हो भी जाय अगर कहीं कटुत्व तो उसे रस मानता हूँ। कहने के लिए दुनिया है।—"भूँकैं स्वान हजार"—मेरे आविर्भाव से

पहले की रचना है।

गाने में सँभलने की कोशिश करूँगा। पर सत्य और सुन्दर रूप से प्रकट होता रहता है, यह एक उक्ति है, अतः "तब प्रभु मोसम आन बनै है" मुझे अच्छा लगता है।

रवीन्द्रनाथ की नकल बँनू, मेरी इच्छा नहीं; मैं मैं हूँ: सूर्य्यकान्त रवीन्द्रनाथ नहीं,—कान्त "इन्द्र" और "नाथ" की गुरुता चाहेगा ?

आपने "कवितात्व" लिखा है—-कैसे सिद्ध होता है शब्द, लिखियेगा। मैं जानता हूँ, Strict grammar के अनुसार व्यक्तिवाचक शब्द (को ?) भाववाचक करने के लिये "ता", "त्व" लगते हैं।

शब्द "कवि" व्यक्तिवाचक है; "कवित्व, कविता" भाववाचक। कवियों ने कविता-कुमारी को Personify किया है: यह वे हर जड़ के लिए कर सकते हैं; पर आलोचक "कविता" में भाव कैसे पैदा करता है? आप इसे असहृदय न समझियेगा। लोग सत्यता लिखते हैं; रवीन्द्रनाथ को भी लिखते मैंने पढ़ा है, पर "सत्य" स्वयं विशेष्य है। (—विशेषण तो है ही जिसके कारण लोग "ता" जोड़ने के आदी हैं।)

आपका
"निराला"

बहुत नहीं लिख सका। बड़ी जल्दी है।

नि०

[जानकीवल्लभ शास्त्री ने अपने पत्र में सूर, मीरा और चंडिदास के कुछ पद उद्धृत कर निराला से पूछा था—"आप ऐसे गान क्यों नहीं लिखते ?" उन्होंने उनसे यह भी पूछा था—"आपकी पदशय्या रवीन्द्रनाथ के समान क्यों नहीं है ?" इस पत्र में निराला ने इन बातों का उत्तर दिया है।]

[10]

58, Nariyalwali Gali,
Lucknow,
17.4.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आप पर मेरी पूरी नजर है। सखी और प्रभावती मेरे पास रखी हैं, पर मैं भेज नहीं सकता। क्योंकि कांग्रेस भर में मेरा अर्जित अर्थ खर्च हो गया है। आप आठ आने के टिकट भेजिये या मुझे बैरंग भेजने के लिये लिखिये।

आपका
निराला

58, Nariyalwali Gali,
Lucknow,
30.4.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

काशी के पते पर "सखी" और "प्रभावती" आपको मिल चुकी होंगी। छापे की भूलें हुई हैं, खास तौर से "प्रभावती" में। "निरुपमा" छप रही है। "गीतिका" और "निरुपमा" गरमियों की छुट्टी भर में प्रकाशित हो जायँगी। किताबें आपको कैसी लगीं, लिखियेगा, स्पष्ट, मेरी दूसरी रचनाओं के मुकाबले।

आपका गीत "माधुरी" के मुखपृष्ठ पर निकला है, आपने देखा होगा।

आप पर मैं लेख लिखना चाहता हूँ "काकली" का सम्बन्ध ले कर, और निकालना भी चूंकि "माधुरी" में है, इसलिये अपने इस लेख (मेरे गीत और कला) के निकल जाने पर देना उचित समझता हूँ। "माधुरी" से प्रकाशन ज्यादा अच्छा होगा।

"सुधा" को मैं आपके लेख-कविताएँ देता, पर "सुधा"-सम्पादक कुछ दूसरी तरह के आदमी हैं, फिर मेरी घनिष्ठता भी अब वैसी नहीं रही। फिर भी मैं पूछूंगा। वे चाहते हैं, लेखक या कवि स्वयं उनसे पत्र-व्यवहार करें। मैं आपका जिक्र उनसे करूँगा। आपको सूचित करने पर आप स्वयं उन्हें लिखियेगा।

कविता के Sense में मेरा वही मतलब था जो आपका है। Personified कविता से मेरा मतलब है वहाँ। यद्यपि आपका व्याकरण वह नव्य नाम से सूचित करता है कि बाद को वैसे form की जरूरत हुई, और यह ठीक भी है, अब भी हमें "कविता-तत्त्व" लिखते समय मालूम होता है, फिर भी, मेरा खयाल है कि नये फ़ैशन में अब "कवितात्व" नहीं चल रहा; बँगला-साहित्य से तो इसका बहिष्कार हो ही चुका है; मुमकिन, नवद्वीपवालों ने न्याय से संस्कृत में भी किया हो, मैं ठीक नहीं कह सकता, आप पता लगाइयेगा।

मैंने (जयदेव के) —

"उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके

तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके"—को दिव्य अर्थ में लगा लिया है और फिर वेदान्ततत्त्व में इसका घटाव। बात यह कि समय नहीं मिलता। कितना काम पड़ा हुआ है! क्या-क्या किया जाय!

मैंने फिर से संस्कृत-अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया है अगर तार बँधा रहे।

अपने स्वास्थ्य-समाचार दीजिएगा। और अगर मज़ा देखना हो तो "महतो" (प० मोहनलाल महतो "वियोगी") से मिलकर कहियेगा कि निराला जी आपको

अपना चेला कहते थे, कहते थे कि दिल्ली में उन्होंने मुझसे अपनी कविता शुद्ध कराई थी। देखिये, फिर क्या रूप देखने को मिलता है।

आपका
निराला

[12]

58, Nariyalwali Gali,
Lucknow.
11.5.36
6 P. M.

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। प्रभावती पर आपकी जो राय है, वह मेरी भी है। कुछ दूसरे मित्रों ने भी यही सम्मति दी है। पर कुछ की राय है, यह "अप्सरा" से बढ़कर है। ये लोग ऊँचे विद्वान हैं। आज मिस्टर मालवीय जो कान्यकुब्ज कालेज के अध्यापक हैं यहाँ, प्रभावती की बड़ी तारीफ करते थे और अप्सरा से बढ़कर बताया।

निरुपमा बड़ी सीधी भाषा के भीतर से है। जिन्होंने पाण्डुलिपि पढ़ी है वे सब (अभी तो) प्रभावती से बढ़कर कहते हैं। मेरा विचार है, अभी रोचकता में अप्सरा ही सबसे अच्छी है।

इस बार फिर आपकी कविता माधुरी के मुखपृष्ठ पर है। बधाई।

पन्त जी पर अँगरेजी का प्रभाव पड़ा है, जो लोग कहते हैं, उन्होंने अँगरेजी में सिर्फ परीक्षाएँ पास की हैं।

मुझे लोग नहीं मानते, इसीलिए इस साहित्य में मैं आया हूँ। जिन्हें मानते हैं, वे साहित्यिक होते तो मेरे आने की जरूरत न होती।

कलावाला लेख जून में निकलेगा। विशेष फिर। आप प्रसन्न होंगे।

आपका
निराला

[13]

58, Nariyalwali Gali,
Lucknow.
3.6.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

मैं शीघ्र आपको नहीं लिख सका। आपके गीत पसन्द आये। दो-तीन अधिक।

आज वीणा सम्पादक को भेजता हूँ।

आप मेरी प्रसिद्धि की ओर ध्यान न दें। हिन्दी वाले जैसा समझते हैं, लिखते हैं। केवल तारीफ़ से कुछ नहीं होता, साथ समझ चाहिये।

मैं जल्द प्रयाग जा रहा हूँ। कब लौटूँगा, ठीक नहीं। "निरुपमा-गीतिका" के प्रकाशन से सम्बन्ध है। बाकी पुस्तकें मैं लिख पाया तो समय-असमय निकल जायँगी।

सब तरह विपत्तियाँ हैं—यत्र गच्छति भाग्यरहितस्तत्रैव। आदमी यथाशक्ति लड़ता है, मैं भी जीने के लिए लड़ता हूँ। साहित्य अपना रास्ता आप निकाल लेता है। मैं उसका एक बहुत ही छोटा करण-कारण हूँ। अब उसका काम आगे आप लोग करेंगे।

अगर मई का "भारत" पूरा देखने को मिले तो देखिये। मेरी पन्त जी की लिखी विवेचनाएँ हैं।

आपने अपने गीत में कहीं विषमता दिखाई है, स्मरण आता है। असंगति, अधिकादि जो हो, मैंने समझा, ध्यान नहीं दिया। और कुशल है। इति।

आपका
निराला

[जानकीवल्लभ शास्त्री का गीत—"वासर विभावरी" (रूप-अरूप में संकलित)।]

[14]

C/o Pandit Vachaspati Pathak Esqr,
Nawabganj,
Benares City
19.6.36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

वीणा-सम्पादक के पत्र से, लखनऊ में ही, आपकी कविताओं के छपने की मंजूरी के साथ-साथ मालूम हुआ कि उन्होंने आपको यथालिखित पत्र भेजकर धन्यवाद दिया है।

मैं आजकल काशी ऊपर के पते पर हूँ। गीतिका छप रही है सरस्वती प्रेस में भारती भण्डार द्वारा, निरुपमा भी लीडर प्रेस में। १५-२० दिन रहूँगा।

"चाँद" में आपका लेख देखा। खुशी हुई। आपको "माधुरी" में मेरा दूसरा अंश "मेरे गीत और कला" का कैसा लगा, लिखियेगा। और सब कुशल है। जल्दी में हूँ।

आपका
निराला

C/o Vachaspati Pathak Esqr.
The Leader Press.
Allahabad.
7.11.36

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ,

मुझे उत्तर देते हुए देर हो गई। पहले भी मैं बड़ी तलाश करता रहा। प्रतिज्ञानुसार काशी ५/१० को जा रहा था, पर रोक दिया गया। कुँ० चन्द्रप्रकाश को चिट्ठी लिखी, उत्तर में तुम्हारा संवाद नहीं। उनका घर से पत्र मिला, लिखा था, काशी छोड़ने के कई रोज पहले से मैंने जानकीवल्लभ जी को नहीं देखा। फिर मि० शर्मा (डा० रामविलास शर्मा) का पत्र मिला। लिखा था :

जानकीवल्लभ जी नारियल वाली गली से यहाँ आये, "राम की शक्तिपूजा" पढ़कर प्रसन्न हुए, पंजाब गये थे, काशी जा रहे हैं।

मुझे खुशी हुई, पर काशी का नया रूम नम्बर भूल गया था। पुनः छुट्टी के दिन हैं; घर जाना सम्भव है, सोचकर सोचता ही रहा; फिर आपका पत्र मिला।

गीतिका कल तैयार हो जायगी; निरुपमा हो चुकी है। कुँवर चन्द्रप्रकाश दीपावली तक यहाँ आने वाले हैं। उनके हाथ दोनों पुस्तकें भेज दूंगा।

आपके बन्दीमन्दिरम् को (छपा हुआ) देखने की प्रबल इच्छा है। चार वाक्य संस्कृत में लिखते मुझे दिक्कत न होगी।

"त्रिशंकु" वाली दशा खूब रही। पर जब आप हठी नहीं, तब आपके लिए वह डर भी न होगा—स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतरेगा।

मैं सचेष्ट हूँ। केवल आपके हिन्दी गीत मुझे यहाँ नहीं मिल रहे। आप कष्ट का विचार न कर कुछ भेज दीजिये, जल्द।

अंग्रेज़ी की पढ़ाई धीरे-धीरे कीजिये। स्वास्थ्य पहले है।

आपका
निराला

["त्रिशंकु" वाली दशा—संस्कृत से हिंदी में आकर जानकीवल्लभ शास्त्री संतुष्ट न थे। उन्होंने निराला को लिखा था कि मैं डरता हूँ, कहीं मेरी दशा त्रिशंकुवाली न हो।]

[16]

C/o Pdt. Vachaspati Pathak Esqr.
The Leader Press.
Allahabad.
12. 1. 37

प्रिय तरुण आचार्य,

आपका पत्र मिला। "सम्राट" पर वाली कविता औरों की तरह आपको भी अच्छी लगी। आपने संस्कृत की रूह से ठीक पकड़ पकड़ी है—स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गु विकसति···।—और वह भी, जिसके लिए "प्रियङ्गु" को कामाओं से बन्द किया है।

कविता तो मैंने यों ही एक दिन लिख डाली सम्राट् के गद्दी छोड़ने से प्रसन्न होकर।

इधर काम करना बन्द कर दिया है। पैर की अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती जा रही थी। अब ३-४ दिन से एक दवा अच्छी मिली है, काफी फ़ायदा हुआ है। आशा है ४० दिन के सेवन से अच्छा हो जाऊँगा। अपनी व्याधि के कारण ही मैं अभी तक आपकी पुस्तक की आलोचना नहीं लिख सका। जी नहीं होता।

माधुरी वाली बात तो जो हुई हो गई, आप अपने स्वास्थ्य की ओर पहले देखिये। मैं बराबर आपका आपकी तन्दुरुस्ती की ओर ध्यान दिलाता रहा हूँ। अँगरेज़ी-बँगला के लिए बहुत समय है। बेफिक्र होकर रहिये और इलाज कीजिये।

मैं एक हफ्ते के लिए लखनऊ जा रहा हूँ, कविसम्मेलन। प्रकाशन की वहाँ बातचीत करूँगा—अलका आदि की। यहाँ प्रबन्धों का संग्रह जहाँ तक जा सकेगा, जायगा। इति।

आपका
निराला

[माधुरीवाली बात—भुवनेश्वर ने लेख लिखकर "माधुरी" में निराला पर आक्षेप किये थे। जानकीवल्लभ शास्त्री उनका उत्तर देनेवाले थे।]

[17]

C/o Pdt. Vachaspati Pathak Esqr.
The Leader Press,
Allahabad.
9.2.37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

कुछ देर से उत्तर दे रहा हूँ। लखनऊ तो वास्तव में मैं जाना ही नहीं चाहता

था। पं० नन्ददुलारे जी ने बुलाया था, फिर कविसम्मेलन का आमन्त्रण आया। कुछ प्रदर्शनी देखने का लोभ भी था। इसलिए चला गया। पर फिर भी १०१) सम्मेलनवालों से लेने की बात लिखी थी। यह भी पेशगी। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, आदमी भेजकर, यहीं उन्होंने २५) दिलाये और केवल एक रोज दस मिनट पढ़ने के लिए प्रार्थना की। इस तरह मैं गया। और दूसरे दिन पाँच मिनट दो कविताएँ पढ़ीं। असली बात, प्रदर्शनी देखना था। वहाँ १५) फिर दुलारेलाल जी से लिये थे। खर्च इस तरह पूरा हुआ।

आपका व्यर्थ खर्च होगा, इस विचार से नहीं लिखा। कुँवर चन्द्रप्रकाशजी को खर्च देने के लिए लिखकर आमन्त्रित करके भी शायद उन लोगों ने खर्च नहीं दिया, पढ़ने के लिए भी नहीं पूछा, कारण भगवान जानें।

मैं तो दलच्युत होकर दूसरी जगह, एक विद्यार्थी के वहाँ रहा था। पुनः लखनऊ के मित्र मुझे प्रतिदिन दावत दे रहे थे, मेरे साथियों का मेरे साथ दावत में शरीक होना अपनी अब तक की आदत छोड़ना या जान पर खेलना था।

आपके स्वास्थ्य के समाचार से प्रसन्न हुआ। शेष फिर। अभी भी मैंने नये जीवन से लिखना शुरू नहीं किया। पूरा पता लिखा करें।

आपका
निराला

[18]

११२, मक़बूल गंज, लखनऊ
२४-३-३७

प्रिय आचार्य्य जानकीवल्लभ !

प्राप्तं प्रियपत्रं तव। समधिगताश्च सन्देशाः। प्रयागादद्यैवागतोऽहं प्राप्त पत्रः। सत्यं यल्लिखितं त्वया, परन्तु, गतेऽपि प्रतिकूलतां कार्य्ये कारणे वा कस्मिश्चित्, न विरोधोऽधुना कथ्यते। नैतद् दृष्टिमान्धमपि कस्यचित्। प्रकाशान्तर-मेव दर्शनस्यालोचनस्य च।

सर्व्वे पुरो गच्छन्ति, मन्ये, सर्व्वत्रास्ति नवीनता। तथापि, जानामि, जनाः परिहसन्ति कमप्युडुपवाहि-सागरपारकामिनम्।

लिख यथा यदिच्छसि साधुचरितः स्वान्तः सुखाय स्वच्छन्दतया।

गोरक्षपुरे कविजनैः स्थापिते ह्यस्माकं हिन्दीनवयुगसङ्घे समागच्छ। पठ "भारते" मम लेखम्, प्रकाशिते।

स्वस्थोऽस्मि। चिन्तयाम्यनागतमुखं साहित्यम्। इति शम्।

तव
सूर्य्यकान्तः

पता नहीं, कितनी गलतियाँ
हुई। फिर विस्तृत लिखूँगा।

—नि०

[जानकीवल्लभ शास्त्री के संस्कृत में लिखे गए पत्र का उत्तर।]

[19]

डलमऊ, रायबरेली
२७-५-३७

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

मैं फिर दीर्घ काल तक आपको नहीं लिख सका। मेरा पैर मुझे बहुत विपद्-ग्रस्त किये हुए है।

एक रोज "माधुरी"-आफिस गया था; आपकी आलोचना स्वीकृत हो गई थी; मुझे पाण्डेय जी ने पढ़ने के लिये दी थी, सरसरी निगाह मैंने उसे देख लिया। शायद उसे वे एक ही बार में छापेंगे।

आलोचना आपकी निष्पक्ष तो है, पर मैं ऐसी प्रशंसा नहीं चाहता, न ऐसी उदारता मुझे प्रिय है। इससे तो पन्त जी के वे प्रशंसक मुझे भले मालूम देते हैं, जिन्हें पन्त जी के सिवा हिन्दी में कवि ही नहीं नजर आता।

मैं जिसे कला कहता हूँ, उसका आपने जिक्र नहीं किया। फिर भी मैं आपके आलोचक का अदब करता हूँ। साथ ही, एक मित्र की हैसियत से सलाह देता हूँ : सत्य न घट कर है, न बढ़ कर।

आप पर कालिदास का जो रंग है, वह मेरी धारा का बाधक है, मुझे ऐसा जान पड़ता है। जिसे मैं दुर्बलता मानता हूँ, वह आप लोगों की निगाह में सौन्दर्य बन जाता है।

मैं जानता हूँ, आप बुरा न मानेंगे। मैं ससुराल में हूँ। लिखिये :—प्रेमा होटल, अमीनाबाद, लखनऊ।

एक जगह इतिहास-जन्य भ्रम मैंने ठीक कर दिया है।

—निराला।

[जानकीवल्लभ शास्त्री की आलोचना—"निराला की काव्य-कला" शीर्षक लेख।]

[20]

प्रेमा होटल, अमीनाबाद,
लखनऊ
२३-६-३७

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका मधुर पत्र पढ़ा। आपके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा है। आप ही लोग हिन्दी के भविष्य विद्वान हैं; आपको अनादृत करूँ, मेरा ऐसा उद्देश्य नहीं था, मैंने जो कुछ भी लिखा; सीधे ढँग से लिखा।

कालिदास के प्रति आपकी जो धारणा है, उस पर मुझे विश्वास है। किसी को समझने+न-समझने का गर्व और विनय भी कुछ नहीं; समझ की सनद तो आपके पास ऊँची है ही। इस परीक्षा में मैं तो समझदारों में बहुत पीछे हूँ।

मैं कल यहाँ आया और आपका आया हुआ पत्र पढ़ा। आज माधुरी-आफिस गया था। पाण्डेय जी नहीं मिले। मेरी समझ में उसे जाने दें आप, जैसा लिखा है। अन्तिम परिच्छेद का मुझे स्मरण है। आवाज कमज़ोर है इसलिये मधुर है।

मैं एक तरह अच्छा हूँ। फिर से कलम उठाया है। दो गीत "सुधा" में निकले हैं मे+जून की संख्याओं में।

"सुकुल की बीबी" एक कहानी दी है: कुछ वैसी नहीं बन पड़ी; पर कुछ अंश पसन्द आयेंगे आपको। आपका गीत बड़ा भावपूर्ण है। मैं "सुधा"-सम्पादक को दूंगा।

मैं अभी तक मानसिक बल नहीं प्राप्त कर सका, पर मैं असंस्कृत नहीं। देखिये।

सविशेष फिर।

आपका
निराला

[जानकीवल्लभ शास्त्री का गीत—"आँखें ही तो हैं भरी हुई" (**रूप-अरूप** में संकलित)।]

[21]

112, Maqbool Ganj
Lucknow
5.8.37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र होटल में मिला था। मैं इधर ४० दिन ससुराल रहा, एक महीने

पहले तक। होटल में आया हुआ आपका पत्र आकर प्राप्त किया था। आपका आधा लेख माधुरी में छप गया है। कहीं-कहीं कुछ अशुद्ध छपा है। मैंने सिर्फ "मोगल-दल···हरहर" का अर्थ सीधा-सीधा लिख दिया है। बाकी कुछ बना-बिगड़ा होगा तो उसके लिये पाण्डेय जी उत्तरदायी होंगे। माधुरी ३-४ दिन में निकल जायगी। आधा लेख अगले महीने में छपेगा। आपका उपसंहार भी मैंने घटा दिया है। आपके गीत के लिये सुधा-सम्पादक से पूछा था। उन्होंने छापने के लिये कहा है। मैंने अभी दिया नहीं। मकान बदलते वक़्त अगर ले आया हूँ, याद है कि ले आया हूँ, तो अवश्य उन्हें भेज दूंगा। पं० रामविलास जी इस मकान से गये, मैं आया। और सब कुशल है।

"वनबेला" का प्रूफ भेजता हूँ साथ।

गीत

(कवि-नद की उक्ति)

पथ पर मेरा जीवन भर दो।
बादल हे अनन्त अम्बर के,
बरस सलिल गति उर्मिल कर दो!

गीत

बादल, गरजो!
घेर-घेर घोर गगन धाराधर ओ!
ललित-ललित, काले घुंघराले
बाल कल्पना के-से पाले;
तप्त धरा, जल से फिर शीतल कर दो—
बादल गरजो!

यह गीत माधुरी में गलत छपा है। "बाल-कल्पना के-से" हो गया है!!! अन्त में "बादल गरजो" की जगह मैंने ही "धाराधर ओ" कर दिया था!

आपके "तरन्तीवाङ्गानि स्खलदमललावण्यजलधौ" के मुकाबले—

"अंगे अंगे यौवरेर तरंग उच्छल
लावण्येर मायामन्त्रे स्थिर अचंचल" कैसा है?

आपका
निराला

["तरन्तीवाङ्गानि···" जानकीवल्लभ शास्त्री के "निराला की काव्य-कला" शीर्षक लेख में "वक्रोक्तिजीवितम्" से उद्धृत पद्य।]

[22]

112 Maqbool Ganj
Lucknow
12.8.37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। आपके मधुर गीत भी। आपकी प्रत्यालोचना माधुरी को दे दी। गीत देने की सोच रहा हूँ।

आपने "तोड़ती पत्थर" का उल्लेख नहीं किया, कहीं भी, किसी पत्र में। यह सुधा में पहले छपी है।

आपने मेरे लिये जो कुछ लिखा है सब ठीक है। पर अभी आप लड़के हैं, जब भी अपनी और पदवी की समझ से समझदार।

मैं जो कुछ लिखता हूँ, साहित्य समझ कर। नहीं बन पड़ता, मेरी कमजोरी है। लोग क्या चाहते हैं, लोग जानें। मैं क्या देता हूँ, मैं समझता हूँ।

आज परिमल के वे गीत आप चाहते हैं, जिन्हें पहले (उन गीतों के जमाने में) लोग नहीं चाहते थे। मुमकिन, फिर आज की चीजें आपको अच्छी लगने लगें :— मेरा मतलब "आप" से "लोग" है।—क्योंकि आप उसी तरफ से कह रहे हैं।

रही "लीडर" की-जैसी आलोचना की बात, इस—ऐसी के लिये मुझे कभी ज्यादा परेशान नहीं होना पड़ा। एक दफा आलोचक को देखा, एक दफा समझा साहित्य गुना, रह गया।

सीधी चीजें अच्छी हैं। मैंने नहीं लिखीं—आप कह सकते हैं?—यह "तोड़ती पत्थर" कैसी है?

लेकिन इसकी कुल कला समझकर आप इसे सरल कहेंगे, मुझे विश्वास नहीं।

जो गहन भाव सीधी भाषा—सीधे छन्द में चाहता है, वह धोखेबाज है : उसे भाषा का ही ज्ञान नहीं, वह भाव क्या समझेगा?

कला के सम्बन्ध में पत्र में क्या लिखूं? उसके विकास और सौन्दर्य की बातें लाखों तरह की हैं : दो चार आपको बताई थीं : आप भूल गये हैं जरूर। एक देखिए :—

> कोई न छायादार
> पेड़ वह, जिसके तले बैठी हुई, स्वीकार, (स्वीकार सी)
> श्याम तन, भर बँधा यौवन,
> नत नयन, प्रिय कर्मरत मन,
> गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार;—
> सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार!

यहाँ सीधा वर्णन होने पर भी, हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिये, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है, लेखक के वर्णन-प्रकार के कारण और

निर्देश से।

ऐसी बहुत सी बातें इसमें हैं।

वह जहाँ बैठी है वह पेड़ छायादार नहीं, अट्टालिका तरु-मालिका है।—अट्टा-लिका भी तरु-मालिका है, फिर आदमी कितनी छाँह में है!

"बँधा यौवन" छलकता नहीं : कैसी पवित्रता है!

"मैं तोड़ती पत्थर" अन्त का स्वभावत: शायद समझ में आ जायगा : "मैं तोड़ती पत्थर हृदय!"

आप अवश्य बुरा न मानेंगे; मेरे लिखने में रूखापन भले हो, वैमनस्य नहीं।

मैं इतवार को—इसी इतवार को—१३-१४ क्या तारीख होगी, प्रसाद जी के यहाँ मिलूँगा, सुबह आइएगा। कुँवर चन्द्रप्रकाश जी को भी ले आइयेगा।

आपका
निराला

[23]

112 Maqdool Ganj
Lucknow
30.8.37

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका प्रिय पत्र मिला।

काशी में "पागल" जी से मिलने पर बड़ी प्रसन्नता हुई। डा. बाड़थ्वाल जी के यहाँ रात भर रहा : काफी साहित्यिक चर्चा हुई : अपने आर्ट पर मैंने बहुत कुछ कहा।

पागल जी की मिठाई और चाय खा-पीकर प्रसाद जी को देखने के लिये चला।

आपकी अनुपस्थिति रात को ही मालूम हो चुकी थी, जब आते ही ताँगे से उतर कर गया था—डा. बाड़थ्वाल के साथ। कुँवर चन्द्रप्रकाश, वाजपेयी परमानन्द और नरेश से मुलाकात नहीं हुई।

प्रसाद जी को बहुत दुर्बल देखा। दु:ख और शंका हुई।

उसी दिन दुपहर को भगवती प्रसाद जी सकलानी और उनके दो मित्र आये। ३/४ घंटे काव्यचर्चा हुई। फिर शाम को मैं प्रयाग चला आया।

आपका अभाव खटका, पर संवाद सुखकर था। यात्रा बड़ी अच्छी रही।

संस्कृत की रचनाओं में आप आसानी से कामयाब होंगे, यह तो मानी बात है। वहाँ मैंने यही पूछा था कि इम्तहान में आपका नतीजा कहीं न बिगड़े, उत्तर "पागल" जी से बड़ा सन्तोषजनक मिला।

आपकी रचनाएँ मैं सुधा को दे रहा हूँ। आपकी अस्वस्थता अब दूर हो गई होगी।

मैं "किसान" लम्बी कविता लिख रहा हूँ। वर्णनात्मक है : कह नहीं सकता, कैसी होगी ?

हालत वैसी ही है। कहीं आता-जाता नहीं। काम, मैं जानता हूँ, मैं थोड़ा ही करूँगा; बहुत के लिए आप लोग हैं।

आपका
—निराला

[संवाद—राजकवि के रूप में जानकीवल्लभ शास्त्री के रायगढ़ जाने का समाचार।]

[24]

112, Maqbool Ganj
Lucknow
11.9.37

प्रिय आचार्य्य,

बहुत व्यस्त हूँ। आपके दोनों पत्र मिले। फोटो आपको अवश्य दूँगा। पर देर होगी।

आप पर इधर तो कोई व्यंग्य मैंने नहीं किया। मैंने सीधे तौर से लिखा था : मैं थोड़ा व्यंग्य करूँगा, आप बहुत। आपका सत्य-स्नेह ही मुझे आपमें मिलाकर आपको महत्तर करेगा।

निर्मल जी ने क्या लिखा है, नहीं मालूम। अभी किताब भी नहीं छपी।

मैंने कल सुधा-सम्पादक को लिख दिया है कि निर्मल जी से पूछकर मुझे निकाल दें, वह मुझे ठीक समझेंगे, मुझे विश्वास नहीं।

आपका
निराला

[निराला को निकालना—"नवयुग काव्य-विमर्ष" नामक आलोचनात्मक संकलन से।]

[25]

112, Maqbool Ganj
Lucknow
17.10.37

प्रिय श्री आचार्य,

आपकी विजया लिपि मिली। आपकी रचनाएँ और फोटो मैं कल या परसों

अवश्य-अवश्य भेजता हूँ। रचनाएँ देखकर भेजते हुए विलम्ब हुआ। अब न होगा। बड़ा दीर्घसूत्र हूँ। भेज चुका होता, जरा दो-एक गीत कुछ ठीक करने लगा, फिर काम छोड़ ही दिया। परसों अवश्य भेजूंगा। फिर देर न होगी।

अत्यावश्यक है—१६ शृंगार क्या-क्या हैं, श्लोकोद्धार करके भेजिये जल्द।

कालिदास को नीचा दिखाना मेरा अभिप्राय नहीं। वे मेरे दैहिक-मानसिक —दोनों प्रकार के सर्वोत्तम भोज्य हैं।

एक गीत इधर लिखा था :—

"उक्ति"

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो !
मेरे नभ के बादल यदि न कटे—
चन्द्र रह गया ढका,
तिमिर-रात को तिर कर यदि न अटे
लेश गगन-भास का,
रहेंगे अधर हँसते, पथ पर, तुम
हाथ यदि गहो !

७-८-३७

Note :—

अटे—अट्=पहुँचे (देहाती प्रयोग)

आपका
निराला

[26]

112, Maqbool Ganj,
Lucknow
5.10.37

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। मैं इधर एक हफ़्ता से बड़ा परेशान रहा। अब अच्छा हूँ।

आपकी रचनाएँ+तस्वीर इसीलिये क पर नहीं भेज सका। क्षमा। अब भेजूंगा, २-३ दिन में।

दीर्घसूत्रता तो मेरे स्वभाव में आ गयी है। रवि बाबू बहुत काम करते रहे हैं,

करते हैं; मैं तबियत से जो कुछ कर सकता हूँ : मैं रवि बाबू नहीं।

रवि बाबू का आदर्श मैंने नहीं अपनाया। वे "अरुचिर्गुरुलङ्घने" वाले हैं, मुझे रोज गुरुलङ्घन करने पड़ते हैं, तरह-तरह के।

मैं वैसा बैठा बनिया नहीं कि जिन्दगी भर इस कोठे का धान उस कोठे करता रहूँ।

काव्य में काम अवश्य करना है, करता हूँ। पर आप लोग तो कल्पना से मुझसे काम लेते हैं। पर बात यह, काम से काम करते थकान आती है, तबियत बिगड़ती है, आइडिया नहीं मिलता; कल्पना के घोड़े तो उड़ते ही रहते हैं।

"तुलसीदास" आपको बहुत अच्छा लगता है, मुझे नहीं, तो क्या करूँ? लिखूंगा दो चार वैसी चीजें और, यथासमय आप लोगों की मनस्तुष्टि के लिये, फिर कालिदास को पढ़कर।

"सुधा" में मेरा बहुत ज्यादा कुछ न जायगा। एक कहानी लिखी है—श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी। प्रसाद जी पर अभी लिखा ही नहीं।

काव्य में हर मनोभाव की छाप रहनी चाहिये, इसलिए आजकल ऐसा लिखता हूँ।

"मैं हूँ केवल पल्लव-आसन" कर लीजियेगा। किसलय ठीक नहीं, जब भी संगीत इसमें अधिक है। इसके आइडिया की आपने तारीफ नहीं की !

आपका
निराला

["मैं हूँ केवल पल्लव-आसन"—निराला की कविता "हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र" का संदर्भ।]

[27]

C/o Pdt. Ramdhani Dwivedi,
Sherandaz Pur Dalmau
(Rai-Bareli) U.P.
28.11.37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र लखनऊ से मुझे यहाँ मिला। आपकी पूरी आलोचना "माधुरी" में निकल चुकी है, १३ पृष्ठों में अन्तिमांश, नवम्बर के अंक में। पाण्डेय जी का पोष्य-पुत्र सख्त बीमार था, इसलिए उन्होंने आपके पत्रों की तरफ ध्यान नहीं दिया शायद। एक और भेजिये।

मैं प्रयाग होकर यहाँ आया। पाठक जी नौ महीने से बीमार, अस्थिशेष रह गये हैं। इधर प्रसाद जी का संवाद आपने पढ़ा ही होगा। पहले की तरह चुपचाप रहता हूँ।

आपका उतना-सा काम भी गीतों का नहीं कर सका। ज्वर के बाद जो कम-जोरी आई, वह अब तक है। और बहुत-सी बातें हैं जो पत्र में संकुचित होती हैं। चित्र में यहाँ भी भेजने के उद्देश्य से, ले आया हूँ। पर, चूंकि वह पिच्-बोर्ड से लगा हुआ है, इसलिये, भय है कि डाक से भेजने पर दबाव से टूट जायगा। आप लिखें तो भेज दूं : अगर बाद को लेने में चिन्ता न हो तो रहने दें। गीत, शुरू से अखीर तक पूरे, आप भेजें तो देखने की सहूलत होगी। जैसा आपको जान पड़े। मैं यहाँ पन्द्रह दिन और रहूँगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस वार के पुरस्कार के लिए—इस बार भी दो हैं मंगलापुरस्कार—मेरी "गीतिका" अपनी ओर से प्रतियोगिता में रखने का विचार किया था। मुझे चिट्ठी लिखी थी। पर मैंने प्रतियोगिता में जाने से इन्कार कर दिया है।

पिता की मदद न मिलने से कुँवर चन्द्रप्रकाश जी की एम० ए० फाइनल की पढ़ाई रुक गई।

और कुशल है। इति।

आपका
निराला

[जानकीवल्लभ शास्त्री के गीतों का काम—**रूप-अरूप** की पाण्डुलिपि का अवलोकन।]

[28]

श्री हरि:

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला।

आपको निश्छल होकर कहता हूँ, आप सत्य कवि हैं : आपकी रचना मुझे पूर्ण आनन्द देती है।

आप मेरी परख को नहीं जानते : मैं किसी एक ढर्रे की पसन्द रखने वाला व्यक्ति नहीं।

इसकी अनेक वैज्ञानिक बातें हैं—आप संस्कृत से ही जानते हैं—भिन्न प्रान्त का कवि भाषा और प्रकाशन में किसी भिन्न प्रान्त के कवि से पार्थक्य रखता हुआ भी उसी की तरह श्रेष्ठ और मौलिक है, आनन्द देने वाला। आपमें भी मुझे ऐसी बातें मिलती हैं। आपकी यह चीज भी बड़ी सुन्दर है।

अब तक जो मैंने आपकी रचनाओं को देखा नहीं—-वास्तव में देखना बहुत थोड़ा है सुधार के लिये,—सिर्फ वहाँ जहाँ एक-आध पद्य में संगीत की ताल ठीक करनी है, इसका कारण कुछ तो—

यार से छेड़ चली जाय असद
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही

---है, कुछ मेरी बीमारी और लापरवाही, कुछ प्रसाद जी के प्रयाण का गहरा प्रभाव।

मैंने इधर कुछ नहीं लिखा। "शास्त्रिणी" गर्मियों की और अस्वस्थ क्षणों की रचना है। अब काम शुरू किया है। ३-४ छोटी-बड़ी चीजें लिखी हैं। आपका काम भी आज ही कल कर रहा था। चित्र एक और दूंगा। दोनों एक साथ मैं वहीं भेज दूंगा, मजबूती से बँधाकर। दूसरा अभी तैयार हो रहा है, छोटा है, पर कुछ को अच्छा लगा है।

आपकी अड़चनें क्या आपके आचार्य भी दूर नहीं कर सकते—उपस्थिति-वाली ? बाकी तो आपको ही हटानी हैं।

बाहरी जीवन में परीक्षा-फल रवि-रश्मि की तरह फलित है, यह सत्य है, पर मेरी आँखों में तो वहाँ चकाचौंध-ही-चकाचौंध है, कुछ देख ही नहीं पड़ता। आप यथोचित करें। पर परीक्षा-फल स्वास्थ्य-फल से अवश्य अधिक स्वाददार किसी के लिये न होगा। अधिक संयम और साधारण अध्ययन ही मेरी दृष्टि में विधेय है।

"कला" के पेपर पर पत्र ऐसे ही लिख दिया : उस आफिस से उठा लाया था : आपकी यह रचना, "कला" को दे दूंगा। माधुरी आप ही मँगा लें।

मेरी दृष्टि में, हाँ, आप पराजित हैं, पर वहाँ "परा" उपसर्ग नहीं, विद्या है।

आपका
निराला

११२, मकबूल गंज,
लखनऊ
१२-१-३८

[29]

C/o Pdt. Vachaspati Pathak Esqr.
The Leader Press,
Allahabad.
14.3.38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। बड़ा दुःख यह हुआ कि मैंने आपके इससे पहले वाले पत्र का उत्तर ३५ नं० फोर्थ होस्टल भेजा था—वह पत्र आपको नहीं मिला, उसके भीतर मेरा इधर का लिया अब तक के चित्रों में सर्वश्रेष्ठ चित्र था (फोटोग्राफ)।

वह पत्र मुझे वापस भी नहीं मिला। इससे मालूम होता है, किसी विद्यार्थी ने लेकर चित्र के लोभ से पत्र आपको नहीं दिया।

मैंने सोचने की गलती की। सोचा, आपने ३५ नं० फोर्थ होस्टल को मंगलाश्रम बना लिया है, जैसा कवि लोग करते हैं।

उस पत्र में मैंने लिखा था, आप इम्तहान देकर लखनऊ चले आइये। कापी दिख जाने पर प्रेस दीजिये। पर, अच्छा है, "तनिमा" के दो फार्म छप चुके हैं, देखने की कोई बात थी ही नहीं। जैसा "कुल्ली भाट" में मैंने लिखा है, दर्शन एक है, व्यक्तिभेद होता है। आपकी "मेघ" पर रचना मिली तो देखूंगा।

आजकल आप रवि बाबू को पढ़ रहे हैं, अच्छा है।

मैं कुल बातों में अलग, अकेला रहना चाहता हूँ।

रवि बाबू के-जैसे निबन्ध, ठीक है, लिखूंगा, हो सका तो। अभी तो ऐसा ही चलेगा।

एक कविता भेजता हूँ। देखिये। मैं अच्छा हूँ। ३/४ दिन बाद लखनऊ जाऊँगा :

वे किसान की नई बहू की आँखें
नहीं जानतीं जो अपने को खिली हुई—
विश्व-विभव से मिली हुई,—
वे किसान की नई बहू की आँखें
ज्यों हरीतिभा में बैठे दो विहग बंद कर पाँखें;
भीरु पकड़ जाने को हैं दुनिया के कर से—
बढ़े क्यों न वह* पुलकित हो कैसे भी वर से।

आपका
निराला

९-३-३८

*वह—कर; हाथ।

[मंगलाश्रम—लंका (बनारस) पर एक लॉज।]

[30]

C/o Pdt. Vachaspati Pathak Esqr.
The Leader Press,
Allahabad.
18.3.38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। आपकी दोनों रचनाएँ बहुत पसन्द आई। मेघगीत बड़ा

सुन्दर है।

काशी की तरह यहाँ भी दंगे की आग भड़की है जोरों से। पचासों हताहत हो चुके हैं। कल से हिन्दुस्तानी अकेडमी की मीटिंग थी, अब क्या होगी ? लखनऊ २१ को जाने का विचार था : अब दो-एक रोज रहकर जाऊँगा। आप लिखिये, आपकी परीक्षा कब समाप्त होगी।

चित्र का एन्लार्ज्ड रूप भी है : पूरे कैमरा-साइज का लिया गया था; यह भेजा हुआ छोटा किया हुआ रूप है। और बड़े आकार में एन्लार्ज कराया जायगा।

रवि बाबू की तरह के अनेक अर्थ हैं। लिखता भी हूँ जब वैसी तबियत होती है, कुछ। पर रवि बाबू अब जमाने के विचार से दूर हो गये हैं, यह आधुनिक साहित्य के विचार से लिख रहा हूँ।

मेरी दृष्टि में रवि बाबू एक श्रेष्ठ कवि और साहित्यिक हैं, बस। उनमें कमजोरियाँ भी अपार हैं। आपको अच्छे इसलिये लगते हैं कि रवि बाबू भी "कालिदासो विलास:" हैं। फिर बातें करूँगा, इस सम्बन्ध में, मिलने पर।

मेरी कई चीजें और हैं काव्य में, नई। फिर देखियेगा। बहुत बहिर्मुख न हूजिये। जो कुछ होता जा रहा है, देखते जाइये, जैसे-जैसे निकलता जाय। अभी तो "अनामिका" और "तुलसीदास" निकल रहे हैं। फिर "गाथा" "कथा ओ काहिनी" का ही रूप होगा।

आपको और अधिक करना है : पर विजयी धैर्य और अध्ययन होता है।

ठूँठ
ठूँठ यह है आज !
गई इसकी कला गया है सकल साज !
× × ×
केवल वृद्ध विहग एक बैठता कुछ कर याद !

—निराला

[31]

112 Maqbool Ganj,
Lucknow.
16.5.38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र कल हस्तगत हुआ। कल ही मैं कलकत्ते से यहाँ लौटा सात रोज रह कर। देहरा से गया होकर जाते और आते आपकी याद की। आप अस्वस्थ हैं पढ़कर बहुत चिन्तित हूँ।

ईश्वर की इच्छा से आप स्वस्थ हो जायँ, प्रार्थना है। इम्तहान की मिहनत तथा चिन्ता से चित्त उद्विग्न होकर रोग की वजह बनता है। कुछ भोग है, आपको ईश्वर नीरोग करे। यथासमय आपके अन्य कार्य भी पूरे होंगे; किताब भी निकलेगी।

इलाहाबाद से अब तक मैंने आपकी बहुत याद की। फैजाबाद यू० पी० हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आपको बुलाना चाहा, लेकिन सफल न हो सका : कारण मैं स्वयं बहुत उलझा हुआ हूँ, काम में।

लडके की शादी है, रामकृष्ण की। विवाह एक मित्र की कन्या से कर रहा हूँ। लड़की मेरे गाँव की ही है: बंगाल में पैदा हुई, वहीं साधारण बँगला पढ़ी और रही। इस समय वह और उसके अभिभावक लखनऊ में हैं। शादी, मुमकिन, आषाढ़ में हो। फिर लिखूँगा आपके स्वास्थ्य-समाचार लेते समय।

कुँ० चन्द्रप्रकाश, सुना है, यहाँ हैं। आपके समाचार, मिलने पर उनसे कहूँगा। रामविलास जी मसूरी गये हैं प्रोफेसर सिद्धान्त के साथ।

इधर कुछ लिखा है, पर नकल करने तक की फुर्सत नहीं। फिर भेजूंगा : ऐसा ज्यादा कुछ लिखा भी नहीं : कारण उलझन में रहा।

आप इलाज करायें और चिन्ता छोड़ दें : ईश्वर अच्छा ही करेगा।

आप ही लोगों की तो हिन्दी को जरूरत है।

—सस्नेह

आपका
निराला

[32]

११२, मकबूलगंज, लखनऊ
२५-५-३८

प्रिय आचार्य,

आपके पत्र का उत्तर लिख चुका हूँ। आप स्वस्थ हो रहे होंगे। जल्द अपने समाचार दीजिये। एक आवश्यक कार्य से आपको फिर लिखना पड़ा।

मुझे लखनऊ के रेडियो स्टेशन से हिन्दी और संस्कृत के नाटक और प्रहसनों पर पन्द्रह मिनट रेडियो में बोलने का आमन्त्रण मिला है। आप स्वस्थ हों तो पत्र पाते ही संस्कृत के नाटक और प्रहसनों की सूची, नाट्यकारों के नामों के साथ, भेज दें। जो मेरे न जाने हुए नाटक और प्रहसन (संस्कृत में) होंगे, मैं मालूम कर तैयारी कर लूंगा।

४ जुलाई बोलने की तारीख है, शाम सात बजे। अभी मैंने स्वीकार नहीं किया। सविशेष आपका पत्र मिलने पर। इति।

आपका
—निराला

उक्ति

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घकाल;
+ + +
किन्तु पड़ी व्योम-उर,
बन्धु, नील-मेघ-माल !

[33]

११२, मकबूल गंज, लखनऊ,
५-६-३८

प्रिय आचार्य,

आपके पत्र मिले। आप अब स्वस्थ हो रहे हैं, अनुमान है। आपने साफ-साफ नहीं लिखा।

जल्दबाजी अच्छी नहीं। धीरे-धीरे प्रसार होता ही है। विद्वत्ता, अध्ययन और मननशीलता का।

मैं इधर बहुत दिनों से माधुरी-आफिस नहीं गया। "कुल्ली भाट" का बाकी हिस्सा लेकर दो-चार दिन में जाऊँगा।

रेडियोवाली स्पीच मैंने कैंसिल करा दी : क्योंकि रुपये कम मिल रहे थे। यह तो बिजनेस है, बिजनेस में धोखा खाना ठीक नहीं। अगर मुझमें शक्ति होगी, वे फिर बुलायेंगे : मुझे चिन्ता नहीं : फिर इसी साल यहाँ रेडियो-स्टेशन खुला है।

मेरे पुत्र चि० रामकृष्ण का पहली जुलाई को विवाह है। इसी उलझन में हूँ। मेरी "नर्गिस" कविता आपने देखी होगी, "भारत" में छप चुकी है। इधर एक सात पंक्तियों की लिखी है : नासमझी—

समझ नहीं सके तुम,
हारे हुए झुके तभी नयन तुम्हारे, प्रिय !

स्वस्थ होकर अपना निश्चय कीजिये, तदनुसार लिखये। मैं साथ हूँ।

दिलबहलाव के लिए तो कुछ दिन यहीं आकर रहिये। "रूप-अरूप" निकल गया ?

आपका
निराला

[34]

112, Maqbool Ganj
Lucknow.
16.6.38.

प्रिय आचार्य,

"माधुरी" को भेजा आपका "गीतिका" पर वाला लेख नहीं देख सका। बड़ी उलझन है। मेरे चिरंजीव का आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी पहली जुलाई को विवाह है। आपको निमन्त्रण देता हूँ।

विवाह बहुत साधारण रीति से कर रहा हूँ।

लड़की मेरे गाँव की है। कलकत्ते में उसके माँ-बाप रहते थे। वहीं पैदा हुई, वहीं पली और पढ़ी-लिखी। साधारण बँगला, हिन्दी और अँगरेजी जानती है, सुलक्षणा और सुन्दरी है। पहले इस खानदान का अच्छा जमाना था, अब साधारण स्थिति है। दहेज के अभाव (न दे पाने) से लड़की के लिए योग्य वर न मिल रहा था, मैंने दहेज छोड़कर विवाह स्वीकार कर लिया : मुझे लड़के के लिये कई हजार का दहेज अन्यत्र मिल रहा था। तीन महीने से इसी चकल्लस में था।

फिर, आप आ सके तो बातें करूँगा। इति। आप स्वस्थ होंगे।

श्री गणेशाय नमः

श्रीमन्,

मेरे पुत्र चि० रामकृष्ण त्रिपाठी का शुभ विवाह मेरे ही गाँव के रहने वाले पं० शिवशंकर जी शुक्ल की आयुष्मती पुत्री कुमारी फूलदुलारी से, लखनऊ में, आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी, पहली जुलाई, १९३८, को होना निश्चित हुआ है। आपसे सविनय प्रार्थना है कि उक्त अवसर पर पधार कर आप वर और वधू को अपना स्नेहाशीर्वाद प्रदान करें। इति शम्।

११२, मकबूल गंज,
लखनऊ
४-६-३८

सविनय
निराला

[35]

मार्फत पं० वाचस्पति पाठक,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद
९-८-३८

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। इससे पहले भेजा भी मिला था। उत्तर की कुछ सूझी ही नहीं, कहूँगा।

इधर दस बारह दिन हुए, "माधुरी"-कार्यालय में आपका लेख, "गीतिका" पर वाला, देखा था। कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा : एसलिए नहीं कि उसमें मेरी काफी तारीफ नहीं है, बल्कि इसलिये कि जमाना जितना बढ़ता जाता है, लोगों की बुद्धि उतनी मन्द होती जाती है।

भले और बुरे का प्रभाव मनुष्य मात्र पर पड़ता है, यह ठीक है : कोई चाहे तो कह सकता है --चूँकि तुम्हारे मुआफिक कम ठहरा, लेख इसलिये तुम्हें पसन्द नहीं आया। पर मैं अपने को इतना कमजोर नहीं पाता, तारीफ में भी नहीं।

आपने रवि बाबू के इस, नीचे दिये, बन्द के लिये जैसा लिखा है कि गीत सीधे उतर जाता है, बिना मिहनत के, मन में, वैसा ही आप बतला भी सकेंगे कि इन कारणों से उतरा। मुझे शंका है : मेरे दिल में नहीं पैठता।

—"को तुहुँ बोलबि मोय ?
हेरि हासि तव मधुऋतु धावल,
शुनयि बाँशि-रव पिक-कुल गावल,
विकल भ्रमर-सम त्रिभुवन आवल,
चरण-कमल-युग छोंय।"

इस बन्द में जिसका परिचय या नाम कवि जानना चाह रहा है, उसे सामने देख रहा है, यह इस पहली पंक्ति से सूचित है : बाद को और साफ हो जाता है, जब उसकी हँसी देखकर मधुऋतु दौड़ता है,—वंशी शुनकर कोयलें गाती हैं, और विकल भौंरे की तरह तीनों लोक आकर चरण-कमल-युग छूता है।

आपने भी रवीन्द्रनाथ की तरह बात-की-बात में देख लिया है इस मूर्ति को; अच्छा पूरी तस्वीर न सही, ये पैर ही मुझे आप दिखा दीजिये। अगर इन पैरों के देखने के लिये किसी विशेष दर्शन की जरूरत हो तो वह भी बताइयेगा।

"तरन्तीवाङ्गानि स्खलदमल लावण्य-जलधौ" वाली आलोचना में भी यही हाल है, आपके लिये नहीं, मेरे लिये।

जब "स्खलत्" "लावण्य" है, तब वह "जलधि" कैसे होगा, यह आप समझ भले ही लें, समझा न सकेंगे।

सोता, गड़ही, गढ़ा, झरना और नदी समन्दर नहीं।

"मल" और "जल" के अनुप्रास की भूख इसे कहते हैं।

फिर स्थिति की शंका है कि सि जगह (काव्य के स्थान में), अंग समन्दर पर तैरते-से हैं। जरा लिखियेगा।

"खुलती मेरी शेफाली" आपको याद ही है। नहीं तो देख लीजियेगा। वैसा एक-एक गीत तुलसी, सूर, कबीर और मीरा से उद्धृत करके भेज दीजियेगा, यानी वैसे ही ढंग का।

"दिन-दानी" शब्द का प्रयोग महादेव के लिये गोस्वामी जी ने रामायण में किया है : वह क्यों नहीं किसी को खटका, समझ में नहीं आता। दिन-दीन में तो और बहुत-सी बातें जान-बूझकर रक्खी होंगी लिखने वाले ने। "सजी री मैं दीन"

खोजते उसे देर न होती, जबकि "री-रे" के वह अक्सर प्रयोग लाता है !

इसी के "स्पष्ट ध्वनि" वाले बंद के मुकाबले "मधुऋतु धावल" को रखते तो साधारण लोग भी कुछ रस लेते, अगर सीधे न उतार कर कुछ बात की भी बात होती।

इसी तरह आपकी कुल बातें हैं : उतने ही विस्तार से। "उत्तानपाद" पंक्तियों को ब्रजभाषा बनाकर देखिये, बात बन जायगी, फिर सीधे उतरने में दिक्कत न होगी।

"कारण-महाकारण" को निष्कारण कर के चुप की साधना कर रहा हूँ इसलिए पत्र लिखने की रुचि नहीं होती—आपके "असफल" का क्या अर्थ है ?

"भुवनमनोमोहिनी" के सम्बन्ध में औरों ने और रवि बाबू ने भी लिखा है। वह आपके बहुत मुआफिक नहीं।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्

और

गिरिवर-गरुअ पयोधर पर सित गिम गज मोतिक हारा

की "तरुगतकिसलय" क्यों समता नहीं कर सकता, यह तो अर्थों से ही साफ है : पर आपने—

"सौध-शिखर पर प्रात मनोहर
कनक-गात तुम अरुण चरण धर
सरणि-सरणि पर उतर रही भर
छन्द-भ्रमर-गुञ्जित नीलोत्पल।"

उसके मुकाबले क्यों नहीं रखा ?

कोई ब्रजभाषा (ग्रामीण भाषा) के लाड़ले अगर—

लंका पदतल-शतदल
गर्जितोमि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे !

का उच्चारण न कर सकें तो यह खड़ी बोली का कसूर नहीं कहा जा सकता।

आपका
निराला

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ
३०-८-३८

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र प्रयाग में मिला था। आप व्याकरण की तैयारी करेंगे, पढ़ कर प्रसन्न हुआ।

मैंने हिन्दी में जगह देखी थी संस्कृत से अधिक, इसलिए लिखा था।

मेरी जो किताबें छप रही हैं, उनके नाम आप जानते ही हैं। गीत आपका सुन्दर है।

रवि बाबू का "तृषित आँखि" वाला बन्द भी वैसा ही है। क्योंकि राधा की तृषित आँखें जिसके मुख पर फिरती हैं, जिसके स्पर्श से वह सिहरती हैं और जिसके चरणों में अपनापन खोकर हृदय-प्राण भर लेती हैं, उसके लिये "को तुहुँ बोलबि मोय ?" की गुंजायश नहीं; वह आप और रवि बाबू की ही तरह स्थूल रूप में मनुष्य है और उसका नाम कृष्ण है, पहले के काव्यों से ऐसा ही प्रमाण मिलता है। फिर जिसके मुख है, जो स्पर्श करता है और पैरों पर जिसके अपनापन चढ़ता है, वह अनाम ही क्यों होगा ? यह सब आपको अच्छा लगता है, लगे।

आपने जो लिखा, यह होता है, यानी मैंने जो प्रश्न किया, वह एक प्रश्न ही नहीं। होता है तो हो, मैंने "होता है" सुनने के लिये नहीं पूछा था, "कैसे होता है" जानने के लिये लिखा था।

अच्छा यह बताइये—

"मुकुत हुए आ नेह से छितिज
रूप-परस-रस-गन्ध-सबद धन",—

अब भी कविता उत्तानपाद है ?—मुश्किल है ?—गाई जा सकती है न ? क्यों जी, सीधी कैसे हो गई ?

अच्छा, रवि बाबू का "कठिन है हृदय" और "गलते हैं प्राण", इसीलिये रचना सार्थक है ?

और जब प्राण गले और पैर सँदे (फँसे) तब खुद-ब-खुद न निकलेंगे, यानी हमेशा हृदय में रहेंगे, यही सार्थकता है न ?

मैं जानता हूँ, आप सार्थक कर देने की मिहनत कर सकते हैं, और मेरी रचना चूंकि आपको मिहनत नहीं दे सकी, इसीलिये असार्थक हुई।

उसने "कृपा-समीरण बहने पर क्या कठिन हृदय यह हिल न सकेगा" में लगाने के लिये कुछ नहीं रक्खा।

"दिल हिलने" का मतलब ही है हृदय में करुणा का आना : फिर हवा के चलने से पेड़-पौधे हिलते ही हैं—सूखी लकड़ी टूट जाती है या नहीं हिलती—यह हिलना पेड़ का हरा-भरा होना भी बतलाता है : इधर कृपा की समीर से हृदय

हिलता है—हृदय या दिल हिल कर करुणोद्रेक से, रस-भाव पैदा करता है, जो पहले के कहे हुए—

स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?

की सार्थकता में आता है।—यह सब ऐसा होने के कारण ही असार्थक है—क्यों न ?

मैंने आपको कोई कोई उत्तर देने की हिम्मत नहीं की। आप अच्छे हो जाइये। मानसिक अशान्ति ईश्वर दूर करें।

सुनता हूँ, कोई-कोई आपको जवाब देनेवाले हैं; कोई गीतिका की तारीफ में लिखने वाले हैं। यह सब अपनी तबियत की बात है।

मैं जैसा समझता हूँ, लिख देता हूँ। जब बहुत घिरता हूँ, तब जवाब देता हूँ।

आपको उत्तर तो मैं दूंगा ही नहीं : क्योंकि खड़ी बोली अपने आप खड़ी होगी अगर खड़ी होगी। फिर मैं प्रचारक नहीं।

आप लोग बड़े-बड़े निबन्ध लिखियेगा, ग्रन्थ लिखियेगा, बड़ी-बड़ी दोहाइयाँ दीजियेगा, मुझे भी, जितना समझूंगा, आनन्द आयेगा।

मैं तो कालिदास और रवीन्द्रनाथ से अपनी माँ का मुख ही अधिक पहचानता हूँ।

आप लोग जब कहते हैं : रवीन्द्रनाथ गधों में घोड़े हैं और कालिदास घोड़ों में उच्चैः श्रवा, तब मुझे आनन्द आता है, क्योंकि समझता हूँ, इसलिये मेरी माँ का मुख बहुत साफ मुझे नजर आता है।

आपका
निराला

[37]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
५-९-३८

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

अभी-अभी आपका पत्र मिला। हिन्दी से आपको प्रेम होगा—कोई फर्ज-अदायगी समझेंगे तो अपने आप लिखेंगे : मैं एक पाठक की हैसियत से जितना आनन्द प्राप्त कर सकूंगा आपकी चीजें पढ़कर प्राप्त करूँगा : मेरे लिये इतनी ही सुविधा है।

रही बात व्याकरण सीखने की, यह आपकी तबियत पर है। विष्य कोई नीरस नहीं, इतना मैं कुछ-कुछ समझ सका हूँ।

मुझे अपनी चीजों की अनुकूलता-प्रतिकूलता बहुत कम अनुकूल-प्रतिकूल कर सकती है; यों दूसरों की तरह कमजोरियाँ मुझमें भी हैं, क्योंकि दूसरों की तरह आदमी मैं भी हूँ।

मैं देखता हूँ, चीज खुद अपने में कहाँ तक बन-सँवर कर खड़ी हो सकी है। जिन लोगों ने उत्तर लिखने के लिये कहा है, उन्होंने अपनी तरफ से कहा है : न तो मैंने अपने भाव दिये हैं, न उत्तर देखने के लिये मुझे कोई औत्सुक्य है।

मैं जानता हूँ, रवि बाबू के (आपके द्वारा) उद्धृत बन्द—हेरि हासि तव—से मेरा "बजी बीन" वाला—"स्पष्ट ध्वनि : आ धनि"— बन्द बहुत तगड़ा है, इसी तरह "जानि आमार कठिन हृदय" से "जग के दूषित बीज नष्ट कर"।

जो लोग मुझसे लिखने के लिये कहते हैं वे दूसरी जगह यह भी कहते हैं कि चूंकि निराला जी की इच्छा है, इसलिये लिखेंगे। उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऊँचे दर्जे के हैं, लिखने के लिये वे जो कुछ भी लिखें।

कुछ का कहना है, यह जो तुलसी-सूर आदि पर लिखा है यह अच्छा नहीं किया निराला जी ने। पर वे भूल जाते हैं, निराला ने शेखी भी नहीं बघारी; उसी भूमिका में अपने संस्कार के ढलने की बात भी उसने लिखी है और खुले तौर पर प्रभाव को स्वीकार किया है।

यह सब तो जो कुछ होगा होता रहेगा। आपने और नहीं तो इधर के "विशाल भारत" और "वीणा" के अंक तो देखे होंगे। उनमें लिखा है, रवि बाबू-प्रमुख बंगालियों ने हिन्दी की मुखालफत करनी शुरू कर दी है—उनका कहना है, हिन्दी में तुलसीदास के सिवा और क्या रक्खा है; सिर्फ बँगला राष्ट्रभाषा होने की योग्यता रखती है : कांग्रेस हिन्दी का प्रचार बन्द करे।

क्या आप बता सकते हैं, रवि बाबू-प्रमुख बँगालियों की ऐसी स्पर्द्धा का क्या कारण है ? क्या इसीलिये नहीं कि रवि बाबू के डंके की चोट ने हिन्दी की मूर्ख-मण्डली को विवश कर दिया है कि वह रवि बाबू के गू को भी सार देखे और खड़ी बोली के सार-पदार्थ को भी गू ?

मेरी किताबें कब निकलेंगी, मैं नहीं जानता। मुमकिन, दो महीने में "तुलसीदास" और "अनामिका" निकल जायँ।

आपके प्रश्नों के उत्तर मैं अभी नहीं लिख सकूँगा। क्योंकि बहुत काम पड़ा हुआ है, पूरा करने में लगा हूँ। एक नया उपन्यास भी लिख रहा हूँ। इसलिये अभी यहाँ न आइये।

"साहित्य" सभी का है। इसलिये अलग रहने की बात किसी "साहित्याचार्य" की नहीं हो सकती। आपकी तरह मैं भी साधारण व्यक्ति हूँ। फर्क इतना ही है कि आपकी तरह असाधारण व्यक्तियों की ओर स्नेह मेरा कम बहता है। न असाधारण कोई कुछ मुझे नजर आता है, जब उत्कृष्ट और अपकृष्ट के दर्शन पर विचार करता हूँ।

कुछ काल बाद निश्चिन्त होकर मैं आपको अच्छी तरह लिखूंगा। आपके

प्रश्नों के उत्तर दूँगा।

मैंने चाहा था, आपको नई हवा खिलाऊँ। कोशिश की थी। पर आपने एक स्थिति से दूसरी स्थिति को समझना चाहा। मेरी आदत किसी को बिगाड़ना नहीं। जब दर्द पैदा होता है, तब हर आदमी दवा के लिए दौड़ता है। सोचकर मैं चुप हो गया।

लिखना-पढ़ना आपका धर्म है, और कोई धर्म मनुष्य के स्वभाव में घर कर लेता है, तब छूटता नहीं। लेहाजा, क्या कहूँ ?

आपका
निराला

आप मुझ पर जो कुछ लिख रहे हैं मेरी राय में, अभी न लिखे। जिन्होंने मुझ पर लिखकर कृपा करने के लिये कहा है, उन्हें भी मैं रोक दूंगा, जो यहाँ हैं; अन्यत्र वाले दूर हैं, और शायद वे जेनरल रूप से लिखेंगे अगर लिखेंगे।

पन्त जी 'रूपाभ" में शायद मुझ पर कुछ अनुकूल आलोचनाएँ लिखायेंगे। उन्हें एक स्कालर मिले हैं वे मेरे साहित्य के सबसे अच्छे जानकार हैं, पन्त जी की धारणा और लिखना है। यहाँ के रामविलास जी को भी पन्त जी ने लिखा है आलोचना के लिये। रामविलास जी शायद आप पर नहीं लिखेंगे।

मैंने इधर कुछ गीत लिखे हैं। सीधे, साधारण हैं। एक--

मेरे नयनों में हँस दीं, हर
वारिद-झर !
+ + +
अपनापन भूला
प्राण-शयन झूला
बैठीं तुम चितवन से संचर
छाये घन अम्बर !

—निराला

[38]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
८-१२-३८

प्रिये आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र अब तक निरुत्तर रहा। आपके प्रथम पत्र का उसी समय उत्तर लिखा था : आपका नहीं मिला। यहाँ भी नहीं आया।

मैंने "कुल्ली भाट" सवा सौ सफे की किताब पूरी कर दी। छपने को गंगा

पुस्तकमाला में दी है। अगर वहाँ न छपेगी तो दूसरी जगह देखूँगा। "माधुरी" में उसका प्रकाशन बन्द करा दिया है।

आपकी किताब (रूप-अरूप) ओरछा में पुरस्कृत हो भी सकती है। आपकी तरह, लेकिन, रुपयों के अभाव में बहुतेरे हैं।

इधर मेरी तबियत अच्छी नहीं थी। खाँसी, बोखार, जुकाम आदि कई व्याधियाँ थीं। दुर्बल बहुत हो गया हूँ। यों कुशल है। यहाँ अकेला रहता हूँ। महीने-दो-महीने में घर बदल दूँगा। बहू रामकृष्ण के वहाँ गई डेढ़ महीना हुआ। आप प्रसन्न होंगे।

आपका
सूर्य्यकान्त त्रिपाठी

[39]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
२०-१२-३८

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका प्रिय पत्र मिला। कविता बड़ी अच्छी लगी।

आपने रायगढ़ छोड़ दिया, ठीक है, जी पहले है: आदमी जी की माँग के सामने लाचार हो जाता है, बाहरी जैसी भी माँगें हों!

मैं रोज एक किताब क्यों नहीं लिख डालता, आप लोगों की ऐसी माँग का मन ही मन यही जवाब दिया करता था।

त्याग-भोग भी इसी तरह जी की माँग पूरी करना है, वस्तुत: कुछ नहीं, दार्शनिक महत्त्व इनका कभी कुछ नहीं रहा जो कुछ मैं समझा हूँ।

छोड़कर भी आदमी ग्रहण करता है।

आधुनिक कला का तो आधार ही यह है: पहले जो कुछ हाँ के रूप में दिखलाया जाता है, वह ना के रूप में परिणत किया जाता है: आपके यहाँ—तदेजति तन्नैजति—यही है।

सम्मति में कभी कुछ नहीं देता। मैं तो अकबर की नौकरी बजाता हूँ। आप वह कहानी जानते होंगे।

कहते हैं, एक दफा अकबर ने वीरबल से पूछा:—"बीरन, क्या तुम्हें भी कद्दू अच्छा लगता है, हमें बहुत पसन्द है।"

वीरबल ने कहा—"हाँ जहाँपनाह, कद्दू का क्या कहना है! खाने में जैसा नर्म वैसा ही लजीज।"

अकबर ने कहा—

"लेकिन आलू बहुत अच्छा होता है !"

"हाँ खोदाबन्द", वीरबल ने कहा, "आलू लामिसाल है।"

अकबर ने कहा—

"क्यों जी, अभी तुम कद्दू की तारीफ करते थे, अब आलू की करते हो !"

वीरबल ने कहा—

"गरीबपरवर, मैं न कद्दू का नौकर हूँ, न आलू का। हुजूर को जो अच्छा लगता है, वह मुझे हजार जान से पसन्द है।"

"कुल्लीभाट" बनता-बिगड़ता कुछ तो हो ही गया है; पब्लिक जैसा कहे।

"गोरा" विवेचन-प्रधान है, जो ऊब जाता है, ठीक है।

शुद्ध-बुद्ध—सब मजाक है : अब संसार में तेल लगाने के दिन नहीं रहे, हिन्दोस्तान में हैं, लगाइये; पर मालिश अच्छी नहीं।

मेरा जो कुछ होगा, होगा। जिन्हें लिखना है और जो कुछ लिख जाना है, बिना मेरे भी लिखेंगे, लिखा जायगा।

यही है कि एक समझ होती है, वह पहले चाहिये। वही मौलिक साहित्य पैदा करती है। बाकी सब पीछे लगे रहते हैं। मैं अपने मित्रों से यही कहता रहा हूँ। पर सब जगह परिणाम उलटा मिला है। ईश्वरेच्छा, जैसा आप मेरे लिये लिखते हैं !!!

अब चौथे होस्टेल में रहकर क्या कीजियेगा ? मैंने सोचा, यहाँ साहित्य-साधना यानी कविता लिखने के विचार से शायद आये हों, क्योंकि बहुत-सी कविताएँ यहाँ लिखी हैं, यहाँ सुविधा होती हो। मैं जब कोई नया मकान बदलता हूँ तब मकान भी जैसे असहयोग करता है, लिखने में अड़चन होती है; आखिर अपनी ही आँखों आदमी दुनियाँ देखता है। किसी-किसी को दूसरे पाखाने में कब्ज की शिकायत रहती है। कोई आबोहवा का खयाल रखता है। कोई मित्रों का। स्थान-संस्कार भी एक है।

बुद्धिभद्र इस समय गोरखपुर हैं पं० रामकृष्ण त्रिपाठी के यहाँ। समाचार भेज दिया है।

आपका

सूर्यकान्त त्रिपाठी

[जानकीवल्लभ शास्त्री की कविता—"तन चला संग, पर प्राण रहे जाते हैं" (**रूप-अरूप** में संकलित);

शुद्ध-बुद्ध—**गोरा** पढ़कर जानकीवल्लभ शास्त्री ने निराला को लिखा था कि रवींद्रनाथ का साहित्यकार 'शुद्ध-बुद्ध' है।]

[40]

112, Maqbool Ganj
Lucknow.
30.12.38

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

पत्र मिला। इम्तहान दे कर यहाँ आइये।

यहाँ से लड़के गये हैं, आपसे मिले होंगे या मिलेंगे। तस्वीरें भेज रहा था : फिर एक का निश्चय बदल गया : फिर मेरी अनुपस्थिति में वह चला गया। खैर एक दूसरी छोटी तस्वीर भेजता हूँ। यह मेरी अब तक की तस्वीरों में अच्छी मानी जाती है। बाकी यहाँ लीजियेगा।

पैर का दर्द बढ़ा है। आपका लेख माधुरी में ७/८ दिन में, प्रकाशित, निकल जायगा। इम्तहान अच्छी तरह दीजिये।

गुप्त जी (राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त) ने कहा था—हम उनसे (आपसे) मिलेंगे, उनका पता क्या है। मैंने कहा था—मैं राय कृष्णदास जी के वहाँ आपसे मिलने के लिए लिखूंगा, २७ फरवरी को, अगर मिल सके। उन्होंने कहा—नहीं तो हम मिलेंगे, मालूम होने पर, कहाँ हैं। इति।

आपका
निराला

[41]

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ,
२५-३-३९

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र प्रयाग में भी एक मुझे मिला था। मैं इन दिनों कुछ उलझा भी हूँ, और कुछ उदासीन। उलझा इसलिये कि मेरे पास बंकिमचन्द्र का पूरा साहित्य हिन्दी अनुवाद के लिये आया है—एक दो उपन्यास मैं अनुवादित कर भी चुका हूँ, उदासीन इसलिये कि फिजूल की दन्तनिपोड़ी अच्छी नहीं लगती—मेरा अपना काम छपने को बहुत पड़ा हुआ है।

"तुलसीदास" और "अनामिका" निकल गईं। २०/२० प्रतियाँ बात की बात में हर्र हो गईं जो मुझे मिली थीं, मेरे पास भी नहीं कोई। आपको फिर भेज सका तो भेजूंगा, हालाँकि प्रतियाँ आप ही जैसे योग्य जनों को देना चाहता था। वाजपेयी जी को भी नहीं भेज सका।

लखनऊ में दो-तीन किताबें निकलने को हैं—कुल्लीभाट वगैरह, उन्ही के

फेर में हूँ।

लीडर से भी अभी दो किताबें निकलनी हैं जिनका रुपया मैं खा चुका हूँ। ऐसी ही अड़चन-उलझन है। इसीलिये कलकत्ते से उधर नहीं जा सका, प्रयाग चला आया।

"चमेली" के बाद "बिल्लेसुर बकरिहा" "रूपाभ" मे मेरा निकलेगा, इसी अंक से, पढ़ियेगा, यह ज्यादा अच्छी चीज है।

"चमेली" पर "विशाल भारत" में खिलाफ आन्दोलन शुरू हो गया, अब तक आप पढ़ चुके होंगे।

क्षमा आदि सब अपशब्द हैं, इससे भले आदमी की तरह प्रांजल भाषा में गाली देना अच्छा है।

आपकी पुस्तक (रूप-अरूप) के छपने की बातचीत वाजपेयी जी से सुनी थी। आप का पत्र भी देखा था, वाजपेयी (पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी) जी को लिखा। उसके सम्बन्ध में क्या हो रहा है?

अनेकानेक कारणों से मैं आप लोगों से दूर रह गया हूँ, जिससे असंस्कृत हो गया हूँ। आपका साथ कुछ दिन रहे तो अच्छा हो। आप कब तक आते या क्या करते हैं? फिर कहाँ जायँगे?

कहा, मैं अभी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं। प्रायः दो-तीन महीने मुझे स्वस्थ होने में लग जायँगे। काम सुथरा हो जाय, तब आराम की साँस्स की सोचूँ।

साहित्य में बहुत पिछड़ गया हूँ।

"पागल" महाशय को नमस्कार।

आपका
निराला

[42]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१९-४-३९

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

उत्तर बहुत देर से दे रहा हूँ। आपका पत्र इस समय पास नहीं। पता लिखते वक्त खोजूंगा।

आपका अँग्रेजी का पर्चा अच्छा नहीं हुआ, ध्यान से पढ़ा या देखा नहीं होगा। तैयारी एक की-सी सब की है।

आजकल संस्कृत पढ़ा रहे हैं, आनन्द आता होगा।

"रूपाभ" मेरे पास रह नहीं पाता। उसमें किन्हीं विष्णुस्वरूप जी ने (विशाल

भारत के) आक्षेपों का जवाब दिया है। विशाल भारत में कुछ, मुमकिन, निकले।

आपको जो लोग मेरा चेला समझते हैं, वे गलती करते हैं।

और सब कुशल है।

इलाहाबाद से एक मासिक "उच्छृङ्खल" निकला है, रामविलास जी के कई लेख और कविताएँ बहुत अच्छी-अच्छी उसके, अब तक के, दो अंकों में निकल चुकी हैं। इति।

आपका
सूर्य्यकान्त

[43]

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ
३०-५-३९
रात ९
७-६-३९ को प्रेषित

प्रिय श्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला।

आपके पिछले पत्र का उत्तर नहीं दे सका। आपकी कविताएँ मुझे बहुत अच्छी लगीं।

सुधार मैं कविता में नहीं करता या नहीं कर सकता। सुधार से कविता में सुधारक की छाप पड़ती है, जो मुझे अभीप्सित नहीं।

रचना में बहुत-सी बातें रहती हैं, आप लोग जिस तरह प्रान्त-प्रान्त की भिन्न-भिन्न संस्कृत का पता लगाते हैं, उसी तरह हिन्दी का भी लगता है, संस्कृति, दर्शन, सामाजिक विचार, साहित्यिक प्रभाव, मानसिक स्थिति, शिक्षा आदि बहुत-सी बातें रचना के हृदय में रहती हैं—देश काल-कलाबोध-समन्वित; प्रादेशिकता तो रहती ही है। मेरे सुधार न करने या न पाने का यही कारण है।

रही बात सीख देने की, जो इस पत्र में आपने लिखी है, सो, मैं खुद जबकि दूसरों की सीख नहीं ले सका तब आपको क्या सीख दूँ?—अगर यह कोई सीख है तो यही देता हूँ।

आपकी प्रकाश्य पुस्तक की बात पढ़कर खुशी हुई। आपने उस पत्र में "हुंकार" (श्री रामधारी सिंह "दिनकर") की तारीफ लिखी थी; किताब मैंने पढ़ी, पढ़ने पर बहुत दिन का पढ़ा "हुं-हुं करोति" याद आया; अब सोचता हूँ, अगर कोई बिहारी भाई "डकार" लिखते!

बंगालियों के पड़ोसी होने के कारण, शायद, बिहारियों में ओज की मात्रा अधिक है। मुर्दों में जान फूंकना बुरी बात नहीं, लेकिन जो जिन्दा हैं उनके लिये

क्या होगा ? क्या वे गुलगपाड़ा पसन्द करेंगे ?

बाँकीपुर, पटने में मेरी अनामिका+तुलसीदास नहीं मिली। बिहार में मेरी किताबों की कम खपत है, अर्थात् लोकप्रियता नहीं, यह मेरी कामियाबी है।

आपकी पुस्तक का निकलना जरूरी है। दो-एक किताब निकल जाने पर फिर अड़चन न होगी।

मेरा "कुल्ली भाट" छप गया। चार-छः दिन में निकल जायगा। जून में दो किताबें लीडर प्रेस में लगने वाली हैं। बंकिमचन्द्र का पूरा साहित्य अनुवाद के लिये मिला है। दो किताबें अनुवादित कर चुका हूँ, तीसरी कर रहा हूँ। भारत कुल्ली भाट के बाद अब गंगा पुस्तकमाला मेरी लिखी ३००/३५० सफों की महाभारत छापेगी।

"रूपाभ", सुना, बन्द होनेवाला है। इति।

आपका
निराला

[44]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१६-२-४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। कुछ दिन हुए, पागल जी लखनऊ आये थे। "अनामिका" मैंने उन्हें खरीद दी है। उन्होंने आपको सूचित नहीं किया, शायद इम्तिहान की वज़ह फुरसत नहीं मिली।

आपकी रचनाओं में (रूप-अरूप के गीतों में) कोई-कोई बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। पागल जी से बातचीत हुई थी।

इधर दुलारेलाल जी की कवयित्री श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव बी. ए. से शादी होने के निमन्त्रण में महाकवि मैथिलीशरण जी पधारे हैं, कल मेरे यहाँ आये थे, आपकी किताब देखी, समर्पण देखकर कहने लगे : अब आपकी प्रशंसा होगी, फिर अपने पास भेजी प्रति की बातचीत करते रहे— बीमारी के कारण अभी पढ़ नहीं सके।

मेरे सम्बन्ध में मेरी मदद नहीं मिल सकती। "एकं सद्विप्राः" वाला हाल मानता हूँ, जैसा समझ में आये, लिखिये, सब ठीक है। यों मिलने पर कह दे सकता हूँ। कौन माथापच्ची करे ?

अभी तीन दिन से गुप्तजी से--"दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी" श्लोक चल रहा है।

गुप्त जी ने कहा, तुम मूर्ख हो, हठी हो, कालिदास का मतलब बड़े-बड़े विद्वान् नहीं समझा सके, मैं जो कुछ कहता हूँ, वही सही है।

मैंने मन में कहा, या तो कालिदास मूर्ख था या आप हैं; पण्डिता: समदर्शिन: तो हैं नहीं, एक तरफ से "गवि हस्तिनि" नजर आते हैं।

जो दूसरे की बात नहीं समझ सकता या जो भौगोलिक अण्डबण्ड वर्णन करता है, वही मूर्ख होगा।

जहाँ के समुद्र का वर्णन है, वहाँ वह "अयश्चक्रनिभ" है ही नहीं।

आजकल मैं सिर्फ मक्खियाँ मार रहा हूँ। जगह-जगह से अभिनन्दन मिल रहे हैं, उन्हें इकट्ठा करके रख रहा हूँ। एक इस पत्र के साथ भेजता हूँ।

इससे पहले जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर आप चोटी कटा डालेंगे, इसलिए नहीं भेजूंगा।

लीडर प्रेस से लेखों का एक संग्रह ३५०/४०० पृष्ठों का निकल रहा है, कम्पोज्ड हो गया है, छपना बाकी है, नाम है प्रबन्ध-प्रतिमा, इसके बाद कहानियों का संग्रह लगेगा।

इण्डियन प्रेस से, आपको मालूम है, बंकिम के दो अनुवाद निकल चुके हैं। मैं अब तक तीन और करके दे चुका हूँ।

आपकी बहन का समाचार बड़ा ही दु:खद है। लेकिन वीर तो वार झेल कर ही वीर और धैर्य रखता हुआ ही धीर होता है। मैं आपको किन सहानुभूतिसूचक शब्दों में धैर्य दूँ, नहीं समझ पा रहा।

अध्ययन निष्फल नहीं होता, कभी उसका फल मिलता ही है, आपके पिताजी का हाल अवश्य ही बड़ा बुरा होगा। ईश्वर उन्हें शान्त करें।

आप निकम्मे क्यों निकले? ---आप तो निकम्मेपन से बाहर निकल गये हैं।

बुद्धिभद्र मजे में हैं, रेडियो स्टेशन, लखनऊ, में काम करते हैं, बाल-साहित्य अच्छा लिख रहे हैं।

न मिले पत्र में शायद मैंने देश की परिस्थिति की ओर आपका ध्यान खींचा था और लिखा था कि तब तक संस्कृत के कवियों से आधुनिक हिन्दी कवियों की एक तुलनात्मक आलोचना २०० पृष्ठों तक की लिख डालिये पक्षपातरहित होकर, कोशिश करूँगा कि छप जाय और कुछ पारिश्रमिक आपको मिले। माधुरी के सम्पादक से पुरस्कार देने के लिए अनुरोध किया था।

मुझे आप लोगों के विकास से प्रसन्नता है। अगर मैं अपनी दुर्बलता के कारण कुछ कर नहीं सकूँगा तो मुझे असन्तोष कम-से-कम नहीं रहेगा। इति।

आपका
निराला

[जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक का समपण---**रूप-अरूप** निराला को समर्पित है; पत्र के साथ प्रेषित अभिनन्दन---११ फरवरी, १९४० को चौक, लखनऊ के

"दी कास्मिक सोशलिस्ट्स" ने निराला को एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था; जानकीवल्लभ शास्त्री की बहन—सुमित्रा, जिसका निधन हो गया था।]

[45]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१७-९-४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपकी हृदय में बड़ी प्रतीक्षा थी। पत्र मिलने पर बड़ी खुशी हुई।

पहले आपके लेख के सम्बन्ध में लिख दूँ। पाण्डेय जी से मैंने बड़ी विनम्रता से कह दिया था कि आपको माधुरी से पुरस्कार अवश्य दिया जाय। लेख निकलने पर सोचा भी कि एक दफा पूछूँ, लेकिन इधर महीने भर से होती हुई तरह-तरह की शिकायतों के कारण, यानी अस्वस्थता की वजह जाना नहीं हो सका। अब आपसे कच्चा चिट्ठा मालूम हुआ। वास्तव में हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं के बड़े बुरे उसूल हैं। मैंने इसीलिए इनमें लिखना बन्द कर दिया है। साहित्य सन्देश जैसे बहुत से पत्रों को माँगने पर भी मैं कुछ भेज नहीं सका।

पन्त जी, हाँ, बहुत आगे निकल गये हैं। उनकी युगवाणी और ग्राम्या आदि नई किताबों के अतिरिक्त पल्लविनी भी निकलने वाली है। लेकिन अभी मेरी मौलिक किताबों की एक तिहाई से कुछ ज्यादा है और अनुवादित मिलाने पर चौथाई भी नहीं पहुँचते। मेरी "प्रबन्ध-प्रतिमा" निकल गई है।

मुझे बंकिम का अनुवाद जो मिला था, उसमें (१) देवी चौधरानी, (२) कपाल-कुण्डला, (३) आनन्दमठ, (४) चन्द्रशेखर, (५) कृष्णकान्त की विल, (६) रजनी, (७) दुर्गेशनन्दिनी, (८) राधारानी, (९) युगलांगुरीय कर चुका हूँ, इण्डियन प्रेस के लिये। प्रथम तीन अनुवाद निकल चुके हैं, बाकी साल भर में निकल जायँगे। पाँच पुस्तकें और हैं "सीताराम" कर रहा हूँ।

बस अनुवाद करता हूँ और अँग्रेजी पढ़ता हूँ। अकेला हूँ, अपने हाथ ठोंकता-खाता हूँ।

इधर बँगला लिखना शुरू किया है। "हिन्दी आर बाङ्ला" प्रबन्ध थोड़ा-थोड़ा करके यहाँ की नई पत्रिका "वन्दना" के तीन अंकों से लगातार निकल रहा है।

यहाँ के बड़े-बड़े बंगाली विद्वानों का एक समूह उसका सम्पादक-मण्डल है।

डा. नन्दलाल चट्टोपाध्याय, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्, ने आधुनिक हिन्दी काव्य पर एक लेख लिखा था, वन्दना की पहली संख्या में। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, वियोगी आदि सभी आये हैं। लेख प्रशंसात्मक है। जरा वियोगी को बनाया है, चूँकि उन्होंने अपने को कहीं रवीन्द्रनाथ से बढ़कर लिख दिया है।

लेख का एक यह भी मतलब है कि हिन्दी के कवि बँगला जानते हैं। मेरी काफी तारीफ है, साथ मेरे बँगला ज्ञान का भी उल्लेख। लेख अच्छा है।

श्री रामविलास पी-एच०डी० हो गये। अब डाक्टर रामविलास हैं।

आप वहाँ क्या करते हैं, कैसे हैं, लिखें।

वास्तव में आप ही लोग हिन्दी के आशा-भरोसा हैं। अधिक योग्य जनों को बड़ा दुःख है, समाजवाद का इसीलिये प्रसार बढ़ रहा है। युद्ध का भीषण रूप सामने है। देखिये, क्या होता है।

आपके गीत मुझे बहुत पसन्द हैं। मैं एक आलोचना लिखूंगा। हिचक इसलिये थी और है कि पुस्तक मुझे समर्पित है।

कहानियों का संग्रह (कानन) देखूंगा। भूमिका लेखों के संग्रह (साहित्य-दर्शन) की लिखूंगा।

मैं २६ सितम्बर को काशी में "प्रसाद परिषद्" का सभापतित्व करूँगा। ११ अक्टोबर को दिल्ली के रेडियो स्टेशन में रात आठ बजे से ८-४५ तक होनेवाले कवि सम्मेलन में कविता पढ़ूंगा। २६ अक्टोबर को लखनऊ में होने वाले कवि सम्मेलन में कविता पढ़ना अस्वीकृत किया, क्योंकि ४/५ मिनट के लिये यहाँ वाले सिर्फ ४०) चालीस रुपये मुझे दे रहे थे; यों दूसरे यहाँ के कवि २०) में जायँगे। बाहर वाले २०) × सेकंड क्लास खर्चा पायेंगे। कई बड़े कवि आ रहे हैं।

नया अभी विशेष कुछ नहीं लिखा। हिन्दी की स्थिति बहुत नाजुक है। इत्यलम्।

आपका
निराला

[46]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
२४-९-४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला २२-९ वाला। आप वेदान्तशास्त्री हो गये, पढ़कर परम प्रसन्नता हुई।

अध्ययन के समय कष्ट होता है, बाद को इसका सुफल अवश्य मिलता है। फिर आप ब्राह्मण हैं, त्याग आपका आदर्श है। ज्ञान से तो आप रिक्त नहीं?

सम्भव है, "माधुरी" में अब पुरस्कार के लिए रुपया बहुत थोड़ा निकलता हो। आप अपनी सहज शिष्ट शैली से लिख कर उनसे पुरस्कार निश्चित कर लीजिये, तब लिखिये।

"प्रबन्ध प्रतिमा" आपको मैं अभी नहीं भेज सकता, कुल पुस्तकें हाथ से निकल चुकी हैं। अगर मँगाने की जल्दी न हो तो कुछ ठहर जाइये। अनुवाद में भेज दूँगा, जब दूसरी अनुवादित पुस्तकें छप जायेंगी, मुझे अनुवादक वाली प्रतियाँ मिलेंगी। दिल्ली से लौट कर "प्रबन्ध प्रतिमा" भेजूँगा, अगर वहाँ रेडियो प्रोग्राम अपसेट् न हो गया।

वन्दना, सुन्दरबाग, लखनऊ, पता है। लेकिन वन्दना की अपनी प्रतियाँ अपने लेख वाली बाद को भेजूँगा।

बहुत उलझा हूँ। बहुत से काम करने हैं। बनारस और दिल्ली की तैयारी में हूँ। दिल्ली नई रचना भेजनी है।

घट तो भर ही रहा है।

मैंने सालभर पहले एक रचना की थी—"रानी और कानी", "तरुण" में छप चुकी है, आपने देखा होगा। सब याद नहीं, कुछ इस तरह है :—

रानी और कानी

माँ कहती थी उसको रानी,
जैसा था नाम,
लेकिन था उल्टा ही रूप,
चेचक मुँह-दाग, काली, नकचिप्टी,
गंजा सर, एक आँख कानी।
रानी अब हो गई सयानी,
चौका बरतन करती,
घर बुहारती, काँड़ती, कूटती, पीसती,
भरती थी घड़े घड़े पानी।
लेकिन माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रही वह दिन-रात,
रानी की शादी की बात,
मन मसोस रहती
जब आ पड़ोस की कोई कहती—
"रानी ? औरत की जात,
ब्याह भला कैसे हो ?
कानी जो है वह !"
सुन कर रानी का दिल हिल गया,
काँपे सब अंग,
दाईं आँख से आँसू भी बह चले
माँ के दुख से;

लेकिन वह बाईं आँख कानी

ज्यों की त्यों रह गई रखती निगरानी।

[घट तो भर ही रहा है– संदर्भ, जानकीवल्लभ शास्त्री का गीत "सब घट भर-भरकर लौट चले" (**तीर-तरंग** में संकलित), जो उन्होंने निराला को भेजा था।]

[47]

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ
१६-१०-४०

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। इसके पहले आपका दूसरा पत्र जिस दिन मुझे मिला था, उसी दिन आपको मेरे पहले पत्र का लिखा जवाब मिल जाना चाहिये था। पत्र लिख कर डाल रक्खा गया था, आपका पत्र न मिलने पर, पता भूल जाने की वजह। बाद को आपका पत्र (पुराना) मिला। वह पत्र मैंने भेज दिया।

वह लम्बा पत्र था। ब त-सी बातें थी। पत्र मैं खुद पोस्ट करता हूँ। नहीं मिला आश्चर्य है। उसमें आपकी कहानियों की तारीफ थी। कहानियाँ मुझे बहुत पसन्द आईं।

इस समय मैं बहुत उलझन में हूँ। रामकृष्ण की स्त्री को···महीने से राजयक्ष्मा है। आजकल मैं ससुराल, गंगा-तट भेज रहा हूँ, डाक्टरों की सलाह है, शुद्ध वायु सेवन कराने की।

बिहारी कवि और लेखकों का पता भेजिये जिनका-जिनका मालूम हो। मैं रेडियो में दे दूँ। बुलाने के लिए भी कहूँ।

आप प्रसन्न होंगे।

आपका
निराला

[48]

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
२.११.४०

प्रिय आचार्य,

दीपावली का सप्रेम।

आपका "कानन" मिला। दो-एक कहानियाँ पढ़ीं। बहुत पसन्द आईं। भाषा है, अलंकार हैं, और कला भी है।

पहले सोचा था, आप जैसा लिखते हैं कि कहानियाँ शिथिल हैं, वैसा ही होगा, लेकिन असलियत उल्टी दिखी। सब कहानियाँ पढ़ूँगा। फिर राय दूँगा।

२६ अक्टोबर को लखनऊ रेडियो से भी कवि सम्मेलन में मेरी आवृत्ति हुई। दिल्ली से यहाँ अच्छा रहा। दिल्ली मे मेरा गला बैठ गया था, जुकाम था; बहुत बिगड़ा नहीं, पर लखनऊ वाला ज्यादा अच्छा पढ़ना रहा गला साफ रहने के कारण। रुपये भी इन लोगों ने मेरी माँग के अनुसार, कुछ घटाकर काफ़ी दिये। दोनों जगह २००) से अधिक दिया गया। सुना है, अभी दूसरे कवि को रेडियोवालों ने इतना नहीं दिया।

यहाँ एक दिन लखनऊ-विश्वविद्यालय के एक एम्०ए० मिले, हिन्दी के। यहाँ हिन्दी संस्कृत-विभाग से मिली है; संस्कृत के प्रोफ़ेसर मिस्टर अय्यर हिन्दी विभाग के भी प्रधान हैं। हिन्दीवाले अध्यापक संस्कृतवालों के ही कमरे में बैठते हैं। इसलिए बातचीत में संस्कृतवाले (अध्यापक) हिन्दीवालों को दबाये रहते हैं—तनख्वाह ज्यादा पाते हैं और संस्कृत जानते हैं इसलिए। संस्कृत के एक अध्यापक डॉक्टर हैं: वे बहुत टूटते हैं। हिन्दी में कुछ नहीं, यह उनका प्रधान वाक्य है। मेरे पास आये हुए एम्०ए० ने कहा, तो मैंने कहा,

"आचार्य जानकीवल्लभ युवक हैं, संस्कृत-हिन्दी दोनों के कवि और विद्वान हैं, उनका लेक्चर और उस डाक्टर से उनकी बातचीत कराइये।"

उनकी उस समय अनुकूल इच्छा थी। देखूँ, क्या होता है।

आपका
निराला

इतने दिनों का लिखा पत्र, पता न मिलने से
रक्खा रहा, आज पत्र पता प्राप्त होने पर भेजा—
निराला, १४-११-४०

[49]

भूसामण्डी, हाथीखाना
लखनऊ
१९.३.४१

प्रियश्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र तथा सभापति-पद से दिया भाषण मिला। भाषण गद्य में पद्य है। आधुनिक हिन्दी कविता भी बड़ी सुन्दर।

वेदान्त में जल्द आचार्य की परीक्षा देंगे, बड़ी प्रसन्नता की बात है। आपका श्रम फल दे चला है।

मैं अपने मित्रों को विद्वान देखना चाहता था, देख रहा हूँ। हिन्दी को अधिक-

से-अधिक, अलग-अलग विषय के विद्वान् सेवक चाहिए थे, मिलते जा रहे हैं। साहित्य सबको लेकर है, इसलिए सबकी श्रेष्ठता जरूरी।

मैं आपको "प्रबन्ध-प्रतिमा", बंकिम के अनुवाद, वन्दना, कुछ नहीं भेज सका। वन्दना में थोड़ा-थोड़ा ३ अंकों में लिखकर लेख बन्द कर दिया था। मुमकिन फिर लिखूँ।

आपके कुल लेख मैंने नहीं पढ़े। आरती और कमला मेरे पास नहीं आतीं। आकर बन्द हो गईं, तत्काल लेख भेजने की पाबन्दी पूरी नहीं की जा सकी।

दार्शनिक हो, अदार्शनिक, चोट से सबको तकलीफ होती है। बहू की मृत्यु की बड़ी करुण कथा है।

मैंने अत्याधुनिक धारा और समाजवाद का इधर कुछ अध्ययन किया है, कुछ लिख रहा हूँ।

किसी तरह दिन कट जाता है। इति।

आपका
निराला

[भाषण—जानकीवल्लभ शास्त्री का एक संस्कृत भाषण;
कविता—जानकीवल्लभ शास्त्री का गीत "यह पीर पुरानी हो" (**तीर-तरंग** में संकलित), बहू की मृत्यु—निराला की पुत्र-वधू श्रीमती फूलदुलारी की मृत्यु।]

[50]

C/o The Leader, Allahabad
26.6.41

प्रियश्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। मैं कितने ही बार दिल में लाकर भी आपको नहीं लिख सका। कुँवर चन्द्रप्रकाश मुझे मिले थे। आपका संवाद उनसे कहते हुए मैंने कहा था, आपके जो १५) मुझ पर बाकी हैं, मैं जानकीवल्लभ जी को भेज दूँगा। अफ़सोस, इधर मुझे वैसी कोई प्राप्ति नहीं हुई। दिल्ली वाले कविसम्मेलन का न्योता आया। मुझे रेडियोवाले हिन्दुस्तान के फ़र्स्ट क्लास कलाकारों का पेमेण्ट करते हैं। फिर भी मुझे कुछ ऐतराज था। मेरी शर्त्त वे मंजूर नहीं कर सके। मैं दिल्ली नहीं गया। १९ जुलाई को लखनऊ रेडियो में कविसम्मेलन है। न्योता आया था। मैं नहीं जा रहा। पहले भी लखनऊ वालों से आपको बुक करने के लिए कहा था, कल एक चिट्ठी प्रोग्राम-डाइरेक्टर को फिर लिखूँगा। कह नहीं सकता, लखनऊ-स्टेशन बिहार के कवि को बुक कर सकता है या नहीं।

"अपराजिता" वाली बात ऐसी है कि जल्दी में मुझे याद नहीं आया वाजपेयी

जी का "रूप-अरूप" की भूमिका लिखना। वह लेख भी मेरे मन के अनुकूल नहीं; मुझे फिर लिखना पड़ेगा जब किताब में दूंगा। यह किताब १०।१२ साहित्यिकों के नाम के शीर्षक से, व्यक्तिगत जीवन पर लिखा स्केच है—उनका मुझ पर छाया-पात; इसमें आपकी भी साहित्यिक और व्यक्तिगत रूपरेखा है। इसका हिसाब-किताब बिलकुल नया है। तब वाजपेयीजी वाले लेख की नयी सूरत होगी। आपका और "रूप-अरूप" का नाम भी जुड़ जायगा।

हम लोगों पर की आपकी "आरती" में निकली आलोचना प्रथम श्रेणी की है। आपके प्रति मेरे साहित्यिक मित्रों की बहुत अच्छी धारणा है। एड्वोकेट दयानन्द गुप्त, मुरादाबाद, नरेन्द्र, बालेन्दु, शमशेर, चन्द्रप्रकाश कुँवर और अंचल के साथी,···के साथ-पढ़े, अच्छे कवि, कहानी लेखक और आलोचक हैं, आपको बहुत पसन्द करते हैं, सिर्फ़ आपकी कहानियाँ नहीं पढ़ीं।

मैं अधूरी पड़ी "चमेली" और "बिल्लेसुर बकरिहा" के पीछे एक मुद्दत से पड़ा हूँ। अबके शायद लिख डालूं। एक चीज इधर मन की लिखी है—"कुकुरमुत्ता"––४५० पंक्तियों की हास्यरस की कविता। पूरी हो चुकी है। ज़बान हिन्दुस्तानी है। मैं "तुलसीदास" की कोटि की मानता हूँ। शुरू की प्रायः १५० पंक्तियाँ मई के "हंस" में निकल चुकी हैं, देख लीजियेगा। कुछ हास्यरस की चीजों की पूर्ति में लगा हूँ। कुछ लिखा है।

और सब कुशल है। आप अच्छी तरह होंगे। आपके साथ रहने से मुझे भी बड़े फायदे थे। मुमकिन, किसी समय यह इच्छा पूरी हो। नाम ठीक समय पर होता है। जवानी में कुछ झेलकर रहना बुरे वक्त काम देता है। आपकी संस्कृतज्ञता हिन्दी के लिए भूषण ही है, उसकी एक सबल पूर्ति। दूसरे अधिकांश भी अगर आपके तरफ़दार नहीं तो इससे आपका कुछ नहीं बिगड़ता, अगर अल्पांश समझदार हैं।

देखूं, "अपर्णा" किस अर्थ में अपर्णा है।

"श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता, लेखन-कौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझ पर अपनी गहरी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान में बिहार की आधुनिक प्रतिभा को मानना पड़ता है। जानकीवल्लभ वहाँ के और समस्त हिन्दी भाषी प्रान्तों के प्रतिभाशालियों में एक हैं। उनके संस्कृत और हिन्दी के भावपूर्ण ध्वन्यात्मक कलामय पद्य और आलोचनाएँ मैं पहले देख चुका था, इधर "कानन" में उनकी कहानियाँ देखीं। कहानियों की भाषा मँजी हुई, वाक्य-न्यास संगीतमय, बातचीत, स्थल और घटनाओं का वर्णन उठान, पूर्ति और परिसमाप्ति की कलात्मकता लिए हुए, ध्वनि और अलंकारों से सज्जित है। आनंद लेने और सीखने की इसमें बहुत-सी सामग्री है। इति।"

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

["अपर्णा"—1941 ई० में प्रकाशित जानकीवल्लभ शास्त्री का दूसरा कहानी-संग्रह।]

[51]

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ
२५-७-४१

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपके दोनों पत्र मिले, उत्तर में देर हुई।

यहाँ १९ जुलाई, रेडियो कवि-सम्मेलन में मुझे आना ही पड़ा। तब से यहीं हूँ।

अभी महीने दो महीने मेरी अवस्था सन्तोष-जनक नहीं होगी। किताबें आपको नहीं भेज सका।

पाठक जी (पं० वाचस्पति जी पाठक) से मेरे अच्छे व्यवहार नहीं। इस दफे मैं एक दूसरे मित्र के यहाँ ठहरा था। दूसरी किताबों का इन्तजाम मैं दो महीने के बाद ही कर सकता हूँ।

पाठक जी ने आपको पुस्तक लिखने के लिये कहा है तो आप उन्हीं से लिखा-पढ़ी कीजिये—अपने दूसरे प्रकाशन के सम्बन्ध में भी।

प्रबन्ध-प्रतिमा उन्हें भेज देने के लिये लिखिये। मैं जबतक अपनी उलझनों से छुट्टी नहीं पाता, तबतक कुछ कर नहीं सकूँगा।

यहाँ रेडियो में आपका नाम मैंने दिया है। पर कहते हैं, अब प्रान्तवाला सवाल आ गया है। फिर भी एक तर्क है, बिहार में रेडियो स्टेशन अभी नहीं खुला।

कुछ दिनों बाद मैं अच्छी तरह आपके लिये सोच सकूँगा। प्रसन्न होंगे। इति।

आपका
निराला

[52]

मार्फत रायबहादुर श्रीमान् पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी,
एम० ए० (लन्दन)
दारागंज, इलाहाबाद
३-१-४३

प्रियश्री आचार्य,

काङ्क्षित आपका पत्र मिला। हृदय उद्वेल हो गया। वाजपेयी जी (पं० नन्ददुलारे वाजपेयी) से आपके समाचार सुन चुका था। इस समय भी वह यहीं हैं। सम्मेलन से उनका एक लेख-संग्रह निकल रहा है, उसी उद्देश्य से आए हुए हैं।

आपके इस सफलता से परीक्षोत्तीर्ण होने का समाचार यहाँ की नवीन विद्वन्मण्डली में उस रोज सुनाया, उस रोज नवीन प्रगतिशीलों की बैठक थी। आपके पूर्ण परिचय के साथ साहित्यिक कार्यकलाप का भी विवेचन सुनाया।

वर्षा में मलेरिया से मैं तीन महीने तक बीमार रहा और एक मन के करीब वजन घट गया। उन दिनों चित्रकूट के पास रहता था। अब स्वस्थ हूँ। प्राय: पन्द्रह सेर वजन इस समय भी कम है।

"बिल्लेसुर बकरिहा" और "कुकुरमुत्ता" पुस्तिकाएँ निकल चुकी हैं। "अणिमा" एक दूसरा पद्य संग्रह जल्द निकलनेवाला है। इधर कुछ गीत लिखे हैं, "देशदूत", "अभ्युदय" आदि में निकल रहे हैं।

आपका नाम भारत के बड़े-बड़े आदमियों के कानों तक मैंने पहुँचा दिया है जिनमें बिहार के भी प्रमुख राजनैतिक हैं। अब स्वस्थ चित्त से संस्कृत की आधी कम-से-कम अँग्रेजी की योग्यता भी प्राप्त कर लीजिए। सविशेष फिर।

आपका
निराला

[परीक्षोत्तीर्ण होने का समाचार--जानकीवल्लभ शास्त्री वेदांताचार्य की परीक्षा में प्रांत में प्रथम हुए थे।]

[53]

C/o Rai Bahadur S.N. Chaturvedi, M.A.
Daraganj, Allahabad.
23.1.43

प्रियश्री आचार्य,

आपका पत्र तथा पुस्तक (अपर्णा) मिली। बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत सुन्दर प्रोज लिखते हैं आप। All India Radio में मैंने आपकी सिफारिश भेज दी। एक कर्मचारी मुझसे बातचीत करने आये थे, वहीं के, उन्हें आपकी वह कहानी-पुस्तक दे दी। अब एक प्रति और मेरे पास भेजिए। तभी अच्छी तरह कुछ कह सकूंगा।

२।३ कहानियाँ पढ़ी थीं, भाषा बहुत पसन्द आई, प्लाट भी अच्छे लगे। यहाँ के दो-एक मित्रों ने पढ़ कर किताब की तारीफ़ की थी।

All India Radio, Lucknow के Director से आपकी सिफारिश President, All India Hindi Poets' Conference की हैसियत से कराई है, लिखित; खुद जबानी भी की है उनके कर्मचारी से और इस बार के कवि-सम्मेलन में बुलाने के लिए कहा है। अब के नहीं, तो अगले दफे बुलाएँगे।

हम कवि सम्मेलन, रेडियो, नहीं जायँगे। जब बुलावा आये, हमें पहले लिखें —क्या दे रहे हैं।

—निराला

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ,
१३-३-४३

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। मैं बहुत चिन्तित था। बड़ी प्रसन्नता हुई।

इधर विशेष काम मैंने नहीं किया। जी नहीं लगा। कुछ बड़ी-बड़ी राजनीतिक सभाओं में आवृत्तियाँ कीं जिनका नेताओं पर अच्छा रंग रहा।

वाल्मीकि-रामायण पढ़ रहा हूँ, बड़ी अच्छी लगी महाकवि की भाषा।

दो किताबें निकल चुकी हैं,—एक बिल्लेसुर बकरिहा दो-एक रोज में निकल जायगी, कुकुरमुत्ता-संग्रह भी प्रेस चला गया है। उक्त दो किताबों में चाबुक की प्रति मेरे पास हैं, लेता आऊँगा, बहुत अशुद्ध छपी है। "सुकुल की बीबी" का प्रूफ मैंने देखा था, किताब अच्छी है, पर प्रति मेरे पास नहीं।

मैं बराबर सोचता रहा, रुपये काफी आ जायँ तो आपको १०।१५ किताबें एक साथ खरीद कर भेज दूं, पर प्राप्ति की जगह त्याग ही प्रबल रहा।

रेडियो जाना भी बन्द कर दिया, हालाँकि रेडियो वाले मुझे लम्बा payment करते थे, सम्मान भी काफ़ी दिया था। इधर पुराने प्रकाशक मित्र भी मुँह फेर चुके हैं।

आप लिख रहे हैं, पढ़ कर खुशी हुई। आपसे मिल कर, बातचीत करके और प्रसन्न हूँगा। मैं १५ को मुज़फ्फरपुर पहुँचूँगा।

उनकी (सुहृद संघ की) विज्ञप्ति में आपका नाम नहीं देखकर दुःख हुआ। मैं अपने भाषण में आपका उल्लेख करूँगा।

भाषण सिर्फ़ बिहार पर होगा, संक्षिप्त, क्योंकि मैं अपने विचार पूरी स्वतन्त्रता से अभी दे नहीं सकता।

पता लगा कर मुझसे मिलिये अवश्य।

कविताएँ सरस और मनोहारिणी हैं।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। नमस्कार।

आपका
निराला

अगर मुझे देर हो तो सम्मेलन में मिलिए,
टिकट न खरीदिए, यह दिखा दीजिए।

[कविताएँ—जानकीवल्लभ शास्त्री के गीत "मैं गाऊँ तेरा मंत्र समझ" और "मधुमास न तुम पतझर हो" (तीर-तरंग में संकलित)।]

[55]

C/o Prof. Nand Dularay Bajpeyi
Durgakund, Benares
7.5.43

प्रिय आचार्य,

आपके पत्र और सूचनाएँ मिलीं। सम्मेलनों की आपसे शोभा बढ़ रही है, खुशी की पहली बात।

विनोद जी (पं० विनोदशंकर व्यास) के लिए वाजपेयी जी की मार्फत एक रचना भेज चुका हूँ, पर शायद अभी तक छपी नहीं। वह यहाँ मिलने के लिए प्रतिश्रुत थे, नहीं आ पाये। एक रोज मुझे बुलाया था, मेरी पहुँच नहीं हो सकी। आप वाली आलोचना इसी कश-म-कश में दब-सी गई। पर उसे "संसार" में या किसी दूसरे पत्र में देकर ही, मुमकिन, यहाँ से दूसरी जगह के लिए चलूँ।

सम्मेलन ने १००) देकर बुलाया है। मेरी फी ५००) है, मैं ३५०) तक सम्मेलन को छोड़ दूँगा, लिखा है।

प्रो० नलिनविलोचन शर्मा जी तो श्रेष्ठ साहित्यिक, परम मित्र हैं। मुझे भी बुलाया था। विहार मुझे बुलायेगा तो अर्थ-गौरव तो समझते ही हैं। इति।

आपका
निराला

[56]

Prof. Nand Dularay Bajpeyi
Durgakund, Benares
11.5.43

प्रिय आचार्य,

नमो नमः।

एक पत्र आपको लिख चुका हूँ। आपके पत्र और समाचार मिले।

मैंने सम्मेलन का १५०) खर्च मंजूर कर लिया, भेजेंगे। आप अवश्य १५ की शाम या रात तक चले आइए। चिन्ता न कीजिए अगर उन्होंने खर्च देकर नहीं बुलाया या कारणवश आप तंगदस्त हैं। वहाँ आपका परिचय बढ़ेगा। यहाँ रमेश (डा० रमेश चन्द्र मिश्र, जबलपुर) आदि से निश्चय कर लीजिएगा। विस्तार से इसीलिए नहीं लिख रहा। यहाँ हाल मालूम हो जायँगे।

हम भरसक १६ की सुबह वाली गाड़ी से रवाना होंगे। वाजपेयी जी चलेंगे।

उन्हें विवाद के लिए बुलाया है, "काव्य में जीवन" पर बोलें। ड्योढ़े का खर्च देंगे।

डा० रामविलास को भी चलने के लिए लिखा है। वहाँ बहुतों से आपका परिचय हो जायगा। इति।

आपका
निराला

[57]

C/o Prof. Nand Dularay Bajpeyi
Durgakund Benares
15.5.43

प्रिय आचार्य,

आप नहीं आये। अच्छा हुआ। हमारा जाना स्थगित रहा। कई कारण आ गए। वाजपेयी जी जानेवाले थे। वह भी नहीं जा सके। सम्मेलन में कुछ ऐसी फूट, आपसी वैमनस्य फैल रहा है। कुछ और भीतरी बातें हैं।

आपका बुलावा छायावादी है। कहाँ का है, कैसा है, आपने नहीं लिखा। मेरी शिरकत रुपये के ही कारण हो सकती है या नहीं, यह बात नहीं। सुहृद संघ मे मैं सिर्फ खर्च लेकर चला गया था।

आपसे यह भी कहा है, ५००) के एक आफ़र पर नहीं गया। अगर आपको मेरा सम्मिलित होना उचित मालूम हो तो उन लोगों का विवरण लिखिए या जनता की सभा होने पर रुपये लेकर चले आइये। उस खर्च में दोनों आदमी चले चलेंगे। इससे अधिक सहूलत शायद आप मुझसे चाहते भी नहीं। आपका आना मेरे मनोरंजन का साधन होगा —संस्कृत के श्लोक सुनता रहूँगा। यहाँ के हालात भी आपको मालूम हो जायँगे। दिन अपनी तरफ से निश्चित कर लीजिए।

प्रसन्न हूँ। रमेश का इम्तहान समाप्त हो गया। आपके वेद कैसे रहे? वाजपेयीजी मजे में हैं। आपका समाचार मिलने पर मैं अपना दूसरा कार्यक्रम तैयार करूँगा।

आपका
निराला

[58]

C/o Prof. N. D. Bajpeyi,
Durgakund, Benares
21.5.43

प्रिय आचार्य,

आपका कोई पत्र नहीं आया, संवाद भी नहीं। आशा है, आप प्रसन्न हैं।

अब तक आपका निश्चय हो चुका होता। शायद आपका निश्चय नहीं हुआ। अब आप न आयें। कुछ भेजें भी नहीं।

इधर मैंने कई नई रचनाएँ लिखी हैं।

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी प्राय: सभी चले गए। गरमी अधिक पड़ रही है। समाचार अब इस पते पर न लिखिए। नए समाचार के लिए प्रतीक्षा कीजिए। हमारा हाल बहुत अच्छा है। इति।

आपका
निराला

[59]

Co/ Prof. Nand Dularay Bajpeyi,
Durgakund, Benares
26.5.43

प्रिय आचार्य,

वाजपेयी जी ने मनीआर्डर का नीचेवाला हिस्सा फाड़ डाला था, इसलिए मनीआर्डर लेना पड़ा। आना-जाना भी पड़ेगा।

२९ को यहाँ से रवाना हूँगा, जो गाड़ी सीधी आपके वहाँ जाती है, उससे। स्टेशन पर आ जाइयेगा अगर यहाँ न आये—पत्र के कारण न पहुँचने का निश्चय हो और मनीआर्डर की रसीद जल्द न पहुँचने के कारण विचार ने पल्टा नहीं खाया।

आपकी आज्ञानुसार तैयारी छोड़ दी। यानी जो तैयारी की थी, उससे बाज आया।

एक रोज दिल में आया जो कुछ पद्य-साहित्य में लिखा है, उसका उल्टा लिख डालूँ। इति।

आपका
निराला।

[60]

C/o Prof. N. D. Bajpeyi
Durgakund (Benares)
31.5.43

प्रियश्री आचार्य,

मैं शनिवार को गाड़ी पर चढ़ गया था, उस समय आपका तार लेकर वाजपेयी जी का भेजा हुआ एक आदमी पहुँचा। तार में लिखा है, Date extended see letter। पत्र अभी तक आपका नहीं मिला।

रहस्य कुछ समझ में नहीं आ रहा है। अब आपकी दूसरी तारीख पर हमारा जाना गैरमुमकिन है। २-३ दिन में यहाँ से सब लोग चले जायँगे।

बरसात में या पूजा के समय हम आपके वहाँ आयेंगे अगर सही-सलामत रहे। जनता तथा स्थानीय जनों को आवृत्ति सुना देंगे।

इस प्रसंग में हमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। स्टेशन से, गाड़ी से, फिर वापस आये।

आप चिन्ता न कीजिये। चुपचाप अपना काम कीजिये। यह सब धीरे-धीरे समझ में आयेगा।

आपका
निराला

[61]

112, Maqboolganj,
Lucknow
21.6.43

प्रिय आचार्य,

इस समय हम लखनऊ में हैं। आपके वहाँ (मुजफ्फरपुर के सुप्रसिद्ध साहू परिवार में) प्रसिद्ध बँगला औपन्यासिक शरच्चन्द्र थे। श्रीमान् महादेव जी सेठी के यहाँ उनकी पहले की लिखी, तारुण्य की, कोई किताब रह गई है,—वह छोड़ गये थे, जो अब नहीं मिलती। वह बनेली (राज्य, भागलपुर) में भी नोकरी कर चुके हैं। आप जानते हैं।

इधर प्रसन्न रहता हूँ। यहाँ भी पानी बरसा है। अणिमा अब निकल ही रही है। १०० सफ़े की पुस्तिका है। एक उपन्यास इसी लगाव लिख डालना चाहता हूँ।

अभी काशी फिर जाऊँगा। डा०रामविलास के छोटे भाई रामस्वरूप एम्०ए०

का ब्याह है, बारात में।

कुछ दिनों में बताऊँगा। आइएगा, फिर यहीं से मुजफ्फरपुर चला जायगा।

मसूरी कविसम्मेलन से रुपये आये थे, नहीं लिए, नहीं गया।

शरच्चन्द्र + उनकी पार्टी से बातचीत हुई थी, जब मेरा प्राथमिक जीवन था, कभी लिखूँगा।

काशी से लिखा हमारा पत्र मिला होगा कि मुजफ़्फ़रपुर चलते वक्त क्या आफत रही। आपका पत्र मिला था।

आपका
निराला

[62]

Yugmandir,
Unao.
28.8.43

प्रिय आचार्य,

आपको लिखा, लेकिन कोई उत्तर आपका नहीं आया। समझ में नहीं आता कि आपका हाल क्या है।

आप लोगों में कौन-कौन कलकत्तावाले कविसम्मेलन में गये, वहाँ कैसा रहा, पुरस्कार किन्हें मिला और आजकल क्या लिख रहे हैं, सूचित कीजिएगा।

आपका निबन्धोंवाला संग्रह निकल गया होगा, पर मिला नहीं। इधर क्या लिख रहे हैं?

मेरी "अणिमा" निकल गई। उत्तर मिलने पर भेजूंगा।

एक उपन्यास प्रेस जानेवाला है "चोटी की पकड़"! २५०-३०० सफ़ों का है। अभी पूरा नहीं हुआ।

मैंने सम्मेलन जाना एक तरह छोड़ दिया है। कई अच्छे निमन्त्रण आये, नहीं गया। उपन्यास पूरा कर रहा हूँ। सीधी भाषा में है। अभी तक अच्छा चला, आगे की नहीं मालूम। उतर जायगा। बिकेगा अच्छा। घटना-प्रधान है।

आपके वेदों का क्या हुआ? अन्य क्या समाचार हैं? डा० रामविलास आगरे के किसी राजपूत कालेज के अँग्रेजी-विभाग के प्रधान हैं।

अच्छी तरह होंगे आप। मेरे कई दाँत हिल गये हैं, दर्द रहा, उखड़वाना चाहता हूँ।

आपका
—निराला
युगमन्दिर

युग मन्दिर,
उन्नाव
१७-९-४३

प्रियश्री आचार्य,

आपकी पुस्तक "साहित्य-दर्शन" मिली। साद्यन्त पढ़ूँगा। आपकी शैली मुझे प्रिय है। पुस्तक आपकी आज ही मिली।

आपके लिए मैं प्रयत्न करूँगा। रेडियो मैं नहीं जाता। दूसरे की राय पर शायद वे लोग कम ध्यान देते हैं अगर वह गैरसरकारी है। अन्यत्र देखूँगा।

मेरी सिफ़ारिश की आर्थिक मसले पर कीमत नहीं, आपको मालूम है।

"अणिमा" दुर्भाग्य से अब तक दफ्तरी के यहाँ से नहीं निकली। छप चुकी है। सुना है, कोई दुर्घटना उसके यहाँ हो गई है। दो-चार रोज में आ जायगी।

उपन्यास काफ़ी रोचक है। यही प्रधान गुण है। यह जीवनचरित-जैसा नहीं, सोलहो आने उपन्यास है। इधर अरसे से लिखना बन्द है। जल्द प्रेस जानेवाला है। शैली सीधी, निरलंकार। घटनाओं का चमत्कार।

दाँतों में योजोट नाम की दवा के प्रयोग का यह फल हुआ है कि उसके बहने से होंठ और ठोढ़ी का एक हिस्सा जल गया है।

भवानीदत्त जी से कह दें, इसीलिए गमन नहीं हो सकता। मुखारविन्द भस्म हो गया है।

आपके मित्र भट्टाचार्य (देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) ने एक पत्र लिखा था, उनका पता खो गया है, उन्हें फिर पत्र भेजने के लिए लिख दें। खुद भी पता दे सकते हैं।

आपके "तीर-तरंग" के प्रकाशन की और रुपयों की बातचीत करके जल्द आपको लिखूँगा। आशा है, कहीं कामयाबी हो जायगी।

आपका
"निराला"

जरूरी :—

चौधरी राजेन्द्रशंकर जी कहते हैं कि
अक्टोबर के अन्त तक १००) भेजेंगे।
किताब भेजें।
—नि०

[64]

C/o Pdt. Bhagawati Pd. Bajpeyi
Daraganj, Allahabad
23.10.43

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

शायद १०।११ नवम्बर को प्रयाग की नुमाइश में कवि सम्मेलन होने वाला है।

आपको ६५) भेज कर बुलायेंगे। हम रहेंगे। आइये।

८।९ को मुशायरा है। हम यहीं हैं।

—निराला

[65]

C/o Pdt. Bhagawati Pd. Bajpeyi
Daraganj, Allahabad.
2.11.43

प्रिय आचार्य,

आपका हाल और रुपये ५ से पहले भेजने की बातचीत पद्मकान्त जी से कह दी।

अगर भेजें तो आयें। कह दिया कि ६५) भेजें, चाहें तो तार का खर्च काट लें।

आपका
निराला

[66]

C/o B. P. Vajpeyi
Daraganj, Allahabad.
2.12.43

प्रिय आचार्य,

मैं यहीं हूँ। चौधरी साहब (कवयित्री सुमित्राकुमारी सिन्हा के पति चौधरी राजेन्द्र शंकर) यहाँ आये थे। मैंने १००) तत्काल आपको भेजने के लिए कह दिया था। उन्होंने भेज दिये होंगे। खबर नहीं मिली।

आपकी पुस्तक (तीर-तरंग) मैंने नहीं देखी, पर उसे भी प्रेस में दे देने के लिए कह दिया था।

अभी तक हवा खाता रहा। जल्द समाचार दीजिए।

आपका

निराला

मौत का एक दिन मुअय्यन है
नीद क्यों रात भर नहीं आती !

—ग़ालिब

मुह-तके एक दिन मुताइन है,
नींद भिनसार भर नहीं आई।

—निराला

[67]

C/o Pdt. Bhagwati Pd. Vajpeyi
Daraganj, Allahabad.
[1943 ई० [

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। मेरे पत्र का उल्लेख आपने नहीं किया, मिला या नहीं। गया में मैंने कहा था कि आपको मैं लिख चुका हूँ। उसमें मैंने अधिकार के न बिकने की बात स्पष्ट कर दी थी। यहाँ से चौधरी साहब को एक पत्र मैंने (वहाँ से लौट कर) फिर लिखा। रुपये १००) अग्रिम रायल्टी के तौर जल्द भेज देने और किताब प्रेस के सिपुर्द कर देने पर ज़ोर दिया। दुःख है, अभी तक उनका उत्तर नहीं मिला। मैंने यह भी लिखा था कि किताब मेरे पास भेज दीजिए अगर न छापना चाहें, मैं यहाँ कोई प्रबन्ध कर दूंगा। समझ में नहीं आता, उनके मौन का क्या अर्थ है। छापेंगे अवश्य नहीं तो वापस कर देते। मुमकिन, मेरे यहाँ रुक जाने से स्नेह-कोप हुआ हो।

आपको यहाँ के कवि-सम्मेलनों में बुलाने का अवश्य प्रबन्ध करूँगा। और भी देखता हूँ अगर कुछ कर सकूँ। आपकी पुस्तक जल्द मिलेगी, आशा है। हाँ, डाकव्यय न करें, मैं फागुन में खर्च भेज कर एक बार आपको बुलाऊँगा, उस समय साथ लेते आयें।

इधर मेरा काम ढीला है। थोड़ा ही थोड़ा लिख पाता हूँ। फ़ारसी बह्रों पर कुछ गीत लिखे हैं—ग़ज़लें। अभी बहुत अच्छा नहीं बन पड़ता।

संस्कृत शब्दों से, जैसे—

"अशब्द हो गई वीणा, विभास बजता था,
अमिय-क्षरण नव जीवन-समास बजता था।"

हिन्दी से जैसे—

"हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन,
गले के हार के होते हैं ये बहार के दिन।"

आपका साहित्यिक कार्य स्तुत्य है। थोड़े समय में आपने बहुत काम किया। प्रो० शिवपूजन सहाय जी ने आपकी कई पुस्तकों का उल्लेख अच्छे ग्रन्थों की सूची में किया है।

हम तो थोड़ा ही करके अशक्त हो चले; अधिक समय स्पर्धा प्रतिरोध में पार हो गया। अकेला दम ! आपसे नया जीवन मिलता है।

अभी यहाँ बड़े दिनों में डा० रामविलास आये थे। आधुनिकों में बड़ा नाम कर रहे हैं। यू० पी० के प्रगतिशील-लेखक-संघ के सेक्रेटरी हैं। लखनऊ में भी उनका व्याख्यान हुआ, हम लोगों ने यहाँ भी कराया। एक घंटे तक खूब बोले। साथ पं० गंगाप्रसाद मिश्र एम० ए० थे। दिल्ली में टाक थी, डा० रामविलास गये।

मेरा एक व्याख्यान श्रीमती महादेवी जी की महिला-विद्यापीठ में हो चुका है दो घंटे का, एक फिर होनेवाला है।—आधुनिक साहित्य पर फिर होगा। क्योंकि संक्षेप निकालने में भी मुझे कई घंटे आवश्यक हो गये। फिर विश्वविद्यालय में भी होगा !

प्रसन्न हूँ। गंगा नहाता हूँ, भली तरह रहता हूँ, वार्धक्य आनेवाला है—तैयार हो रहा हूँ। साधारण जन का असाधारणत्व कहाँ तक पहुँचेगा।

कवि लोग खूब लिखते हैं। तुलसीदास सब के सिरमौर।

कुशल-पत्र दीजियेगा। अच्छे होंगे।

आपका
निराला

पुनः—

आप "वेदाचार्य" में बैठनेवाले थे, क्या हुआ ? अभी तक इसका समाचार नहीं मिला, अरसा हुआ।

—नि०

[68]

दारागंज, प्रयाग
१३-२-४४

प्रियवर आचार्य,

आपका कृपापत्र मिला। प्रसन्नता हुई।

आप वहाँ प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ रहते हैं, स्वयं भी मधुरभाषी व्यवहार-कुशल हैं, कोई जगह मिल जानी चाहिए थी। निश्चिन्त होकर साहित्य लिखते रहते।

सही लिखा है आपने, विद्या की परीक्षा से नौकरी की परीक्षा और कठिन है। देखिए, क्या गुजरती है खिरमने दिल पर।

"चौधरी" जी ने आधे दाम भेजे।—अरध तर्जाहि बुध सरबस जाता।

कल उनका खत आया है तीन महीने ने बाद—सुमित्रा जी के शिशु हुआ है, १३ को यानी आज आ रहे हैं, अब तक लिख नहीं सके, "तीर-तरंग" प्रेस चली गई आदि आदि।

यहाँ मज़ाक यह हुआ है, जब उन्होंने खत का जवाब नहीं दिया, मैंने "चोटी की पकड़" दूसरे के हवाले की—सात फार्म छप चुके हैं।

पता नहीं, यह हाल मालूम करके क्या रुख लें, कहीं आपके बाक़ी पचास पर न पानी फेर दें।

मैं "काँटा"—एक वृहत काव्य-संग्रह तैयार कर रहा हूँ। आधुनिक तर्ज है।

चीजें लोगों को कम पसन्द आ रही हैं। इसको मैं उनका तैयार न हुआ संस्कार समझता हूँ।

यह ग़ज़लों के अलावा है। देशदूत में रचनाएँ निकल रही है। जैसे—

सत्य

तबला दोनों हाथ आया हथियार,
दरबारी वीर-राग गाया गया।

\+ + +

कैद पासपोर्ट की, नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता।
देविका रानी और उदय शंकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।

काँटा

मुहोमुह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के काँटे जैसे
अपने दिल की कली तोलते हुए।

\+ + +

गुल खिला,
आँख आँख का काँटा हो गई।

—निराला

"ऊषा" को दो रचनाएँ भेजी हैं। चिन्ता न कीजिए। यहाँ से भी छपने-छपाने का प्रबन्ध हो सकता है।

तीन महीने किसी तरह झेल जाइये। मुझे अँगरेजी में उपन्यास लिखने का

प्रोत्साहन मिला है । रुपये इसी तरह मिलेंगे ।

तीन महीने बाद यहाँ आइये । मुझे संस्कृत पढ़ाइये । मेरे साथ रहिये ।

मेरा अगला उपन्यास अँगरेजी का होगा । इति ।

—निराला

[69]

दारागंज, इलाहाबाद
१६-२-४४

प्रिय आचार्य,

आपका कार्ड मिला । पत्र का उत्तर लिख कर रख दिया था । भेजा जा रहा है । असामयिक हो गया है ।

आपकी बीमारी के समाचार से वज्रपात हुआ ।

जैसा लिखा है, चौधरी जी आये थे, हमने रुपये भेज देने के लिए कहा है । आज फिर तार कर रहे हैं कि तार से भेज दें ।

आपके एकाएक अस्वस्थ होने का कारण नहीं मालूम, आपने नहीं लिखा । परिश्रम—-लेखन, अध्ययन और चिन्ता होगा । धैर्य से रहिए ।

विश्वास है, जल्द अच्छे हो जाइएगा ।

आपके पिताजी को नमस्कार ।

—निराला

[70]

Daraganj, Allahabad
10.3.44

प्रियश्री आचार्य,

आपका कार्ड मिला । फिर समाचार नहीं मिले ।

कल पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी से आपकी बातचीत सुनी । पूछने पर मालूम हुआ, आपने मुजफ्फरपुर के कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ी ।

वे पहले बड़े प्रशंसक थे, लेकिन प्रकाशक की दी आपकी "गाथा" ले आये हैं, उसकी निन्दा करते थे : इस स्कूल के तरफदार नहीं ।

उनसे लेकर किताब देखी । वास्तव में अपूर्व है । प्रो० श्री नलिनविलोचन जी ने आपके लिए लिखा है : श्री प्रफुल्लचन्द्र जी ने भी सुन्दर लिखा है ।

आप, सत्य होता तो सूचना देते कि ३०) चौधरी जी ने भेज दिये आपके

पास। मैंने बाकी पूरे के लिए लिखा था। किताब सचमुच ही प्रेस में है। मुद्रक कहते थे। देखा जाय, कब तक निकलती है। पुस्तक की भूमिका सार्वभौमिक हो, आपका पीड़न है।

एक जमाव मेरठ में साहित्यिकों का होने वाला है। अज्ञेय करते हैं, आप जानते हैं। कई पत्र मेरे पास आये। एक अज्ञेय का भी आया है। मजेदार है। वे इस समय आसाम में हैं, फौज के ऊँचे पद के एक बड़े कर्मचारी। दिल्ली से नगेन्द्र जी आये थे। मिले थे। चलने का अनुरोध कर गये हैं। आपके लिए कल लिख रहा हूँ कि बुलाएँ।

महादेवी जी, माखनलाल जी तथा और कई लेखक बंगाल जा रहे हैं लोगों की स्थिति का निरीक्षण करने। मेरे भी जाने की बात है। अमृत बाजार में प्रमुख स्थान है। इस समय कच्चा पड़ रहा है जी।

"चोटी की पकड़" उपन्यास प्रायः तैयार है। "काँटा" प्रेस जाने वाला है। बड़ा संग्रह है। कुछ रचनाएँ इधर "देशदूत" में निकली हैं, आपने देखा होगा। तारीफ लोग कम करते हैं। उच्चारण की गड़बड़ी होती है। गजलों की थोड़ी-सी तारीफ।

जैसा नलिनविलोचन जी लिखते हैं, आडेन वगैरह को पढ़ लीजिए। आधुनिकों में निर्बन्ध हो जायँगे।

मैं एप्रिल के दूसरे सप्ताह आगरे जाऊँगा। सूरदास जी की जगहें देखनी हैं। "तुलसीदास" जैसी चीज लिखना चाहता हूँ। विचार कई लिखने का था, है भी, आपको मालूम है, "गाथा" मेरी थी।

अच्छे हो गये, सबसे खुशी की बात है। इरादा क्या है, सूचित कीजिएगा।

आपके पिताजी हों तो मेरा प्रणाम कहिएगा। अभी लिखने-पढ़ने की अधिक मिहनत हानिकर होगी।

लिखा है या नहीं, नहीं मालूम, इसी उपन्यास के बाद मेरा अँगरेज़ी उपन्यास निकलेगा। वसन्त के अन्त से लिखना शुरू करूँगा।

पाली सीख रहा हूँ। साथ अँगरेजी भी। कामचलाऊ संस्कृत कुछ तेज कर रहा हूँ। उम्र से कमजोरी आती है।

दूर-दूर के कई बुलावे आये, जैसे एक हैदराबाद से। इन्कार कर दिया। काम बहुत है। दाम भी मनमाना लेता हूँ।

कुशल है। गंगा-स्नान, गंगा-जल-पान चला जा रहा है।

सस्नेह
—निराला

आपकी किताब चन्द्रमुखी जी से मिली।
"अत्युन्नतिस्फोटिकञ्चुकानि वन्द्यानि।"

—नि०

[71]

दारागंज, इलाहाबाद,
१४-३-४४

प्रिय आचार्य,

मारफत की चिट्ठी सीधी नहीं आती। पत्र हस्तगत हुआ।

मैं किराये के मकान में रहता हूँ। आपको कल-परसों एक दीर्घ पत्र भेज चुका हूँ।

"गाथा" मिल गई। बहुत सुन्दर लिखा है आपने। एक मेरी नई रचना—शीर्षक पाँचक है—

दीठ बँधी, अँधेरा उजाला हुआ।
सेंधों का ढेला शकरपाला हुआ।।१।।
राह अपनी लगे, नेता काम आया।
हाथ मुहर है, मगर छदाम आया।।२।।
आदमी हमारा तभी हारा है।
दूसरे के हाथ जब उतारा है।।३।।
राह का लगान गैर ने दिया।
यानी रास्ता हमारा बन्द किया।।४।।
माल हाट में है, मगर भाव नहीं।
जैसे लड़ने को खड़े, दाव नहीं।।५।।

हमने अंगरेज़ी उपन्यास का खाका तैयार कर लिया। अगर अड़चन न हुई तो इस साल निकल जायगा।

"किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः"—याद करके अँगरेजी पढ़ना छोड़ देना चाहता हूँ।—'साधु बाचाय सम्वरो।"

आप अच्छे हो गये, प्रसन्नता है। शक्ति जल्द आ जायगी।

आपका
निराला

[72]

आचार्य,

पत्र हस्तगत हुआ।

"गाथा" साद्यन्त मुझे बहुत पसन्द आई। उसकी शैली जसी सीधी और साधारण लगती है, दरअस्ल वैसी नहीं। बड़ी ठोस है। समधिगत जन ही ऐसा लिख सकते हैं। वर्णन बड़ी तीखी चोट करने वाले हैं। सही मानी में आधुनिक। युवतियों

के चित्र बड़े गहरे-रंग-वाले, ऐसे ही स्थानों के, लोगों के बयान। श्री नलिन-विलोचन जी ने सुन्दर लिखा है, ढंग भी मजा। मैं अलग से लिखूँगा सम्वाद पत्र में।

महादेवजी को (तीर-तरंग) अवश्य समर्पण कीजिए। आजकल बीमार हैं। उन्हीं से अधिक बातचीत होती है। बंगाल जानेवाली हैं। पता नहीं, क्या हो।

चौधरी की किताबें कई प्रेस में हैं। एक मुद्दत से सुन रहा हूँ। जवाब वे किसी को नहीं देते। मतलब वही जानें। जवाब न देने के पीछे एक किताब गँवा बैठे। "चोटी की पकड़" उन्हीं के यहाँ लिखी गई थी, अब छप दूसरे के यहाँ रही है। इस पर सुमित्रा जी से लड़ाई हो गई। कुछ लोग कहते हैं, सुमित्रा जी अधिक बुद्धिमती है, कुछ कहते हैं, चौधरी साहब।

मेरठ को मैंने लिख दिया है। देखा जाय क्या करते हैं। जब बुलायें, खर्च भेजें, मुझे लिखिए। ईस्टर में है। इति।

आपका
सूर्यकान्त त्रिपाठी
"निराला"

दारागंज, प्रयाग
१७-३-४४
रात ९

चूँकि यहाँ दाना है,
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
—निराला

[73]

दारागंज, इलाहाबाद
१४-६-४४

प्रिय आचार्य,

आपकी किताब छप कर भूमिका के लिए आ गई।

मैं मानसिक बहुत खिन्न था, इसलिए कुछ देर कर दी। चौधरी का कोई उत्तर भी नहीं मिलता।

जल्द एक भूमिका लिख डालने वाला हूँ। बड़ी विद्वत्तापूर्ण लिखूँगा, इस विचार से और देर कर दी।

आपका
निराला

आपका पत्र अनाहूत नहीं आता।
मैं भी अब बस करता हूँ। प्रसन्न होंगे। इति।
लीची के मजे होंगे और आम के।

—नि०

[74]

Daraganj,
Allahabad
30.1.45

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। आप इतने अस्वस्थ हैं यह चिन्ताजनक है। Change की जगह आपके लिये प्रयाग भी है और सब जगहों से अच्छी।

चन्द्रमुखी जी के लड़का हुआ है। छः दिन का हो गया। हमारे यहाँ भी ठहरने की दिक्कत नहीं होगी।

इस समय चन्द्रमुखी जी अपनी बड़ी बहन के मकान में हैं, दारागंज में ही। कुशल है।

कोई वैसा अधिवेशन न हुआ तो यहीं रहेंगे। गये तो दो दिन को। यहीं रहिए। इति।

आपका
निराला

याद है, चन्द्रमुखी जी से
कुछ ऐसी चर्चा सुनी थी।

[75]

Daraganj, Allahabad
15.5.45

प्रिय शास्त्री जी,

मैं लखनऊ, उन्नाव आदि की तरफ गया था, इसलिए उत्तर नहीं लिखा जा सका।

इस समय आप छुट्टियों में घर होंगे। फिर भी लिख रहा हूँ।

महादेवी जी आपको जानती हैं। मैं और जिक्र कर दूंगा।

लिख देना बड़ी बात नहीं गो कि उनकी आँखें आजकल बिगड़ रही हैं, डिक्टेट कर देंगी।

उनसे आप खुद भी मिल सकते हैं, मेरे साथ भी चल सकते हैं। शिप्रा की पंक्तियाँ अच्छी हैं।

एक अरसे बाद इलाहाबाद आया हूँ। प्रसन्न हूँ।

मेरी ५ किताबें छप चुकी हैं, out होती ही हैं। ४ और छप रही हैं। आपकी प्रसन्नता चाहिए। इनमें ४ किताबें दूसरे संस्करण वाली हैं, एक संकलन अपनी रचनाओं का, ४ नई।

आपका
निराला

(शिप्रा की पंक्तियाँ—"मेघ, दूत बन, जाओ" से आरम्भ होनेवाली कविता।)

[76]

Daraganj,
Allahabad
23.5.45

प्रिय आचार्य,

पत्र प्राप्त हुआ। शिप्रा मिली। अच्छा काम हुआ आपका। रसगंगाधर खरीदेंगे। एक पास है।

लड़की फेल हो गई। पढ़ाई अच्छी न की होगी।

हमारी किताबें भी निकल रही हैं, छप रही हैं। कागज की महँगाई के कारण पहले-पहल बेचने की फिक्र में होते हैं प्रकाशक; लेखक की प्रतियाँ देने की फ़िक्र में बाद।

कुशल है। एक पत्र लिखा। उसका जिक्र नहीं किया।

हाँ, दिल्ली में पागल जी मिले थे। प्रसन्न थे। पागलपन की शिकायत घर भर को है।

महादेवी जी को खुद लिखिए। वे आपको जानती ही हैं।

कुछ बाद आपकी रचनाएँ छापने की सोचेंगे। आरती मन्दिर से क्या मिलता है? बाकी समाचार लिखें। अब तो वहाँ सपरिवार रहते होंगे?

आपकी रचनाएँ अति सुन्दर हैं जैसी आपकी तारीफ़।

—निराला

[जानकीवल्लभ शास्त्री की रचनाएँ—"बादलों से उलझ, बादलों से सुलझ" और "गागर भरने की वेला" गीत(क्रमशः **अवंतिका** और **सुरसरि** में संकलित।)]

[77]

Daraganj, Allahabad
10.6.45

प्रिय आचार्य,

पत्र आया। समाचार अवगत हुए।

महादेवी जी पहाड़ हैं रामगढ़। रामगिरि की याद आती है। उल्टा हिसाब है।

आपसे चौधरी मिले थे, मुझसे कहा था।

आप खूब लिख रहे हैं। अच्छे होकर लिखिए।

हर पत्र में आपकी रचना पाने के बाद कुछ लिखते हैं। आप विज्ञापन में ला सकते हैं। पर आपकी कुछ आदत ऐसी है। विज्ञप्ति आवश्यक नहीं।

शिप्रा मुझको बहुत पसन्द आई। यहाँ काफी पढ़ी गई। अब आप प्रसिद्ध हैं।

हम प्रूफ देखने में रहते हैं। चार किताबें निकल गईं। छः छापेखाने में हैं। चार इधर की हैं मौलिक, एक अनुवाद, पाँच पुनः संस्करण वाली, एक संग्रह। पानी पड़ने पर "चमेली" को पूरा करूँगा।

इधर कुछ-कुछ कविता-वविता लिखते हैं। एक यह है — (फ़फ़लुन्, फ़लुन ४)

लू के झोंकों झुलसे हुए थे जो हरा दौंगरा उन्हीं पर गिरा,
उन्हीं बीजों के नये पर लगे, उन्हीं पौधों से नया रस झिरा !

× × ×

यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ है, मगर
खिल कर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया।

गया में प्रबन्ध करा रहे हैं। बुलाएँ तो आइएगा। इस समय यहाँ साथ एक रिसर्च-स्कालर, लखनऊ-युनिवर्सिटी रहते हैं—त्रिलोकी नाथ दीक्षित।

कुशल है। उत्तर लिखिएगा। इति।

आपका
निराला

[78]

Daraganj,
Allahabad
7.7.45

प्रियवर,

आपके यहाँ वाला कविसम्मेलन पड़ा है। आयोजन कराइए। फीस पूरी नहीं, तो जाने लायक दिलाने की बातचीत कीजिए, वहाँ तो अच्छे-अच्छे आदमी हैं।

काव्य-प्रेमी भी होंगे।

लिखने के साथ संघटन भी रहना चाहिए। साहित्य अप्रचार के कारण लोगों के विचार में उतरा रहता है।

आपका "चिमटा" अच्छा रहा। इति।

—निराला

[79]

Daraganj,
Allahabad
11.8.45

आचार्य,

आपका पत्र मिला। समाचार से चिन्ता बढ़ी।

हम अपनी शक्ति भर तैयार हैं। हताश न हों। तकलीफों को धैर्य से झेलना पड़ता है। हमारे लायक सेवा लिखें। अन्यथा न करें और न समझें।

हम ५-६ दिन के लिए आगरा, दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद जा रहे हैं। आने पर समाचार आ जाएगा, आशा है। इति।

आपका
निराला

[80]

Daraganj,
Allahabad
20.8.45

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र हस्तगत हुआ कि आगरा, दिल्ली, मेरठ के लिए रवाना हुआ। तत्काल उत्तर नहीं लिख सका।

बड़ी चिन्ता थी। बुख़ार अब कैसा है, इलाज फायदा पहुँचा रहा है या नहीं, लिखने-लिखाने की कृपा करें।

यहाँ ऐसी हालत में आना दुश्वार होगा। कुशल है। पानी अच्छा बरस रहा है।

हंस कुमार जी से मेरठ में मुलाकात हुई थी। कश्मीर जाते हुए रुके थे। ५०) मिल गये।

काम शुरू करने वाला हूँ। पानी खूब बरस रहा है। कई महीनों से पड़ा है। आपका स्वास्थ्य-समाचार जल्द अपेक्षित है। मेरठ कालिज में अच्छा रहा।

आपका
निराला

[81]

Daraganj,
Allahabad
27.8.45

प्रिय आचार्य,

पत्र हस्तगत हुआ। पथ्य पाने के सम्वाद से प्रसन्नता हुई।

कालाजार बुरा मर्ज है। एक अर्से के लिए काम छोड़िए। दवा, पथ्य, स्वास्थ्य-कर वायु, मनोविनोद लेकर रहिए। साल भर बाद शरीर के दोषों का प्रस्रवण हो जायगा। दौर्बल्य न रहेगा।

मेरी दूसरे संस्करणवाली किताबें ही निकली हैं—

(१) प्रभावती
(२) चतुरी चमार (पहले सखी)
(३) बिल्लेसुर बकरिहा
(४) कुकुरमुत्ता (सुधारा)।

निकलने को हैं--

(१) बेला (गीत, गजलें)
(२) नये पत्ते (नई रचनाएँ आधुनिक)
(३) चोटी की पकड़ (उपन्यास)
(४) काले कारनामे (उपन्यास)
(५) विष वृक्ष (बंकिम का अनुवाद)
(६) सीताराम ("...." चल रहा है लिखना)
(७) अपरा (संग्रह, साहित्यकार संसद से)
(८) सुरसरित् (महादेवी, पन्त और मेरे चुने कुछ गीतों का संग्रह)

मेरी अच्छी तस्वीर और क्या होगी? इन्हीं में कोई? आप अवश्य आइए।

आपका
निराला

[82]

Daraganj,
Allahabad
14.9.45

प्रियवर,

आप पहुँच गये होंगे। प्रसन्नता होगी।

डा० रामविलास ने एक फोटो भेजा है, हम दोनों हैं उसमें। बड़ा अच्छा आया है।

हमारी अलग निकाली जा सकती है। देने का विचार है कहीं।

आपके बाबूजी को प्रणाम। लड़की (शैलबाला) को स्नेह।

आपका
निराला

[83]

दारागंज, इलाहाबाद,
२१.९.४५

प्रिय आचार्य,

पत्र आया। तस्वीर पूजा की छुट्टियों में ले जाइए। यहाँ स्वास्थ्य सुधर जायगा।

मौसम यह इलाहाबाद का अच्छा समझा जाता है। कुशल है। इति।

आपका
निराला

[84]

Daraganj,
Allahabad
9.10.45

प्रिय आचार्य,

पत्र मिला। बीमारी अत्यन्त चिन्ता-जनक हुई। आशा है, अच्छा इलाज फायदा पहुँचायेगा।

समाचार किसी से लिखा कर भेजिए। जी लगा है। अधिक चिन्ता न कीजिए। ईश्वर पार लगायेंगे।

यहाँ के लोगों में बीमारी की चिन्ता है। जो अड़चन हो, लिखिएगा।

सस्नेह
निराला

[85]

Daraganj,
Allahabad
23.10.45

प्रियवर,

पत्र लिखाया हुआ मिला।

प्रयाग आने की खबर से प्रसन्नता हुई। अभी तक प्रतीक्षा थी। अब लिखते हैं।

बीमारी के इलाज के लिए आ सकते हैं। यहाँ कुछ अधिक अच्छी व्यवस्था-अवस्था रह सकती है। सुधा जी के यहाँ से भोजन पक कर आया करेगा, डाक्टर इलाज करेगा।

वहाँ की नौकरी में छुट्टी आदि की व्यवस्था कीजिएगा आप।

—निराला

[86]

Daraganj
Allahabad
12.11.45

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। आपकी बीमारी अंदेशे की है।

अब क्या कर रहे हैं, क्या इलाज हो रहा है, लिखने की कृपा कीजिए।

मैं भी इधर पीड़ित था। अभी कम अच्छा हूँ। इति।

आपका
निराला

[87]

Daraganj,
Allahabad
26.11.45

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। आप कुछ स्वच्छ स्वस्थ हैं, पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ।

कालाजार बुरी बीमारी है। अपना बड़ा बस नहीं। सुनकर रह जाना है। ईश्वर आपको प्रसन्न करें, प्रार्थना करता हूँ।

मेरा लिखना-पढ़ना बहुत ढीला है। आपत्तियाँ प्रबल हैं। एक तरह बीमारी ही है। चलता जा रहा है।

"अपरा" निकलने पर है। "बेला" प्रेस गई।

आपका

निराला

[88]

दारागंज, प्रयाग

६.१२.४५

गजल

छला गया, किरनों का प्रकाश कैसे करे ?

विरज नहीं, रज से रजत-हास कैसे करे ?

× × ×

बुराई छोड़, किसी की भलाई कर या न कर,

ज़मीं रहने दे, जा रहने दे, जान रहने दे।

प्रिय आचार्य,

पत्र मिला। प्रतीक्षा है, जब तबियत हो, समय हो, चले आइये।

संयम से रहना आवश्यक है। अकेले और जी ऊबता होगा। काम से निवृत्त होकर लिखूंगा, सोचा था, इसलिये देर हुई।

सुधा जी प्रसन्न हैं। सुना है, मकान बदला है। इधर मेरा जाना नहीं हुआ। कालाजार के लिए साधारण विनोद और सेवा जरूरी है। समाचार दीजिएगा।

सस्नेह—

निराला

[89]

Daraganj,

Allahabad

28.12.45

आचार्य,

एक फार्म नया छपा कल भेज चुका हूँ। एक चिट साथ है जिसमें लिखा है, बाबूजी से १०००) एक हजार रुपए जल्द भेजने के लिए कहिएगा, हिसाब फिर

करेंगे। अब आप पत्र पाते ही अपनी तस्वीर "बेला" में जाने के लिए भेजिए। ८० गीत छप चुके। पूरी किताब में बाकी देखिएगा या बाकी फार्म पर फिर भेज देंगे तो एक किताब काम चलाने के लिए बँधा ले सकेंगे। जवाब अगर दें तो वापसी डाक से सूचित कीजिए। जरूरत आ पड़ी है।

"चोटी की पकड़" और 'काले कारनामे" दो उपन्यास छप रहे हैं। जनवरी के आखीर तक निकल जायँगे, अलग-अलग प्रकाशनों से। "नये पत्ते" आधुनिक भाववाले पद्यों का संग्रह "बेला" के बाद उसी प्रेस से छपना शुरू होगा।

कुशल है। स्वास्थ्य के लिए जाड़े भर खामोश रहिए। गरमियों में चलिए कश्मीर हो आया जाय।

आपका
निराला

[90]

Daraganj
Allahabad
4.2.46

प्रिय आचार्य,

"बेला" के पूरे फार्म ९५ गीतों के, भूमिका के साथ भेज चुके हैं। किताब भी बँध गई। किसी किसी को उपहार दिया जा चुका। अभी पूरी प्रतियाँ नहीं मिलीं।

एक हफ्ते में २ प्रतियाँ प्रकाशक से भेजने के लिए कहेंगे। तस्वीर हमारे पास रखी है। आकर ले जाइएगा।

"नये पत्ते" का छपना जारी है। प्रसन्न होंगे। यहाँ कुशल है।

उपन्यास भी दो छप रहे हैं। बड़ी उलझन है। "अपरा" अब तक निकलती है। जून तक निश्चिन्त हों तो हों। बड़ा जमाव है। इति !

आपका
निराला

[91]

Daraganj
Allahabad
7.2.46

प्रिय आचार्य,

तुम्हारा पत्र नहीं मिला। यहाँ से २/३ जा चुके। बेला का पूरा साज गया।

किताब बाजार में निकल गई। प्रकाशक से दो प्रतियाँ भेजने के लिए कहा है। तुम्हारा पता लिखा दिया है।

"शिञ्जिनी" का साज़ दुरुस्त कर रहे हैं। साहित्यकार संसद की तरफ से प्रस जाने वाला है। महादेवी, पन्त के, मेरे २५/२५ गीत हैं, मेरे बिलकुल नये। "नये पत्ते" के दो फर्मे छप चुके, जहाँ से "बेला" निकली। "काले कारनामे" और "चोटी की पकड़" देख रहे हैं।

"कुकुरमुत्ता" संशोधित निकल रहा है। छप चुका है। भेजेंगे।

—निराला

[92]

Daraganj,
Allahabad
28.2.46

प्रिय आचार्य,

बड़ा दुःख हुआ यह पढ़कर कि फिर बीमार पडे। इस समय क्या हाल है, लिखाइएगा।

पुस्तकों का पार्सल लौट आया है, सुना है। मैंने समझा दिया है कि वे अस्वस्थ हैं।

क्या इलाज हो रहा है ? पूर्ण विराम आवश्यक जान पड़ता है। मैं भी दुर्बल हो रहा हूँ। उन दिनों अस्वस्थ था।

काम बहुत है। अप्रैल के मध्य तक आ सकूंगा। अभी बड़ी उलझन है। इति।

आपका
निराला

[93]

दारागंज, इलाहाबाद
२७-३-४६

प्रिय आचार्य,

समय पर उत्तर नहीं जा सका। बीमारी सुन-सुनकर अनायास निराशा आती रही। पत्र लिखा पड़ा रह गया।

"नये पत्ते" भेजते हैं। "पकड़" भी निकल गई। ३/४ दिन में भेजेंगे। दूसरा खण्ड प्रेस जाने को है।

अप्रैल में देखने चलने का विचार है। इति।

सस्नेह
निराला

[94]

१.४.४६

जहाँ तक याद है, एक पत्र लिख चुके हैं। यह लिखा पड़ा था, भेज देते हैं। अपने समाचार जल्द लिखना-लिखाना। चिंता है। इलाज हो रहा है या नहीं, लिखना।

—नि०

Daraganj,
Allahabad
16.3.46

प्रिय आचार्य,

पत्र मिला। पढ़ कर बड़ा दुख है।

संयम, इलाज आवश्यक है, काम कम। जहाँ तक सँभले। पूरा अवकाश भी ले सकते हैं।

होली का नमस्कार। किताबें इधर वाली होली के बाद भेजी जायँगी। आधे अप्रैल तक हम मिलेंगे।

—निराला

[95]

Daraganj,
Allahabad
19.5.46

प्रियवर,

अस्वस्थता के कारण उत्तर नहीं जा सका।

किताबें निकल रही हैं, निकल चुकी हैं दो और। एक साथ चार-पाँच भेज देंगे, ऐसी जल्दबाजी क्या है ?

आप अच्छे हैं, खुशी की बात है। संयम से रहिएगा तो सँभल जाइएगा। बहुत अस्तव्यस्त होंगे तो आक्रमण तीव्र होगा।

सुधा जी प्रसन्न हैं। क्वचित् चर्चा करती हैं।

गरमी का प्रकोप है। काम करते पसीना निकलने लगा है। पर गंगा नहाने का सुख शिमले में भी नहीं।

क्वार की दशमी विजया तक फुरसत होगी; काम को ढर्रे पर ले आऊँगा।

कुशल-कामी हूँ। इति।

सस्नेह
निराला

[96]

C/o Pdt. Ram Krishna Tripathi
Sangeet Visharad
Dalmau
Rai Bareli
3.6.46

प्रिय आचार्य,

समय पर उत्तर नहीं जा सका। १५ दिन से हम यहाँ हैं, रामकृष्ण के मामा बीमार हैं सख्त।

किताबें तीन निकल चुकी हैं, बाकी भी निकल जायँ तो भेजवायें।

पानी गिरने तक दो-तीन और निकलने वाली हैं।

आप प्रसन्न होंगे। काम इस समय बन्द है। यहाँ आम काफी हैं।

आपका
निराला

[97]

C/o Pdt. Ram Krishna Tripathi
S. V.
डलमऊ Dalmau,
Rai Bareli
27.7.47

प्रियवर,

महीने भर से अधिक हुआ, शय्याशायी हूँ। पत्र का उत्तर कुछ देर से जा रहा है। एक पहले लिख चुका था जो नहीं मिला।

आपकी आलोचना निकलने पर देखूंगा।

प्रसन्न होंगे। मेरे साले मृत्युशय्या पर हैं।

—निराला

[98]

Daraganj,
Allahabad
27.8.47

प्रियवर,

हमने पं० गंगाधर शास्त्री के मुख आपके सम्बन्ध [में] "दुस्संवाद" सुना। ईश्वर आपको धैर्य दे।

हम २०/३० रोज के अन्दर आज ही डलमऊ जा रहे हैं। अगली दूसरी तक लौटंगे।

कुशल है, अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए। हो तो यहाँ चले आइए। इति।

आपका
निराला

[99]

C/o Poet Sudha,
109/218, Ram Krishna Nagar,
Cawnpore
9.11.47

श्री आचार्य,

प्रिय शास्त्री जी,

एक अरसा हुआ, कुछ लिखकर सूचित नहीं कर सके।

गंगाधर जी शास्त्री से सुना था, आपकी अर्द्धांगिनी (देवी चन्द्रकला) का देहान्त हो गया है। इस फालिज का क्या इलाज ?

इस पर आपने, सुना, काम बढ़ा दिया, गो कि तन्दुरुस्ती के लिए मना किया कि दम का दायरा पार न कीजिएगा।

सुना है, सख्त बीमार हैं।

अफसोस। हम भी मर कर बचे। बहुत सँभाली थी तन्दुरुस्ती, फिर चूहे हो गये।

ये तस्वीरें ही रह गई हैं। आगे जो कुछ हो।

हाल भी मिलना मुहाल था। ईश्वर की इच्छा और अच्छे इलाज से नीरोग हों। यहाँ मिलने आयें।

—निराला

[काम—**आधुनिक हिंदी कविता को निराला की देन** नामक पुस्तक का संपादन।]

[100]

Dalmau,
Rai Bareli
22.11.47

प्रियवर,

कानपुर में पत्र मिला। फिर यहाँ चले आये। ८/१० दिन कम-से-कम रहेंगे। साहित्यिक अधूरा काम पूरा करना है।

आपका काम बड़ा है, खर्च लम्बा आवश्यक होगा ही। सबसे अधिक यह दैवी विपति हमारी भावना को विचलित करती है। फिर सविस्तार लिखेंगे।

शायद यह सम्बाद हमने लिखा है पिछले पत्र में कि तुलसीदास की रामायण का खड़ी बोली में छन्द-भावानुकूल अनुवाद कर रहे हैं।

शुरू का विनयखण्ड जो प्राय: ४ फार्म का होगा, कथारम्भ से पहले तक का, राष्ट्रभाषा विद्यालयल, गायघाट, काशी को दिया है। जनकपुर दर्शन, वाटिका-गमनखण्ड महादेवी जी को साहित्यकार-संसद से छपाने के लिए। विचार पाठ्य करने का है। दोनों खण्डों को। बिक्री अच्छी होगी।

अनुवाद सफल है। गोस्वामी जी की साहित्यिक प्रतिभा का यथाशक्ति स्थापन किये रहने का प्रयत्न किया गया है।

आपका
निराला

[101]

राष्ट्रभाषा विद्यालय,
बनारस
२२.१२.४७

प्रियवर,

एक अरसा फिर हुआ, हमने पत्र से सम्वाद नहीं मँगाया।

आपके पारिवारिक जीवन की सदा चिन्ता रही जब से यहाँ के लोगों से आपकी पत्नी का वियोग सुना।

हम सान्त्वना क्यों दें? यही कहते हैं कि जहाँ तक सम्भव है, दीर्घकाल तक विश्राम कीजिए।

पत्र जल्द दीजिएगा। हम आपसे मिलना भी चाहते हैं; मगर एक सुअवसर ही से मिलना सम्भव है।

हम तुलसीदास जी की रामायण का आधुनिक हिन्दी में रूपान्तर कर रहे हैं।

दो पुस्तिकाएँ इसी की निकल रही हैं; एक यहाँ से विनय खण्ड : शुरू से पार्वती विवाह हो जाने तक, दूसरी साहित्यकार-संसद से, फुलवाड़ी-खण्ड।

तुलसी की छन्द-रचना-पद्धति आदि यथासाध्य रक्खी गई है। देखना हो तो बड़े दिन में आइए, नहीं तो किताबें यथा-समय भेज दी जायँगी। विनय-खण्ड छप रहा है। दो फार्म कम्पोज्ड हो चुके हैं।

—निराला

पुन :—

अगर आयें तो सूचना दे दें और अपनी छपती बड़ी पुस्तक के फार्म लेते आयें।

इस काम के बाद हम अपने, कई दफे के, संसार-भ्रमणों के वर्णन लिखना चाहते हैं जिनका उल्लेख अभी तक नहीं किया।

शायद आप जानते हैं, हम भारत में सबसे पुराने विश्वपर्यटक हैं और एक अरसे से।

लंडन में व्याख्यान भी अँगरेजी में दिया है, और घंटों का।

यही कविताएँ सुनाई हैं, सानुवाद, संसार के सभी प्रधान नगरों में।

आपका

सूर्यकान्त

[102]

The Rashtra Bhasha Vidyalaya
Gaya Ghat
3.1.48

प्रिय आचार्य,

नये साल का नमस्कार। शैल को स्नेह।

पत्र आया। आपको मिहनत न करने के लिए ही कहा था, आपने नहीं माना। अधिक इस पर और क्या?

हम दर-किनार हैं। कारण हैं। कुश्ती का खाता भी पेश करना है।

अभी तक तो किताब लिखी नहीं, कुछ लोगों ने थोड़ा बहुत लिखा है। बहुत तरह की सोच कर चुप हो रहता हूँ।

आपकी किताब छत-फाड़ हो रही है। रुपये सेठों से मिल सकते हैं। आपको इशारे काफी दिये गये हैं। उनका भला उनको गुणग्राम समझाने से सुझाया न होगा। वे दूरन्देश हैं। चिन्ता न कीजिए; अर्थ धीरे-धीरे आ जायगा और काफी।

मैं तो इधर पढ़ता ही रहा। इसीलिए कुछ गड़े मुर्दे उखाड़ने की सूझी। काम चल रहा है।

यहाँ अच्छा है। जाड़ा अधिक हो गया।

मिलेंगे जल्द या देर से। रामायण का अनुवाद दिखाना है।

अगले काम भी सँवारने हैं, जल्द फिर। यहाँ महीने भर हूँ।

सस्नेह
निराला

[103]

The Rashtra Bhasha Vidyalaya
Gai Ghat
Benares
20.1.48

आचार्य,

पत्र आया। रामायण के छपे दो फार्म बुकपोस्ट से भेज दिये, मिले होंगे।

जुकाम से पखवारे भर शिकस्ती रही। अब कुछ अच्छा है। काम वन्द है। कल-परसों से शुरू होगा। ३/४ था फार्म चल रहा है।

यह किताब, बहुत, दस-बारह फार्म की होगी। फुर्सत हो या एक-दो दिन की छुट्टी मिले, १०/१५ दिन में, चले आइए।

अनुवाद कैसा लगा, लिखिए, छापने का विचार है, साथ-साथ।

और भी अधिकारी रहेंगे। नलिनविलोचन जी पटना कालेज में हैं, नजदीक हुए।

कुछ फुरसत होने पर बिहार में मित्रों से घूमकर मिलने की इच्छा है। बाकी कुशल है।

फिर आवश्यक बातचीत आ जायगी जैसे एक-एक, साहित्य के नक्षत्र आ जाते हैं।

शैल को स्नेह, नमस्कार। इति।

शुभैषी
सूर्य्यकान्त त्रिपाठी
निराला

[104]

राष्ट्रभाषा विद्यालय,
गायघाट काशी
आषाढ़ बदी २५-६-४८

प्रिय आचार्य,

हम सकुशल काशी पहुँच गये। रास्ते में साधारण कष्ट रहा।

एक संग्रह सम्मेलन को दिया है काव्य का ।

यहाँ तीन दिन से जल गिर रहा है । गंगा में बाढ़ आ गई है ।

आम खूब रहे, काशी के लँगड़े । जाड़ों में अमरूद थे ।

तुलसी अनुवाद का कवर छपने को रहा है । कुकुरमुत्ता संशोधित अब फार्म-रूप छपने को है । एक कहानियों का संग्रह भी साथ निकलेगा । फिर और और ।

आजकल में बाहर चलने की कर रहे हैं । ठण्ढक हो गई है । काम करने को है, इसलिए विचार होता है यहीं से कर लें । रुकाव हो जायगा ।

आपके पिताजी को नमस्कार । बाबूसाब (बाबू उमाशंकर प्रसाद) को स्नेह, आपकी पत्नी को भी ।

बेटी (शैल) को प्यार ।

सस्नेह
निराला

[105]

The Leader Press,
Allahabad
13···49

प्रियवर,

चिरकाल पश्चात् पत्र प्राप्त हुआ । देशदूत और साप्ताहिक भारत के गीत भी देखे होंगे ।

आपका तार नहीं मिला या न दिया गया होगा । कारण हैं ।

हम अब भी पूर्ण स्वस्थ नहीं : उँगलियों में सूजन है । सर पर अब दो बड़े चिह्न हैं ।

एक गीत भेजते हैं :—

आपका
निराला

गीत

मन-मधु बन आली, आली !
ईरण तन की, ज्योति तपन की
गगन घटा काली-काली !

—नि०

[106]

लीडर,
प्रयाग,
२२-६-४६

प्रियवर,

एक गीत "राका" के लिए आपके समागत विद्यार्थी मित्र को दिया, आप

देखने को मिलेगा।

एक भारत में छपा लिखता हूँ। कुशल है।

अभी शय्या नहीं छोड़ी। बस,

—निराला

["राका" के लिए गीत—"शंकाकुल निशा गई";
"भारत" में छपा गीत—"छाए बादल काले-काले"।]

[107]

चन्द्रमुखी प्रेस,
दारागंज, प्रयाग
२७-११-५३

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ,

हमको सख्त अफसोस है कि इतनी बड़ी नीचता के आप शिकार समझे गये।

कोई रुपया होगा तो वह आपका पहले है, हम ऐसा ही समझते हैं।

इधर पत्रों का उत्तर हमने लिखना बन्द कर दिया था, मनीआर्डर भी वापस कर दिये थे, दस्तखत न करने की प्रतिज्ञा से।

कलकत्ता हम सादी पोशाक से गये। अब भी वैसे ही हैं। इसलिए आपको लिख रहे हैं।

हम तो एक साधारण आदमी हैं। हमारे साथ वाले भी ऐसे ही। हम भीतरी हाल नहीं समझ सके।

रामकृष्ण ऐसे न थे, नहीं मालूम, सही क्या है। हमारी दृष्टि में आप कम नहीं।

आपका
निराला

[108]

दारागंज,
प्रयाग
१५-१-५७

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। ३ पुस्तकें भी मिलीं। मैं प्रसन्न हूँ। पढ़ूंगा।

डाकखाने से अब प्राय: सरोकार नहीं रखता।

विश्वविद्यालय-वाद-विवाद-प्रतियोगिता का आप लोगों के हक में अच्छा फल होगा, आशा है।

आपका
निराला

[पुस्तकें—जानकीवल्लभ शास्त्री लिखित **त्रयी**, **चिंताधारा** और **पाषाणी**।]

रामकृष्ण त्रिपाठी के नाम

[1]

Bhargava majestic Hotel,
Hewett Road, Lucknow
[१९३३]

चिरंजीव श्रीरामकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला। उत्तर देने में कुछ देर हुई। गोपा के चेचक निकलने के समाचार से चिन्ता है। अवश्य छोटी देवी होंगी। शायद परसाल मनन्ना के निकली थीं। तुम्हारे मामा लौटे हैं या नहीं, लिखना। अम्मा शायद जेठ अमावस्या तक लौटें। द्विवेदी जो को हमने लिखा है। तुम्हारे वहाँ हम जाना चाहते थे, पर नहीं गये। हमारी 'अलका' समाप्त हो चुकी। ७/८ दिन में निकल जायगी। ७/८ मई तक हमें अपनी छोटी कहानियों का संग्रह "लिली" छापेखाने में दे देना है। फिर मई के अंत तक "अपराजिता", इनके अलावा और बहुत सा काम है। कलकत्ते वाला आर्डर भी ले लिया है। जल्द जल्द काम कर रहे हैं। अब स्थिति अच्छी हो रही है। तुमको १५/२० रोज तक यहीं ले आवेंगे। तब तक अम्मा भी आ जायँगी, और हम कुछ और काम कर चुके होंगे। सरोज क्या अभी रोटी बनाने लायक है ? लिखो

—निराला

[2]

दारागंज, इलाहाबाद
३० दिसम्बर, १९४४
रात ८

श्रीः

चिरञ्जीव रामकृष्ण,

पत्र का उत्तर देर से दे रहे हैं। इस महीने दो मनीआर्डर भेजे। एककी रसीद अभी नहीं आई। दलमऊ से पत्र आया है कि वह मनीआर्डर भी लखनऊ भेज दिया गया। अब तक मिल गया होगा।

तुम्हारे मामा की बीमारी से चिन्ता है। हमारी लाचारी मालूम है। रुपया हाथ आया तो भेजेंगे।

तुम्हारे दूसरे मनीआर्डर के साथ बिहारीलाल को भी २५) भेजे थे। पत्र

आया है। मिल गये। जाड़े से कुछ पहले कोट, रजाई, चदरे, धोतियाँ आदि १००) से अधिक की लागत के कपड़े दिये थे जब वह आये थे।

रायल्टी की बातचीत दूसरों से कम किया करना। चुपचाप अपने काम में लगे रह कर हासिल निकाल लो। हमारा दूसरा लक्ष्य ऐसा कोई नहीं। मदद पहुँचती रहेगी।

किसानी अर्थाभाव से नहीं चली। अच्छा हुआ जो कुछ हुआ। एक अभिज्ञता हो गई। तुम्हारी शक्ति के विकास का वह अनुकूल क्षेत्र नहीं।

शिवशेखर जी तथा भाइयों के समाचार पत्र द्वारा लेते रहो।

लखनऊ में हमारे नाम कुछ बाकी रह गई है। काम अब शुरू हुआ है। जाड़े की समाप्ति तक चुका देने का प्रयत्न करेंगे। इसके सम्बन्ध में भी विशेष बातचीत इसके सिवा न करना।

हम भी सन ४२ में महीनों बीमार रहे। फ़साद चलता ही गया। इति।

सस्नेह सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

[3]

दारागंज, इलाहाबाद
३१-१-४५

चिरंजीव रामकृष्ण,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। समाचार मालूम हुए। कल ३०) तीस रुपये तुम्हारे खर्च के लिए भेजे, आज १५) पन्द्रह रुपये और भेजते हैं। टुइशनें कर लीं, अच्छा है। जो उद्‌वृत्त रुपया हो, डाकखाने या बंक में जमा करते रहो। बंक में एक मुश्त १००) सौ रुपये से कम में नहीं होगा। ३/४ महीने में इससे अधिक रक़म तुम्हारे हाथ आ जायगी। हम यथासमय तुमको बचा रुपया भेजते रहेंगे। साल भर किताबों की रायल्टी मिलने लायक़ होगी। इस समय रायल्टी वाली कि ाओं के संस्करण समाप्त हैं। लखनऊ आने वाले थे, मगर, काम से फ़ुर्सत नहीं। प्रेस में कापियाँ दे रहे हैं। जाड़ा घटने पर जायँगे। तब हमारी किताबें जो पं० सोमेश्वर नाथ जी वाजपेयी, एम. ए. (मोहन जी) रानीकटरा, लखनऊ, के यहाँ हैं, लेकर अपने पास रख लो। उनमें वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की ग्रंथावली है, छः भागों में। ३ खंड साहित्य के हैं, ३ उपन्यास के। यह किताबें हमको चाहिये। किसी शनिवार को लेकर चले आ सकते हो। हम पं० मसुड़िया दीन चौधरी, घाटिये, के मकान में, किराये पर, रहते हैं। मोतीलाल राजा के क़िले के पास है, जहाँ लड़कियों का विद्यालय लगता है। चौधरी बाबू राजेन्द्रप्रसाद को तुम जानते होगे, कवयित्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा के पति। उनके यहाँ भी हमारी कुछ किताबें हैं उन्नाव में। उनसे कहकर ले लो। वहाँ हमारी बँगला और अँगरेज़ी की डिक्श-

नरियाँ हैं जिनका प्रतिदिन काम पड़ता है। चौधरी साहब के युग मंदिर से हमारी तीन किताबें रायल्टी पर निकली हैं, (१) बिल्लेसुर बकरिहा, (२) कुकुरमुत्ता, (३) अणिमा। पहली दोनो किताबों के संस्करण समाप्त हो चुके हैं। फिर से छापने के लिये हमने मना किया था। सुना है, बकरिहा का संस्करण वे कर रहे हैं। क्या बात है, मालूम करके लिखना। वे कटरा बिजनबेग, चौक, अपनी ससुराल में, डाक्टर साहब के यहाँ, सुना है कि हैं इस समय। उनसे रायल्टी के हिसाब में सौ पचास रुपये ले लो जो वे दें। और सब कुशल है। रुपये नहीं थे, किसानी नहीं चल सकी। तुम्हारे मान की भी नहीं थी। द्विवेदी जी का पत्र यहाँ नहीं आता। अच्छी ही तरह होंगे। हम कलकत्ता जायँगे तो उनसे मिल लेंगे। बाग़ात के बारे में क्या लिखें जब फँसे फँसाये हैं। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला

वहाँ हमारा कुछ हिसाब बाक़ी है। वह हम काम करके कुछ महीनों में चुकायेंगे। इति।

[4]

श्री रामकृष्ण,
दारागञ्ज, इलाहाबाद
८-२-४५

चिरञ्जीव रामकृष्ण,

तुमको ३०) + १५) भेजे थे जिनकी रसीदें आ गईं। पत्र से रुपयों की पहुँच नहीं सूचित हुई। कल १२५) एक सौ पच्चीस रुपये और भेजते हैं। महीने भर बाद ढाई/तीन सौ और देंगे। २५) के क़रीब बिहारीलाल को भी भेजेंगे। बुरा समय है। लखनऊ के बाक़ी हिसाब का चुकता बरसात के प्रारम्भ तक कर देंगे। धीरेधीरे सम्हल जाओगे। आजकल खर्च बहुत लगता है। चिन्ता न करना बहुत, धैर्य से रहना। अञ्जनीकुमार को पढ़ाने के लिये साथ रखना बुरा नहीं, बरसात तक ले आना। हम महीने भर बाद बाहर जाने वाले हैं। अच्छी तरह हैं। इति।

सस्नेह
—"निराला"

[5]

दारागंज, इलाहाबाद
२.४.४५

श्री रामकृष्ण,

आज तुम्हारे खर्च के लिये २५) भेजे। वह रुपया मिल रहा था, लेकिन न

लेना अच्छा जान पड़ा। फिर मिल जायगा। उसका हिसाब उस तरह अच्छा नहीं आ रहा था। शेष कुशल है। छाया का पता हमको नहीं मालूम। उनका कोई पत्र नहीं आता। इन रुपयों से दूध और पिस्ते खाना। रामगोपाल और केशव के समाचार लेना और उनका हाल और पता लिखना। इति।

सस्नेह
सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला

[6]

दारागंज, इलाहाबाद
६.४.४५

चिरंजीव रामकृष्ण,

एक पत्र लिखा था जिसका उत्तर नहीं आया। २५) रु० भेजे थे। उसकी रसीद मिल गई कि रुपये तुमको प्राप्त हो गये। आज ७५) रु० भेजते हैं। एक तोले का टीका बनवा लो। ४००/ का चेक आ गया है। भुनाकर ३००) भेज देंगे एक हफ्ते के अंदर या लेकर आयेंगे। कान की कोई चीज़, गले की और हाथ की बनवा लेनी है। माल खोटा न हो। सोने की परख करा लेना। हाथ का ज़ंजीर-दार एक जेवर होता है, तीन चार तोले तक बन जायगा। टीका के बाद उसको बनाना है। फिर कानों वाला। तुम्हारी मामी के लिए ज़ंजीर गले की अभी अगर न बन सके तो, रहनेदेना फिर रुपये भेजेंगे। पचवासे के लिये. यह ज़ेवर तभी लेकर जाना, जब तुम्हारी अम्मा आ जायँ। टीका और एक साधारण साड़ी एक रोज़ के लिये जाकर दे आना, कृत्य कर लेंगी। कुशल है। इति। अगर अभी महीने-डेढ़ महीने रुकने की इच्छा हो तो रुक जाना, सातवें महीने तक पचवासा चढ़ता है। तब तक पूरा हिसाब हो जायगा।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

[7]

Daragunj, allahabad
23. 5. 45

चिरंजीव रामकृष्ण,

पत्र प्राप्त हुआ। तुम्हारे मामा लड़के की तलाश में इस धूप और लू में निकले। हमने भी एक पत्र एक प्रतिष्ठित मित्र को लिखा है। और भी बातचीत

कर रहे हैं। इतनी जल्दी, ईश्वर जाने, नया संबन्ध कैसे होगा।

आज, भविष्य में होने वाले डाक्टर, अभी रिसर्च स्कालर, लखनऊ यूनिवर्सिटी, पं. त्रिलोकी नारायण दीक्षित से मालूम हुआ, जो पनहन के ज़मींदार हैं और इस समय यहीं बैठे हैं, कि ममरेज़पुर में एक दीक्षित रहते हैं (ममरेज़पुर भी पनहन में लगता है), मज़े में हैं, मगर उनके घर में प्रेतबाधा है, अब कुछ शान्त है, पहले खाना गू हो जाता था, ढेले चलते थे, कटहर के बाबा प्रेतबाधा टालने गये थे, आदि आदि। इनका बड़ा लड़का एन्ट्रेन्स पास करके गुज़र गया, नतीजा भी नहीं सुन पाया।

ये कौन दीक्षित हैं, हम नहीं जानते; पर प्रेतबाधा उस मौज़े के एक परिवार में थी यह हम १५/२० साल पहले गाँव रहते समय सुन चुके थे।

विवाह के लिए हम कुछ नहीं कहते। मगर दूसरे वर की तलाश एक साल तक किये बिना कैसे पूरी हो सकती है? लड़की १४ साल की, जवान भी नहीं कही जा सकती। ऐसी हालत में इस साल का बचा रुपया बैंक में जमाकर देने से अगले साल की कमाई मिला कर अच्छा ब्याह किया जा सकता है। मान लो, कोई घर ऐसा मिले जहाँ 2 या 2।। हज़ार कम से कम खर्च करना पड़े, तो रुपया यह पूरा न होगा, और दो साल का मिलाने पर बनाव [बनाव] बन सकता है। साल भर लड़की पर अच्छी निगरानी रक्खी जाय। आगे जैसा जान पड़े।

यहाँ कुशल है। द्विवेदी जी का संवाद नहीं मिला। रामशङ्कर जी को एक पत्र हमने लिखा है.।

ज्योतिर्विद्‌बन्धुओं को नमस्कार। लड़कों को स्नेह।

इति सस्नेह

सूर्यकान्त त्रिपाठी

[8]

दारागंज, इलाहाबाद

२८. ५. ४५

चिरंजीव,

एक पत्र लिख चुके हैं। किताब के लिए लखनऊ जाना हो तो अच्छे होकर चले जाओ। मगर तन्दुरुस्ती की तरफ़ खयाल रखना। गोकि किताब खो न जाय, कोई झटककर दस्तखत न बनाये, धोखा न दे, यह भी देखना है। यहाँ कुछ सौ रुपये तुम्हारे हैं, बैंक में रख देते हैं। बहुत गर्मी है। यात्रा दुःखद होती है। और कुशल है। बिहार नहीं गये। एक सज्जन आये थे जब हम डलमऊ थे। चार-पाँच सौ रुपये ले आये थे। हम देर से आये। वह दो रोज़ रहकर चले गये। इति।

सस्नेह

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी

[9]

दारागंज, इलाहाबाद
८.७.४५

चिरंजीव रामकृष्ण,

पत्र मिला। ट्यूशन करने की आवश्यकता नहीं। रुपये एक हफ़्ते के अंदर भेज देंगे। मास के अन्त में यहाँ हिसाब चुकाने में हाथ का रुपया खर्च हो गया। अगर महीने दो महीने रुपये न अटें तो बैंक से ख़र्चा निकाल लेना गोकि इसकी नौबत न आने पायेगी। जी लगाकर निश्चिन्त होकर तैयारी करो। कुल काम छोड़ दो जिससे अड़चन हो। यहाँ कुशल है। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी

रुपया तुमको और भी मिल सकता है। चिन्ता न करना।

—नि०

पुनः, कभी मौक़ा मिले तो अरुण जी से बातें करना कि एक उपन्यास तैयार है। ५००) अग्रिम लेंगे। ४) की किताब होगी। अगर लें तो कहें। इति।

—नि०

[10]

दारागंज, प्रयाग
२५.७.४५

चिरंजीव,

पत्र मिले। समाचार मालूम हुए। लड़की हुई अच्छा हुआ। करेंट अकौंट्स् में इसीलिए रुपये हैं कि खर्चे की दिक़्क़त न हो। इतने से पास कर जाओगे। तब तक और देखते हैं। चौधरी को दो पत्र दिये जवाब नहीं आया। कुशल है। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

[11]

दारागंज, इलाहाबाद
२८.७.४५

चिरंजीव,

१००) कल भेजे। जमा कर देना। ३०) तुम्हारे मामा को भेजे। अम्मा और अञ्जनी कल आये। आज अतर्रा जा रहे हैं। महीने भर बाद २५०) भेजेंगे।

१२५) सवा सवा सौ के दो इयरिंग बनवा लेना। एक गोपा के लिए और एक बहू के लिये। तुम्हारे मामा कुछ बीमार हैं, दर्द हुआ है। यहाँ बुलाया है कि रहें, इलाज हो। इति।

सस्नेह
निराला

[12]

दारागंज, इलाहाबाद
३१.७.४५

चिरंजीव,

अच्छा कि तुम फ़ुरसत के समय रहने लायक़ एक अच्छा सस्ता मकान देखते रहो और मिल जानेपर बहू को ले आओ, रहो। परीक्षा भर तुमको चिन्ता नहीं। उससे भोजन पान की सहूलत होगी। खर्चा इतना ही होगा। मकान ठीक करके राशनिंकार्ड तीन आदमियों का ले लो, और कुशल है।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी

[13]

३१.७.४५

चिरंजीव,

पं० सोमेश्वर जी वाजपेयी 'मोहन' एम.ए., रानीकटरा, के यहाँ हमारी किताबें रक्खी हैं, उनको प्रणाम करके ले आना। किताबें काफ़ी हैं। उनमें वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की ग्रन्थावली ६ भागों में है। तीन भागों में उपन्यास ग्रन्थावली, तीन में साहित्य। उपन्यास वाली तीनों भेज दो। किसी बंगाली दोस्त [को] दिखा लेना। एक पत्र आज और [लिखा,] द्विवेदी जी को लिख रहे हैं। मुलाक़ात होय ख़ब्र मिले, लिखना। अम्मा, अञ्जनी और सोनारिन को गाड़ी पर दूसरे दिन दुपहर को बैठाल दिया था। अतर्रा पहुँच गयी होंगी। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी

[14]

दारागंज, इलाहाबाद
३-८-४५

चिरंजीव,

पत्र मिला। ठीक है। अभी घर और किताबों का फेर छोड़ दो। तैयारी किये जाओ। जी काम में लगा रहे। फिर देखा जायगा।

अम्मा सकुशल गईं। उनके पीछे भी ३०) खर्च हुए। ५) और एक्के के किराये में लगे। ३०) रामधनी के नाम भेजे गये वह अलग।

रामशङ्कर जी का खत यहाँ नहीं आता। इन लोगों [को] आगे पीछे रुपये भेजने हैं। कुशल है। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त

चौधरी रुपये देने को तैयार हैं। इति।

सूर्यकान्तत्रिपाठी निराला

पुनः हम मेरठ जा रहे हैं। ७/८ दिन बाद। नि०

[15]

२३.८.४५

चिरंजीव,

लखनऊ आ गये होगे। कल २५) शिवानन्द जी को जन्मपत्री के लिये भेज दिये। कुशल है। समाचार देना। 'काले कारनामे' एक उपन्यास लिख रहे हैं। इति।

सस्नेह निराला

पुनः तुम्हारी सुविधा में कोई कमी है तो लिखना। खर्चा फ़िलहाल कुछ निकाल देना, मगर सूचना देकर। इति।

नि०

[16]

३.९.४५

चिरंजीव,

पत्र मिला। रुपये के संबंध में कह चुके हैं कि १००) तक खर्च समझ से करो, दे देंगे।

कुशल है। द्विवेदी शिवशेखर जी को बुलाया है। यहाँ कुछ दिन रहेंगे।

पानी पहले की तरह यहाँ भी बरसा। इस साल गंगा में पहले वाली बाढ़ नहीं आई।

आशा है, तुम्हारी पढ़ाई और गाना पहले से अच्छी तरह चलता है।

अपने स्वास्थ्य के समाचार देना कि क्या कर रहे हो, कैसे हो। इति।

सस्नेह—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

[17]

२४-९-४५

चिरंजीव,

पत्र मिला। तुम्हारी बीमारी फोड़े आदि के कारण चिन्ता है। द्विवेदी जी इस समय यहीं हैं। खर्च १५/२० दिन बाद सब जगह भेज दिया जायगा, ऐसी आशा है। खर्च की अड़चन भी हो सकती है। आशा है, तुम ढंग की दवा करते हो।

सस्नेह—निराला

विवाह से अब तक हिसाब तुमको मालूम होगा। नि०

[18]

१०.१०.४५

चिरंजीव,

पत्र मिला। द्विवेदी बीस दिन रह कर कल गये। तुम्हारे फोड़े अच्छे हो रहे हैं, खुशी की बात है। गोया, तुम्हारी स्त्री और मामी के, दो-दो साड़ियाँ जल्द भेजनी हैं। रुपया व्यर्थ खर्च न हो, वक़्त पर आ जायगा। काम हो रहा है, बंद था। अपने समाचार इसी तरह समय पर देते रहना। इति। सस्नेह—निराला

[19]

१२.११.४५

चिरंजीव,

रुपये १५०) डेढ़ सौ आज तुम्हारे नाम लखनऊ ५ भूसामंडी, भेज दिये। अगर डलमऊ में हो तो चले जाओ। हम काम में उलझे हैं। कतकी में शायद न पहुँच सकें। सबको यथोचित। इति। सस्नेह—सूर्यकान्त

[20]

२०.११.४५

चिरंजीव,

पत्र आया। ७५)पचत्तर रुपये आज भेजे। जमा कर देना। गोपा की बिदाई की तैयारी कर रहे हैं। अगर तबीयत ठीक रही तो जायँगे, नहीं तो कुछ अरसे से। काम बहुत है। कुछ उदासी रहती है। हिसाब से रहना। कुशल है। अपना स्वास्थ्य ठीक रखने का प्रयत्न बुद्धिमत्ता से करना। इति।

सस्नेह—सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला

[21]

[नवंबर, १९४५]

चिरंजीव,

एक मनीआर्डर ७५) का अभी भेजा है। अभी रसीद नहीं आई। क्या बात है? एक पत्र दलमऊ हमने लिखा है। अवश्य तुम्हारे ये रुपये जमा होंगे। यहाँ गोपा की बिदाई के लिये ईरिङ्ग, साड़ी, स्वेटर, चप्पल, चद्दर, किताबें, मेवा आदि १३६) रु० की खरीद ली हैं। हमारा जाना वहाँ न हो सकेगा। यहाँ कोई आकर सामान ले जाय। तुमको फ़ुरसत हो तो तुम्हीं आ जाना। इति।

सस्नेह—सूर्य्यकान्त

[22]

२०/१२/४५

चिरंजीव रामकृष्ण,

पत्र उत्तर देर से जा रहा है। तुम पास हो गये प्रसन्नता है। आशा है, छठे साल में भरती हो रहे हो। अभी रुपया आया नहीं, आने पर भेज देंगे। कलकत्ता जाना चाहते हैं। सहूलत से घूम आ सको तो घूम आओ। बड़ा खर्चा है और अकारण होगा। रामगोपाल दूर देहात में रहते हैं। तुम्हारी बीमारी अभी पूरी तरह नहीं अच्छी हुई। वहाँ का पानी अच्छा नहीं। गरमियों की छुट्टियों में जाओ तो अच्छा होगा।

सूर्यकान्त

[23]

Daraganj, Allahabad
8.1.46

चिरञ्जीव रामकृष्ण,

पत्र मिला। हाल मालूम हुए। १०) दस रुपये सिर्फ़ छाया के खर्च के लिये भेजे हैं कल। रुपये नहीं अभी। ७५०) मिल रहे थे एक विधि से, लेकिन हमने लिये नहीं। अच्छा है कि यहाँ चले आओ। हमारा काम रुका है, अगर पं. सोमश्वर वाजपेयी जी, रानी कटरा लखनऊ से हमारी किताबों में बंकिम ग्रंथावली मिल जाती तो बड़ा काम होता। मिले तो लेते आओ। ६ भागों में है। उपन्यास वाले तीन भाग अत्यावश्यक हैं।

सस्नेह निराला

[24]

१४.२.४६

चिरंजीव,

पत्र मिला। पढ़ाई छोड़ दो। काम में लगना है। इसलिए, जून तक, जब तक मौक़ा आता है, डलमऊ चले जाओ, रहो। अकारण लखनऊ में खर्च न बढ़ाओ। कुछ रुपया लेते जाओ। समय मिला तो यहाँ बुला लेंगे। नहीं अप्रेल की अखीर तक रुपया मिलेगा, अनाज खरीद कर रख लेना। अन्यथा न हो। स्वरलिपि वहीं से करो। फिर बुला कर समझा देंगे। बहुत व्यस्त हैं। कपड़े भी भेजेंगे। नि०

[25]

दारागंज, इलाहाबाद
२४.२.४६

चिरञ्जीव रामकृष्ण,

तुमने अच्छा किया होगा अगर लखनऊ से चले आये होगे। पत्र के साथ तीस रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजते हैं। साथ या दो-एक दिन बाद मिल जायँगे। पोस्ट-मास्टर से बातचीत करके डाकखाने वाली किताब मगा लो अगर अभी नहीं मगाई और रुपये जमा कर दो। कुछ दिन बाद और भेजेंगे। अप्रैल में एक रकम।

यहाँ देहात से मगाया छोटी दो टिन, प्रायः दस सेर, घी रक्खा है। रुपये मिलने पर जल्द आकर ले जाओ। डेढ़-दो महीने तुम्हारे और बच्चों के खर्च में चलेगा। कपड़े, बासन, क़ालीन, पलंग, गहने आदि का प्रबन्ध यथाशीघ्र करेंगे।

जमकर छः महीने काम करो। गीतों की स्वरलिपि। ग़ज़लों की अगले साल करना।

लड़कों को हिन्दी पढ़ाते रहो ताकि अज्जनी को अगले साल प्रथमा का कोर्स सम्मेलन वाला दिया जा सके। चहरुम तक का गणित पढ़ाना आवश्यक है। गाना भी सिखाते जाना। फिर बुला भी लिये जा सकते हो तुम सब लोग।

अवश्य अवश्य अपनी नानी को लिख दो कि अच्छी भैंस एक खेदा दें या जाकर ले आओ काली चरण को लेकर : दाम हम चुका देंगे। घर में बहुत लड़के हैं। दूध की कमी है। यह इन्तज़ाम करके भूसा खरीद लेना। फिर अनाज।

कुशल है। 'बेला' निकल गई। कई और निकलने वाली हैं जल्द, आजकल में। 'बेला' आने पर तुमको मिलेगी। आशा है, सारा घर प्रसन्न है। इति।

सस्नेह

सूर्यकान्त त्रिपाठी

[26]

Daraganj, Allahabad

२४-२-४६

चिरंजीव,

डलमऊ रुपये भेजे गये। सविवरण पत्र गया। न गये हो तो रवाने हो जाओ। इति।

सस्नेह निराला

[27]

दारागंज इलाहाबाद

२७. ३. ४६

चिरंजीव,

दोनों रसीदें होली बाद वाली मिलीं। प्राप्ति सूचित हुई। हम प्रसन्न हैं। एक हफ्ते में या कुछ बाद उन्नाव लखनऊ जायँगे। पुरवा हम नहीं पहुँचे।

यहाँ साल भर की, समालोचना के लिये आईं, हिन्दी की, २०० दो सौ रुपयों तक की सौ-पचत्तर किताबें हैं। २५ गीतों की स्वर लिपि बना कर ले आना और ले जाना ये किताबें। रुपये भी मुमकिन बीच में कुछ पहुँच जायँ। लड़कों को स्नेह। इति।

सस्नेह

सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला

[28]

३१. ३. ४६

चिरंजीव,

कल 'नये पत्ते' की एक प्रति और कुछ अखबार भेज दिये। 'चोटी की पकड़' उपन्यास निकल गया है। फिर भेज देंगे। ८/१० रोज़ बाद या १५ अप्रेल तक एक दफ़े लखनऊ जाने का इरादा है, काम है। तभी या कुछ बाद बाग़ के रुपये जमा करेंगे। कुशल है। तुम्हारे लिये यहाँ और उन्नाव में कुछ कपड़े ५०)/६०) के लेने को कह रक्खा है। अप्रेल तक एक दफ़े यहाँ आ जाना अगर कोई अड़चन न हो। जूते भी ले लिये जायँगे। सस्नेह—निराला—

पुन: कौन कौन गीत तुमने चुने, उनकी तालिका भेजो। कोई खास बात हो तो लिखो। अपना काम चारुता से करते रहो। कल से हमारी वसन्त की मेज़ लगेगी, काम होगा। अख़ीर मई से, जून-जुलाई, दो महीने आराम करेंगे। बच्चों को स्नेह। इति।

सस्नेह नि०

[29]

१. ४. ४६

चिरंजीव,

रामधनी की साली का केशव से अगर ब्याह करें तो पूछ करके सलाह करके लिखने को कहो, लिखो। इति।

सस्नेह

सूर्यकान्त त्रिपाठी

पुन: 'नये पत्ते' के साथ पत्र भेजे। पहुँच लिखो। उनके गीतों की पहली पंक्ति जो चुनो और जो लिखो।

नि०—

तुमको 'चोटी की पकड़' की पांडुलिपि देंगे। रक्खे रहना। कुछ दिनों में वह अधिक दामों में बिकेगी। हमारे पत्र न खोना—निराला

[30]

२२.४.४६

चिरंजीव,

पत्र मिला था। घी लिया रक्खा है। महीने के अख़ीर में आकर ले जाओ।

हमारा शरीर अस्वस्थ था। काम बंद था। अब चालू होने वाला है। उन्नाव जाने वाले थे। नहीं जा सके। फिर जायँगे। यहाँ भी कपड़े खरीद रक्खे हैं। बिहारीलाल को अभी बीस रुपये भेज दिये। 'चोटी की पकड़' निकल गई। बाक़ी समाचार मिलने पर। कुशल की कामना है। इति।

सस्नेह सूर्यकान्त त्रिपाठी

[31]

१.५.४६

चिरंजीव,

पत्र मिला। अस्वस्थ हो, अच्छे हो लो। अम्मा अनाज ला सकती हैं, अभी रुक जाओ। हम भी अस्वस्थ थे। अब अच्छे हैं। काम रुका था। कर रहे हैं। फिर रुपया भेजेंगे। घी रक्खा है। तुम्हारा तो चुक गया होगा? उत्तर देना। फिर किताबें और पत्र भेज देंगे। इति। सस्नेह

सूर्य्यकान्त त्रिपाठी

[32]

८. ५. ४६

चिरंजीव,

पत्र मिला। आज ७०/ की किताबें राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी, को दी गईं। तुम आते तो ले जाते। बाक़ी भी दो/एक दिन में वहीं चली जायँगी, वचन दे दिया है। घी भी दूसरी जगह दे दिया गया। कुशल है।

सस्नेह--निराला

[33]

Daraganj, Allahabad

[१९४६]

चिरंजीव,

पत्र हस्तगत हुआ। समाचार विदित हुए। मेरा स्वास्थ्य इधर फिर बिगड़ा था। काम बंद था। अब गरमी पड़ने लगी। मगर काम से फ़ुरसत नहीं, करना ही है। इसलिये उन्नाव का प्रोग्राम फिर कैन्सिल् करते हैं। चौधरी आये थे। बरसात

में जायँगे। बिहारीलाल के पत्र से समाचार सूचित हुए। आम रखा लिये गये हैं। श्रीमती गोपादेवी की विदाई का समाचार मिला। कपड़े १५ दिन बाद अच्छे होकर पहले से लिखकर आकर ले जाना। रुपये कुछ मिलने वाले हैं। मिले तो हाथ खर्च भेज देंगे मगर खर्च बहुत समझदारी से करना। अकाल पड़ रहा है। भयङ्करता बचानी है। अपने मामा के समाचार लिखना। पानी गिरने पर रुपये भेजेंगे। इति।

सस्नेह—निराला

[34]

१४.५.४६

चिरंजीव,

कल एक पत्र लिखा है। मिला होगा। रुपये ५०) तुमको आज भेज देते, मगर २०) छाया का खर्च भेजते हैं, बाकी रख देते हैं, कपड़े ले लेंगे ५०)/६०) तक के; फिर तुम्हारे आने पर जूते खरीदेंगे; रुपये भी आने से पहले १००) तक भेजने की कोशिश करेंगे। समता के पैर की नाप ले आना। कुशल है। इति।

सस्नेह—सू० का० निराला

इस घर का वह हिस्सा जिसमें रहते थे छोड़ दिया, अगले के दोमंज़िले पर रहते हैं, गर्मियों के लिये एक मंज़िले में दो कमरे रक्खे हैं। इति। नि०—

[35]

Yugmandir
(Unao)
12.6.47

चिरञ्जीव,

आज १७५) एक सौ पचत्तर रुपये मनीआर्डर से भेजे। आशा है, पत्र के साथ रथयात्रा से पहले ही मिल जायँगे। अधिक रुपयों की अभी गुज्जाइश नहीं। केशव और सुखरानी बहिन का छोटा लड़का इन्दामऊ-वाला आये थे। विवाह साधारण रूप से करने के लिए हमने उनसे कहा है। हम अपना हिसाब साल भर बाद देंगे। यह कह देना। वहाँ के तुम लोग जानते हो। विवाह के समय हो सके। अब काम शुरू करने वाले हैं पानी बरसने पर। कुशल है। तुमने इधर क्या काम किया ? न किया हो तो बरसात भर में कर डालो। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

[36]

Dara Ganj
Allahabad
11.8.47

चिरंजीव रामकृष्ण,

रुपये २११) दो सौ ग्यारह तुम्हारे पास पहुँच गये होंगे। चिरंजीव कालीचरण और बिटिया के पास भी कुछ कुछ रुपये भेज दिये जो मज़े के ख़र्च मे [में] होंगे। यहाँ २००) दो सौ रुपये का भुगतान किया। अब निश्चन्त होकर इसी मकान में हैं। नये ख़रीदे बँगले में चले गये होते मगर रुपये चुकाने थे, इसलिए रुके रहे। अभी यहीं रहेंगे। कई मनीआर्डर छोटे छोटे यहाँ से लौटे। एक अभी लौटा है उन्नाव को। तुम्हारे लिए जूट का एक क़ालीन ख़रीदा है ख़ुशनुमा। अपने लिये सूती खेस तक़िया आदि आदि। अभी जिन्सें सवाँचीं नहीं। एक मित्र के साथ ५ दिन रहकर यहाँ आये। कुशल है। इति।

सस्नेह
सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

मनीआर्डर हमारे नाम का वहाँ
जाय तो यहाँ भेज दो नि०

[37]

दारागंज
इलाहाबाद
२८-१२-५२

शुभाशिष :,

बड़े दिनों की छुट्टियों में इन्तज़ार था कि तुम आवोगे। आज २८ दिसम्बर है। अभी तक नहीं आए। मुमकिन हाथ तंग हो। सरकार ने इस आमदनी से तुम्हारी मदद नहीं की अर्थात् उसकी हस्ती नहीं, हम समझे। बाकी बिना पूरी समझ के काम नहीं होता, न होगा। इधर छाया के लिए एक १०५) की साड़ी ख़रीदी है। उसके साथ आके ले जाना। ख़र्चा आगे पीछे दिया जा सकता है। कुछ तुम्हारी भी हिसाब-किताब हो जायगा। दूसरे बच्चों को भी कपड़े ख़रीदे जायगे [जायँगे।]

सस्नेह
निराला

पूज्य भइया—

निरालाजी उत्सुक हैं कि तुम प्रयाग आवो। एक पत्र केशव को भी लिखवाया है। शेष सानन्द है। आने से मत चूकियेगा।

आपका
शिवगोपाल मिश्र
२१—शहरारा बाग
इलाहाबाद

[38]

Dara Ganj
Allahabad
10.4.53

चिरञ्जीव,

तुम्हारे कुल पत्र मिलते गये। सब तुमने ठीक लिखा है। मिलने पर फिर सारा हाल समझाने की कोशिश करेंगे। आधा उनका, आधा तुम्हारा। मगर सरकार कहाँ ? छाया का पत्र मिला। कुल कुशल है।

सस्नेह
सूर्य्यकान्त

[39]

Dara Ganj,
Allahabad
20.4.53

चिरञ्जीव,

तुम्हारा पत्र मिला। हालात मालूम हुए। इधर २५) रुपये पच्चीस विहारीलाल को भेज दिये। तुमको खर्च की आवश्यकता हो तो पं. वाचस्पति पाठक, लीडर प्रेस, इलाहाबाद को लिखकर ४०)/४५) चालीस पैंतालीस रुपये तार से मगा लो, हमने तुम्हारे लिये जमाकर रक्खें हैं ऊपर से। हिसाब से जो कुछ तत्काल आने पर हजार पाँच सौ मिल जाय। रेशमी कुर्ते कुर्ते बना लो, फ्लेक्स बूट खरीद लो, इसी उद्देश से हैं। रामशङ्कर जी ने छाया के खर्च के लिए

लिखा है। उनको अर्थ सङ्कट रहता है। तुम समझदार हो [।] ज़्यादा क्या लिखें, समझ से चलना। हमारी यही मुक्ति है कि कोई सँभल न पाये जो हमारे।

सस्नेह
निराला

[40]

Daraganj
Allahabad
28.1.54

चिरञ्जीव,

तुम्हारे पत्र मिले [।] सबसे आवश्यक सामाचार यही था कि हम तुमको अथारिटी लेटर दें तो वे और तुम रुपये का प्रबन्ध करो। ऐसे पत्र ये इतने हुए। बाक़ी रजिस्ट्री आदि की बातें, सो तुम ग़ैर नहीं, लड़के—पुत्र हो, जिनसे रजिस्ट्री खुद रहेगी, नहीं तो हज़ार हाथ पानी में हैं। और और सरकारी बातें बेकार हैं जहाँ जवाहरलाल की अँगरेज़ी नहीं साबित हो रहीं या ऐसे ही इशारों में है। कुशल है। यहाँ मेले की इन लोगों के यहाँ भीड़ है। इति। [।] बच्चों को स्नेह।

सस्नेह
—निराला

विनोदशंकर व्यास के नाम

[1]

उन्नाव, जेठ बदी 8 [1927 ई.]

प्रिय विनोदजी,

पत्र आपका मिला। मुझे विश्वास नहीं था कि आप बनारस में होंगे। एक पत्र बाबू साहब (प्रसादजी) को, एक वाचस्पतिजी को, एक शान्तिप्रिय को—इस तरह से आपके पत्र के बाद तीन पत्र और भेजे। मेरे रोग की दशा वैसी ही है। परन्तु इधर एक डाक्टर की दवा करने लगा हूँ। कल से। आशा है इससे कुछ फायदा हो। आज ससुराल से भी आदमी ले जाने के लिए आया है। लेकिन वहाँ न

जाऊँगा। अब देखिए, इस जेठ भर क्या क्या दुर्दशा होती है! बाबू साहब (प्रसादजी) को प्रेम व उग्र को इति।

आपका—निराला

[2]

लखनऊ, 8. 3. 28

डियर व्यासजी,

आपका कार्ड मिला। उसी दिन मैं घर से बाहर निकला हूँ। यहाँ से कानपुर, फिर बाँदा होकर घर लौटूंगा। दस-पंद्रह दिन लगेंगे। मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा है। इस समय चित्त कुछ चंचल रहता है। यही कारण है कि गाँव के पते पर आपको पत्र न लिख सका। और इस बार भी समालोचना न भेज सका। ललित का चरित्र मुझे पसंद है, पर अब भी आपकी रचना के मुकाबले में यह पुस्तक बाल्य रचना ही है।

आपका—निराला

[3]

उन्नाव, 18. 4. 28

प्रिय विनोद जी,

आपका पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। 'अशांत' में एक बात जो मार्के की है, वह ललित और दुलारी का चरित्र। करुणा ओतप्रोत है। पाठक के हृदय पर गहरा बोझ पड़ता है। जान पड़ता है, यह चोट खाए हुए हृदय के टूटे-फूटे टुकड़ों का संग्रह पेश किया गया है। सब चरित्रों में एक ही स्वर है। इसकी मनोवैज्ञानिक बातें मुझे बहुत पसंद हैं।

अपने समाचार दीजिएगा।

आपका— निराला

['सारिका' में इस पत्र के साथ जो तिथि छपी है, उसमें हमारे अनुसार '28' की जगह '18' होना चाहिए। 28. 4. 28 का श्री व्यास को लिखा गया निराला का पत्र 'निराला की साहित्य साधना' के तीसरे खण्ड में संकलित है।]

[4]

रँगीला।
हास्य-रस-प्रधान साप्ताहिक।

57, बाँसतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता 23.5.1932

प्रिय विनोदजी,

रँगीला के संबंध में उपाधि से अब तक मैं मुक्त रहा। पर मित्रों के दुराग्रह को असफलता तक देखने के लिए कलकत्ता आना ही पड़ा। आप शीघ्र कुछ भेजिए। इति।

आपका
निराला

०००

परिशिष्ट

रचनावली का सम्पादन और मुद्रण-कार्य प्रायः समाप्त हो जाने के बाद हमें निराला-साहित्य-सम्बन्धी निम्नलिखित सूचनाएँ और सामग्री प्राप्त हुई है :

1. 'समन्वय' (मासिक, कलकत्ता) में कभी-कभी संवत् बदल जाने पर भी पिछला ही संवत् छपता रहता था। उसके वर्ष 8 के अंक 4 में सौर वैशाख के साथ 'संवत् 1985' गलत छपा है। उसकी जगह 'संवत् 1986' होना चाहिए। ऐसी स्थिति में 'समन्वय' में निराला की कविता 'प्रभाती' का सही प्रकाशन-काल होगा अप्रैल-मई, 1929, न कि अप्रैल-मई, 1928। यह कविता उससे पहले 'महारथी' (मासिक, दिल्ली) में निकल चुकी थी, उसके मार्च, 1929 के अंक में। (खण्ड 1)

2. **रचनावली** के खण्ड एक के परिशिष्ट में हमने निराला का अवधी में रचित एक गीत दिया है—'किहि तन पिय-मन धारों ? री कहु'। यह गीत उनके उपन्यास **प्रभावती** में आया है। इसे निरालाकृत मानने का आधार यह है कि इसे उन्होंने 'सुधा' (मासिक, लखनऊ) के नवम्बर, 1935 के अंक में अपने नाम से छपाया था। उक्त उपन्यास में ही अवधी में रचित एक और गीत मिलता है—'दुख के दिन नयन नवाय रहौं'। निराला ने इसे कहीं स्वरचित नहीं कहा, लेकिन आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री इसे निराला की ही रचना मानते हैं। ('बेला', मुजफ्फरपुर, दिसम्बर, 1981) हम **प्रभावती** के प्रथम संस्करण से यह गीत यहाँ दे रहे हैं :

दुख के दिन नयन नवाय रहौं।
बेमन मन को समुझाय रहौं॥
को जानति, जागति पीर कौन,
सखि, इहि समीर में बहति मौन,
राजा की कन्या रहति भौन
दासी बनि, गुनि गुन, दुसह सहौं॥
बीते बहु दिन जब लागि अगिनि,
धनि, जागि बनी जीवन-जोगिनि,
री रहति तहूँ पिय-धन सो गिनि,
तिय-तन निसिदिन तिन तोरि दहौं॥ (खण्ड 1)

3. हमें मालूम हुआ था कि बिहार के एक सज्जन के पास निराला की राजेन्द्र बाबू के प्रति लिखी गयी एक अप्रकाशित / असंकलित कविता, उन्हीं की हस्तलिपि में, सुरक्षित है। हमने उनसे वह कविता भेज देने का आग्रह किया। उन्होंने पत्र का भी उत्तर नहीं दिया। बाद में वह कविता हमें मुद्रित रूप में 'बेला' (16-17) में दिखलायी पड़ी। आभारसहित वह कविता हम वहाँ से लेकर यहाँ दे रहे हैं :

देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसाद के प्रति

उगे प्रथम अनुपम जीवन के
सुमन-सदृश पल्लव-कृश जन के।
गंध - भार वन - हार हृदय के
सार सुकृत बिहार के नय के।

भारत के अविरत कर्मी हे!
जन - गण-तन - मन-धन - धर्मी हे!
सृति से संस्कृति के पावनतम,
तरी मुक्ति की तरी मनोरम।

तरणि वन्य अरणि के, तरुण के
अरुण, दिव्य कल्प - तरु वरुण के।
संबल दुर्बल के, दल के बल,
नति की प्रतिमा के नयनोत्पल।

मरण के चरण - चारण! अविरत
जीवन से मन से मैं हूँ नत।

युगमन्दिर, उन्नाव (युक्तप्रान्त)
14-6-42

(खण्ड 2)

4. निराला की 'सखी' शीर्षक कहानी 'सुधा' (अर्धमासिक, लखनऊ) के 16 नवम्बर, 1933 के अंक में छद्मनाम से प्रकाशित हुई थी। इस कहानी की लेखिका थीं—'कुमारी विद्यावती एम्. ए. (फाइनल)'।

(खण्ड 4)

5. **रचनावली** के खण्ड 6 में हमने 'व्यंग्य-विनोद' शीर्षक निराला की एक टिप्पणी दी है। इधर हमें 'सुधा' (मार्च, 1928) में वैसी ही एक और टिप्पणी मिली है। यह टिप्पणी भी छद्मनाम से ही निकली थी। इसके लेखक थे 'श्री विनोदलाल गुप्त'। यह निराला ही थे, इसका संकेत श्री रूपनारायण पाण्डेय ('सुधा'-सम्पादक) के एक पत्र से मिलता है, जो उन्होंने उन्हें 8 फरवरी, 1928 को लिखा था। उसमें उन्होंने उनसे कहा था : "आपकी 3 रचनाएँ मिलीं। एक कविता भी। एक रचना मैं जयशंकरजी से ले आया था। ये सब क्रमशः छपेंगी। **व्यंग्य-विनोद इसी संख्या में जा रहा है**। पत्रिका आपकी है। हम लोग आपके हैं। मैं भी हूँ। आशा है, इसी तरह कृपा बनाये रक्खेंगे।" [**निराला की साहित्य-साधना (3)**] फरवरी का अंक उस समय तक निकल गया होगा, या छप रहा होगा। पाण्डेयजी की सूचना के अनुसार 'सुधा' के 'व्यंग्य-विनोद' स्तम्भ में उनकी टिप्पणी अगले अंक यानी मार्च के अंक में निकली। यह टिप्पणी निरालाकृत ही है, इसका एक प्रमाण और है। वह यह कि इसमें आचार्य शिवपूजन सहाय के विवाह को लेकर विनोद किया गया है और 15 दिसम्बर, 1927 को निराला एक पत्र में उन्हें लिखते हैं कि "आपकी नयी बीबी वाली कविता अच्छी रही। विवाह में निमन्त्रण होगा जहाँ तक आशा है। मैं तैयार हूँ। अबके साहित्यिक बरात ले चलिए। दो महीने की तनख्वाह न सही। फिर कुछ दिन **अखबारी दुनिया में विवाह का रंग रहे**।" (उपर्युक्त)

नीचे वह टिप्पणी उद्धृत की जा रही है :

(1) होली का रंग

अबके बाबू शिवपूजन सहाय का साहित्यिक विवाह होनेवाला है। वह अपनी भविष्य पत्नी की परीक्षा ले चुके हैं। बिहारी-सतसई में उन्हें प्रवीण और उत्तीर्ण पाया। पत्र से मालूम हुआ, उनकी भविष्य पत्नी अपने भावी पति की आज्ञा से इस समय विद्यापति-पदावली का अध्ययन कर रही हैं।

... ...

बाबू शिवपूजन सहाय ने 'निराला'जी के पास 'सहिबाला' होने का निमन्त्रण-पत्र भेजा था। उन्होंने 'सहिबाला' होना स्वीकार कर लिया है। वर-पक्ष से कोषाध्यक्ष हैं बाबू जयशंकर 'प्रसाद' और कर्ता हैं पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र। पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल, पण्डित रामशंकर त्रिपाठी, पण्डित विनोदशंकर व्यास, पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र 'श्याम' आदि ने वर-यात्री होना स्वीकार कर लिया है।

... ...

कन्या-पक्ष से तिलक लेकर आवेंगे 'बालक' के सम्पादक पण्डित रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी' और पण्डित मोहनलाल महतो 'वियोगी'। कन्या-पक्ष का कर्तव्य

पराड़करजी ने ग्रहण कर लिया है।

... ...

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी लिखते हैं—यद्यपि स्टेट की मैनेजरी से हमें फुर्सत नहीं मिलती, तथापि भरसक कोशिश करेंगे कि आपकी महफिल वीरान न हो। इस कृपा के लिए उनके पास बधाई का पत्र जा चुका है।

... ...

अबके साहित्य पर मंगलाप्रसाद-पारितोषिक उग्रजी को मिलेगा; क्योंकि काव्य-सांख्य-व्याकरण-तीर्थ प्रोफेसर सकलनारायण शर्मा ने लिखा है, मंगलाप्रसाद-पारितोषिक के निर्णायक उग्रजी की पुस्तकें पढ़ लें। पण्डितजी की सलाह से निर्णायकों ने तीन-तीन प्रतियाँ प्रति पुस्तक की खरीद ली हैं।

... ...

श्रीयुत जी. पी. श्रीवास्तव पण्डित कृष्णकान्त मालवीय को लिखते हैं—'सोहागरात' लिखकर आपने स्त्रियों का बहुत बड़ा उपकार किया, बेचारी पुरुषों की सतायी हुई थीं; पुरुषों को वशीभूत करने के उपाय बतलाकर आपने उनकी आँखें खोल दीं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, अब हम बेचारे पुरुषों के लिए भी कृपा कर कोई ऐसी ही उपयोगी पुस्तक आप लिख दें, जिससे हमें भी स्त्रियों को वशीभूत करने के कुछ उपाय मालूम हो जायँ। मेरा तो इससे बहुत ही बड़ा उपकार हो। मैं किसी तरह भी अपनी बीबी की नाड़ी नहीं परख पाता। आपको आर्थिक लाभ 'सोहागरात' से इसमें अधिक ही होगा; क्योंकि रुपये मर्दों ही के पास रहते हैं, और संख्या में वे पढ़े-लिखे भी स्त्रियों से ज्यादा हैं। बात पण्डित कृष्णकान्त मालवीय के दिल में बैठ गयी है।

... ...

युनिवर्सल् ब्रदर-हुड (Universal Brother-hood) की जगह आगामी चैत्र से पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त युनिवर्सल् सिस्टर-हुड (Universal Sister-hood) का प्रचार करेंगे। बख्शीजी ने समर्थन करना स्वीकार कर लिया है। आगामी चैत्र की शुक्ला त्रयोदशी को अखिल भारतवर्षीय महिला-परिषद् में इन दोनों महानुभावों के व्याख्यान होंगे। कानपुर से 'नवीन'जी भी जानेवाले हैं। (खण्ड 6)

6. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अट्ठाईसवाँ अधिवेशन काशी में सम्पन्न हुआ था। उसमें 17 अक्तूबर, 1939 को साहित्य-परिषद के सभापति-पद से निराला ने एक भाषण दिया था। वह भाषण हमें अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद के स्वामी श्री विनोदकुमार शुक्ल के सहयोग से साहित्य-सम्मेलन की फाइल से प्राप्त हुआ है। वह यह है :

देवियो और सज्जनो,

उस्ताद केदारा सिखा रहे थे, कहा, यह शेर की चाल चलता है—'स' से 'म' में, फिर 'प' से दूसरे 'स' पर। मुझे शार्दूल-विक्रीड़ित याद आया। हिन्दी-साहित्य

इसी चाल से चला है; एक साथ दो-दो पर्दे पार करता हुआ। पहली छलाँग भरी, तब भाषा की लड़ाई थी; दूसरी भरी, तब साहित्य की। अब उसके राग का रूप तैयार हो गया है।

जो कुछ भी नजर आता है वह जमीन और आसमान की गोद में उतना सुन्दर नहीं, जितना नजर में है। वह उतनी साफ नजर है जो जितना दूसरों की नजर से मिलती है।

हिन्दी ने जब से भाषा का सवाल हल किया—खिचड़ी शली की विजय हुई, तब से आज तक हिन्दी, भाषा और भावों की उदारता में, बढ़ती गयी है। आज वह साहित्य के विचार से रूढ़ियों से बहुत आगे है। विश्व-साहित्य में दी जानेवाली रचनाएँ उसमें हैं। उसके साहित्यिकों के नामों के साथ मिल्टन, ह्यूगो, रवीन्द्रनाथ, ब्रौनिङ्ग, शेली, कीट्स, वर्डस्वर्थ, हार्डी, टालसटाय आदि अनेक नाम लिये गये हैं। मैं यह कह सकता हूँ कि उसके पद्य-साहित्य में ऐसी-ऐसी रचनाएँ हैं जैसी समृद्ध साहित्यों में ही मिल सकती हैं, जो साहित्य किसी तरह भी आज की दृष्टि से रिक्त न होगा। उसके साथ उसका सम्पूर्ण ब्रजभाषा-साहित्य मिलने पर काव्य में वह भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति सावित होगी। यों बँगला के आधुनिक पद्य-साहित्य के जोड़ की उसके गद्य का विकास भी आश्चर्य में डालता है। अभी बँगला और मराठी का गद्य उससे तगड़ा है; लेकिन आधुनिकता में, चुभते व्यंग्य में, आलंकारिक ढंग के साथ-साथ भाव की पूरी अदायगी में यानी कला में, कहीं-कहीं वह आगे जायगी। पद्य के बाद हिन्दी का कहानी-साहित्य है, फिर उपन्यास। नाटक, एकाङ्की नाटक, व्यंग्य, समालोचना, जीवनचरित्र, समाजवाद, इतिहास, दर्शन, भूगोल, विज्ञान, पत्र-पत्रिका, अनुवाद आदि अल्प विस्तर हैं। अभिनय में बंगाल और महाराष्ट्र हम से बहुत आगे हैं। हमारे यहाँ स्थायी रंगमंच का अभाव बहुत खटकता है। कलकत्ते की पारसी कम्पनियाँ साहित्य के लिए कुछ नहीं ठहरीं। टाकी में हिन्दी आगे है, लेकिन डायरेक्टर बंगाली कला की दृष्टि से अच्छे हैं; अभिनेताओं में सहगल; अभिनेत्रियों में काननबाला, देविका रानी, शान्ता आप्टे। संगीत की प्राचीन पद्धति में मराठे और कुछ मुसलमान; नयी रीति में बंगाली। नृत्य में लखनऊ और दक्षिण भारत। चित्रकला में बंगाल। हमारे यहाँ उस्ताद रामप्रसाद मुग़ल क़लम के अन्तिम चित्रकार हैं और सुप्रसिद्ध, विजयवर्गीय नये ढंग के अच्छे हैं; रामेश्वर जीते होते तो बहुत कुछ अभाव मिट गया होता।

हम जब एक बार अपने प्राचीन साहित्य की ओर, और तदनुकूल बँधे हुए—आज भी समाज में प्रचलित होली, धमार, चैती, सावन, मलार, कजली, बारहमासी और अहीर-गड़रिया, कुम्हार-धोबियों के अलग-अलग बिरहों की ओर ध्यान देते हैं, ब्याह-जनेऊ के गीत, सोहर, और देवी की लचारियाँ आदि गाते स्त्रियों को सुनते हैं, हरछठ करवा आदि पूजते, चित्रकारी करते देखते हैं, साथ ही नवीन युग की बातें सोचते हैं—साहित्य मिलाते हैं—साथ चलने के लिए सोचते हैं, धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य भाषावाली अड़चन-कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उस समय

एक साहित्यिक की—खासतौर से हिन्दी-साहित्यिक की एक राजनीतिक से कम उद्वेगशील अवस्था नहीं होती।

किसी साहित्य की नकल पर कोई साहित्य तैयार नहीं होता। उसमें अपनी शक्ति होनी चाहिए, मौलिकता होनी चाहिए, अपने प्रकाश से दिखता हुआ रास्ता होना चाहिए, 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' को वह सत्य साबित करता हुआ हो। हिन्दी के प्रतिभाशाली साहित्यिक उन्हीं समाजों के हैं जो शंकर तथा उनके बाद के धर्माचार्यों से दीक्षित हैं। इन साहित्यिकों का कोई नवीन धर्म-संस्कार नहीं हुआ, उन्हीं पुराने समाजों के अन्तर्गत रहते हुए इन्होंने कुल समाजों की एक परिणति-वाला रास्ता, सच्चे दर्शन ज्ञान से, दिव्य-चक्षुओं से देखते हुए, लेख और कविता आदि से साबित करते हुए, पूर्वानुसरण को नवानुवर्तन रूप दिया। उन्होंने लिखा, प्रकृति जिस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के समाज-पिण्ड जोड़ती है, उसी तरह तोड़ती है। पराधीनता ही वर्ण-व्यवस्था की अक्षमता का प्रमाण है। सात सौ साल की गुलामी ने उन पिण्डों को और अच्छी तरह जर्जर कर दिया है। अब वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नहीं हैं, अब शूद्र हैं, सबके बराबर अधिकार। उन्नति तभी तक रुकी हुई है, जब तक लोग मानते नहीं। जब यह लिखा गया था, कौमी बँटवारा न हुआ था। चमार बराबरी पर न बैठते थे।

आधुनिक साहित्यिकों ने शब्दों के दर्शन पर विचार करते हुए देखा, ॐ कुल अक्षरों का एकीकृत रूप वैज्ञानिक युक्ति से समझाया गया है। यह ॐ यहाँ के सभी सम्प्रदायों से गृहीत है। इस ॐ का विन्दु में पर्यवसान होता है। यह विन्दु पूर्ण—सर्व है। इस विन्दु से ही अक्षर—स्वर और व्यञ्जन बने हैं। अक्षरों से शब्द, शब्दों से वाक्य, वाक्यों से भिन्न-भिन्न विषयों के पूर्ण रूप। जिस तरह सृष्टि को सदोष कहा है, उसी तरह शब्दों के मेल भी सदोष हैं, क्योंकि विन्दु से उतरने की आवश्यकता ही दोषकर सिद्ध होती है। सृष्ट मनुष्य जिस तरह सत्कर्मों या साधना विशेष द्वारा मुक्त होता है, उसी तरह लिखित वाक्य-बन्ध भी ऊँचे और विशद अर्थ में परिणति पाते हुए। यही भाषा-साहित्य की मुक्ति है। ऐसी मुक्ति के भिन्न-भिन्न उपायों से—जो शास्त्रान्तर्गत हैं—आधुनिक साहित्यकारों ने अनेक निदर्शन दिये—रचनाएँ दीं।

मैं सीधी तरह कहूँगा। समस्त खण्ड आकाश लिये हुए हैं, समस्त खण्ड आकाश से छुटे भी जुड़े हैं। बिना आकाश के आप एक कण का अस्तित्व नहीं साबित कर सकते। कण को देखने के लिए आकाश की आवश्यकता है, इसी तरह आकाश के देखने—समझने के लिए कण की आवश्यकता है। कण न हो—पृथ्वी न हो—सूर्य न हो यानी जो कुछ भी सीमित देख पड़ता है वह न हो तो आकाश भी न होगा। सीमित वस्तु की सार्थकता तभी है जब उसके साथ एक असीम है। बिना असीम के रहे कोई सीमा नहीं रह सकती। जो लोग "अनन्त की ओर दौड़नेवाले" कहकर आधुनिक साहित्य का मजाक उड़ाते थे, उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना अनन्त की ओर बढ़े वे रोटी का टुकड़ा भी नहीं पकड़ सकते। उन्हीं जैसे आदमियों से,

वहुत पहले, "अक्ल वड़ी या भैंस ?" पूछा गया है। आधुनिक साहित्यकारों ने इन वीरों से बराबर भैंस की पूँछ छोड़ देने के लिए कहा है और अनेकानेक कलात्मक ढंग से।

उनकी वे वातें, वीरों की—देश के दीवानों की समझ में नहीं आयीं, लेकिन "हिन्दी राष्ट्र-भाषा है," यह वीरों ने समझ लिया, क्योंकि वह छायावाद नहीं—बिल्कुल प्रकाशवाद था, अव वे छायावादी पूछते हैं, "आपकी वह राष्ट्रभाषा कहाँ है?—अब उसका क्या स्वरूप है?—मद्रास में सम्मेलन के जरिये जिस भाषा का प्रचार किया कराया गया था, वह कौन भाषा थी? क्यों प्रचार किया गया—? —क्या उस भाषा के उच्च साहित्य के अध्ययन से मद्रासियों को धन्य करने के विचार से?" अब छायावाद कौन-सा मालूम देता है?

हिन्दी की 'खिचड़ी शैली' में अरबी, फारसी के शब्दों के लिए काफी जगह रक्खी गयी थी, प्रायः कुछ मुहाविरे आते हैं, संस्कृत के शब्द भी हैं। संस्कृत के शब्द भाषा की उन्नति के साथ संगत कारणों से आये और आते हैं। हिन्दीवाले जब अपना घर सँभालेंगे तब वैदिक-संस्कृत, पाली-प्राकृत की ओर ही जायँगे। अंग्रेजी, फारसी, अरबी, बंगला या अपर प्रान्तीय भाषा के आवश्यक शब्द वे लेते हैं, लेने के लिए तैयार हैं।

लेकिन अगर हर तरह हिन्दी के सधे-साधे शब्द संस्कृत होने के कारण निकाले जायँगे तो भाषा की यह सूरत बच्चे के माँ-बाप को, राष्ट्र के वृहत्तर वर्ग को पसन्द आयेगी, विश्वास नहीं। अंग्रेजी चलती ही है। हिन्दू और मुसलमान अपनी-अपनी भाषा में शिक्षा पायेंगे तभी अच्छाई है। भाषा साहित्य के सौ-पचास साल की दौड़ के बाद यह साबित हो जायेगा कि ग्राहिका-शक्ति किस भाषा की अधिक है, विश्व-साहित्य में किसकी अधिक पैठ है। यह साहित्य का मूल सिद्धान्त है कि सामाजिक विचारों में जो जितना बढ़ा हुआ संसार के समाज से मिलने में समर्थ है अपने उपन्यास, नाटक, काव्य और विचारों से, वह उतना समर्थ है। पचास साल बाद या सौ साल बाद, हम एक-दूसरे के महत्त्व को समझने के बाद ही मिल सकेंगे। अभी अगर भक्ति-भाव की उपासना हिन्दू छोड़ नहीं सकते और मुसलमान ग्रहण नहीं कर सकते तो तब तक देश-सेवा के नाम से स्वार्थ-सेवा की ही साधना चल सकती है। दिव्य-भावों की उपासनाएँ, वैसे गीत, वैसा साहित्य हिन्दू अभी नहीं छोड़ सकते। भावों का मेल ही सही-सही मेल है। पं. जवाहरलालजी नेहरू कहते हैं कि अभी तक कोई राष्ट्रीय गीत नहीं लिखा गया—यह प्रान्तीत सभी भाषाओं के साहित्य के लिए है; बंगला के लिए तो है ही जहाँ का 'वन्देमातरम्' गान है; रवीन्द्रनाथ का 'जन-गन-मन अधिनायक जय हे भारत भाग्यविधाता' भी योग्य नहीं।

हिन्दुस्तानी का जैसा प्रचार हो रहा है, क़ौमी बटवारे के अनुसार नहीं। इस उच्चता तक पहुँच न सकेंगे। उदू-साहित्य के स्वभाव से हिन्दी अपने प्रवर्धन-काल से परिचित है। हिन्दी ने मीर, ग़ालिब, दाग़ और जिगर को वही सम्मान दिया है

जो अपने बड़े से बड़े कवि को देती है। उसकी पत्र-पत्रिकाएँ बराबर उर्दू के शेर उद्धृत करती हैं। साहित्यिक ही नहीं, हिन्दी भाषी जनता भी उर्दू के सैकड़ों नहीं तो बीसियों शेर और गजलें कण्ठस्थ किये हुए है। हिन्दी के कवियों ने उर्दू के छन्द बड़े प्रेम से अपनाये और आगे भी साहित्य में अपनायेंगे। अच्छा होता अगर उर्दू में भी आज की हिन्दी की जैसी रागिनी बजती सुन पड़ती।

प्रगतिशील साहित्यिकों का हिन्दी में प्रसार हो रहा है, यह एक दूसरी निर्माण-कला की अग्र-सूचना है। अभी प्रगतिशील कोई साहित्यिक ऐसा नहीं जो विचार, लेखन-कला और भाषाज्ञान में अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक के समकक्ष हो।

यौन विज्ञान (सेक्स) की बुनियाद पर हिन्दी में जो रचनाएँ होने लगी हैं, तार्किक दृष्टि से उठी हुई हैं। कला की पदवी प्राप्त करते रहने पर ये निर्महत्त्व नहीं होंगी।

अत्याधुनिक कवि और आलोचक जो हिन्दी में आये हैं, सबसे अधिक शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। साहित्यिक बड़ी उत्कण्ठा से इनके लिखे काव्य और आलोचनाएँ देखते हैं।

(खण्ड 6)

ooo

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म : 21 फरवरी, 1899 (स्थान : बंगाल के मेदिनीपुर जिले का महिषादल नामक देशी राज्य। मूल निवास : उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले का गढ़ाकोला नामक गाँव) मृत्यु : 15 अक्टूबर, 1961 (दारागंज, इलाहाबाद) **शिक्षा** : हाई स्कूल तक। हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान स्वतन्त्र रूप से प्राप्त किया। **वृत्ति** : प्रायः 1918 ई० से लेकर 1922 ई० के मध्य तक महिषादल राज्य की सेवा में। उसके बाद से सम्पादन, स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। 1922-23 ई० में 'समन्वय' (मासिक, कलकत्ता) का सम्पादन। 1923 ई० के अगस्त से 'मतवाला'-मण्डल में। 'मतवाला' से सम्बन्ध किसी न किसी रूप में 1929 ई० के मध्य तक बना रहा। इस बीच स्वतन्त्र लेखन और बाजार का काम' भी करते रहे। कलकत्ता छोड़ा तो लखनऊ आये, जहाँ गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय और वहाँ से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'सुधा' से 1935 ई० के मध्य तक सम्बद्ध रहे। प्रायः 1940 ई० तक लखनऊ में। तत्पश्चात् कभी इलाहाबाद और कभी उन्नाव में। 1942-43 ई० से स्थायी रूप में इलाहाबाद में रहकर स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। **साहित्य** : पहली प्रकाशित कविता : 'जन्मभूमि' ('प्रभा', मासिक, कानपुर, जून, 1920)। पहला प्रकाशित निबन्ध : 'बंगभाषा का उच्चारण' ('सरस्वती', मासिक, प्रयाग, अक्तूबर, 1920)। पहली प्रकाशित पुस्तक : **अनामिका** (1923 ई०)। प्रमुख कृतियाँ : **परिमल, गीतिका, द्वितीय अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत गुंज, सान्ध्य काकली** (कविता), **अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा** (उपन्यास), **लिली, चतुरी चमार** (कहानी), **रवीन्द्र-कविता-कानन, प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा, चाबुक, चयन, संग्रह** (निबन्ध) और **महाभारत** (पुराकथा)।

यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला;
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है;
शिथिल त्वचा, ढलढल है छाती,
लेकिन अभी सँभाले थाती,
और उठाये विजय पताका—
यह कवि है अपनी जनता का।

रामविलास शर्मा

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली - पटना